हिमालय गाथा -1

देव परंपरा

सुदर्शन वशिष्ठ

हिमालय गाथा (एक)

देव परंपरा

हिमालय गाथा (एक)

देव परंपरा

सुदर्शन वशिष्ठ

ISBN—978-81-904232-0-5

प्रकाशक

सुहानी बुक्स

चौथी मंजिल, 109, ब्लॉक बी

प्रीत विहार, दिल्ली-92

पाँचवाँ संस्करण

2019

आवरण

निर्दोष त्यागी

मूल्य

पाँच सौ पचास रुपये

मुद्रक

बी०के० ऑफसेट

नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

HIMALAYA GAATHA (1) DEV PARAMPARA (*Hindi*)

by Sudarshan Vashisth

Price : ₹ 550

संस्कृति का सागर

बहुत गहरा है संस्कृति का सागर। जितना इसमें डूबते जाओ, गहराई उतनी ही बढ़ती जाती है। गहराई के भीतर जो सीप-मोती हैं, वे कभी हाथ लगते हैं, कभी नहीं। सतह के नीचे जो विचित्र संसार है, वह डूबकर, आँखें खुली रखने पर ही देखा जा सकता है। संस्कृति की खोज में 'जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ' वाली बात चरितार्थ होती है। जो सड़क के किनारे बैठ ऊपर के पहाड़ों को देखते हैं, वे दूरबीन लगाकर भले ही मनोहारी दृश्य देख लें, उस दृश्य के पीछे के जीवन को नहीं देख सकते।

संस्कृति का मूल श्रुत साहित्य है। सदियों से यह श्रुति के माध्यम से स्मृति में जाकर यात्रा करता रहा है। इस मौखिक साहित्य या लोकवार्ता का टेक्स्ट बीस कोस बाद बदलता है। एक कथा एक कोने से यात्रा करती हुई किसी दूरस्थ कोने तक पहुँचती है। लोकमानस अपनी संस्कृति और भौगोलिक परिस्थितियों व भावनाओं के अनुसार इसमें परिवर्तन कर लेते हैं। लोगों के देवता उनके अपने जैसे हैं। मंदिरों में मूर्तियों की आकृतियाँ उसी आकार में बनती हैं जैसे वहाँ के वासी हैं। कभी शिव को दाढ़ी-मूँछ लगाई जाती है तो देवी को गद्दी वस्त्राभूषणों से सुसज्जित किया जाता है। देवताओं का अपने ढंग से मानवीकरण होता रहता है। देवता वैसा ही वार्तालाप करते हैं, वही पहनते हैं, वही खाते-पीते हैं, जो उस क्षेत्र में होता है।

हिमाचल प्रदेश में कई संस्कृतियों का संगम हुआ है। सदियों पहले यह भू-भाग देश के मैदानी भागों से कटा रहा। यहाँ के पर्वतवासी अपनी तरह का जीवन जीते रहे, जिसके अवशेष आज भी पूजा-विधान, देव पर्व-उत्सवों में देखने को मिलते हैं। धीरे-धीरे जब मैदानों की संस्कृति ऊपर पहुँची तो एक संघर्ष के बाद आर्य लोग पर्वतों पर आधिपत्य जमाने में सफल हुए। इन क्षेत्रों को जीतकर उन्होंने यहीं के शासकों के हवाले किया, अतः संस्कृति सुरक्षित रही। पर्वतों के आदिदेव शिव मृगछाल पहने, शरीर पर भस्म रमाए घूमते रहे। हाँ, कालांतर में मैदानों से आए कुछ राजा अपने साथ वैष्णव संस्कृति लाए और यहाँ रघुनाथ जी की पूजा होने लगी। तथापि आदिदेव शिव का अस्तित्व भी बना रहा। यहाँ की मूल संस्कृति में नागरी सभ्यता के वस्त्राभूषण से सुरक्षित विष्णु का स्थान नहीं था, अपितु पर्वतशिखरों पर जटाधारी शिव और घाटियों में पिंडी के रूप में देवी स्थापित रही।

आज के युग में जब पहाड़ों के द्वार खुलने लगे, अलंघ्य पर्वत लाँघने सुगम हुए, मैदानी प्रभाव बढ़ने लगा। इससे पूर्व भी कई तरह की उथल-पुथल हुई। बाहरी आक्रमण होते रहे। राजनीतिक और सांस्कृतिक लूटपाट हुई। इस उलटफेर के बाद यह स्थिति आई कि मंदिरों में पूजा किसी देवता की होती है, तो भीतर मूर्ति कोई और ही है। यदि पूजा परशुराम की होती है, तो भीतर मूर्तियाँ बुद्ध की निकलती हैं। शिव अवलोकीतेश्वर के रूप

में पूजे जाते हैं तो कहीं त्रिलोकीनाथ के रूप में। लोगों की मान्यता और आस्था ने अभी भी ऐसी भ्रांतियों से पर्दा नहीं उठने दिया है। कई जगह मूल मूर्तियाँ देखने, उनका चित्र लेने की मनाही है। कुछ ऐसी पोथियाँ हैं जो किसी को दिखाई नहीं जातीं, चाहे वे बिना संरक्षण के नष्ट हो जाएँ। अतः अभी भी बहुत कुछ अस्पष्ट और अबूझा, अजाना है।

संस्कृति का भंडार बहुत विशाल है। उसकी तह तक पहुँचने की बात तो अलग रही, पूरे सांस्कृतिक परिवेश को जानना-पहचानना भी बहुत कठिन है। जब किसी विषय पर लिखने बैठते हैं तो पूरा होने पर भी लगता है, यह भी रह गया, वह भी रह गया। अरे, वह तो लिखा ही नहीं। यहाँ की झीलों के बारे में लोकमत है कि किसी ने झील की गहराई मापने की सोची। एक लंबी रस्सी में पत्थर बाँध उसे झील में फेंका गया। रस्सी छोटी पड़ गई। एक रस्सी और जोड़ी गई, वह भी छोटी पड़ गई। अंततः गाँव-भर की रस्सियाँ लेकर जोड़ी गईं, तब भी झील की गहराई की थाह नहीं लग पाई। ऐसे ही संस्कृति की थाह लगाना भी एक रस्सी या एक शोधकर्ता का काम नहीं है।

यहाँ एक प्रसंग याद आता है। वेदव्यास ने महाभारत की रचना करने पर कहा था कि इस ग्रंथ में वैदिक और लौकिक सभी विषय हैं। इसमें वेदांग सहित उपनिषद, वेदों का क्रिया-विस्तार, इतिहास, पुराण, भूत, भविष्य और वर्तमान वृत्तांत, बुढ़ापा, मृत्यु, भय, व्याधि आदि के भाव-अभाव का निर्णय, आश्रम और वर्णों का धर्म, पुराणों का सार, तपस्या, ब्रह्मचर्य, चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और युगों का वर्णन किया है। महाभारत की रचना के बाद यह कहा जाने लगा कि इस ग्रंथ पर भविष्य में न जाने कितने ग्रंथ लिखे जाएँगे। इसी तरह हिमाचल की संस्कृति है। इस पर कितने ही ग्रंथ लिखे जाने की संभावना है। कितना ही लिखा जाए, यह पूर्ण नहीं लगता। तथापि कभी-कभी अपूर्णता में ही पूर्णता विद्यमान रहती है।

हिमाचल का हर भू-भाग विचित्र है। हर खंड दूसरे से भिन्न। भिन्न भाषा, वेशभूषा, खान-पान, रहन-सहन, लोकनृत्य, लोकनाट्य। जैसे कई विचित्र कबीले यहाँ अलग-अलग भू-भागों में बसे हों। उनकी शारीरिक बनावट, मुखाकृति भिन्न। कुल्लू की वेशभूषा अलग तो महासू की अलग। सिरमौर की अलग तो चंबा की अलग। जहाँ किन्नौर, लाहुल स्पिति में बौद्ध धर्मावलंबी हैं, तो अकेले जिला चंबा में ही गद्दी, पंगवाल, चंबयाल, चुराही अलग हैं। एक-एक समुदाय अपने में अलग विशेषताएँ लिए हुए है और अपने में पूर्ण है। कुल्लू का छोटा-सा गाँव मलाणा इसका उदाहरण है। लगभग आठ सौ की आबादी वाले, संभवतः संसार के सबसे छोटे गणतंत्र की पूर्ण व्यवस्था अलग है। यहाँ की बोली 'कणासी' है, जो अपने में पूर्ण है। यहाँ की गणतंत्रात्मक व्यवस्था अपनी है, जो अपने में पूर्ण है। ऐसे विशिष्ट समुदायों को मिलाकर बना है हिमाचल प्रदेश, जहाँ हर छोटी से छोटी इकाई अलग शोध की माँग करती है।

श्रावणी पूर्णिमा, 2006

—सुदर्शन वशिष्ठ

क्रम

संवाद देवों से

स्वर्ग की कल्पना एक ऊँचे स्थान पर की गई है। पुराणों में वर्णित शिवपुरी, कुबेरपुरी, इंद्र-लोक, विष्णुलोक आदि सभी लोक एक ऊँचे स्थान पर थे। यह ऊँचा स्थान और कोई नहीं, हिमालय ही था। यहाँ ऋषि-मुनि भी तपस्या के लिए आए। पर्वत अनादि काल से देवताओं से जुड़े रहे हैं। हिमालय की ऊँचाइयों में देवताओं का वास माना जाता है। शिव तो पर्वतवासी हैं ही, ब्रह्मा, विष्णु, अनेकानेक ऋषि, मुनि, नाग-सिद्ध भी पर्वत कंदराओं में बसे। आज भी हिमाचल के ऊपरी भागों—कुल्लू-किन्नौर, मंडी-महासू, भरमौर-सिरमौर तथा उत्तरांचल से लगते शिखरों तथा घाटियों में स्थान-स्थान पर देवताओं का वास है। हर वन-पर्वत, ग्राम में देवता विराजमान हैं।

अधिकांश मंदिरों में कोई मूर्ति नहीं होती। न ही विधिवत् प्रतिदिन पूजा होती है। मंदिर में या मंदिर के साथ भंडार में देवता के मोहरे (मास्क) रखे जाते हैं। उत्सव के दिन इन मोहरों के साथ देवता का रथ या पालकी सजाई जाती है, जिसे दो या चार आदमी उठाते हैं। यही जीवंत देवता है। ग्राम देवता के प्रमुख कर्मचारियों में कारदार, भंडारी और गूर—ये तीन प्रमुख हैं। कारदार देवता व उसके उत्सवों, धार्मिक कृत्यों की प्रबंध-व्यवस्था करता है। भंडारी एक प्रकार से कोषाध्यक्ष है। देवता की सामग्री जैसे मोहरे, सोना, चाँदी व अन्य वस्तुएँ रखता है। गूर ऐसा समर्थ कर्मचारी है जो देवता का प्रवक्ता है।

बहुत आश्चर्यजनक और रोमांचक हैं इन देवताओं की कहानियाँ। ये देवता पत्थर या धातु की मूर्तियाँ मात्र नहीं, अपितु ये मनुष्यों की भाँति बात करते हैं। रूठते हैं, मनते हैं। रुष्ट-प्रसन्न होते हैं। अपने जन्मदिवस मनाते हैं। उत्सव मनाते हैं। एक देवता दूसरे से मिलने आता है। एक के उत्सव में दूसरा आमंत्रण पाने पर भाग लेता है। सभी ग्रामीण देवता की प्रजा हैं। वह राजा है। स्वामी है। प्रजा के लिए देवता ही पालक है। संहारक भी वही है। वही न्याय करता है, दंड देता है। आशीर्वाद भी वही देता है। अपनी प्रजा को देवता ही भावी विपत्तियों के प्रति आगाह करता है। सुखमय भविष्य की ओर जाने की राह बताता है।

इस सारे संवाद के बीच की कड़ी है गूर। गूर के बिना देवता गूँगा है। वास्तव में गूर ही देवता का इहलौकिक प्रतीक है। उसी के माध्यम से देवता मनुष्यों से जुड़ा है। वह देवता और मनुष्य के बीच की कड़ी है। वही देवस्वरूप होकर मनुष्यों से वार्तालाप करता है। भविष्यवाणियाँ करता है, रोष-हर्ष प्रकट करता है। गूर के बिना देवता की कोई कार्यवाही संभव नहीं।

कैसे बनते हैं गूर

गूर बनने के लिए कई परीक्षाओं से गुजरना होता है। प्रायः जिस व्यक्ति के 'उभरने' (देव-प्रवेश) पर सिर की टोपी गिर जाए, वह गूर माना जाता है। किंतु यह आवश्यक नहीं होता कि जिसकी टोपी गिर जाए या जो अपनी टोपी को उस समय गिर जाने दे (क्योंकि गूर के अलावा अन्य व्यक्ति उभरने पर अपनी टोपी हाथ से थामे रहते हैं) तो वह अवश्य ही गूर बन जाएगा। अलबत्ता उसमें गूर बनने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। कई बार वह गूर नहीं भी बनता। गूर घोषित होने के लिए पहाड़ की चोटी से एक जड़ी बैठल लानी होती है। इसी जड़ी से देवता को धूपित किया जाता है। इसे पवित्र माना जाता है और लोहे से काटा नहीं जाता। घरों में भी इस जड़ी को रखना और धूपित करना अच्छा माना जाता है। देवता को धूपित करने के लिए लोग इसे नवरात्रों में लाते हैं।

जो व्यक्ति 'उभरकर' यह जड़ी जोत से ले आए, उसे असली गूर मान लिया जाता है। देवता के प्रवेश पर उन्मत्त गूर भागता हुआ पहाड़ की चोटियों पर चढ़ जाता है जहाँ बैठल होती है। बैठल लेकर वह उसी जोश की स्थिति में वापस आता है।

ऐसे चमत्कारी कृत्य के बाद देवता के भीतर से निकल जाने पर गूर बैठकर रोता है। क्योंकि तब ठंड भी लगती है और शरीर में बिजली-सा संचार भी नहीं रहता।

कुल्लू से ऊपर एक अन्य देवता जमलू के यहाँ गूर बनने की प्रथा कुछ भिन्न है। गूर बनने को आया पुरुष उभरने पर अपनी टोपी उतार फेंकता है। ऐसी स्थिति में उसे कुछ लोग पकड़ लेते हैं, क्योंकि वह आपे में नहीं रहता। उसे पकड़कर देवता के पास ले जाया जाता है। देवता के सभी कर्मचारी उपस्थित हो जाते हैं और अच्छा-खासा समारोह बँध जाता है। गूर कुछ बोलता नहीं। देवता के पास एक बकरा बलि किया जाता है और उसका खून गूर के मुँह में लगाया जाता है। तब गूर बोल उठता है।

कई बार गूर बनने को आया आदमी दूरस्थ स्थानों में उभर जाता है। मलाणावासी अपनी भेड़ें रामपुर की ओर लाते हैं। रामपुर में एक आदमी उभर पड़ा और उसका उभरना बंद न हुआ। अंततः उसे रामपुर से लगभग पचास किलोमीटर की दूरी तय कर मलाणा लाया गया। बिना कुछ खाए-पिए वह मलाणा पहुँचा और विधिवत् गूर बना। मूल माहूनाग बखारी (मंडी) के गूर बनने को आए व्यक्ति को एक निश्चित जगह में सतलुज में छलाँग लगानी पड़ती है।

गूर का जीवन : एक पराया जीवन

गूर बनने पर उसका जीवन अपना जीवन नहीं रहता। वह देवता को समर्पित हो जाता है। गूर के जीवन में कई तरह की वर्जनाएँ हैं। उसे नियमित व प्रतिबंधित जीवन जीना होता है। अधिकतर देवता के गूर सिगरेट, तंबाकू नहीं पीते। गूर को लंबे बाल रखने होते हैं। पाँव में जूता नहीं डालना होता। यहाँ तक कि कइयों को हल पकड़ना भी वर्जित है। देवता के क्रियाकलापों में उसे चोला कमर में लपेटे, बाल बिखराए नंगा होना पड़ता है।

गूर बनने से पूर्व उसे कई अग्नि-परीक्षाओं से गुजरना होता है। देवता के उत्सव के समय गूर को नंगे पाँव, नंगे बदन बर्फ में नाचना पड़ता है। उत्सव के समय पगड़ी पहने लंबी जटाएँ धारण किए गूर को अलग पहचाना जा सकता है।

एक देवता के एक से अधिक गूर भी होते हैं। ऐसी दशा में आयु के लिहाज से जो गूर पहले बना हो, वह वरिष्ठ गूर माना जाता है। देवता के प्रत्येक समारोह में 'गूर-खेल' होता है।

देवता के वार्षिक उत्सव में गूर देवता की कथा सुनाता है जिसे 'बर्शोहा' या 'भारथा' कहा जाता है। इसमें देवता के घाटी में आगमन, अलौकिक तथा चमत्कारी कृत्यों का वर्णन रहता है। इसके साथ ही आगामी वर्ष के बारे में भविष्यवाणियाँ की जाती हैं। वर्षा-अकाल, रोग-महामारी, सुख-समृद्धि के बारे में बताया जाता है। लोग अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का हल भी पूछते हैं।

गूर-खेल या आवेश में आने के समय गूर अजीब-अजीब हरकतें करते हैं जो सामान्य व्यक्ति नहीं कर सकता। वे आवेश में आकर थर-थर काँपते हैं। गर्म खून पीते हैं। जो वस्तु खाई नहीं जा सकती, उसे खाते हैं। पांगणा (मंडी) में गूर आवेश में आने पर जौ खाते हैं। कुछ थूहर (एक प्रकार का कैक्टस) कच्चा चबा जाते हैं।

गूर को महासू में 'माली', किन्नौर में 'ग्रोक्च' तथा चंबा और काँगड़ा में 'चेला' कहा जाता है।

गूर का पद पैतृक

प्रायः गूर का पद पैतृक होता है। किंतु यह आवश्यक भी नहीं है। गाँव में कोई व्यक्ति, जिस पर देवता की कृपा हो, गूर बन जाता है।

प्रायः गूर अपने पुत्रों को गूर न बनने की नेक सलाह देते हैं। अब, जबकि देवता में लोगों की श्रद्धा कम होती जा रही है, गूर का जीवन सम्मानजनक नहीं रहा, साथ ही अनेक प्रतिबंध भी लग गए हैं; गूर दुर्लभ होते जा रहे हैं।

गूर हैं तो गाथा भी है देवों की

फाग का महीना आते ही हिमाचल के ऊपरी क्षेत्रों—किन्नौर, लाहुल स्पिति और विशेषकर कुल्लू और मंडी के ऊपरी क्षेत्रों में मेलों का आयोजन शुरू हो जाता है। ये सभी मेले देवताओं से संबंधित होते हैं, जिसमें देवता व लोगों का अद्भुत समागम होता है। फागुन के अँगड़ाई लेते ही देवता जगते हैं और अपने-अपने स्थान पर वापस आकर अपनी प्रजा को सुनाते हैं—आगामी वर्ष के बारे में भविष्यवाणियाँ और अपनी इस वर्ष की उपलब्धियाँ। इस अंतिम मास के बाद नया वर्ष आरंभ होगा। बर्फ पिघलेगी, अंकुर फूटेंगे, वसंत झूमेगा।

देवताओं को सुप्त अवस्था से जागृत करता है फागुन, जब मनुष्य-वनस्पति की सुप्त शक्तियाँ एकबारगी फूटकर बाहर निकलना चाहती हैं। इस फाग के मौसम में मनाई जाती हैं फागलियाँ, तकरीबन हर देवता के यहाँ। फागुन की संक्रांति से आरंभ होकर फागली महीना-भर चलती रहती है, एक गाँव से दूसरे गाँव वासंती हवा की तरह। बर्फानी इलाकों में वसंत देरी से आता है, फागुन के अंत तक। पहली फागली को कई स्थान बर्फ से ढके होते हैं। फरवरी और फागुन में एक अजीब साम्य है।

प्रायः एक इलाके के देवता अपने मुख्य देवता के यहाँ फागली मनाते हैं। अपनी युद्ध-गाथा में मुख्य देवता सेनापति होता है और अन्य देवता सहायक। अपनी सुप्त अवस्था से देवता जागते हैं और अपनी 'भारथा' में युद्ध में हारने-जीतने के किस्से सुनाते हैं। 'भारथा' में से पुरातन किस्से भी दोहराते हैं, युद्ध में हारने या जीतने की बात नई होती है। कभी देवता हारते हैं, कभी जीतते हैं। फिर गाँव के लिए वर्षा, अकाल, बीमारी, खुशहाली आदि लाते हैं और उसी के अनुरूप आगामी वर्ष अच्छा या बुरा होने की भविष्यवाणियाँ करते हैं।

फागली का पर्व कहीं एक दिन, कहीं तीन दिन तो कहीं सात दिन तक चलता है। पर्व के दिनों ग्रामीण अपने चूल्हों में भी बैठल (धूप की जड़ी) डाल छोड़ते हैं, ताकि देवता लौटने के बाद बिना आवभगत के वापस न चला जाए।

मलाणा के जमलू देवता की फागली प्रसिद्ध है। मलाणा में यही एकमात्र पर्व है जब देवता का सारा साज-सामान बाहर निकलता है। पर इन दिनों बर्फ के कारण यहाँ पहुँच पाना सुगम नहीं है। कुल्लू में भी जमलू या ऋषि जमदग्नि के सारे स्थानों में, जो बारह बताए जाते हैं, फागली मनाई जाती है।

नगर के ऊपर लगभग दो किलोमीटर पर है चजोगी गाँव। यह इस पहाड़ पर अंतिम गाँव है, लगभग 1800 मीटर की ऊँचाई पर बसा देउ अंबल का गाँव। देउ अंबल, जिसे राजा बलि कहा जाता है, पाताल से निकल यहाँ प्रकट हुआ था। गाँव की सीमा से ही मोहरू के पेड़ों का जंगल शुरू हो जाता है। गाँव के चारों ओर हरे-हरे मोहरू के पेड़ छितराए थे। एक व्यक्ति से पूछने पर ज्ञात हुआ कि ये पेड़ देवता के समझे जाते हैं। देवता इन्हें काटने की आज्ञा नहीं देता। बस इसके पत्ते पशुओं को चारे के रूप में डाल सकते हैं। यदि कोई इन्हें काट दे तो उसका अनिष्ट होता है। यहाँ फागली फरवरी मास के मध्य में मनाई जाती है।

देवता वर्ष में तीन बार निकलता है : एक बार फागली को, दूसरी बार जेठ में साजा कजैहली को और तीसरी बार जन्माष्टमी को। देउ अंबल का गाँव में कोई रथ नहीं है। केवल तीन निशान—घंटी, धड़छ और खंडा हैं। यद्यपि इसी देवता का एक रथ या करड़ु (एक आदमी द्वारा सिर पर उठाया जाने वाला टोकरा) है, जो पास के नशाल गाँव में है। चजोगी से कुछ ऊपर जमलू का स्थान भी है।

देवता के सभी कर्मचारी पहले दिन मंदिर में आ गए थे। प्रातः पुजारी आदि देवता को मंदिर से संलग्न 'मढ़' (जिस सरायनुमा जगह में देवता की कार्यवाही होती है) में ले

जाते हैं जहाँ देव-जागरण होता है। दूसरे दिन प्रातः नशाल से देवता का करड़ आता है, जो उसी शाम वापस हो जाता है। सभी कृत्य बाजे-गाजे के साथ किए जाते हैं।

पर्व के चौथे दिन जब वहाँ पहुँचे तो किसी आयोजन के कोई चिह्न नहीं थे। बर्फ की परतें तो नग्गर से ही आरंभ हो गई थीं। यहाँ घरों की छतें बर्फ से ढकी थीं और धूप से पानी टप-टप नीचे गिर रहा था। मंदिर के पास ही एक घर में एक व्यक्ति ने आदर से बिठाया। उसने बताया कि आज वैसे भारथा होती है जिसे 'बर्शोहा' कहा जाता है। इसमें देवता अपना इतिहास सुनाता है कि वह अमुक स्थान से आया और अमुक स्थान पर ठहरा। उसने यह किया और वह किया। इसके बाद आने वाली आपदाओं की भविष्यवाणी होती है। आने वाला वर्ष गाँव के लिए कैसा रहेगा, यह बताया जाता है।

गूर के बिना आज यहाँ कार्यवाही नहीं हो पाई। वास्तव में गूर ही देवता का इहलौकिक प्रतीक है। उसी के माध्यम से देवता मनुष्यों से जुड़ा है। वही देवस्वरूप होकर मनुष्यों से वार्तालाप करता है, भविष्यवाणियाँ करता है, रोष-हर्ष प्रकट करता है। देव-मानव की वह बीच की कड़ी है।

इस देवता के गूर खीमदास की दो वर्ष पूर्व मृत्यु हो चुकी है। उसके बाद अभी तक कोई और गूर नहीं बना।

"क्या अब कोई गूर नहीं बनेगा ?" शंका व्यक्त की, क्योंकि अब गूरों की संख्या कम होती जा रही है। कोई अब गूर बनना पसंद नहीं करता। गूर के जीवन में कई तरह की वर्जनाएँ हैं। उसे नियमित व प्रतिबंधित जीवन जीना होता है। अधिकतर देवताओं के गूर सिगरेट-तंबाकू नहीं पीते। गूर को लंबे बाल रखने होते हैं। सूतक-पातक का परहेज करना होता है। यहाँ तक कि कइयों को हल पकड़ना वर्जित है। ऐसी स्थिति में और वर्तमान हालात में जब देवता को कोई विशेष आय नहीं होती, आस्था कम हो रही है, गूरों का जीवन दूभर हो गया है। देवताओं के क्रियाकलापों में उन्हें चोला कमर में लपेटे, बाल बिखराए नंगा होना पड़ता है। गूर बनने से पूर्व भी उन्हें अग्नि-परीक्षाओं से गुजरना होता है।

प्रायः गूर अब अपने पुत्रों को गूर न बनने की नेक सलाह देते हैं, पर ऐसा भी कहा जाता है कि जिसे देवता अपना गूर बनाना चाहे, वह लाख कोशिश करने पर भी गूर हुए बिना नहीं रह सकता। इस विषय में एक गूर के पुत्र की चर्चा की जाती है कि पिता ने पुत्र को गूर न बनने की सलाह दी। पुत्र भी गूर बनने में रुचि नहीं रखता था। अतः उसने देवताओं के लिए वर्जित वस्तुओं का प्रयोग आरंभ कर दिया। सिगरेट-तंबाकू के साथ और जूते पहने देवता नहीं आता था। एक बार वह नहाने के लिए नंगा हुआ तो देवता उसमें प्रवेश कर गया और अंततः उसे गूर बनना पड़ा।

"नहीं, गूर तो कोई न कोई बनेगा ही। गूर के बिना देवता गूँगा है। शायद कोई गूर निकल आए।" उस व्यक्ति ने मंदिर के दरवाजे की ओर देखते हुए कहा।

यहाँ गूर घोषित करने के लिए पहाड़ की चोटी से एक जड़ी बैठल लानी होती है। इसी जड़ी से देवता को धूपित किया जाता है। इसे पवित्र माना जाता है और लोहे से काटा

नहीं जाता। देवता को धूपित करने के लिए लोग नवरात्रों में जाकर लाते हैं। जो गूर उभरकर यह जड़ी जोत से ले आता है, उसे अगली गूर मान लिया जाता है। उन्मत्त गूर भागता हुआ पहाड़ की चोटियों पर चढ़ जाता है जहाँ बैठल होती है। बैठल लेकर उसी जोश वाली स्थिति में वह वापस आ जाता है।

इस देवता के गूर खीमदास के विषय में बताया गया है कि वह अकसर उन्मत्त स्थिति में चंद्रखाणी पर्वत पर जाया करता था और वहाँ से बैठल लाता। प्रायः वह ऐसा करता और बर्फीले व दुर्गम पर्वत पर भागता हुआ चढ़ जाता। एक बार एक स्थान पर वह नाला पार कर रहा था कि देवता भीतर से निकल गया। वह एकदम ठंडा हो गया। पर उसी समय दैवयोग से देवता आ गया और वह पुनः उस अगम्य पथ को सुगमता से लाँघ गया। ऐसी एक घटना एक अन्य गूर के विषय में भी सुनाई जाती है कि वह एक ऐसी चट्टान पर जा पहुँचा जहाँ से निकल सकना संभव न था, परंतु देवता के प्रभाव से वह वहाँ से निकल आया। इस तरह की घटनाएँ देवताओं के गूरों के विषय में परी-कथाओं की तरह सुनाई जाती हैं।

देवता ने खीमदास को ऐसा करने से टोका भी था कि इससे उसके जीवन को खतरा है। जब देवता उससे उतर जाता तो वह बैठकर रोता था क्योंकि तब ठंड भी लगती थी और जोश भी उतर जाता था।

वहीं ऐसा भी ज्ञात हुआ कि गूर उसी वंश का आदमी बनता है। एक गूर अपने वंश के किसी व्यक्ति, पुत्रादि को ऐसी दीक्षा देता है। और यदि वह उसमें खरा उतरे और देवता की कृपा हो तो गूर भी बन जाता है।

"भारथा में देवता का इतिहास तो हर वर्ष एक-सा होता है ?" पूछा तो जवाब मिला, "हाँ, इतिहास तो एक ही तरह का रहता है जो गूरों को कंठस्थ होता है। एक गूर अपने शिष्य गूर को यह रटवा देता है।" उसने स्वीकारा।

"दूसरे, अर्थ यह हुआ कि भारथा गूर स्वयं ही बोलता है, देवता नहीं। जैसे अब यहाँ गूर बनेगा तो उसे भारथा कैसे आएगी।"

"संभवतः गूर ने अपने किसी संबंधी को सिखाई हो¨या देवता की कृपा से आ जाए।" देवता की कृपा से आने की बात वह ज्यादा विश्वास से नहीं कह पाया।

वैसे गूर भारथा पूछने पर बताते नहीं और कहते हैं कि यह उसी समय उनके मुँह से प्रकट होती है, ऐसे अप्रासंगिक रूप से नहीं।

इसी रात 'सगरात' थी। इस रात्रि एक-डेढ़ बजे नृत्य होता है। इस नृत्य में परसों होने वाले नृत्य के लिए नर्तकों का चयन होता है। इस रात चयनित नर्तकों को परसों 'कोटलू' के लिए नृत्य करने के लिए वचनबद्ध होना होता है। इसी रात को 'सगरात' कहा जाता है।

अंतिम दिन होता है कोटलू। इस शाम मुखौटे पहन नृत्य होता है। यह मुखौटा नृत्य अन्य स्थानों–सोएल, हलेउ, हलाण, शलीण, रूमसू आदि में भी होता है। इन गाँवों में कहीं एक, कहीं दो, कहीं तीन मुखौटेधारी अपने-अपने ढंग से नाचते हैं। सोएल में मुखौटाधारी

को नाचते-नाचते जोश आ जाता है, तब उसे दो आदमी पकड़े रखते हैं। लोगों का विश्वास है कि भाग जाने पर कहीं जाकर उसकी मृत्यु हो जाती है। मुखौटाधारी 'टुंडी राक्षस' का अभिनय करता है। एक अन्य राक्षसी का अभिनय करता है। वास्तव में ये मुखौटे पहनते नहीं बल्कि एक हाथ से माथे पर थामे रखते हैं।

शाम के लगभग तीन बजे देवता की कार्रवाई आरंभ हो गई। नर्तक भी अपने-अपने घरों में तैयार होने लगे। मुखौटे धारण करने वालों को तैयार होने की आवश्यकता नहीं थी। उनका शृंगार तो मढ़ में ही होना था। चार लकड़ी के मुखौटे मढ़ में दीवार से टिकाकर रखे थे। उनके ऊपर रंगों, चाक आदि से चित्रकारी की गई थी। मुखौटों की काष्ठकला अच्छी थी। विशेषकर उनकी नुकीली नाक बहुत सुंदर थी। दाढ़ों में राक्षसी भयंकरता को प्रकट किया गया था। चारों मुखौटों की अपनी-अपनी अनुकृति थी। चार व्यक्तियों के मुँह पर मुखौटे चढ़ा दिए गए और उनके शरीर के ऊपरी भाग में कलात्मकता से 'रायल' नाम की झाड़ी के पत्ते-टहनियाँ लगा दीं।

मुखौटों को 'खेपरे' कहा जाता है और पारंपरिक वेशभूषा वाले नर्तकों को 'गुड़ी'। मढ़ से सबसे पहले चार नर्तक पारंपरिक चोला-टोपा पहने नर्गिस फूलों से सुसज्जित हुए निकले। उनके आगे एक लीडर था जिसे 'धुरी' कहा जाता है। इसी प्रकार चार मुखौटाधारियों के आगे भी धुरी था जो चोला-टोपा पहने हुए था। धुरी के हाथ का डंडा पिछले मुखौटे वाले ने घुटने के पास हाथ से पकड़ रखा था। इसी तरह डंडे का दूसरा किनारा उससे पिछले मुखौटे वाले ने पकड़ा था। सभी इस तरह एक-दूसरे से जुड़े थे। सारे नृत्य में ये डंडे नहीं छोड़े जाते। यदि डंडा किसी से छूट जाए तो उसके लिए अशुभ माना जाता है। न ही ये नर्तक मुँह से कुछ बोलते हैं।

चार नर्तक, चार मुखौटेधारी, दो धुरी, देवता के बाजे, पुजारी सहित मंदिर के सामने छोटी-सी जगह में आ गए। यहाँ पहले चार नर्तक, एक धुरी का नृत्य हुआ। केवल बाजे पर। कोई गाना नहीं गाया गया। इसके बाद चार मुखौटेधारी और धुरी ने नृत्य किया। धुरी के हाथ में कुल्हाड़ीनुमा शस्त्र था जिसे वह बार-बार पहले मुखौटेधारी के सिर पर घुमा रहा था। एक ने बताया कि कई बार इस प्रक्रिया में गूर खेलता है और राक्षसी मुद्रा में मुँह फाड़ता है, तब उसे देवता के डंडे से डराकर शांत किया जाता है।

अब वे मंदिर से कुछ आगे खुली जगह में अखरोट के पेड़ के नीचे नृत्य करने लगे। देवता के पुजारी आदि एक ओर बैठ गए। नृत्य देखकर लग रहा था कि यह सुर-असुर, देव-दानव, मनुष्य-राक्षस होड़ लगाए नृत्य नहीं कर रहे। यह नृत्य संग्राम का प्रतीक नहीं है, अपितु संग्राम के उपरांत संधि का प्रतीक है, एक समन्वय का प्रतीक है। मनुष्य-राक्षस संस्कृति का समन्वय।

वैदिक सुरा

'धर्मयुग' के 14 सितंबर, 1980 के अंक में श्री भरतरक्षक के 'क्या वैदिक सोमलता और सोमरस का रहस्य खुल गया !' तथा कृष्णचंद्र सगर के 'कैसे तैयार किया जाता है सोमरस !' लेखों में सोमलता और उसे कूटने के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली ओखलियों की चर्चा हुई। इस पर 'धर्मयुग' में 'संपादक के नाम पत्र' लिखा, जो प्रकाशित भी हुआ। इस पत्र में मुख्य मुद्दा था—क्या सोमलता केवल एक ही लता थी या सोमरस बनाने के लिए बहुत-सी जड़ी-बूटियों को प्रयोग में लाया जाता था; तथा कुल्लू में तैयार सोमरस व पर्वत-शृंगों पर उगने वाली सोमलताएँ उस वैदिक पद्धति का प्रतीक तो नहीं ! उच्च शृंगों से लाई लताओं तथा सुर तैयार करने के समय विभिन्न प्रक्रियाओं को करीब से देख पाने का मौका नहीं मिल पाया, अतः उस समय विस्तृत लेख नहीं लिखा जा सका।

शृंगे शिशनो अर्षति—ऋग्वेद का उल्लेख है। सोमलता पर्वत-शृंगों पर पाई जाती थी। कुल्लू में तैयार मादक पेय 'सुर' के लिए भी जड़ियाँ ऊँचे पर्वत शिखरों से लाई जाती हैं।

ऋग्वेद ने सोम का अनेक बार गायन किया है। ऋग्वेद के नवें मंडल में सोम का भरपूर उल्लेख आता है। वनस्पतियों के राजा, औषधियों के सम्राट्, सोम का उल्लेख ब्राह्मण ग्रंथों में भी मिलता है।

सोमरस को बनाने की विधि, जो हमारे इन धर्मशास्त्रों में वर्णित है, ठीक उसी प्रणाली से कुल्लू में 'सुर' तैयार की जाती है। प्राचीन समय में इसे 'फलक' नाम के पात्र में रखा जाता था। काटकर मूसलों से कूटा जाता था। कूटने और साथ में पानी मिलाने की प्रक्रिया में मंत्रोच्चारण भी किया जाता था। कूटा हुआ सोम 'आघवनीय' नाम के मिट्टी के पात्र में रखा जाता था। पात्र में पानी डाल इसका रस निचोड़ लेते थे। इसे अब छानकर अन्य पात्र में रखा जाता।

कुल्लू में प्रचलित इस मादक पेय को तैयार करने की भी यही वैदिक रीति है।

इस पवित्र पेय को 'सुर' कहा जाता है। यह सुर चंबा की ओर गद्दी लोगों द्वारा भी घर-घर निकाली जाती है और विशेष समारोहों में सामूहिक रूप से पी जाती है। कुल्लू में इसे पवित्र पेय माना जाता है, जिसका देवता को प्रसाद लगता है, यद्यपि कुछ देवताओं में इसका चलन नहीं है। किंतु जिन देवताओं के यहाँ यह मान्य है, वहाँ इसके पात्र को देवताओं के पास रखा जाता है। देवता के प्रांगण में, भंडार में ही इसे तैयार किया जाता है। देवता को चढ़ाने के बाद ही इसे लोगों में वितरित किया जाता है। देवता के उत्सवों में देवता के कर्मचारी इसे विधिवत् तैयार करते हैं और प्रसाद के रूप में बाँटते हैं। इन उत्सवों में यह घरों में भी तैयार की जाती है और सामूहिक रूप से घर के सदस्यों व अतिथियों को पंक्ति में बिठा वितरित की जाती है। पुरुष व महिलाएँ, दोनों समान रूप से इसका सेवन करते हैं। एक देवता के उत्सव पर पहाड़ की चोटी पर बसा एक गाँव पूरा का पूरा सुर की गंध से महका हुआ था। सुर गंधा इस गाँव में हर आँगन में लोग दाल-भात

की तरह पंक्ति में बैठ सुरापान कर रहे थे। यहाँ कुछ वैसा ही दृश्य उपस्थित था जैसा पौराणिक ग्रंथों के चित्रों में सुर-असुरों को सुरापान करते हुए दिखाया जाता है।

'सुर' अन्य प्रकार की देसी शराब या 'लुगड़ी' के विपरीत एकमात्र पवित्र पेय है जो देवता को चढ़ता है। 'लुगड़ी' एक आम और अधिक प्रचलित पेय है जो सुर से निम्न कोटि का समझा जाता है।

यह पेय देवता के कारज के समय, जाच़ (मेला) के समय तथा ब्याह के अवसर पर तैयार किया जाता है।

इसे बनाने के लिए कई तरह की जड़ी-बूटियों को प्रयोग में लाया जाता है, जो ऊँचे जोतों, शिखरों पर पाई जाती हैं। ऐसा कहा जाता है कि ऊँचे पर्वतों पर इन जड़ी-बूटियों वाले स्थानों में कोई सुकुमार बालक या नारी नंगे पाँव चले तो वहीं मदहोश हो होश खो बैठती है। ऐसे ही ऊँचे जोतों को पहली बार लाँघने वाला इन जड़ियों के खुमार से नशे में लड़खड़ा जाता है या उसके सिर में चक्कर आ जाता है।

वैसे भी इन जड़ी-बूटियों के बारे में पुराने समय से अनेक दंत कथाएँ प्रचलित हैं। यथा; ये रात को चमकती हैं, नाना प्रकार के रूप धारण करती हैं। एक औषधि किस्म की जड़ी को बंदूक से गिराने लगे तो निशाने के आगे गाय दिखने लगी या नारी दिखने लगी आदि। कुल्लू के पार थरकू गाँव में एक बार एक मैदान को समतल करती बार लोगों को ऐसी जड़ी मिली, जो उनके अनुसार रात को चमकती थी। मैं भी उसकी जड़ें घर लाया किंतु कई बार रात के अँधेरे में देखने पर वह चमकती हुई नजर न आई।

ऊँचाइयों से, कठिनाई से लाई जाने वाली इन जड़ियों में से कुछ, जो सुर बनाने में प्रयुक्त होती हैं, इस प्रकार हैं—ओसटली, निम्बली, चटकारी, करारी, गुड़ल, शकोरी, घुमण, टकोरी, गिद्धामूसल, उम्बलीडोही, शौरी, बूढ़ी रा लोगड़, मटोषण, टुम्बलमुँही, माहुरा, मटौशल, शउंडी, ठाठीमंग, डोरीगाह आदि। इनमें माहुरा और मटौशल दो जड़ियाँ प्रमुख हैं। शेष में जितनी उपलब्ध हों, उतनी से ही काम चला लिया जाता है। मटौशल नाम की जड़ी को वैसे ही डाला जाता है जैसे सब्जी में नमक डाला जाता है। इसे डालते समय मंत्र का प्रयोग भी किया जाता है।

अब इन समस्त जड़ियों की (वस्तुतः ये उक्त सूची से अधिक हैं) पहचान करने वाले कुछेक बुजुर्ग ही शेष हैं। अब प्रायः ये समस्त जड़ियाँ लाई भी नहीं जातीं। जोत से इन्हें लाने व सोम तैयार करने का कार्य देवताओं के यहाँ प्रायः बीस भादों को किया जाता है। बीस भादों को ऊँचे जोतों के जलाशयों जैसे शैला सौर, रोहतांग, भृगु आदि में स्नान का पर्व भी होता है। इसी दिन ये जड़ियाँ लाई जाती हैं।

इन जड़ी-बूटियों की जड़ें, पत्ते आदि को लकड़ी पर बारीक काटा जाता है। काटने के बाद इन्हें ओखली में कूटा जाता है। इन ओखलियों का प्रयोग विशेष रूप से इसी के लिए नहीं होता बल्कि धान कूटने के लिए भी प्रयोग में लाई जाती हैं। अब इसमें जौ का आटा मिलाया जाता है। कई बार इसमें तरम्होड़ी (काटने वाली मक्खी : भिड़) भी डाली जाती है।

अब इस लुगदी की रोटी तैयार कर सुखाई जाती है। एक देवता की फागली में मैंने पुजारी के घर गोल मक्की की रोटी के आकार की कई रोटियाँ देखीं, जो इस पद्धति से तैयार की गई थीं। इसे 'ढेली' भी कहा जाता है।

इस रोटी के टुकड़े-टुकड़े कर कोदरे के आटे में पानी मिलाकर डाले जाते हैं ताकि लेटी-सी बन जाए। इसे अब एक पात्र में डाला जाता है जिसे 'सुरेढ़ी' कहते हैं। गर्म स्थान में इस पात्र को रखकर सुर तैयार हो जाती है। इसमें ऊपर-ऊपर की सुर बढ़िया समझी जाती है।

सुर तैयार करते समय देवता के कर्मचारी भूखे रहते हैं। जड़ियाँ लाने के समय भी भूखे पेट रहना होता है।

सुर के प्रादुर्भाव के विषय में एक वृद्ध ने कथा सुनाई कि एक चिड़िया पुल के नीचे बैठी थी। एक आदमी ने चिड़िया से पूछा कि यहाँ क्यों बैठी है ? चिड़िया ने रौब से कहा कि वह इस पुल को थामे है। यदि वह यहाँ से हट जाए तो पुल गिर जाए। असल में वह सुर में डाली जाने वाली जड़ियाँ खाए हुए थी।

यह कथा ऋग्वेद की इस उक्ति से मिलती है—

'हन्ताह पृथिवीमियां न दधानिह वे हवा। कुवित् सोमस्यापामिति।'

—धरती को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख देने की बात उस चिड़िया की ही भाँति है।

सोमरस को स्वास्थ्यवर्धक, स्फूर्तिदायक औषधि बताया गया है।

सोमलता को लेकर भारत व विदेशों में अनुसंधान हुआ है, किंतु अभी तक यह सिद्ध नहीं हो पाया कि अमुक लता ही सोमलता है।

वास्तव में यह सोमलता एक न थी बल्कि सोमरस अनेक जड़ी-बूटियों से बनता था। ये जड़ी-बूटियाँ स्वास्थ्यवर्धक औषधि तो हैं ही, मादकता देने से आनंददायक भी हो जाती हैं। स्नायविक दुर्बलता को हरने वाली इन जड़ियों से शरीर चैतन्य और मन निडर बनता है।

कुछ भारतीय विशेषज्ञों ने एपिड्रा नाम का जिम्नोस्पर्म माना है। इस जिम्नोस्पर्म की जातियाँ हिमालय में पाई जाती हैं। यह औषधि के रूप में भी प्रयुक्त होती है। इसी तरह कुछ वनस्पतियों को सोमराजा, सोमिदा, सोम्बू आदि कहा जाता है।

कुछ विद्वानों ने इसे सारकोस्टेमा एसिडम नाम का पौधा माना है। यह एक बिना पत्तियों वाला पौधा होता है।

प्रायः इसे बिना फूल और पत्तों के माना जाता है। संभवतः इसी कारण से इसकी पहचान कर पाना कठिन है। पर्वतों पर इस प्रकार के पौधों की पहचान किसी जानकार को ही होती है। ऐसी जड़ियों का सेवन करने से वृद्ध साधुओं के जवाँ हो जाने की दंत कथाएँ प्रचलित हुई हैं। प्रमुखतः सोम को हिमालय से लाया जाने वाला ही माना गया है जो नमी और गीले पर्वतीय प्रदेशों की उपज है। यह संभव है कि तरह-तरह के सोमरस बनाए जाने के लिए मैदानी जड़ियाँ भी प्रयोग में लाई जाती हों।

यदि यह सुर कुल्लू में चली रहती है और इसमें प्रयुक्त जड़ियों को पहचानने वाले व्यक्ति भी रहते हैं तो शोधकर्ता इन जड़ियों को खोज, इस दिशा में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त कर सकते हैं।

कुल्लू, किन्नौर तथा महासू के क्षेत्रों में देवताओं को सुर का प्रसाद चढ़ाया जाता है। यह परंपरा देवताओं को सुरापान के लिए आमंत्रित करने की पौराणिक परंपरा की प्रतीक है। उस समय में भी सुरापान के अधिकारी कुछ महत्त्वपूर्ण देवता ही थे।

शैव परंपरा

हिमाचल हिमालय का वह भूभाग है जहाँ आदि शक्ति और शिव का प्राधान्य है। पूरे प्रदेश में शिव व्याप्त है। यहाँ के पर्वत शिखर शिव का वास माने जाते हैं। शिव का तांडव, शक्ति का लास्य यहाँ की घाटियों-शिखरों में विद्यमान है। शिव-पार्वती यहाँ आम जीवधारी मनुष्यों की तरह विचरण करते माने जाते हैं। यहाँ के लोकगीतों में शिव एक ओर कैलासों के वासी और संकट हरने वाले हैं तो दूसरी ओर प्रसन्न मुद्रा में नृत्य करते हैं। प्रदेश के मंदिरों का सर्वेक्षण किया जाए तो शिव और शक्ति के मंदिर सर्वाधिक निकलेंगे, यह निश्चित है।

शुरुआत जिला चंबा के भरमौर से की जा सकती है। भरमौर के मूल वासी गद्दी शिव भक्त हैं। शिव का वास यहाँ उतना ही पुराना माना जाता है जितना कि मनुष्य जीवन। शिव गद्दी लोगों की भेड़ों के रक्षक हैं, उनके आश्रयदाता हैं, एकमात्र सहारा हैं।

भरमौर को शिवपुरी कहा गया है। चंबा से तीस किलोमीटर दूर रावी के दाएँ किनारे पुराने भरमौर मार्ग पर देवी का मंदिर है। देवी मंदिर के चारों ओर अनेक शिवलिंग हैं जो एक शिव मंदिर की पुष्टि करते हैं। यहाँ एक शिला में लेख है जो संभवतः शिवलिंग के साथ रहा होगा। इस लेख में 'शिवपुर' का उल्लेख है। लेख में कहा गया है कि आषाढ़देव ने शिवपुर के मध्य में संकलीश का मंदिर बनवाया। वोगल ने इस लेख को सातवीं शताब्दी का माना है।

भरमौर की छतराड़ी में आदि शक्ति का अद्वितीय मंदिर है, जो आठवीं शताब्दी का माना जाता है। भरमौर की पुरातन राजधानी ब्रह्मपुर में प्राचीन मणिमहेश मंदिर है। मंदिर के बाहर नंदी में शिलालेख है, जो मेरुवर्मन के समय आठवीं शताब्दी का है।

शिव का निवास मणिमहेश माना जाता है। मणिमहेश कैलास तेरह हजार फुट से ऊपर बुलंदी पर है। मणिमहेश यात्रा राधा अष्टमी को होती है। चंबा से छड़ी यात्रा के साथ आरंभ होकर राधा अष्टमी को स्नान होता है। जम्मू भद्रवाह के लोग जन्माष्टमी के दिन स्नान करते हैं, जिसे छोटा न्हौण कहा जाता है। लक्ष्मीनारायण मंदिर के साथ छड़ी लेकर चलते हैं और मणिमहेश झील में पहुँचते हैं। झील में सर्वप्रथम चेला स्नान करता है, जो गद्दी

समुदाय का होता है। झील से पहले गौरी कुंड है, जिसमें महिलाएँ स्नान करती हैं। यह माना जाता है कि कैलास से गौरी पार्वती यहाँ प्रतिदिन स्नान करने आती थीं।

यूँ तो भरमौर में जगह-जगह शिव के स्थान हैं, किंतु दूसरे मंदिरों में भी त्रिशूल के चिह्न लगे नजर आते हैं। ये त्रिशूल भरमौर से पाँगी होते हुए लाहौल तक आते हैं।

चंबा या पाँगी के अंतिम छोर और लाहुल के प्रारंभ में, जिसे चंबा लाहुल कहा जाता है, त्रिलोकीनाथ का प्रसिद्ध मंदिर है। त्रिलोकीनाथ एक धाम माना जाता है और शिव के इस स्थान को चारों धामों में से एक माना जाता है।

इस ओर शिव का यह मंदिर एकमात्र शिखर शैली का मंदिर है। मंदिर की अद्वितीय शिव प्रतिमा जिसे अवलोकितेश्वर भी माना जाता है, हिंदू और बौद्ध दोनों द्वारा समान रूप से पूजी जाती है।

मणिमहेश के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान, जो हिमाचल में शैव परंपरा को पुष्ट करता है, मणिकर्ण है। मणिमहेश और मणिकर्ण, ये दो यात्राएँ थीं, जो बहुत कष्टकर और दुर्लभ मानी जाती थीं। मणिमहेश अभी भी दुर्गम है। मणिकर्ण बस-मार्ग से जुड़ने के कारण सुगम हुआ है।

कुल्लू घाटी में पर्वत पुत्री पार्वती नदी होकर बहती है। भुंतर के पास पार्वती व्यास में मिलती है किंतु पार्वती के पानी को देख लगता है—पार्वती व्यास में नहीं, पार्वती में व्यास मिली है। जिस पार्वती के किनारे मणिकर्ण में पुरातन शिव मंदिर है। मंदिर के चारों ओर उफनते पानी के चश्मे हैं, जिनमें चावल पकाया जा सकता है।

मणिकर्ण कुल्लू से नौ किलोमीटर पीछे भुंतर से पैंतीस किलोमीटर है। मणिमहेश के विपरीत यहाँ शिव-पार्वती संबंधी एक लोककथा प्रचलित है। कैलास के शंकर घूमते हुए किन्नर कैलास से इस ओर आ निकले। स्थान रमणीक होने के कारण यहाँ ठहर गए। यहाँ देवी पार्वती की मणि खो गई। बहुत खोजने पर भी मणि न मिली तो पार्वती ने शंकर से मणि खोजने का अनुरोध किया। शंकर ने कुपित होकर तीसरा नेत्र खोला। इसकी मार पाताल तक गई और मणियाँ ही मणियाँ निकलने लगीं। फलतः इस स्थान का नाम मणिकर्ण पड़ा।

उफनते हुए पानी से कुछ वर्ष पहले तक पत्थर की गोल-गोल मणियाँ निकलती रही हैं। पुजारियों के पास ऐसी मणियाँ अब भी रखी हुई हैं।

मणिकर्ण के आगे खीर गंगा है, जहाँ से किन्नर कैलास को रास्ता जाता है।

किन्नर कैलास शिव का तीसरा स्थान है जो मणिमहेश की भाँति दुर्गम है। किन्नौर के मुख्यालय कल्पा के सामने कैलास शिखर हैं। ये शिखर सूर्य के निकलने के साथ-साथ अपना रंग बदलते हैं। किन्नौर में कैलास परिक्रमा नाम से एक यात्रा की जाती है।

हिमाचल में लगभग सभी यात्राएँ शिव को समर्पित हैं। मणिमहेश, मणिकर्ण, कैलास परिक्रमा सभी यात्राएँ अंततः शिव-प्राप्ति के उद्देश्य से की जाती हैं, जिससे यहाँ शैव परंपरा का प्राधान्य पुष्ट होता है।

किरात केशधारी शिव आख्यान कुल्लू की धरती में हुआ माना जाता है। कुल्लू में

व्यास के बाएँ किनारे जगतसुख के पास शुरू में शबरी का मंदिर है। मंदिर के ऊपर पहाड़ में हामटा और इंद्रकील पर्वत हैं। इंद्रकील कुल्लू के स्पिति के बीच का पर्वत है, जिसे 'देउ टिब्बा' भी कहा जाता है। हामटा के पास अर्जुन गुफा है।

महाभारत प्रसंग है कि अर्जुन पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के उद्देश्य से हिमालय में आए। जब अर्जुन इंद्रकील पर्वत के पास पहुँचे तो उन्हें एक आवाज सुनाई दी—'खड़े हो जाओ।' उन्होंने देखा, एक तपस्वी वृक्ष के नीचे बैठा है। तपस्वी ने कहा, "तुम धनुष-बाण, कवच और तलवार धारण किए कौन हो ? यहाँ आने का प्रयोजन क्या है ? यहाँ शस्त्रों का काम नहीं है।" इसके बाद अर्जुन का किरातवेशधारी शंकर से युद्ध होता है और अर्जुन शिव से पाशुपतास्त्र प्राप्त करते हैं।

यूँ तो मंडी का रियासती राज्य माधोराव को समर्पित है, किंतु मुख्य उत्सव यहाँ शिवरात्रि का मनाया जाता है। मंडी के राजा अजबर सेन ने 1527 में व्यास के दाएँ किनारे राजधानी बनवाई और नगर के बीचोबीच भूतनाथ मंदिर बनवाया। भूतनाथ के साथ-साथ मंडी में पंचवक्तर, अर्धनारीश्वर के मंदिर यहाँ शैव परंपरा को सिद्ध करते हैं। राजा सूरजसेन के समय शिवरात्रि उत्सव माधोराव से जुड़ा। मंडी में शिवरात्रि का पर्व आज भी एक सप्ताह या दस दिन तक चलता है। मेले में आसपास के कई देवता भाग लेते हैं।

शिव परंपरा को समर्पित एक महत्त्वपूर्ण मंदिर बैजनाथ में है। यहाँ भी शिवरात्रि का पर्व मनाया जाता है। बैजनाथ को वैद्यनाथ धाम कहा जाता है। धौलाधार के प्रांगण में बिनवा के किनारे बैजनाथ मंदिर है, जो उत्तर भारत के शिव मंदिरों में वास्तुकला की दृष्टि से अद्वितीय है। किंवदंती है, इसी स्थान पर लंकापति रावण ने तपस्या की और अपने दस शीश शिव को समर्पित किए।

यद्यपि मंदिर के निर्माण-काल के बारे में पुरातत्त्ववेत्ताओं में मतभेद हैं तथापि इसे नौवीं शताब्दी का माना जाता है। मंदिर का निर्माण लक्ष्मणचंद ने किया जो त्रिगर्त नरेश जयचंद के अधीन था।

ऐसा दूसरा महत्त्वपूर्ण शिव मंदिर बजौरा का शिव मंदिर है, जिसे आठवीं शताब्दी का माना जाता है। यद्यपि बजौरा में अब शिवरात्रि पर्व नहीं मनाया जाता, न ही कोई ऐसा विशेष मेला लगता है जो शिव को समर्पित हो। बजौरा के समीप 1980 में दरिया में एक छह फुट ऊँचा और छह फुट परिधि का शिवलिंग मिला था, जिसे सड़क के किनारे स्थापित किया गया है।

बजौरा के अतिरिक्त कुल्लू में, जो मंडी की भाँति रघुनाथ जी को समर्पित हुआ, बिजली महादेव, जगतसुख, नग्गर, दलाश, निर्मंड में शिव मंदिर हैं। जगतसुख का मिनियेचर शिव मंदिर सातवीं शताब्दी का माना जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि मंडी व कुल्लू दोनों ही स्थानों में शैव परंपरा पुरानी है। वैष्णव परंपरा यहाँ बाद में आई।

प्रदेश के निचले क्षेत्रों में श्री ज्वालाजी, वज्रेश्वरी, चिंतपूर्णी, श्री वैष्णोदेवी जैसे शक्तिपीठ तो हैं ही, महाकाल, कालेश्वर जैसे प्रसिद्ध शिव मंदिर शैव परंपरा का स्मरण दिलाते हैं।

हिमालय में हिमाचल शिव का वास माना जाता है। यहाँ पर्वत शिखरों पर शिव

पार्वती सहित वास करते हैं। हर पर्वत शिखर शिवलिंग है। दरिया का हर गोल पत्थर शिवलिंग की भाँति पूजित है। अनेक छोटे-छोटे मंदिरों के अतिरिक्त ममलेश्वर महादेव मंडी, नंदीकेश्वर चामुंडा, महादेव सुंदर नगर, महाकाल बैजनाथ, महेश्वर सुंगरा आदि महत्त्वपूर्ण मंदिर हैं जो शैव परंपरा को पुष्ट करते हैं।

देव गणतंत्र परंपरा

जमलू की धरती में गणतंत्र

फागुन हिमालय में भी आया। बर्फ पिघली। फूलों के अँखुए फूटे। धूप खिल आई और मेले जुटने लगे। सबसे विचित्र मेला है मलाणा का। जमलू देवता की आज्ञा से फागुन में मेला लगता है, जिसमें अकबर का सिक्का, चाँदी का घोड़ा निकलता है। कौन है जमलू देवता ? इस गाँव में आज तक उन्हीं की गणतंत्र व्यवस्था है। कैसे आया यहाँ अकबर का सिक्का ? हजारों वर्ष पहले जब यूरोप के देशों में सभ्यता का प्रकाश भी नहीं था, तब इस घाटी में यह प्रजातंत्र किसने कायम किया था, जो आज तक ज्यों का त्यों चल रहा है ?

आइए, पहले आपको कुल्लू के इस विचित्र मलाणा गाँव में ले चलें।

चंद्रखणी पर्वत के उस पार बीहड़ घाटियों में घरघराती प्रचंड मलाणा धारा के दाएँ किनारे पर जमलू की धरती है। जहाँ बीहड़ों में प्रायः बर्बर सभ्यताएँ जन्म लेती हैं, वहाँ जिल्ला कुल्लू के इस कटे हुए अलग-थलग दूरस्थ गाँव-गाँव में सदियों से चली आ रही प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली अब तक बनी हुई है। लगभग 2500 मीटर की ऊँचाई पर बसा 800 की जनसंख्या वाला गाँव मलाणा दो भागों में विभक्त है—धारा बेड़ और सारा बेड़। बीच में है देवता का स्थान हारचा। इन दोनों भागों में आपस में विवाह-संबंध होते हैं। मलाणा की संस्कृति का अपना वैशिष्ट्य है। यहाँ की कणासी बोली, जिसमें संस्कृत व लाहुल स्पिति (तिब्बती) के शब्द हैं, कुल्लुई से भिन्न है।

मलाणा पहुँचने के लिए तीन विकट मार्ग हैं। एक, कुल्लू से नग्गर होकर चंद्रखणी पर्वत पार कर लगभग चौदह किलोमीटर पैदल पर मलाणा पहुँचते हैं। दूसरे, दो मार्ग भुंतर से मणिकर्ण होकर हैं—एक मणिकर्ण से कसौल-बशौल गाँव होकर और दूसरा मणिकर्ण से कुछ पीछे जरी से लगभग पंद्रह किलोमीटर दूर।

मलाणा की सारी धरती देवता की है। जमलू देवता ही वहाँ का स्वामी है, शासक है। सारा गाँव उसकी प्रजा है। कुल्लू के अन्य देवताओं के विपरीत जमलू या परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि का कोई रथ या मूर्ति यहाँ नहीं है। मंदिर में देवता का साज-सामान ही है—रणसिंगे, करनाल, छड़ियाँ, ढोल, नगाड़े आदि।

अलफ्रेड हारकोट ने, जो कुल्लू के असिस्टेंट कमिश्नर थे, मलाणा को कुल्लू की

'महानतम जिज्ञासाओं' में एक बताया है। वह मई, 1870 में मलाणा गए। उन्होंने 'हिमालय डिस्ट्रिक्ट्स ऑफ कुल्लू, लाहुल एंड स्पिति' में मलाणा के लोगों की निपट अबोधता, निरक्षरता, विशिष्ट आकृति, तिब्बती मूल के शब्दों वाली बोली, अकबर की प्रतिमा या सिक्का, स्थानीय न्यायाधिकरण आदि का उल्लेख किया है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के इतने वर्षों के लंबे सफर के बाद भी मलाणा के गणतंत्र व संस्कृति में कोई अंतर नहीं आया है। अभी भी कोई मलाणावासी किसी तरह से बाहरी दुनिया के संपर्क में आना पसंद नहीं करता। स्थानीय लोक संपर्क अधिकारी श्री रूपचंद्र मिश्र सर्वप्रथम 1944 में 'सर्वे ऑफ इंडिया' के सिलसिले में वहाँ गए। चौथी बार वे अगस्त, 1979 में वहाँ गए, जब हिमाचल के उद्योगमंत्री श्री दौलतराम चौहान, मुख्य संसदीय सचिव श्री महेश्वरसिंह तथा जिलाधीश, पुलिस अधीक्षक व अन्य अधिकारी भी गए थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति से पहले से लेकर 1979 तक के काल में, जब मलाणा के इतिहास में पहली बार वहाँ मंत्री पहुँचे, वहाँ की सामाजिक व्यवस्था, गणतंत्रात्मक प्रणाली में कोई विशेष अंतर नहीं देखा गया।

दो सदनों वाला अद्‌भुत गणतंत्र

मलाणा गणतंत्र के दो सदन हैं—ज्येष्ठांग (अपर हाउस) और कनिष्ठांग (लोअर हाउस)। ज्येष्ठांग के ग्यारह सदस्य हैं, जिनमें तीन पैतृक हैं—कारदार, पुजारी और गूर। इनमें देवता द्वारा मनोनीत किया जाने वाला सदस्य गूर है। एक व्यक्ति विशेष में देवता प्रवेश कर जाता है। वह गूर कहलाता है। देवता, गूर के माध्यम से प्रजा से बात करता है। शेष आठ सदस्य चार चुघों अर्थात् घरानों से चुने जाते हैं। ये चुघ हैं—खिमानिंग, पंचाणिग, धर्माणिग और सरबल कुले (सरबल कुल)। इनमें से प्रत्येक से दो-दो सदस्य आते हैं। ज्येष्ठांग के सदस्य मंदिर के आगे बने चौंतड़े अर्थात् चबूतरे पर बैठते हैं। इन्हें 'चौंतड़ा' या 'कोरम' भी कहा जाता है। गूर या अन्य सदस्य की मृत्यु पर ज्येष्ठांग भंग हो जाता है और पुनः चुनाव होता है।

निचला सदन कोर या कनिष्ठांग है। इनमें से प्रत्येक घर से एक सदस्य आता है, जो प्रायः घर का मुखिया या वयस्क होता है। ये समस्त सदस्य चौंतड़े के नीचे बैठते हैं।

फरियाद करने वाला व्यक्ति 'चौंतड़े' के पास लकड़ी जलाकर धुआँ कर देता है। धुआँ करना दावे का द्योतक है। धुएँ को देखते ही ज्येष्ठांग के सदस्य आ जाते हैं। कनिष्ठांग के समस्त सदस्यों को बुलाने के लिए आवाज दी जाती है: 'होऽऽऽ भुरूए होऽऽऽ!' इस आवाज़ पर कोई न आए तो पुकारा जाता है : 'द्रोही घटके !' 'द्रोही घटके !' ...'द्रोही (कसम) देवता की, जो तुम न आओ।' तब एकदम सब इकट्ठे हो जाते हैं।

यदि द्रोही घटके कहने पर भी वे न आएँ तो ?...कारदार का विश्वास-भरा स्वर है, "तब तो खाना छोड़कर भी आ जाते हैं। तब कैसे नहीं आएँगे !" 'द्रोही घटके' यानी देव-कसम ! जैसे देश-कसम पर देशभक्त के हाथ का कौर हाथ में रह जाता है और मुँह का मुँह में।

विवादास्पद विषयों पर सामूहिक बहस

उसी समय बहस आरंभ हो जाती है। मामला निचले सदन से पारित होकर ऊपरी सदन में आता है। ऊपरी सदन में अलग से बहस होती है। यह सदन किसी निर्णय या सम्मति का संशोधन स्वयं नहीं कर सकता। संशोधित प्रकरण फिर निचले सदन के पास सहमति के लिए लाया जाता है। ज्येष्ठांग, कनिष्ठांग पर कोई निर्णय थोप नहीं सकता। जब तक कनिष्ठांग द्वारा संशोधन पारित न हो, ज्येष्ठांग निर्णय नहीं ले सकता। किसी भी अंतिम निर्णय तक पहुँचने से पहले खुलकर बहस होती है। दोनों सदनों की सहमति होने पर फैसला कर दिया जाता है।

ऐसे मामले, जिनमें दोनों सदन एकमत नहीं हो पाते, अंतिम निर्णय देवता का माना जाता है। ज्येष्ठांग के निर्णय के विरुद्ध अपील भी की जा सकती है। अपील की स्थिति में राजीनामा करवाने की कोशिश की जाती है। देवता के निर्णय में देवता गूर में प्रवेश कर जाता है। गूर के बैठने के लिए एक निश्चित स्थान है, जिसे अन्य कोई छू भी नहीं सकता। देवता गूर में प्रवेश कर बोलता है। इस पर भी निर्णय निष्पक्ष न हो तो कई बार गूर पर भी संदेह हो जाता है कि इसमें देवता ने पूरी तरह प्रवेश नहीं किया है, या गूर व्यक्ति के रूप में बोल रहा है, देवस्वरूप होकर नहीं। उस स्थिति में एक अन्य विधान है। दोनों पक्षों द्वारा दो बकरे लाए जाते हैं। बकरों की जाँघ चीरकर उसमें जहर की गोली रख दी जाती है। अब जिसका बकरा पहले मर जाता है, वह अपराधी घोषित किया जाता है और उसे दंडित किया जाता है।

दंड सबको मान्य होता है। सभी उसका पालन करते हैं। फिर भी पालन किया गया है या नहीं, इसे देखने के लिए चार फोगलदार होते हैं, जो पुलिस का कार्य भी करते हैं।

प्रायः जुर्माना एक टका (आज के तीन पैसे) किया जाता है। अधिक से अधिक पच्चीस पैसे। चोरी के अपराध में घोषित अपराधी को चोरी के माल की दोगुनी कीमत अदा करनी होती है। जुर्माना न देने पर अपराधी के भाँड़े-बरतन ले लिए जाते हैं और तब तक जब्त रहते हैं, जब तक जुर्माना अदा न कर दिया जाए।

सबसे संगीन अपराध देवता की संपत्ति की चोरी है। देव-द्रोह ही सबसे बड़ा अपराध है। ऐसे व्यक्ति को गाँव से निकाल दिया जाता है। उसकी संपत्ति नीलाम कर उसे देवता के कोष में जमा कर दिया जाता है। कहा जाता है कि देवता की चोरी करने पर एक अपराधी को छाती में पत्थर बाँध दरिया में फेंक दिया गया। यदि कोई व्यक्ति सरकारी अदालत में जाना चाहे तो उसे दंडित किया जाता है और बिरादरी से भी निष्कासित किया जा सकता है। अन्यथा दंड की मात्रा बहुत कम है। दंड के विषय में कारदार के शब्द उल्लेखनीय हैं : "जहाँ वह दंड देता है, वहाँ दया भी करता है।"

देव-कोष में अन्न-धन की कमी नहीं है। जुर्माना, नीलामी आदि की राशि देव-कोष में जमा होती है। देवता को सोने-चाँदी की भेंटें दी जाती हैं। जन-कार्य के लिए धन-संकट आ जाए तो देवता धन देता है। कारदार आँखों पर पट्टी बाँधकर भंडार में जाता है और

एक बार में जो उसके हाथ लगे, बाहर ले आता है।

किसी प्रकार की दैवी विपत्ति या विराट् समस्या का हल देवता ही सुझाता है। ऐसा संकट आने पर सभी देवता के आगे दयार के पेड़ों के पास बैठ जाते हैं और बैठे रहते हैं—दिन-रात, वह हल करे, न करे।

कारदार कहता है : "गाँव के सयाने वहाँ बैठ जाएँगे और तपस्या करेंगे दिन और रात। प्रार्थना करेंगे कि हे भगवान्, यह समस्या है, इसका हल करो। कोई भी व्यक्ति वहाँ 'खेल' पड़ता है और देवता हल बताता है। वह उसका कारण भी बताता है कि अमुक भूल हुई है, तभी यह संकट आया है। उस भूल में किसी का कसूर हो तो उसे दंड दिया जाता है।

हर कार्य में बैठकर विचार-विमर्श के बाद निर्णय लिया जाता है। कोई सामूहिक कार्य हो, कोई विशेष कार्य हो, या साधारण, सबका निर्णय सामूहिक रूप से लिया जाता है। किसी को घर बनाना है, तो दोनों सदन बैठकर सलाह करेंगे और आदेश करेंगे कि अमुक व्यक्ति का घर बनाना है। सब सहायता करो। यदि कोई सहायता के लिए आगे न आए तो उसे दंडित किया जाता है। मिश्राजी बताते हैं कि जब वे वहाँ गए, तो उन्हें सामान उठाने के लिए आदमी चाहिए थे। इसके लिए भी पहले सलाह-मशविरा किया गया कि किन-किन घरों से आदमी दिए जाएँगे।

अकबर ने अपनी स्वर्ण-प्रतिमा भिजवाई

हर संक्रांति पर मनाए जाने वाले त्योहार के अतिरिक्त तीन मुख्य पर्व हैं—पहला, मघ्घर पूर्णिमा में, दूसरा फागुन में, तीसरा श्रावण में। सबसे बड़ा त्योहार मघ्घर पूर्णिमा का है, जब यहाँ जमदग्नि ऋषि का जन्मदिन मनाया जाता है। फागुन में फागली होती है, जिसमें अकबर बादशाह की स्वर्ण-प्रतिमा निकाली जाती है। इस दिन सभी आपस में 'सलाम ! सलाम !' कहते हैं और बकरा हलाल किया जाता है। जनश्रुति है कि एक साधु को जमलू से दो पैसे दान में मिले। वह हरिद्वार जा रहा था कि दिल्ली में बादशाह के आदमियों ने उससे ये दो पैसे 'जजिया' के तौर पर छीन लिए। तत्पश्चात् बादशाह अस्वस्थ हो गया। उसे स्वप्न में उस साधु ने बहुत कोसा। अकबर ने उन दोनों सिक्कों की खजाने में खोज कराई, परंतु वे न मिल सके। साधु ने पुनः स्वप्न में बताया कि ये दोनों सिक्के आपस में जुड़े होंगे। ये जुड़े हुए सिक्के अकबर को मिल गए। बादशाह ने न केवल सिक्के ही वापस किए, अपितु अपनी सोने की प्रतिमा भी मलाणा भेजी।

गाँव में जो भी जाता है, वह देवता का अतिथि होता है। उसके खाने-पीने, ठहरने की व्यवस्था देवता की ओर से होती है। उसे एक आदमी दिया जाता है, जो खाना पकाता है और स्वयं भी वहीं खाता है। अतिथि-सत्कार के विषय में देवता की इच्छा का एक अनुभव कारदार ने मिश्राजी को सुनाया :

पाँच-छह वर्ष पूर्व एक हिप्पी मलाणा पहुँचा। फसल की कटाई का समय था। कारदार बहुत व्यस्त था। उसने हिप्पी को चावल दे देने को कहा। हिप्पी पके चावल माँग रहा था। मौसम की खराबी के कारण, भयवश फसल काट लेने की जल्दी थी, इसलिए उसे

चावल देकर ही टाल दिया कि खुद पकाता और खाता रहे। सभी फसल काटने चले गए। घर में बीमार माँ थी। बच्चे सोए थे। बच्चों के लिए खाना टोकरे के नीचे ढक दिया। जब उठेंगे तो खा लेंगे।

जब फसल काटकर वापस पहुँचे तो देखा कि बच्चों का रो-रोकर बुरा हाल है। माँ परेशान है। माँ बरस पड़ी कि खाना क्यों नहीं रखा था बच्चों के लिए ? कारदार ने बताया कि खाना तो परात के नीचे टोकरे से ढका पड़ा है। जब देखा तो खाना वहाँ नहीं था। सभी घबरा गए। खाना गया तो कहाँ गया ? खोजबीन की गई तो खाना एक बंद पेड़ में मिला। रात देवता ने स्वप्न में कहा—"यह सब तो मेरा है। मैंने ही तुझे दिया था। अब तू इसे अपना ही समझ बैठा !"

पैंसठ वर्षीय कारदार श्री जाह्डा ने, बाहरी जगत् के प्रशासकों में श्री हारकोट (अंग्रेजी शासन में कुल्लू के अंतिम असिस्टेंट कमिश्नर) के बाद श्री चम्बयाल का नाम लिया। हारकोट ने यहाँ स्कूल चलाने की दिशा में कार्य किया था। कारदार बताता है कि बच्चों को मिठाइयाँ दी जाती थीं। उस समय शक्तिदास अध्यापक थे, जिनके प्रयत्नों से तीस-चालीस बच्चे स्कूल में दाखिल हो गए। हारकोट जब वहाँ जाते, तो सभी बच्चे 'सलाम ! सलाम !' कहते।

श्री ज्ञानसिंह चम्बयाल जिला कुल्लू में डिप्टी कमिश्नर थे।

अतिथि-सम्मान की विचित्र प्रथा

मलाणा के नाम से चम्बयाल साहब बहुत उत्सुक हो उठे। झट से मलाणा के कुछ चित्र ले आए और इस विचित्र लोकतंत्र की यादों में डूब गए। उस अजीब दुनिया का संस्मरण उन्होंने कुछ इस तरह से सुनाया :

" जब हम मलाणा पहुँचे, तो मुझे देवता के स्थान के पास ले जाया गया। वहाँ एक बकरा खड़ा किया गया था। मुझे कहा गया कि मैं इस बकरे को देखूँ। मैंने बकरे की ओर देखते हुए कहा कि देख तो रहा हूँ, यह एक बकरा है। बस, उसी समय एक झटके से बकरे की गर्दन धड़ से अलग कर दी गई। यह हमारे अतिथि-सत्कार व सम्मान का पहला आयोजन था।

" हमें तीन आदमी दिए गए—एक खाना पकाने के लिए, एक पानी भरने के लिए और एक अन्य कार्यों के लिए। अतिथियों के खाने-पीने, ठहरने की व्यवस्था भी उन्होंने ही की थी। अलबत्ता हम भी अपने साथ चावल, चीनी आदि ले गए थे।

" मिश्रा जी साथ थे। हम गाँव में पिक्चर दिखाने के लिए जेनरेटर ले गए थे। पिक्चर का यह सामान बारह आदमियों ने उस दुर्गम मार्ग में बड़ी कठिनाई से ऊपर पहुँचाया था। उनके कंधे छिल गए थे। रात को गाँव में रोशनी की गई और पिक्चर दिखाई गई। मलाणा की चढ़ाई चढ़ते समय मिश्रा जी थक गए तो मुझे एक सज्जन का स्मरण आया, जो कुल्लू से गए थे। वे सज्जन मोटे थे। चढ़ाई में उनकी हालत ऐसी हो गई कि चढ़ना ऊपर चाहते तो पीछे लुढ़क जाने की नौबत आ जाती। आखिर उन्हें रस्से से बाँधा गया। आगे-आगे आदमी

रस्से खींचने लगे। रस्सा खिंचता, तो वे ऊपर सरकते। ढीला पड़ता तो नीचे लुढ़कते।

" गाँव में स्कूल व डिस्पेंसरी के लिए कोई भवन नहीं था। बाहर से आने वाले सरकारी कर्मचारी-अधिकारियों तथा पर्यटकों के ठहरने की व्यवस्था नहीं थी। हमने वहाँ एक भवन बनाने की योजना उनके सामने रखी। देवता के स्थान के पास एक अच्छी जगह थी, जहाँ भवन बनाया जा सकता था। जब हमने उस जगह को भवन के लिए देने को कहा, तो वे कुछ आनाकानी करने लगे। इधर-उधर होते हुए वे आपस में कुछ बोल रहे थे, जो हमारी समझ से बाहर था। लग रहा था, वे जगह देने के लिए राजी नहीं हैं।

" हमें विश्वास हो गया कि वे जगह नहीं देंगे। भवन बनाना जरूरी था, पर उनकी सहमति के बिना यह कार्य नहीं हो सकता था। हमारे साथ खंड विकास अधिकारी श्री मिश्रा जी थे। उन्हें पता नहीं क्या सूझी, देवता के समीप ही एक जगह आग जलाकर धुआँ कर दिया। धुआँ उठने का अर्थ था—कोई फरियादी आया है देवता के दरबार में। बस, फिर क्या था ! एकदम सारे गाँव में हलचल मच गई। सब जोर-जोर से कुछ बोलने लगे और देखते-देखते इकट्ठे हो गए। जोरों की बहस शुरू हो गई। आखिर वे एक निर्णय पर पहुँचे। हमें बताया गया कि प्रस्तावित स्थान भवन-निर्माण के लिए नहीं मिल सकता। उससे थोड़ा आगे भवन बनाने की इजाजत दे दी गई। "

कहीं यह गणतंत्र कहानी न बन जाए !

" मेरा इरादा वहाँ छह कमरों वाला भवन बनवाने का था। एक कमरा स्कूल के लिए, एक अध्यापक के रहने के लिए, एक डिस्पेंसरी और शेष रेस्ट हाउस। बाद में भवन का निर्माण-कार्य भी आरंभ कर दिया गया। वहाँ के अध्यापक श्री नौमीराम तथा डिस्पेंसर से मैंने सीधा संपर्क रखा हुआ था। रेडक्रास आदि से बच्चों के लिए किताबें, कॉपियाँ, तख्तियाँ, टॉफियाँ आदि दी जाती हैं। उस समय 52 बच्चे स्कूल में हो गए थे। जब मैं वहाँ अंतिम बार गया, तब भवन-निर्माण-कार्य तेजी से चल रहा था।

" मुझे एक संस्कृति-प्रेमी ने ऐसा भी कहा कि यही एकमात्र गणतंत्र बचा है, हमारे उज्ज्वल इतिहास का प्रतीक। यहाँ अधिक विकास करके इसे आप समाप्त कर देंगे। फिर यह कहानी बनकर रह जाएगा।

" शराब पीने की वहाँ सख्त मनाही है। जितनी बार कोई शराब पिए हुए पकड़ा जाएगा, उतनी ही बार दंडित किया जाएगा। यदि सुबह शराब पिए पकड़ा गया तो उसी समय जुर्माना हो जाएगा। वही आदमी पुनः शाम को पकड़ा जाता है तो पुनः जुर्माना।

" विदाई के समय उन्होंने मुझे एक शहद का डिब्बा दिया। मैंने लेने से इनकार कर दिया, पर वे देने पर अड़े रहे कि ये तो देवता की ओर से है। इसे लेना ही पड़ेगा। गाँव से एक आदमी हमारे साथ भेजा गया।

" सर्दियों में ये लोग अपनी भेड़ों के रेवड़ मंडी-सुकेत आदि निचले इलाकों में ले आते हैं। जब भी ये मंडी आते हैं, मुझसे अवश्य मिलते हैं। अभी कुछ दिन पहले मेरे पास एक आदमी आया था। "

अनुशासन पर टिका प्रजातंत्र

"जो चीज मुझे वहाँ सबसे अधिक पसंद आई, वह था वहाँ का अनुशासन। बहुत अनुशासन है उन लोगों में। क्या मजाल कि कोई नियम से बाहर जाए ! उनकी अपनी अलग बोली है, कुल्लू के निकटवर्ती गाँवों से भी उनका किसी प्रकार का संबंध नहीं है। एक छोटा-सा संसार है उनका, जो अभावग्रस्त होते हुए भी अपने में पूर्ण है। देवता की भूमि से उनकी न्यूनतम आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं होतीं। फिर भी देवता पर आस्था अटूट है। अनुशासन पर टिका होने के कारण ही उनका प्रजातंत्र कायम है। यदि ऐसा अनुशासन हमारे देश में भी हो जाए तो सही मायनों में स्वराज्य आ सकता है।"

वर्तमान जिलाधीश श्री धनीराम बताते हैं कि आज तक कोई मलाणावासी अदालत में नहीं आया है। एक बार देवता की चोरी हुई, तब वे आए थे। अब उन्हें बाहरी जगत् के प्रजातंत्र की जानकारी है, परंतु अपना गणतंत्र होने के कारण उन्हें आधुनिक लोकतंत्र से कोई वास्ता नहीं।

अब गाँव में एक स्कूल है, एक डिस्पेंसरी है। मलाणा धारा पर बाँध बनाया जा रहा है। अब भी कोई अपने बच्चों को स्कूल भेजना नहीं चाहता। बच्चे दो-तीन साल तक ही स्कूल जाते हैं। कारदार का कहना है कि लोग स्वयं ही बच्चों को स्कूल नहीं भेजते, दोषारोपण देवता पर करते हैं। वे यह समझते हैं कि पढ़कर बच्चे चालाक हो जाते हैं। गाँव का कोई व्यक्ति पाँच जमात तक नहीं पढ़ा। न ही कोई बाहरी नौकरी करता है। डिस्पेंसरी के प्रति इनका विशेष मोह है। कारदार ने गाँव में डाकघर खोलने का आग्रह किया।

एक आधुनिक पंचायत का गठन भी गाँव में हुआ है, परंतु वह निष्क्रिय है। इनकी संसद इस पर प्रभावी है। कारदार का पुत्र पंचायत का प्रधान है। गाँव में एक पंचायतघर बनाने की योजना है। उसके लिए जगह का चयन किया गया। गाँव वाले भी राजी हो गए। जब अधिकारी वहाँ गए कि आगे का कार्य आरंभ किया जाए, तो ग्रामीण अड़ गए। उनका कहना था कि इस जगह पर पंचायतघर के लिए देवता राजी नहीं हो रहा। अब भी ग्रामीणों की माँगें देवता पर केंद्रित हैं—"देवता के लिए कुछ होना चाहिए। जब से देवता की मुआफी समाप्त हुई है, अपनी यह प्रणाली चलानी कठिन हो गई है।"

मलाणा-यात्रा

"मेरा फोटू दे तू। तू मेरा फोटू दे दे !" उन्मुक्त हँसी हँसता हुआ वह बोला।

"फोटू मैं जरूर दूँगा, पहले मुझे अपने घर में ठहराएगा तो !" मैंने कहा।

"ठहर जाना तो क्या ? खाना तो सभी वहीं खाएँगे, तू भी खा लेना¨वह फोटू लेने वाला भी मेरे ही घर ठहरा था।"

इसके घर···इसके घर ठहरा होगा वह, मैंने सोचा। जिन छायाचित्रों का जिक्र था, वे 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के फोटोग्राफर तथा प्रसिद्ध छायाकार बालकृष्ण ने लिए थे। जब वे कुल्लू आए तो मैं उनसे नहीं मिल पाया था।

पहले नहीं लगा था, पर अब लग रहा था, फोटो उसी का था···'बरामदे की धूप में हुक्के का आनंद लेता एक मलाणावासी', 'धर्मयुग' का 24 फरवरी, 1980 का 'फागुन अंक'। यह तो वही है···फोटो की रंगीनियाँ भी आदमी को और का और ही बना देती हैं।

"ये क्या ले जा रहे हैं आप ? कुछ सौदा है ?" मैंने पूछा।

"हम चावल ले जा रहे हैं कारदार के···वह जग कर रहा है," एक ने कहा। "किस खुशी में ?" "पहले मेरे पिता के एक ही लड़का था। पिता के पिता के भी एक लड़का था। हमारे कुल में एक ही लड़का होता था। अब पाँच हैं। इस खुशी में वह जग दे रहा है।" "तो तुम···" "यह कारदार का लड़का है।" दूसरे ने कहा, "दूसरा लड़का पीछे आ रहा है, एक और मलाणा में दुकान करता है।"

मलाणा नाले के साथ-साथ चलते-चलते हम पुल पार कर बाएँ किनारे पर आ गए। जितना ऊपर चलते जाते थे, दरिया का घरघराना बढ़ता जा रहा था। पानी था कि उफनता चला आ रहा था। यद्यपि गर्मी भी कुछ-कुछ थी, दरिया के साथ-साथ ठंडी हवा चल रही थी। दरिया के किनारे का रास्ता बड़ा ऊबड़-खाबड़ था। कुछ जगह तो पानी से होकर था। जरी के सामने बस से पहाड़ों को देख कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि इन पर्वतों के बीच बहुत आगे कोई जीवन होगा। ऊँचे-ऊँचे पर्वत, बीच में चौकी गाँव के पास प्रकट होता मलाणा नाला, जो वहीं पार्वती में समा जाता है। जरी में एक दुकानदार ने बताया था, 'यही कोई नौ मील जगह है, तीन घंटे में पहुँच जाएँगे।' परंतु पहले पड़ाव तक पहुँचने में ही एक घंटा बीत गया। दरिया के किनारे घुटनों तक पानी को लाँघ सभी सुस्ताने बैठ गए।

सामने कुछ-कुछ वैसा ही दृश्य था जैसा कि छायाकार बालकृष्ण ने 'धर्मयुग' में दिया था। वहाँ मलाणा नाला के स्थान पर इसे चंद्रा नदी लिख दिया गया था, जो गलत था। वास्तव में यह मलाणा नाला ही है जो मलाणा की ओर से आता है। इसी प्रकार आटा पीसते हुए जिन्हें दर्शाया गया था, वे वास्तव में ग्यारू और आया नामक ग्रामीण नमक पीस रहे थे, आटा नहीं। एक अन्य चित्र में थकान मिटाते मलाणा गाव के कुली नहीं थे, किंतु मलाणावासी ही थे जो अपना सामान जरी से ले जा रहे थे। मलाणा युवतियों में दो लड़कियों का नाम कला था तथा तीसरी का माह्ली। इनमें से एक लड़की गाँव की महिला पंच शहूटी की लड़की थी जिसका चित्र सादे चित्रों में दिया गया था। सादे चित्रों में गूर का नाम मंगलू था।

"दे अब मेरा फोटू," उसने कहा। "नाम क्या है तुम्हारा ?" "शई।" "शई···शई का क्या अर्थ होता है ?"

"जो छल्ली बहुत खाता है।" एक बोला। "जो निकम्मा हो," दूसरे ने कहा। "जो सुस्त हो," तीसरा बोला। चौथे ने कुछ और बात कह दी थी कि सभी हँस पड़े।

मैंने झोले से 'धर्मयुग' का अंक निकाला। सभी उत्सुक हो देखने लगे। साथ ही

कुछ-कुछ बोलते जा रहे थे। उसी समय पीछे से आती युवतियाँ भी पहुँच गईं। बस, फिर क्या था ! पत्रिका का वह मध्य का पृष्ठ तार-तार होने को आया। उनके बोझा उठाए चढ़ाई चढ़ते हुए लाल हुए चेहरों से टप-टप पसीना पन्नों पर झरने लगा और पन्ने गीले होकर गलने लगे।

कुछ देर सुस्ताने के बाद हम फिर आगे चल दिए। शई चहक उठा, "तू तो चल आगे। हम तो छह बजे तक पहुँचेंगे। बोझा है न हमारे पास। तू तो निकल जाएगा आगे। पिताजी से बता देना कि तीस आदमी हैं खाने वाले।" शई की चमकीली आँखों से शरारत टपक रही थी।

वे वहीं डटे रहे। कारदार का दामाद मेरे साथ चल दिया।

रास्ते में चलते-चलते पता चला कि कारदार की लड़की उसने ब्याही हुई है और कारदार के लड़के को अपनी बहन दी है। विवाह के बंधन मलाणा में जटिल नहीं हैं। मामा व बुआ की लड़की से शादी हो जाती है। चाचे, ताये व मौसी की लड़की से नहीं होती।

गाँव ऊपर-नीचे बँटा होने से सारा बेड़ व धारा बेड़ कहलाता है। बीच में देवता का स्थान है। इसमें ही आपस में शादी होती है। इन दोनों भागों में ही शादी होती हो, ऐसा भी नहीं है। कारदार ने बताया कि उसकी शादी सामने के घर से ही हुई है जो उसके घर के करीब है। गाँव विभाजित होने के रूप में दो भागों में विभक्त नहीं है बल्कि देखने में एक ही लगता है। ऊपर-नीचे घर होने के कारण तथा बीच में देवता का स्थान होने के कारण ही दो नाम दिए गए हैं, वास्तव में गाँव एक ही है। गाँव से बाहर से कोई औरत नहीं ला सकता। परंतु मलाणा से कुल्लू कुछेक औरतें ले जाई गई हैं। मलाणा प्रेमियों की शरणस्थली भी माना जाता है। आसपास कुल्लू के गाँवों से यदि कोई औरत भगा लाए तो मलाणा में जा छिपते हैं। मलाणावासी उन्हें हर तरह की सुविधा देते हैं। यदि भूले से पुलिस ढूँढ़ती हुई पहुँच जाए तो कभी नहीं बताते कि वे यहाँ छिपे हैं।

कोई ग्रामीण बाहर नौकरी नहीं करता। एक बार चम्बयाल साहब ने एक आदमी को एस०एस०बी० में भर्ती करवाया। बाहर रहने से उसके घरेलू हालात ठीक न रहे और आखिर नौकरी छोड़ वह मलाणा आ गया। गाँव का आकर्षण उसे अपनी ओर खींच ले गया।

तीसरे पड़ाव तक पहुँचते-पहुँचते हमें चले हुए तीन घंटे बीत गए। यहाँ पहले से ही कुछ आदमी बैठे थे।

"कहाँ चला ब्रह्मचारी ?" एक ने पूछा। दरअसल मैंने कुछ दिन पहले सिर मुँड़वाया हुआ था। बाल अभी बहुत छोटे थे। वह मुझे कोई साधु समझ बैठा क्योंकि कुर्ता भी मैंने भगवा ही पहन रखा था।

"मलाणा।"

"मलाणा ?···क्या करने ?"

"वैसे ही, देखने···" जो भी मलाणा जाने के बारे में पूछ रहा था, वह यह भी जानना चाह रहा था कि मैं अपने वहाँ जाने का प्रयोजन भी बयान करूँ।

कुछ आगे एक औरत लाल झंडी लिए बैठी थी। पाँच-सात औरतें वहाँ अपने बोझे रखे सुस्ता रही थीं। ऊपर, पहाड़ी पर मलाणा बाँध के लिए सड़क का काम हो रहा था। अतः दोनों ओर नीचे पहरा लगा था। ऊपर काम करते समय पत्थर, मलबा नीचे गिरता था। ऊपर से काम बंद होने का संकेत मिलते ही हमें जाने का इशारा हुआ। आगे रास्ता बिलकुल नहीं था। ऊपर से मलबा गिरा हुआ था, दरिया तक। छोटे-छोटे सफेद पत्थर। जरा-सा पाँव फिसले तो उफनते दरिया में।

अगले पड़ाव के बाद फिर से रास्ते का नामोनिशान नहीं था। बहुत ऊपर से सफेद पहाड़ टूटकर गिरा था दरिया के किनारे। कोई एक किलोमीटर लंबे रास्ते में। कारदार के दामाद, जिसका नाम साजराम था (जिसे घर में लेह्ला कहते हैं), ने बताया, जब यह सर्दियों में ऊपर से गिरा तो कुछ भेड़ें नीचे दब गईं। भेड़ों के साथ का आदमी, जो सौभाग्यवश कुछ दूर था, बिलकुल सफेद हो गया और पहचाना भी न जा रहा था।

यहीं से मलाणा के दोघरे दिख रहे थे। साजराम ने बताया, इन दोघरों में वे आजकल अपने पशु ले आते हैं। भेड़-बकरियाँ यहीं रखते हैं। भेड़-बकरियाँ सबके पास अधिक नहीं हैं। केवल कुछ ही लोगों के पास सैकड़ों में हैं, शेष के पास पंद्रह-बीस ही हैं। कुल्लू में भी ऐसे दोघरे होते हैं जहाँ लोग फसल के काम के समय अपने पशु रखते हैं। सर्दियों में यहाँ भी कुल्लू की तरह पशुओं को घर की निचली मंजिल पर रखा जाता है।

इन दोघरों को देख कुछ आशा बँधी कि मंजिल करीब है। जितना आगे जाते थे, लगता था रास्ता खत्म हुआ ही चाहता है, परंतु दरिया के साथ-साथ आगे-आगे रास्ता बनता ही जा रहा था, जिसकी थाह लगाना टाँगों के लिए कष्टकर हो रहा था। इस समय मलाणा के पास गिरूआ कोठी की एक कथा याद आ रही थी, जहाँ आज तक कोई नहीं पहुँच पाया। जितना कोई आगे जाने की कोशिश करता, किला उतना ही दूर हो जाता।

साजराम कह रहा था, 'बस, अब एक पड़ाव के बाद चढ़ाई शुरू हो जाएगी।' दरिया के ऊपर से गुजरते हुए बरास के पेड़ों ने शिमला की याद दिला दी। काफी दूर तक छोटे-छोटे पेड़ थे। कुछ आगे जाकर सामने बहुत ऊँचा, सूखा, सीधा-सपाट चट्टान से घिरा पहाड़ था। अब निश्चित था कि मलाणा नाले के साथ आगे कोई रास्ता न होगा क्योंकि आगे की ओर बिलकुल सीधी चट्टान वाला पहाड़ था, जैसे दीवार बनी हो। अनुमान ठीक निकला। आगे दरिया सीधा दीवार से पर्वत को बिना रास्ते की कोई गुंजाइश छोड़े बह रहा था। चट्टानी पहाड़ के इस ओर रास्ता बना था। सीधी चढ़ाई का रास्ता। दूसरी ओर भी सीधा पहाड़ था जो दरिया तक गया था। रास्ते में छोटी-छोटी पत्थरकाट सीढ़ियाँ बनी थीं। साजराम ने बताया, 'ये पत्थर अभी लगे हैं, पंचायत की मेहरबानी से। इससे पहले तो रास्ता बहुत खतरनाक था।' कई जगह लकड़ी की सीढ़ियाँ लगाई गई थीं, जो घरों में ऊपरी मंजिल को चढ़ने के लिए लगाई होती हैं। उस सीधी चढ़ाई चढ़ते-चढ़ते मेरी टाँगें काँपने लगीं। फिर भी जोश से बढ़ता जा रहा था। इस रास्ते में ऊपर तक पानी नहीं है। उस रास्ते में हम दो जगह बैठे।

ऊपर पहुँच जीवन के चिह्न नजर आए—कुछ खेत-से बने थे। एक औरत ढोर चरा

रही थी। बस, कुछ ऊपर चढ़कर ही सामने गाँव था।

गाँव के ऊपर भी ताज की तरह पहाड़ था। सामने मलाणा नाला के पास भी पहाड़। बीच में सामने बर्फ से ढका जोत। ताज जैसे पहाड़ के पीछे ही चंद्रखणी पर्वत है। मलाणा के सामने के पहाड़ से होकर मणिकर्ण के पीछे कसोल-बसोल में निकलते हैं। जोत के पार है किन्नर कैलाश !

चारों ओर से पर्वत से घिरे अलग-थलग गाँव की एक अलग-थलग दुनिया ! नजदीक कोई आबादी नहीं, गाँव नहीं, घर नहीं। एक ओर जरी से पीछे चौकी गाँव। उस ओर पर्वत के कसोल-बसोल; ऊपर की ओर चंद्रखणी के पार नग्गर। कोई भी बस्ती पंद्रह किलोमीटर से नजदीक नहीं—वह भी दुर्गम रास्तों से होकर।

आखिर किन विवशताओं ने इन लोगों को यहाँ रहने को बाध्य किया ? ऐसा कोई विशेष आकर्षण यहाँ नहीं है। यद्यपि इनकी देव-व्यवस्था, रहन-सहन, कुछ हद तक बोली, कुल्लू के अन्य गाँवों की ही भाँति है, तथापि ये इतने कटे हुए क्यों रहे ? यह प्रश्न सोचने पर विवश करता है। कुल्लू के अन्य दूरस्थ गाँवों में भी मलाणा-सा माहौल मिलता है, किंतु ये इतने कटे हुए नहीं, यही एक आश्चर्यजनक अंतर है।

क्या यह कोई पुरातन कबीला है या कहीं भागकर छिपे हुए लोग हैं, जो फिर यहीं बस गए ? मंडी की ओर से आने वाले व्यक्ति के लिए, जो जरी में पहुँच जाए, यही एक स्थान है जहाँ वह अपने को सुरक्षित समझ सकता है। कारदार के अनुसार उनके पूर्वज मंडी से आए हैं। कारण कुछ भी रहा हो, यहाँ तक पहुँचने के पीछे अवश्य कोई मजबूरी रही है। एक बार एक स्थान पर बस जाने के बाद उस जगह के प्रति मोह हो जाता है। लाहौल-स्पिति के दुर्गम स्थानों में भी लोग रहते हैं। वर्ष में नौ महीने विश्व से कटाव होने पर भी लोग उस जगह को नहीं छोड़ते।

व्यवसाय की दृष्टि से खेती (नाममात्र) तथा भेड़-बकरी पालन है। भेड़-बकरियाँ भी गद्दियों की भाँति सबके पास अधिक संख्या में नहीं हैं। कड़ु, पतीश, गुच्छियाँ, शहद, घी का लेन-देन चलता है। समीपस्थ बाजार जरी का है, ज़हाँ से ये अपनी आवश्यक वस्तुएँ लाते हैं। प्रायः एक दिन आते हैं, रात को जरी में रहते हैं और प्रातः ही सौदा लेकर या कुछ बेचकर लौट जाते हैं। मलाणा में भी कारदार के लड़के ने दुकान खोल रखी है जो बर्फ के समय काम देती है। आवश्यक वस्तुओं की खरीद के लिए ये कुल्लू नहीं आते।

जरी के रास्ते आते हुए लग रहा था कि ये लोग इसी रास्ते से होकर मलाणा नाले के किनारे-किनारे आए होंगे। नदियों, दरियाओं, नालों के साथ-साथ रास्ते हुआ करते हैं। जहाँ मलाणा नाले के साथ रास्ता नहीं रहा, वहाँ सीधे पहाड़ पर चढ़ गए और सुरक्षित जगह में अपना निवास बनाया। किन परिस्थितियों में वहाँ पहुँचे; क्योंकर भागे; क्यों छिपे; इतना कटकर क्यों रहना पसंद किया; क्यों इस प्रकार की कष्टकर और कटाव की जिंदगी बसर करने पर मजबूर हुए—यह अज्ञात है। इस विषय में मात्र अटकल ही लगाई जा सकती है। फिलहाल इस खोज में कोई तुक्का न लगाया जाए तो बेहतर रहेगा; अलबत्ता यदि कारदार का कहना सही मान लिया जाए कि उनके पूर्वज मंडी से आए थे तो मंडी की ओर से आने

वाले के लिए और ऐसी पर्वत कंदरा में छिपने के लिए यही उपयुक्त रास्ता था। जरी से मलाणा नाले के दो सँकरे पहाड़ों को देख कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि आगे रास्ता भी होगा, आबादी के बारे में तो सोचा भी नहीं जा सकता—आबादी और वह भी पंद्रह किलोमीटर आगे दुर्गम पहाड़ व कंदराओं के पीछे।

बोली व अन्य विशिष्टताओं के आधार पर इनका संबंध किरातों से भी हो सकता है। किरात, जो हिमालयवासी थे। किरात, जो तिब्बत की ओर रहते थे। जो खानाबदोश थे। जिनका उल्लेख यवन, कम्बोज आदि के साथ हुआ है।

हारकोट ने मलाणियों के विशिष्ट नाक-नक्शों का उल्लेख किया है। इनकी बोली में जो तिब्बती मूल के शब्द हैं, इससे इन्हें लाहौल से मिलाया जा सकता है। किंतु इनके नाक-नक्श भोटों से कदापि नहीं मिलते। ये कुल्लू के लोगों से भी भिन्न हैं। कारदार के इनके मंडी से आगमन पर इनका पहरावा, नैन-नक्श को जोगेंद्रनगर के पास कोठी कोढ़-सुआढ़ के धौगरी समुदाय से मिलाया जा सकता है, किंतु धौगरी इनकी तरह गौरवर्ण नहीं हैं।

वर्तमान समय में मलाणियों का रहन-सहन, पहरावा, घरों की बनावट, देवता की व्यवस्था आदि सहित समस्त क्रियाकलाप कुल्लू से बिलकुल मिलते हैं। कुल्लू के दूरस्थ गाँव में जाने पर मलाणा-सा माहौल देखा जा सकता है। जहाँ मलाणा की बोली में तिब्बती मूल के शब्दों की विशेषता है, वहाँ कुल्लू के ऊपरी भाग—मनाली से ऊपर पलचाँग, कोठी आदि; दूसरी ओर लग्ग घाटी में माशणा, त्यूण आदि; उधर ब्यासर आदि पहाड़ों की चोटी पर अंतिम गाँवों की बोली में भी इस तरह की विशेषताएँ मौजूद हैं जो आम कुल्लूई बोली से भिन्न है। अलबत्ता यह मान्य है कि मलाणा की कणाशी में यह विशिष्टता अधिक मात्रा में है, जो तिब्बती मूल के शब्दों के कारण है।

लाहुल से मलाणा का संबंध लाहुल के देवता घेपङ् के कारण रहा है। अभी भी देवता घेपङ् मलाणा आता है। पुरातन दंत कथाओं में लाहुल का घेपङ् तथा हामटा के रास्ते आने वाला जमलू या जमदग्न विशिष्ट स्थान रखते हैं। अतः लाहुलियों से संपर्क और बोली का समावेश स्वाभाविक तौर से हो सकता है। कणाशी में तिब्बती मूल के शब्दों के होने का तंतु इसके अलावा नहीं मिलता। ये लोग कभी लाहौल गए हों, ऐसा भी सुनने में नहीं आता।

मलाणा में देवता के मंदिर के साथ बनी सराय में काष्ठ-स्तंभों की कला पूर्णतया कुल्लू के जगतसुख के संध्या गायत्री मंदिर-सी है। ऐसा शिल्प कुल्लू के अन्य ग्राम मंदिरों में भी मिलता है। देवता के मुख्य मंदिर का दरवाजा निरमंड के परशुराम मंदिर के दरवाजे की याद दिलाता है। शेष, देवता का साज-सामान व अन्य व्यवस्था वही है। केवल यहाँ अकबर की प्रतिमा की विशिष्टता अलग है। कुल्लू में भी जमदग्न के अनेक स्थान हैं जिनमें मलाणा की ही भाँति उत्सव मनाए जाते हैं व घोड़े हैं।

रास्ते में शई की बातों से, चावल ढोते तीस 'जुआरों' से यह सोचा कि कारदार की स्थिति गाँव में राजा-सी होगी; जैसे बाहरी सिराज—निरमंड या रामपुर आदि में भी रहा है। कारदार राजा ही होता था अपने इलाके का। हरिजन उसके सामने सिर उठाकर नहीं चल सकता था। कुल्लू में भी कारदार की स्थिति सुदृढ़ थी क्योंकि धर्म में राजनीति इस तरह घुल

गई थी कि दोनों पक्ष एक हो गए थे। इसी तरह क्या पता यहाँ भी देवता की आड़ में…!

परंतु ऐसा कुछ विशेष न था। कारदार का घर आधुनिक या हवेलीनुमा नहीं था। दूसरे घरों जैसा ही था, यद्यपि वहाँ कुछ सफाई थी। जैसा कि ऊपरी ठंडे इलाकों में प्रायः होता है, यहाँ सफाई का अभाव था गाँव में, और ग्रामीणों में भी। कारदार वैसे सामर्थ्यवान आदमी है। मेरे देखते-देखते ही उसने विभिन्न कार्यों के लिए कुछ लोगों को पाँच सौ रुपए वितरित किए।

कारदार के पाँच लड़के हैं, रास्ते में साजराम ने बताया था। यहाँ कारदार बता रहा था कि चार लड़के हैं : "पाँचवाँ ऐसे ही गाँव वालों ने मुझ पर थोपा है।" उसने बताया…यह कैसे हो सकता है कि पुत्र नाम लग जाए ? किंतु जाती बार पता चला कि पाँचवाँ लड़का एक दूसरी औरत से है जिसे अब कारदार संपत्ति के बँटवारे या किसी अन्य कारण से अपने नाम नहीं लगवाना चाहता।

देवता की व्यवस्था व गणतंत्र में ग्यारह सदस्यों की कमेटी, जिसे 'चौंतड़ा' कहा जाता है, में जिन चार कुलों से दो-दो व्यक्ति लिए जाते हैं, कारदार ने वे निम्न बताए– 1. थीमानिस, 2. धारानेस, 3. पुचान कुले, 4. सरबल कुले। बहुत ध्यान से सुनने पर भी यही नाम नोट हुए। नामों के विषय में कारदार से बार-बार पूछा गया क्योंकि मिश्राजी से सुने कारदार के टेप में उसने सरबल कुले के अलावा खिमानिंग, धर्माणिग, पंचाणिग–ये नाम बताए थे।

ये आठ सदस्य 'ज्येष्ट्स' कहलाते हैं। अन्य तीन सदस्य वही बताए–कर्मिष्ठ–जो कारदार ही बनता है; गूर तथा पुजारी। ये तीनों जिंदगी-भर के लिए रहते हैं। दूसरे आठ सदस्यों को किसी भी समय निकाला जा सकता है।

दूसरे आम जलास में एक घर से एक आदमी आता है। इस कमेटी को 'कोर' कहते हैं। इसमें प्रायः घर का मुखिया ही आता है। स्त्रियाँ इसमें सदस्य नहीं हो सकतीं।

निर्णय न हो पाने पर दो बकरे (छेलू) धूप आदि देकर काली को चढ़ाए जाते हैं। जिसका बकरा अपने-आप मर जाए, वह झूठा। जिसका न मरे, वह सच्चा। दोनों ही न मरें तो दोनों ही सच्चे। बकरों को काली को सौंपने की प्रक्रिया में केवल कारदार व पुजारी जी मंदिर में जाते हैं, दूसरा कोई नहीं।

बकरों की जंघाएँ चीरकर उनमें जहर भरने की बात या पेट चीरकर मारने की धारणा को कारदार ने गलत ठहराया। फैसला न होने पर दोनों पक्षों के बकरों की जंघाएँ चीरकर जहर भरने की बात का उल्लेख हारकोट ने भी किया है। कारदार इस प्रथा से मुकर गया और काली माता को बकरों को चढ़ाए जाने की प्रथा का उल्लेख किया।

मलाणा के विषय में अकबर संबंधी आम प्रचलित कथा को भी कारदार ने गलत ठहराया। उसने इस कथा को कुछ यूँ सुनाया :

एक बार एक साधु मलाणा आया। मलाणावासियों ने देवता की ओर से साधु को दक्षिणा दी। साधु घूमता हुआ अकबर के यहाँ जा पहुँचा। उसने बादशाह से मलाणा का इतिहास सुनाया और : "तू तो कुछ भी नहीं है। राजा है तो मलाणा का देवता। वहाँ सब

कुछ मिलता है।" अकबर बादशाह था। उससे यह नहीं सुना गया। उसने साधु को धमकाया कि अकबर बादशाह से बड़ा कोई नहीं है। साधु को उसने मारा-पीटा भी। साधु ने शाप दिया : "जा, तुझे कुष्ठ होगा।" साथ ही यह भी बता दिया, "जब तक तू मलाणा नहीं जाएगा, ठीक नहीं होगा।"

शाप के बाद बादशाह की अंगुली दुखने लगी। वह घबराया। उसने अपने लड़के को मलाणा भेजा। देवता ने मिट्टी फेंक उसे पत्थर बना दिया। बेटे के मलाणा से न लौटने पर अकबर स्वयं आया। अपने पुत्र को पत्थर बना देख उसे बहुत खेद हुआ। उसने सोचा, देवता ने पता नहीं क्यों यह जुल्म ढाया होगा ! इस कर्म से देवता को भी हत्या लग गई। देवता ने कहा : "तू राजा है। मैं ऋषि हूँ। परंतु मैं गलती पर था जो तुम्हारे पुत्र को शिला बना दिया। अब इसके प्रायश्चित्त के लिए मैं तुम्हारी यहाँ पूजा करवाऊँगा।" तब अकबर की मूर्ति बनाई गई और पूजा होने लगी।

तब से लेकर फागली में अकबर की मूर्ति की पूजा की जाती है। जब तक पूजा न हो, कोई खाना नहीं खाता। सफेद भेड़े की बलि दी जाती है। जिंदा भेड़े का कलेजा निकाल लिया जाता है। वास्तव में भेड़े का गला काट उसे हलाल नहीं किया जाता, जिंदा भेड़े का पेट फाड़ कलेजा निकाल लिया जाता है। इसे ही हलाल करना कहा जाता है। फागली में अकबर के घोड़े, प्रतिमा आदि की पूजा की जाती है। कारदार के अनुसार अकबर की प्रतिमा सोने की है और लगभग दो इंच की है।

जिला काँगड़ा में ज्वालामुखी मंदिर में अकबर के आने तथा सोने का छत्र चढ़ाने की कथा की भाँति यह कथा प्रचलित है। न उस कथा की इतिहास पुष्टि करता है, न इस कथा की। अलबत्ता अबुल फजल के अनुसार अकबर बजौरा तक आया था।

संभव है, यह कोई रूपांतरित कथा हो, क्योंकि मलाणा अब बहुतेरे लोग उत्सुकतावश जाते रहते हैं, अतः कारदार तथा अन्य लोग किसी को कुछ सुना देते हैं, और किसी को कुछ। जो कारदार ने मिश्राजी को बताया था, उन बातों से मेरे साथ मुकर गया। अब यह भी संभव है, आदमी की हैसियत देखकर या उसके आने के उद्देश्य को मद्देनजर रखते हुए ये अपनी तरह से कथाएँ सुनाते हों।

प्रचलित कथा के विपरीत इस कथा से कुछ और ही अंदाजा लगता है। पहला तो यह कि साधु मलाणा आया, न कि मलाणा से बाहर गया। दूसरे, अकबर ने अपने लड़के (या किसी दूत को) मलाणा भेजा। तीसरे, अकबर की मूर्ति यहीं बनवाई गई, अकबर ने नहीं भेजी।

कारदार के अनुसार उनका देवता हामटा से आया है। कुल्लू में भी यही जनविश्वास है। कहा जाता है : 'जेठा हामटा : कोन्हा मलाणा' अर्थात् देवता के पहले हामटा में आने से वह जेठा या बड़ा है और मलाणा छोटा। यह प्रचलित लोकास्था है कि जमदग्नि ऋषि देवताओं की टोकरी उठाए हुए किन्नर कैलाश से हामटा होकर निकले। हामटा में कुछ क्षण ठहरने के बाद वे चंद्रखणी पर्वत से होकर मलाणा आने लगे। पर्वत पर जोर की आँधी चली, जिससे टोकरी के देवता गिरकर घाटी में बिखर गए। वे मलाणा पहुँचे। यहाँ मलाणा राक्षस

से युद्ध हुआ और उसे मार गिराया तथा अपना राज्य स्थापित किया।

कुल्लू के देवताओं की तरह देवता का सामान्य उत्सव हर संक्रांति को मनाया जाता है। शौण जाच, शइरी साजा, मघ्घर पूर्णिमा तथा फागुन की फागली विशेष उत्सव हैं।

भादों की संक्रांति को शौण जाच़ मनाई जाती है। इस उत्सव में कुल्लू व आसपास से यात्री देवता के पास आते हैं। इन दिनों मौसम भी अच्छा होता है और लोग भी बहुत आते हैं। संक्रांति के पहले दिन से चुआई तक जातर चलती है। इस अवसर पर देवता का साज-सामान—रणसिंगे, ढोल, करनाल, छड़ियाँ आदि निकाली जाती हैं जिन्हें देवदारों के बीच पत्थर के पास ले जाया जाता है।

मघ्घर पूर्णिमा को देवता का जन्मदिन मनाया जाता है। यह एक ही दिन का उत्सव होता है जिसमें जग होता है व नाच-गाना चलता है। तड़के पाँच बजे के लगभग देव-जागरण किया जाता है। देवता के गूर का खंडे के साथ नृत्य होता है। कनिष्ठ गूर तीर-कमान से आकाश की ओर तीर छोड़ता है। जो उस तीर को ढूँढ़ लाए, वह भाग्यशाली समझा जाता है।

फागुन की फागली प्रमुख उत्सव है, जिसमें अकबर की प्रतिमा सहित देवता का सारा साज-सामान बाहर निकलता है। इन दिनों मलाणा में, रास्ते में तथा आसपास बर्फ ही बर्फ होती है। वहाँ जाना सुगम नहीं होता, फिर भी कुल्लू से श्रद्धालु वहाँ जाते हैं। फागुन की अमावस्या के पहले शुक्रवार को उत्सव आरंभ होता है जिस दिन सारा साज-सामान निकाला जाता है। शुक्रवार से यह उत्सव पाँच दिनों तक चलकर मंगल को समाप्त होता है।

एक छोटा-सा उत्सव असूज की संक्रांति को शइरी साजा नाम से भी मनाया जाता है। इसमें देवता की पूजा की जाती है। यह प्रातः लगभग छह बजे से नौ-दस बजे तक चलता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि देवता की कोई मूर्ति मंदिर में नहीं है। न ही कुल्लू के देवताओं की तरह छोटा या बड़ा रथ ही है। देवता के कुछ निशान—घंटी, धड़छ, खंडा आदि ही हैं। कुल्लू में भी पहले ऐसा ही रहा होगा। आधुनिक रथ तो बाद में ही बने हैं। कुछ छोटे रथ भी अधिक पुराने नहीं हैं।

"मेरे बाद यह सब चल पाना कठिन है," बरसात की उस गहराती हुई उदास शाम में कारदार के चेहरे पर निराशा की स्याही छा गई, "अब लोगों में वह श्रद्धा नहीं रही। मैंने तो किसी तरह इसे चलाया। मेरे बाद यह व्यवस्था छिन्न-भिन्न न हो जाए !"

कारदार के दोनों बड़े लड़के उससे अलग हो गए हैं। बड़े ने दुकान खोल ली है। वही ग्राम पंचायत प्रधान भी है। छोटा व्यापार में पड़ गया है। उसे व्यापार में अधिक फायदा नजर आता है। छोटे दो लड़के साथ रहते हैं, जो अभी इन बातों को समझते नहीं।

बाहर बैठे-बैठे अँधेरा घिर आया। अंदर या बरामदे में, कहीं भी कोई लैंप नहीं जला था। जो लोग बाहर जा रहे थे या आ रहे थे, उनके हाथों में 'जगणू' की मशालें थीं। चावल ढोने वाले सभी खाना खाकर चले जा रहे थे। इस प्रकार केवल खाना खाकर बिना पारिश्रमिक लिए कार्य करने वालों को 'यारङ' कहा जाता है। इसे हिमाचल के निचले भागों

में 'जुआरी' कहा जाता है। मलाणी इसे जुआरी भी बोलते हैं और मूल रूप से 'यारङ'।

कारदार के घर के सामने ऊँची-ऊँची भाँग उगी हुई थी। कारदार ने बताया, अब वे इसे काटते नहीं क्योंकि इससे पैसा मिलता है। हिप्पी लोग वहाँ आते हैं और भाँग खरीदते हैं। हिप्पियों की बात पर कारदार ने बताया कि मलाणी उन्हें छूते नहीं। फिर भी कई बार वे उन्हें दुखी करते हैं और कई बार रास्ते में मर जाने पर उनका निपटारा भी करना पड़ा। कारदार ने बताया कि किस तरह एक हिप्पी चंद्रखणी वाले मलाणा के रास्ते पर मर गया और आखिर गाँव वालों को उसे उठाकर लाना पड़ा।

थोड़ी देर बाद कारदार की पुत्रवधू एक लैंप रख गई। लैंप बत्ती के स्थान पर नीचे से भड़क उठा और भक्-भक् करता कुछ ही क्षणों में शांत हो गया। अबकी बार अँधेरा और भी गहरा होकर उभरा। बाहर थोड़ी-थोड़ी बूँदाबाँदी आरंभ हो गई थी। ठंड बढ़ने लगी थी।

अंदर बैठे सभी जुआर खाना खा चुके। मुझे अंदर बिठाया गया। ऊपर की इस मंजिल को चढ़ने के लिए एक लंबे लक्कड़ को थोड़ा घड़कर सीढ़ियाँ बनाई गई थीं। निचली मंजिल में पशु बाँधे जाते हैं। इस बीच की मंजिल के ऊपर देवता का स्थान माना जाता है। कमरे के बीचोबीच आग जली थी जिस पर एक लोहे की तिपाई रखी थी। यही आग सेंकने का काम देती है, यही खाना पकाने का। बरसात के आरंभ के दिनों में जब कुल्लू में गर्मी से पसीना निकलता है, यहाँ आग के पास बैठने को मन कर रहा था। यहाँ की ऊँचाई निश्चित रूप से शिमला से अधिक है, ठंड के पैमाने से ऐसा अंदाजा लगा।

परात में गर्म पानी लेकर कारदार की बहू मेरे आगे ले आई। उसके आगे बैठने से ही लग रहा था कि वह मेरे पैर धुलाने को तत्पर है। उसने हाथ आगे बढ़ाए। मैंने बड़ी कठिनाई से उसे ऐसा करने से रोका। अतिथियों के पैर धुलाने का ऐसा रिवाज काँगड़ा की ओर भी है जहाँ खाने से पहले यह कार्य परिवार की बहुओं द्वारा ही किया जाता है। साजराम वहीं बैठा था। उसने इस समय मेरी ही बात छेड़ी हुई थी; यह मैं भाषा न समझते हुए भी ताड़ गया। वह मेरे तेजी से चलने व चढ़ाई चढ़ने, पानी में बूटों समेत छलाँग लगाने का उल्लेख कर रहा था। रास्ते में साजराम के आग्रह पर ही पड़ाव में विश्राम कर रहा था। ऐसा इसलिए भी कि यह न समझे, मैं चल नहीं सकता। एक बार मैं बैजनाथ से ऊपर तत्तापाणी गया। वहाँ बैजनाथ के ऊपर से पहाड़ आरंभ होता है। उस ओर पहाड़ की तलहटी में कुछ गद्दी लोग बस गए हैं। हम जा रहे थे तो रास्ते में एक गद्दण ने फब्ती कसी थी : "ये लिच्चू-पिच्चू टाँगों वाले क्या ऊपर चढ़ेंगे।" इसी तरह एक बार एक स्थानीय नेगी जी के साथ मैं कुल्लू के कमांद में पाराशर मंदिर में गया। वहाँ भी पाह्नाला से सीधी चढ़ाई थी। इधर कुछ सालों से सीधी चढ़ाइयाँ चढ़ने का अभ्यास न रहा था। नेगी जी सीधे चढ़ते ही जा रहे थे। मेरी साँस धौंकनी-सी चलने लगी और माथे से पसीना चूने लगा। फिर भी उनके पीछे घिसटता रहा और मुथल गाँव तक पहुँच गया। गाँव के दिखने पर तथा वहाँ जाकर बैठने पर जो शांति मिली, वह कभी नहीं मिली।

एक थाली में खाना परोसा गया। भात वही था जो सबके लिए बना हुआ था। आलू की सब्जी मेरे लिए बनी थी, जो स्वादिष्ट थी। भात का आधा ठेला मैंने जोर लगाकर तोड़ा

और वापस कर दिया। कारदार बार-बार लेने के लिए आग्रह कर रहा था। जब मैं खा रहा था तो सभी मेरी ओर ताक रहे थे। कारदार ने बताया, पहले वह शराब नहीं पीता था। बाद में पीने लगा जिससे बीमार भी हुआ। शराब पीने वाला आदमी ठीक नहीं रहता। थोड़ा खाने वाला आदमी फुर्तीला रहता है, आदि-आदि।

तभी मलाणा आने वाले लोगों की चर्चा छिड़ गई। कारदार ने एक 'बड़े आदमी' का जिक्र किया जो बहुत ही मुश्किल से अपने लश्कर सहित मलाणा पहुँचे। गाँव का गाँव उनकी टाँगों की गर्म पानी से धुलाई व मालिश में जुट गया। एक अजूबा समझ तथाकथित बड़े आदमी यहाँ आने लगे हैं। फलतः ग्रामीणों को उनके लिए बकरे से लेकर संपूर्ण व्यवस्था देवता के आतिथ्य के नाम पर या अन्यथा करनी पड़ती है। इस कोरे आतिथ्य से, जिससे गाँव को, ग्रामीणों को लाभ नहीं निकलता, अब मलाणी दुखी होने लगे हैं। वास्तव में मलाणी तंग आ गए हैं इन दर्शकों से। कारदार ने कहा, एक बार यहाँ वन-विभाग से कुछ आदमी आए। हमने उन्हें बिलकुल नहीं पूछा। फिर वे 'बेचारे' अपने आप ही खाने-पीने में लगे रहे। यद्यपि कारदार को उनका आतिथ्य न करने का रंज था, तथापि यह निरर्थक लोगों के, विशेषकर विशेष लोगों के जाने का ही परिणाम है।

वैसे कारदार होशियार आदमी है। राजनीतिक सूझ-बूझ रखता है। 'हरिजन' व 'गरीब' जैसे राजनीतिक नामों से वाकिफ है। कारदार ने एक राजनीतिक कथा भी सुनाई कि किस तरह लकड़ी के अवैध धंधे में संलिप्त होने पर उसने अपनी जान छुड़ाई।

गाँव में अधिक ठाकुर (राजपूत) ही हैं जिन्हें 'धोनिस' (जमींदार) कहा जाता है। कारदार का विश्वास है, ग्यारह-ग्यारह टोल (परिवार) मंडी से आए हैं। हरिजन, जिन्हें 'बाईरौच' कहा जाता है, तीन-चार ही परिवार हैं। लुहार व जलउ (जुलाहे) भी हैं। ब्राह्मण कोई नहीं है। हरिजनों को छूने से परहेज किया जाता है। मंदिर के साथ कुल्लू की ही भाँति हरिजनों के लिए अलग सराय बनी है।

"यहाँ हारकोट आता था तो कहाँ ठहरता था ?" कारदार से मैंने पूछा।

"वे अपनी छोलदारी में रहते थे। पूरा लश्कर आता था उनके साथ तो। आखिर बादशाह थे वे तो...।"

"और रोसर भी तो आता था..." मैंने और कुरेदा।

"हाँ, रोसर !...मेरा बड़ा दोस्त था वह।"

"यहाँ कहाँ रहता था वह आपके पास...?"

"नहीं, वह भी ऊपर अपनी छोलदारी में रहता था। कभी वह जरी चला जाता, कभी यहाँ आ जाता। यहाँ उसके साथ एक खानसामा, एक बेयरा, एक डॉक्टर, एक भंगी हमेशा साथ रहते थे।"

"हैं ! इतने आदमी ?"

"हाँ जी। उसकी क्या बात थी ! क्या ठाठ थे ! जरी से आना होता था तो पूरा गाँव सामान ढोने में लगता था। बहुत पैसा बाँटा उसने गाँव में। उसने यहाँ अपना मकान बनाना चाहा। गाँव वालों ने नहीं बनाने दिया। हम तो इन लोगों को छूते नहीं, मकान कैसे बनाने

देते। यहाँ नीचे खड़ा हो वह आवाज लगाता–ओ ! जी ! ओ ! जी ! मैं बाहर आकर पूछता कि क्या बात है ? वह कहता–मुझे हरिजन ही समझो, हरिजन बनकर ही रहने दो, पर यहाँ मकान बनाने दो···वैसे वह मेरा दोस्त था परंतु गाँव वाले नहीं माने इसके लिए, मैं क्या करता !"

रोसर से जुड़े एक आदमी से ज्ञात हुआ, जब वह वापस गया तो जरी से भुंतर आने पर उसके पास तीस घोड़ों का बोझा था। पूरी बस भर गई। कहते हैं, उसने एक फिल्म भी बनाई थी मलाणा पर, जिसे इंग्लैंड में दिखाया गया। उसने मलाणा पर एक शोध लिखा, किंतु रोसर का महँगा शोध यहाँ उपलब्ध न हुआ।

मुझे अपनी स्थिति का भान हुआ। कहाँ एक अदना-सा, हिंदुस्तान का, पर्वत-कंदराओं में रहने वाला लेखक और कहाँ वे पानी की तरह बीयर पीने वाले विदेशी शोधकर्ता, जिनमें फिल्म तक बनाने की क्षमता थी। एक शख्स के शब्द मुझे याद हो आए, "उनसे हमारी तुलना मत कीजिए साहब ! कहाँ वे पानी की जगह बीयर पीने वाले और कहाँ हमें पानी भी नसीब नहीं होता !"

अकसर बात चलती है, "इतनी दूर से आए अंग्रेजों ने इतना कुछ लिखा और हिंदुस्तानी लेखक···?"

सवाल उठता है तो जवाब भी है। अजी ! हिंदुस्तानी मजदूर और गरीब प्रेमचंद की तुलना आप ग्रियर्सन से क्यों करते हैं ? कहाँ कर्ज के बोझ से दबा वह कलम का मजदूर और कहाँ सैकड़ों चाकरों से घिरा राजा ग्रियर्सन ! कहाँ शासक वर्ग से संबंधित लेखकीय शौक और हिंदुस्तानी लेखकीय संघर्ष ! कहाँ तीस घोड़ों पर अकेली जान का सामान ले जाने वाला रोसर और कहाँ एक झोला उठाए कलम का भारतीय सिपाही ! कहाँ रूसी चित्रकार रोरिक और कहाँ एक लिपिक की नौकरी के लिए तरसता भारतीय कलाकार ! भाई जान ! इतना तो सोचिए, कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली ! माना, आप लेखक बनते होंगे, आपमें भी शोध करने की चाह होगी। संस्कृति-प्रेमी भी आप होंगे। क्या आप हारकोट, कैलवर्ट, रोसर या लेडी चेटवुड हो सकते हैं ? क्या आप अपने बीवी-बच्चों को छोड़ पाँच दिन के लिए बाहर रह सकते हैं ? ऐसे कामों में तो महीनों लगते हैं। आप इस धरती पर हैं जहाँ जीविका के लिए हर तरह की नौकरी कर लेते हैं। नमक-मिर्च, नोन-तेल के चक्कर में पिस रहे हैं। एक रात बाहर रहते हैं तो बीवी-बच्चों का स्मरण करते हुए। एक बीवी है। एक नौकरी है। यदि ये एक बार मिल जाए तो जिंदगी-भर छोड़ने का नाम नहीं ले सकते। फिर भी आप कहते हैं, भई, लगन थी तो अंग्रेज लेखकों में। कहाँ से आकर उन्होंने काम किया है ! भाई, काम किया है तो कौन-सा उन्होंने खुद ही किया है। वह भी तो आप जैसों से करवाया ही है। राज भी आप पर किया, काम भी आपसे करवाया और नाम अपने लगवाया। आप तो उनका बोझा ढोने वाले ही रहे। कहाँ मणियों की खोज में निकले राजकुमार कैलवर्ट, कहाँ राजा हारकोट, कहाँ वे फिल्म बनाने वाले रोसर और कहाँ आप ! क्या आप किसी का एक पोस्टकार्ड साइज का रंगीन फोटो लेने की हिम्मत रखते हैं ? जहाँ वे एक किताब लिखकर मालामाल हो जाते हैं आज भी, आप तो एक किताब छापकर ऐसे

हो जाते हैं जैसे लड़की का ब्याह कर बैठे हों।

खैर, छोड़िए ! तभी आज तक कोई लेखक मलाणा नहीं पहुँचा। यदि भूले से पहुँचा भी है तो शोध नहीं लिख पाया। वैसे मैं भी यहाँ न पहुँचता कभी। यह तो गनीमत है कि हिमाचल प्रदेश में एक भाषा-संस्कृति विभाग है। और उस पर शुक्र है कि कुल्लू में भी उसका कार्यालय खुला है। मैं इस विभाग में सेवारत हूँ और किसी तरह कुल्लू में हूँ।

रात खूब नींद आई। कारदार के घर में रजाई उपलब्ध थी। वह भी साफ-सुथरी। रात के लगभग दो बजे होंगे, घर के पिछवाड़े किसी के जोर से गाने की आवाज आई। ध्यान से सुनने पर लगा, यह आवाज निश्चित रूप से शई की ही होगी। शाम को वह लेट पहुँचा था और फिर जल्दी ही गायब हो गया था। अभी कहीं से लुगड़ी पीकर आया होगा।

मलाणा का अपना कोई लोकगीत नहीं है। सभी गीत कुल्लू के ही गाए जाते हैं। नृत्य भी कुल्लू का ही है।

प्रातः ही उठकर मैं कारदार के साथ मंदिर आदि देखने हो लिया। स्कूल की बिल्डिंग अधूरी खड़ी थी। डिस्पेंसरी में तैनात आदमी जरी में ही रहता था। यहाँ कभी-कभी आता। ग्रामीण अपना ही दवा-दारू करते हैं। रात भी एक लड़की बेहोश थी जिसे देखने व दवाई देने कारदार गया था। स्कूल का एकमात्र अध्यापक भी वहाँ नहीं रहता। स्कूल में अभी भी चंद एक बच्चे हैं।

चौंतड़े के दोनों ओर बनी सराय में बहुत-से लोग आ बैठे थे। हरिजन वाली सराय में भी कुछ लोग थे। कारदार वहीं रुक गया और उनसे बातें करने लगा। ये लोग कसोल गाँव से आए थे किसी झगड़े का निपटारा करवाने के लिए। कसोल-बसोल, जो मणिकर्ण से पीछे हैं, गाँवों के आदमी अपने झगड़े निपटाने के लिए यहाँ आते हैं। यह झगड़ा जमीन के बारे में था। वैसे देवता की चाकरी के लिए कुल्लू के दूरस्थ भागों से लोग आते ही हैं, अपने झगड़े निपटाने भी आते हैं।

कारदार ने एक आदमी मेरे साथ भेज दिया जिसने मुझे मंदिर, भंडार तथा दो दयारों के बीच देवता की पिंडी भी दूर से दिखाई। वहाँ कोई नहीं जा सकता। यदि कोई चला जाए तो दंड के रूप में बकरा चढ़ाना पड़ता है।

वापस आती बार कारदार मुझे रास्ते के लिए नमक के साथ रोटियाँ देने का आग्रह करता रहा।

सीधे पहाड़ के नीचे पहुँचने पर मुझे पीछे से आता सुआरू मिल गया। नीचे उतरते हुए अब टाँगें काँप रही थीं। रास्ते में उससे बातें करते हुए ऐसा लग रहा था जैसे साथ कोई कश्मीरी चला हो। वह झोले में गुच्छियाँ ले जा रहा था जरी में बेचने के लिए। मेरी जेब में लगभग पच्चीस रुपए थे। मैंने मन ही मन उससे गुच्छियाँ ठगने की योजना बनाई। किंतु जरी में सामान बेचने के बावजूद वह गुच्छियों के पाँच-छह रुपए किलो के भाव से भली-भाँति परिचित था, अतः बात न बनी।

कणाशी शब्दावली

इस शब्दावली में अधिकांश शब्द तिब्बती मूल के हैं, जो लाहौल व किन्नौर से मेल खाते हैं। कुल्लूई शब्द केवल पंद्रह प्रतिशत ही हैं। कुल्लूई शब्दावली में प्रमुखतः स्त्रियों के आभूषण, वेशभूषा से संबंधित हैं। गिनती में पाँच के बाद आम शब्द हैं, जैसे छह, सात, आठ आदि। दस से आगे गिनती बीस को पैमाना मान की जाती है। जैसे चालीस को निश निज़ाँ अर्थात् 'दो बीस' कहेंगे, साठ को शूह्म निज़ाँ, अस्सी को पूह् निज़ाँ। गिनती का यह तरीका प्रदेश के अन्य भागों में प्रयोग में लाया जाता है।

कणाशी में तिब्बती मूल के शब्दों की अधिकता के कारण देवनागरी में इनका सही उच्चारण पकड़ पाना कठिन है। लंबी लय में बोले जाने के कारण भी अधिकांश शब्दों में 'ह्' की ध्वनि रहती है। उदाहरण के तौर पर यहाँ अधिकांश लड़कियों का एक प्रचलित नाम 'मासी' है, जिसे उच्चारण के हिसाब से 'माह्सी' लिखा जा सकता है। एक बार एक मलाणी जोड़ा भुंतर में बस में बैठा। वे औट तक बस में जा रहे थे। बंजार की ओर लारजी में उनकी भेड़ों का रेवड़ था। बस में भीड़ होने के कारण औरत को आगे सीट मिली। जब बजौरा में पीछे सीट खाली हुई तो मर्द ने जोर से आवाज लगाई–'माह्सी !'

कणाशी के कुछ विशिष्ट शब्द

गूह्	मैं	भ्रेस	काठू
शैणी	दोघरा (घर से दूर जमीन में बनी पशुशाला)	काह्न	सरसों का साग
		कीम	घर
हूज	गाय	रृहात	बैल
बकरस	बकरा	बेकर	बकरी
म्हाच	शिशु बकरा	छैलस	बीज का बकरा
शकरङ	बछिया	शकरस	बछड़ा
बेकान	नर भेड़	खस	भेड़
शाड़ग	गीदड़	भुतकार	नर भेड़ (बीज का)
भुराड़ी	बिल्ली	हौम	रीछ
लांङ	ढोर	विणा	कस्तूरी मृग
तिह्	पानी	मड़शङ	आदमी
जूइशंग	बादल	जाप	आकाश, वर्षा
ज्योश्ता	चाँद	धरत	धरती
रातिङ	रात	झाह्ड़े	सूरज
सोम	सुबह	लाय	दिन
कारग	तारे	ओएराङ	शाम

जोह्द : कनक
हलगा : आलू
भाजी : सब्जी
कुलार : सुबह का नाश्ता
ब्याले : शाम का खाना
राहड़े : आटे के सिड़ू
लुह्फा : सलियारा
फूह्ल : भात
फेमड़ा : सलियारे का बना खाद्य
सुथ्थण : पाजामा
टोपे : टोपी
पोह्ण : रस्सी की बनी पूलें
खोह् : कमर की पेटी
थीपा : ढाठू (सिर में लपेटा जाने वाला)
बालू : स्त्रियों की नाक की नथनी
ढेढच : कान के गहने
चंद्रहार : गले का चंद्रहार
इया : माता
दादी : दादी
तेंम : पुत्रवधू
मामा : मामा
बाफा कुच : चाचा
रूहेंग्ज : बहन
भौच : छोटा भाई
ब्हौचेस : भतीजा
भिनिस : पति
कर्मिष्ठ : कारदार
ज्येष्ठांग : सदन का अपर हाउस
धौनिस : जमींदार (राजपूत)
दुपहरी : दोपहर का भोजन
लाहड़े : आटे के चिलड़े
होड : रोटी
लार : चावल
झोल : छाछ का बना पेय, सब्जी के तौर पर प्रयुक्त होने वाला
लटपटा : कपड़ा-लत्ता
कुर्ती : कमीज
खोबे : सैल्ली के जूते
गासा : पट्टू (स्त्रियों द्वारा पहना जाने वाला)
घुडूं : सिर में लपेटा जाने वाला ऊनी कपड़ा
लौंग : स्त्रियों की नाक का गहना
खुंडी : कान के चाँदी के गहने
कंठी : गले का हार
बा : पिता
दादू : दादा
छौंह : पुत्र
चीमे : बेटी
मामी : मामी
बा जेठा : ताया
भाउ : बड़ा भाई
बेस : भाभी
ब्हौतेग : भतीजी
छेच : पत्नी
ज्येष्ट्स : ज्येष्ठांग का सदस्य
कनिष्ठांग : सदन का लोअर हाउस
बाईरौच : हरिजन
जलउ : जुलाहा
छोग : सफेद
सरगङ : नीलम
पिग : पीला
ईद : एक
शूह्म : तीन
नाह् : पाँच
निश निजाँ : चालीस

यारङ : जुआरा (बिना पारिश्रमिक के केवल भोजन खाकर कार्य करने वाला)
रग : हरा
रोक : काला

कोह्ला : खरदंग
निश : दो
पूह् : चार
निज़ाँ : बीस
शूह्म निज़ाँ : साठ

पांडवों का हिमालय-अनुराग

पांडवों का हिमालय और विशेषकर हिमाचल से विशेष अनुराग रहा है। हिमाचल प्रदेश के लगभग सभी भागों में पांडवों के किस्से-कहानियाँ जिस उत्सुकता और रुचि से सुनाई जाती हैं, उससे लगता है, पांडवों ने अपना अधिकांश समय इसी भूमि पर बिताया है। जगह-जगह पांडवों से जुड़े स्थान हैं।

मनाली में हिडिंबा का प्रसिद्ध मंदिर है। हिडिंबा के मंदिर कुल्लू के अन्य भागों तथा चंबा में भी हैं। पाँच पांडवों की मूर्तियाँ कुल्लू के निरमंड तथा चौपाल में हैं। प्रसिद्ध ठोड़ा खेल में भी साठा और पाशा कौरव-पांडव से जोड़ा जाता है। भीम तो पहाड़ी दंतकथाओं के नायक हैं। कहीं भीम की टाँग फिसलने से ऊँचे पर्वतों में निशान पड़ा, कहीं उनकी चिलम का चुगल भारी पत्थर के रूप में पड़ा है, तो कहीं उनका गुर्ज गिरा है। अधिकांश मंदिरों को भी पांडवों से जोड़ा जाता है। विशेषकर अधूरे बने मंदिरों के विषय में यह कथा प्रायः सुनाई जाती है कि रात-रात पांडवों ने मंदिर बनाया। सुबह होने पर वे छिप गए और मंदिर अधूरा रह गया। जाहिर है, लोक-विश्वास का आधार पांडवों का अज्ञातवास है या वह समय है जब वे लाक्षागृह से बचकर भागे थे। इनमें से अधिकांश दंतकथाएँ होंगी, यह निश्चित है, किंतु पांडवों के इतने किस्से उनके बार-बार यहाँ आगमन की धारणा को पुष्ट करते हैं।

महाभारत में पांडवों की हिमालय यात्रा के बार-बार वर्णन आते हैं। विभिन्न कारणों से वे बार-बार हिमालय की ओर आए।

पांडव लाक्षागृह में सुरंग खोद निकलने के बाद नौका से गंगा पार कर दक्षिण दिशा की ओर बढ़े। थक जाने पर वे कुछ ही दूरी पर वट वृक्ष के नीचे ठहर गए। भीम का पानी लेकर लौटने पर हिडिंबा से साक्षात्कार हुआ। हिडिंबा का भीम से विवाह हुआ।

विवाह के बाद भीम और हिडिंबा पहाड़ों की चोटियों, जंगल, तालाबों, गुफाओं आदि दिव्य भूमियों में विचरते रहे। इसके बाद वन पर्व में बदरिकाश्रम जाते समय द्रौपदी के थक जाने पर भीम ने अपने पुत्र घटोत्कच का स्मरण किया। घटोत्कच तथा अन्य राक्षसों ने पांडवों को पीठ पर उठा कैलास पर्वत की ओर कूच किया। घटोत्कच महाभारत युद्ध में

पांडवों की ओर से लड़ा। घटोत्कच के विशेष रथ में चारों ओर रीछ का चमड़ा मढ़ा था। अतः हिडिंबा और घटोत्कच के पर्वत-पुत्र होने की पुष्टि होती है।

पांडवों की दिग्विजय के समय अर्जुन ने उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया था। सभापर्व में वर्णन है–

"उन्होंने (अर्जुन) पहले साधारण पराक्रम से आनर्त, कालकूट और कुलिंद देशों पर विजय प्राप्त की। सात द्वीप के राजाओं में शाकलद्वीप वालों ने बड़ा घमासान युद्ध किया, परंतु अर्जुन के बाणों के सामने उन्हें हटना ही पड़ा। उनकी सहायता से अर्जुन ने प्राग्ज्योतिषपुर पर चढ़ाई की। वहाँ का प्रतापी राजा भगदत्त था। भगदत्त के सहायक किरात, चीन आदि बहुत-से समुद्री देशों के लोग भी थे। आठ दिन तक भयंकर युद्ध होने के बाद भी अर्जुन का पूर्ववत् उत्साह देखकर भगदत्त ने मुस्कराते हुए अर्जुन से मित्रता कर ली।"

इसके बाद अर्जुन ने उत्तर दिशा में बढ़कर पर्वतों के बाहर-भीतर और आसपास सभी स्थानों पर अधिकार कर लिया। उन्होंने पौरव नाम के राजा को तथा पहाड़ी लुटेरों और म्लेछों को, जो सात प्रकार के थे, जीता। त्रिगर्त, दास और कोकनद के नरपति स्वयं शरणागत हुए। कश्मीर के वीर क्षत्रिय और दस मंडलों का अध्यक्ष राज लोहित भी उनके अधीन हुए।

अर्जुन क्रमशः किम्पुरुषवर्ष के अधिपति द्रुमपुत्र और हाटक देश के रक्षक गुहचरों को हराकर मानसरोवर पहुँचे। वहीं से हाटक देश के आसपास बसे प्रांतों पर भी अधिकार कर लिया। तदनंतर अर्जुन ने उत्तरी हरिवर्ष पर विजय प्राप्त करनी चाही थी। परंतु वहाँ प्रवेश करते न करते बड़े वीर और विशालकाय द्वारपालों ने प्रसन्नता से कहा, "अवश्य ही आप कोई असाधारण पुरुष हैं, क्योंकि यहाँ तक पहुँचना सबके लिए सुगम नहीं। आप यहाँ आ गए हैं, यही विजय है।"

वनपर्व में अर्जुन पाशुपतास्त्र पाने के लिए गंधमादन पर्वत पर गए। हिमालय में वे इंद्रकील पर्वत पर पहुँचे जब उन्हें आवाज सुनाई दी–'खड़े हो जाओ।' अर्जुन ने देखा, एक तपस्वी वृक्ष की छाया में बैठा था। तपस्वी ने कहा, "तुम धनुष-बाण, कवच और तलवार धारण किए कौन हो ? यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ? यहाँ शस्त्रों का कुछ काम नहीं, शांत स्वभाव तपस्वी रहते हैं। युद्ध होता नहीं, इसलिए तुम अपना धनुष फेंक दो।"

यहीं हिमालय में इंद्रकील पर्वत के पास अर्जुन ने शंकर से किरात वेश में भेंट की और पाशुपतास्त्र प्राप्त किया।

वन पर्व में ही पांडवों ने मैनाक पर्वत, कनखल पर्वतमाला, भृगुतुंग पर्वतों में दर्शन किए। राजा सुबाहु के देश में किरात, तंगण, पुलिंद जाति के लोगों को देखा। अलकनंदा नदी और बदरीधाम के आगे कैलास पर्वत के दर्शन किए।

महाबली भीम ने कैलास पर्वत के समीप कुबेर के देश में राक्षसों से युद्ध कर महाराज कुबेर को प्रसन्न किया और वहाँ से अद्वितीय कमल लाए।

आश्वमेधिक पर्व में अश्वमेध के लिए छोड़े गए अश्व के पीछे विजय के लिए जाते हुए अर्जुन पुनः इन पहाड़ी प्रदेशों में आए।

महाभारत युद्ध में त्रिगर्त का वर्णन बार-बार आया है। युद्ध से पूर्व राजा विराट की गौएँ हरने पर भी त्रिगर्त राज सुशर्मा कौरव पक्ष से लड़ा था। महाभारत युद्ध में भी त्रिगर्तों ने पांडवों से लोहा लिया। अश्वमेध के समय कुरुक्षेत्र में जो त्रिगर्त वीर मारे गए थे, उनके महारथी पुत्रों-पौत्रों ने अर्जुन से युद्ध किया। इसके बाद प्राग्ज्योतिषपुर आदि देशों के बाद मणिपुर नरेश से युद्ध हुआ।

महाभारत के अंत में महाप्रस्थान के लिए भी पांडव हिमालय की ओर आए। सभी पांडव द्रौपदी सहित उपवास करते हुए पूर्व दिशा की ओर चले। लाल सागर के तट पर उन्हें साक्षात् अग्नि के दर्शन हुए। अग्नि ने अर्जुन को अपना धनुष-बाण फेंकने के लिए कहा।

वहाँ से पृथ्वी की परिक्रमा की इच्छा में उत्तर दिशा में आए और हिमालय के दर्शन किए। हिमालय में पांडव एक-एक गिरते गए और गलते गए। कहते हैं, धर्मराज युधिष्ठिर सशरीर स्वर्ग जा पहुँचे।

संभवतः यही कारण है कि हिमालय के विभिन्न भागों में पांडवों से जुड़ी हुई अनेक किंवदंतियाँ आज भी सुनने को मिलती हैं। युधिष्ठिर की सत्यनिष्ठा, भीम का पराक्रम, अर्जुन का युद्ध कौशल, सहदेव की विद्या की चर्चा आज भी कथा-कहानियों में की जाती है।

हिमाचल में हर प्राचीन मंदिर को पांडवों द्वारा निर्मित माना जाता है। कई अधूरे मंदिर हैं, जिन्हें पांडवों द्वारा रात को बना हुआ बताया जाता है। सुबह होने पर उन्हें छिपना (अज्ञातवास के समय) था, अतः मंदिर अधूरा छोड़ दूसरी जगह चले गए। भीमसेन को लेकर तो कई किंवदंतियाँ हैं। कहीं धौलाधार पर भीमसेन का पैर फिसला तो वहाँ गड्ढा पड़ गया। पालमपुर में धौलाधार के ऊपर एक चौड़ा ढलवाँ स्थान है, जहाँ बर्फ जमी रहती है। लोग मानते हैं, वहाँ से चलते-चलते भीम का पैर फिसला। ऐसे ही एक बड़े पत्थर को भीमसेन के हुक्के की चिलम का चुगल माना जाता है।

यद्यपि ये बातें इतिहास को पुष्ट नहीं करतीं, तथापि यहाँ के लोगों के ऊपर पांडवों के मानसिक दबाव की कहानी कहती हैं।

स्वर्ण का भंडार हिमालय

हिमालय अपने अद्भुत एकांत के लिए ऋषि-मुनि तथा योगियों में प्रसिद्ध रहा है। कई साधक और चिंतक शांति की खोज में हिमालय की ओर आए। हिमालय अपने स्वर्ण-भंडारों के लिए भी आकर्षण का केंद्र रहा, यह रहस्य हमारे वेद-पुराणों के अनेक आख्यानों से खुलता है। आज भी हिमालय के ऊपरी भाग में देवताओं के पास इतना सोना है, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। देवताओं के मोहरे सोने के हैं। उनके साज-बाज सोने-चाँदी

से बने हैं। इसी कारण आज के युग में कुल्लू, किन्नौर, ऊपरी शिमला के क्षेत्रों में मंदिरों में ग्रामीणों को बारी-बारी से पहरा देना पड़ता है। इसमें विशेष बात यह है कि यह संपत्ति किसी एक व्यक्ति की नहीं, अपितु पूरे समाज की है।

महाभारत में प्रसंग है कि पांडवों को अश्वमेध यज्ञ के लिए धन की आवश्यकता पड़ी तो महर्षि व्यास ने उन्हें राजा मरुत द्वारा पृथ्वी तल में छोड़ी स्वर्ण-मुद्राओं के विषय में बताया।

ऋषि अंगिरा के यजमान राजा करंधम थे। राजा करंधम ने संपूर्ण राजाओं को अपने अधीन कर लिया था और अपने तेज से देवराज इंद्र को भी मात करते थे। इनके पौत्र का नाम था मरुत। इसी बीच इंद्र ने समस्त असुरों को जीता, अंगिरा के ज्येष्ठ पुत्र बृहस्पति को अपना पुरोहित बना लिया। ऋषि अंगिरा के दो पुत्रों में बृहस्पति बड़े और संवर्त छोटे थे। बृहस्पति अपने भाई को बहुत सताया करते थे, जिस कारण वे दिगंबर होकर वन में वास करने लगे।

राजा मरुत और देवराज इंद्र की आपस में लाग-डाँट थी। इंद्र राजा मरुत से बढ़ने का प्रयास करते थे किंतु बढ़ नहीं पाते थे। जब इंद्र किसी भी तरह राजा मरुत से आगे नहीं निकल पाए तो बृहस्पति से कहा कि वे कभी भी राजा मरुत का यज्ञ या श्राद्ध न कराएँ। तीनों लोकों का स्वामी तो इंद्र है, मरुत तो केवल पृथ्वी का राजा है। बृहस्पति ने भी मरणधर्मा राजा मरुत का यज्ञ न करवाने का वचन दिया।

राजा मरुत ने यह सुनकर एक महान् यज्ञ करवाने का निश्चय किया। वे बृहस्पति के पास गए और विनय की कि उन्होंने निर्देशानुसार यज्ञ की सारी सामग्री एकत्रित कर ली है और वे यज्ञ करवाएँ। बृहस्पति ने यज्ञ करवाने से इनकार कर दिया और कहा कि मरणधर्मा मनुष्यों का वे यज्ञ नहीं करते।

जब राजा मरुत खिन्न मन से लौट रहे थे तो रास्ते में उन्हें नारद जी मिले। राजा ने उन्हें अपने गुरु द्वारा मरणधर्मा का दोष लगाकर त्यागने की बात बताई। नारद ने कहा, "राजन् ! अंगिरा के द्वितीय पुत्र संवर्त बड़े धार्मिक हैं। वे दिगंबर होकर संपूर्ण दिशाओं का भ्रमण कर रहे हैं। यदि बृहस्पति तुम्हें अपना यजमान बनाना नहीं चाहते तो तुम उन्हीं के पास जाओ। संवर्त बड़े तेजस्वी हैं। वे प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारा यज्ञ करा देंगे।"

नारद जी ने यह भी बताया कि वे काशीपुरी में पागल-सा वेश धारण किए घूम रहे हैं। विश्वनाथपुरी के प्रवेश द्वार पर मुर्दे को देख जो पीछे लौट पड़े, समझना वही संवर्त है। राजा ने काशीपुरी के द्वार पर मुर्दा रखवा दिया। संवर्त वहाँ दर्शनों के लिए आए, किंतु मुर्दे को देख सहसा पीछे लौट गए।

राजा ने संवर्त को अपना परिचय दिया और अपना उद्देश्य बताया। संवर्त ने उत्तर दिया, "मेरा स्वभाव तो अपनी मौज से काम करने का है। मैं किसी के अधीन नहीं रहता। मेरे बड़े भाई का इंद्र से बड़ा मेलजोल है। तुम उन्हीं से अपना यज्ञ कराओ। मेरा सब कुछ बड़े भाई ने अपने अधीन कर रखा है। मेरे पास तो केवल मेरा यह शरीर ही छोड़ रखा है।"

राजा मरुत द्वारा बहुत अनुनय-विनय करने पर संवर्त ने यज्ञ करवाना स्वीकार कर

लिया और इंद्र तथा बृहस्पति के कुपित होने की स्थिति में राजा द्वारा अपना समर्थन तथा यज्ञ लेने का भी वचन ले लिया।

संवर्त ने यह भी बताया कि यज्ञ के साथ वे अक्षय धन-प्राप्ति का उपाय भी बताएँगे, जिसके साथ राजा मरुत देवताओं सहित इंद्र को नीचा दिखा सकेंगे।

संवर्त ने बताया, "हिमालय के पृष्ठभाग में मुंजवान नामक एक पर्वत है, जहाँ भगवान् शंकर सदा तपस्या किया करते हैं। उस पर्वत पर रुद्रगण, साध्यगण, विश्वदेव, वसुगण, यमराज, वरुण, अनुचरों सहित कुबेर, भूत, पिशाच, अश्विनी कुमार, गंधर्व, अप्सरा, यज्ञ, देवर्षि आदित्य, मरुत और यातुधानगण सब ओर से घेरकर उमापति महादेव की उपासना करते रहते हैं।...वहाँ न तो अधिक गर्मी पड़ती है, न विशेष ठंड। न वायु का प्रवेश होता है, न सूर्य के प्रचंड ताप का। उस पर्वत के चारों ओर सूर्य की किरणों के समान चमकते हुए सुवर्ण के अनेक शिखर हैं। अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित कुबेर के अनुचर अपने स्वामी का प्रिय करने के लिए उन सुवर्ण शिखरों की रक्षा करते हैं। वहाँ जाने से पहले तुम जगदविधाता भगवान् शंकर को नमस्कार करके फिर इस प्रकार स्तुति करना...उनके चरणों में मस्तक झुकाने से तुम्हें सुवर्ण की प्राप्ति होगी। सुवर्ण लाने के लिए तुम्हारे सेवकों को भी वहाँ जाना चाहिए।"

राजा मरुत ने वैसा ही किया। कारीगरों ने यज्ञ के लिए सोने के पात्र तैयार किए। यज्ञ की तैयारी होने के साथ-साथ इंद्र चिंतित होने लगे। राजा इंद्र और बृहस्पति ने यज्ञ में विघ्न डालने अग्नि को भेजा। अग्नि ने यज्ञशाला में जाकर मरुत से कहा कि बृहस्पति आपका यज्ञ करने को तैयार हैं। इंद्र भी मैत्री चाहते हैं। राजा मरुत ने उनकी एक न मानी।

अग्नि के बाद इंद्र ने गंधर्वराज धृतराष्ट्र को भेजा। धृतराष्ट्र ने राजा मरुत से बृहस्पति को पुरोहित बनाने की बात कही और इंद्र द्वारा वज्र से आक्रमण करने की धमकी भी दी। राजा मरुत नहीं माने तो उसी समय इंद्र वज्र सहित आकाश में प्रकट हुए। संवर्त ने स्तंभिनी विद्या द्वारा वज्र का प्रभाव शांत कर दिया और मंत्रों के बल पर सभी देवताओं का आह्वान किया और इस प्रकार इंद्र सहित सभी देवताओं ने पधारकर सोमरस का पान किया और यज्ञ को सफल बनाया।

यज्ञ संपन्न होने पर और सभी देवताओं के चले जाने पर राजा मरुत ने वहाँ पग-पग पर स्वर्ण की ढेरियाँ लगवाईं और ब्राह्मणों को दान दिया। ब्राह्मणों के ले जाने से जो धन वहाँ बच गया उसको मरुत ने एक स्थान पर जमा कर दिया और गुरु संवर्त की आज्ञा लेकर राजधानी को लौट आए।

झीलें, जिनमें पृथ्वी तैरती है

सर—निर्झर, यही तो पहाड़ जनते हैं। कहीं पथरीली चट्टानों के बीच सर, कहीं पहाड़ की चोटी पर सर, कहीं बर्फीली शिलाओं में सर। निर्झरों के तो कहने ही क्या !

बात यहाँ सरोवरों की है। वैसे तो हिमाचल के अन्य स्थानों में भी अनेक सर हैं किंतु मंडी में 'पराशर' के अलावा सरों की सरजमीं है 'रिवाल्सर', जहाँ नीचे भी सरोवर है तो पहाड़ी पर भी सरोवर। पराशर तथा रिवाल्सर, दोनों ऐसे अद्भुत सरोवर हैं, जिनमें भूखंड तैरते हैं। और स्थानों पर तो पृथ्वी पर झीलें तैरती हैं, यहाँ झीलों में पृथ्वी तैरती है।

हिमालय की तलहटी में 'सर' दर्शनीय नहीं हैं, पूजनीय हैं। हर सर वंदनीय हैं, जहाँ मेले लगते हैं। देवता, मनुष्य नमस्कार करने आते हैं। श्रद्धालु इनमें श्रद्धा-पुष्प, सोना-चाँदी, सिक्के तथा धूप, दीप, नैवेद्य चढ़ाते हैं। गंगा घाटों की तरह इस चढ़ावे को कोई निकालता नहीं। इन झीलों में न जाने कब की मुद्राएँ, सोना, चाँदी दबा पड़ा है। सदियों से लोग इस तरह चढ़ावा चढ़ाते आए हैं। पता नहीं, नीचे कितना और क्या दबा पड़ा है।

झीलों के खजाने के साथ यहाँ किंवदंतियाँ जुड़ी हुई हैं। कहा जाता है कि एक बार एक दंपती ने पुत्र-प्राप्ति हेतु मनौती मानी और फल मिलने पर झील की एक मछली की नाक में सोने की नथनी डाल दी। बाद में पति-पत्नी में इस अपव्यय पर मनमुटाव हुआ। फलतः पति को स्वप्न आया कि वह अपना चढ़ावा अपने घर के पास ही वापस वसूल ले। उसका घर, जो रिवाल्सर से नीचे दूसरी ओर था, वहाँ निकले पानी में उसे वही मछली और नथनी मिल गई, किंतु पुत्र मर गया। इसी तरह का दूसरा विश्वास है कि पहले लोग ब्याह-शादियों में प्रयोग के लिए बड़े-बड़े बर्तन इसी झील से निकालकर ले जाते थे। जमाना बदला, लोगों ने बर्तन हड़प करने शुरू कर दिए और तब से झील में छिपे बर्तनों का खजाना लुप्त हो गया।

रिवाल्सर

एक ओर ऊँची पहाड़ी, दूसरी ओर दो छोटी पहाड़ियाँ, आगे से खुला, आमंत्रण-सा देता रिवाल्सर एक अद्भुत स्थल है। बीच में झील, तीन ओर तीन धर्मों के प्रतीक मंदिर, गुरुद्वारा और बौद्ध मठ। मंडी से चौबीस किलोमीटर की दूरी पर मंडी-हमीरपुर सड़क के किनारे बसा रिवाल्सर प्राकृतिक छटा के अलावा एक धार्मिक संगम के रूप में भी विख्यात है।

बड़ी-बड़ी पालतू किस्म की मछलियों से भरी इस झील में छोटे-छोटे भूखंड तैरते हैं। सब भूखंडों पर सरकंडे उगे हुए हैं। धीरे-धीरे ये भूखंड झील में घूमते हैं। इन्हें 'बेड़े' कहा जाता है। झील के किनारे आए भूखंडों के पूजन के समय श्रद्धालु इन पर सवार हो जाते हैं। ऐसे समय में यह पिलपिली नाव की तरह डगमगाते हैं। इनकी संख्या सात बताई जाती है। झील के ऊपर व नीचे किनारे पर बहुत-से सरकंडे उगे हुए हैं, चलने वाले सात ही बताए जाते हैं।

लोग मंदिर के आगे घाट पर खड़े हो मछलियों को आटे की गोलियाँ बना फेंकते हैं। यहाँ बड़ी-बड़ी मछलियों की भीड़ एक-दूसरी को छपछपाती एक अजीब-सा शोर मचाती हुई 'अस्तित्व के लिए संघर्ष' का सजीव दृश्य प्रस्तुत करती है।

यहीं शिव मंदिर से होकर ऊपर चढ़ते जाइए। कुछ ही ऊपर एक पुराने शिवालय के अवशेष हैं। दूसरी ओर रास्ते के साथ एक बावड़ी बनी हुई है। यहाँ से सात सरों, बौद्ध गुफाओं, नैणा देवी मंदिर को रास्ता चढ़ता है। ऊपर सामने पहाड़ी में बौद्ध-भिक्षुओं की छोटी-छोटी गुफाएँ दिखाई देती हैं।

सरधार व सात सर

पहाड़ी पर, जिसे 'सरधार' कहा जाता है, दूसरी ओर नीचे तलहटी में कुछ सर दिखाई देते हैं। सरों की संख्या सात बताई जाती है। अब ये पाँच ही हैं। गंदलासर या खदलासर अर्थात् गँदले पानी का सर, कालासर या कलसर अर्थात् काले पानी का सर, संगड़ेरासर अर्थात् सरकंडों वाला सर, जिसमें सरकंडे उगे रहते हैं, सुकासर या सूखा सरोवर, जो सूखने लगा है, ये चारों उस तलहटी में हैं। प्रायः इनमें बरसाती पानी भरा रहता है। उसी के अनुसार ये सूखते और भरते रहते हैं। इनमें अद्वितीय सर पाँचवाँ है, जो पहाड़ी के अंत में शिखर पर है। रिवाल्सर की ओर ऊँची पहाड़ी पर स्थित इस सरोवर को 'कुंत भयो' के नाम से जाना जाता है। आम बोलचाल में इसे कुंती माई का सर भी कहते हैं। कहा जाता है जब कुंती सहित पाँचों पांडव इस पहाड़ी पर आए तो यहाँ आकर कुंती माता को प्यास लगी। पहाड़ पर पानी न था। अतः वीर अर्जुन ने तीर मारकर इस जगह से पानी की धारा निकाली जो कालांतर में सरोवर बन गई।

यह सरोवर लंबाई में रिवाल्सर से अधिक है, चौड़ाई में कुछ कम है। इस द्वितीय सरोवर में स्वच्छ पानी है। दूसरी ओर पानी का निकास भी है जो समीपवर्ती गाँवों की जलापूर्ति करता है।

गुफा का रहस्य

सरधार पर नीचे की ओर है यह अद्भुत सर तो ऊपर की ओर है रहस्यमय गुफा ! कहा जाता है, यह गुफा हरिद्वार में निकलती थी। इस समय यह गुफा कुछ ही दूरी पर जाकर बंद हो गई है।

गुफा के प्रवेश द्वार में एक बौद्ध लामा रहते हैं। भीतर यह गुफा, गुफा न होकर एक कमरा प्रतीत होती है। यहाँ लामा का बहुत-सा सामान—मूर्तियाँ, पुस्तकें आदि रखी हुई हैं। गुफा के ऊपर भी एक घर बना दिया गया है, जहाँ गत पच्चीस-छब्बीस सालों से लामा अंगदोर रहते हैं। इससे पहले इस गुफा में लामा तोडो आए थे। इनके आगमन से पूर्व गुफा खाली थी।

ऐसा भी कहा जाता है कि यहाँ लोमश ऋषि ने तपस्या की थी। रिवाल्सर में बौद्ध ऋषि लोमश और अपने गुरु पद्मसंभव को एक ही मानते हैं।

गुफा में भीतर प्रवेश के लिए लामा का युवा अनुयायी, जिसने बाहर बुद्ध आदि की मूर्तियों के सामने अमिताभ बच्चन का कैलेंडर लगा रखा था, लैंप ले आया। एक छोटे-से दरवाजे से प्रवेश के बाद भीतर कीचड़ भरा था। ऊपर से पानी टपक रहा था। सात-आठ कदम के बाद ही गुफा खुली मिल गई। ऊपर से कुछ प्रकाश भी आ रहा था। यहाँ पद्मसंभव की एक विशाल मूर्ति बनी हुई है। मूर्ति के आगे गुफा अब बंद है। पद्मसंभव की विशाल मूर्ति व अन्य छोटी मूर्तियाँ लामा द्वारा बनाई गई हैं। ऊपर के कमरे में लामा के पास हिप्पी किस्म के कुछ विदेशी डटे थे।

सरधार से आगे 'झैर' गाँव है जहाँ पद्मसंभव ने तपस्या की थी। इसका उल्लेख बौद्ध साहित्य में आता है और मंडी-रिवाल्सर के इस क्षेत्र को 'जौहार' कहा गया है। इस गुफा से ही ऊपर नैणा देवी के मंदिर को रास्ता जाता है।

पद्मसंभव का प्रादुर्भाव

रिवाल्सर में बस से उतरने के बाद ही रास्ते के किनारे छोटे-बड़े पत्थरों पर 'ॐ मणि पद्मे हुम्' मंत्र खुदा है। सड़क के किनारे एक तिब्बती शिल्पी छोटे-छोटे पत्थरों पर बौद्ध मंत्र उकेर रहा था। ऐसे मंत्रपूत उकेरे हुए यहाँ ढेरों पत्थर पड़े हुए हैं।

पहले एक गोम्पा आता है। इस गोम्पा में बौद्ध मंदिर तथा भिक्षुओं के लिए आश्रम हैं। मुख्य द्वार से आगे दोनों ओर बड़े-बड़े ढोल के आकार के चक्र हैं, जिन्हें कोई न कोई श्रद्धालु घुमाता रहता है। एक लंबे कमरे में असंख्य ज्योतियाँ रखी हैं, जिन्हें पर्व, उत्सव के समय जलाया जाता है।

गोम्पा के भीतर पद्मसंभव की सुंदर मूर्ति है। बड़े-बड़े घी से भरे पात्रों में ज्योति जलती रहती है। सायंकाल मूर्ति के आगे दोनों ओर बैठे बौद्ध लामा मंत्रोच्चारण कर रहे थे। सायंकालीन पूजा लगभग तीन बजे से पाँच बजे तक होती है। बीच-बीच में लामा वाद्य बजाते जा रहे थे। दो युवा लामा शहनाई बजाते हुए मंदिर की परिक्रमा करते हैं। सायं-प्रातः लामाओं के मंत्रोच्चारण की ध्वनि व पूजा-वाद्यों का मधुर स्वर इस स्थान को एक गरिमा व माधुर्य प्रदान करता है।

कथा राजकुमारी मांधर्वा की

आठवीं शताब्दी की बात, पद्मसंभव ओदियान की धनकोष झील के किनारे मुक्ति-मार्ग की व्याख्या कर रहे थे। वहाँ उन्हें ज्ञानचक्षु से दिखाई दिया कि मंडी नगरी योगसाधना का केंद्र बन सकती है। अतः वे मंडी की राजकुमारी मांधर्वा को दीक्षा देने आए। मंडी के राजा ने उन्हें रिवाल्सर में जीवित ही जला दिया। किंतु पद्मसंभव को जलाने वाली आग पानी की झील में बदल गई और पद्मसंभव झील में कमल पर आसीन प्रकट हुए, तो राजा ने चमत्कृत हो उन्हें गुरु बनाया और राजकुमारी सहित दीक्षा ली।

पद्मसंभव के मंदिर के साथ काली मंदिर है, जिसे बौद्ध दोरजे डोलू कहते हैं।

यहाँ फागुन की शुक्ल दशमी को लामाओं का विशाल मेला लगता है, जिसे 'छिशू'

कहा जाता है। इस मेले में लाहुल स्पिति, किन्नौर तथा भारत के विभिन्न भागों में बसे तिब्बती आते हैं। मेले में मुखौटे लगाकर लामा जोग नृत्य करते हैं।

छह वर्षीय लामा गुरु

दूसरा बौद्ध मठ गुरुद्वारे के साथ है। यह नया बना है और 'ड्री गुंग काग्युद' अध्ययन केंद्र के नाम से जाना जाता है। भीतर से यह मंदिर भी दूसरे गोम्पा जैसा ही है। पद्मसंभव की जगह यहाँ मूर्ति समाधिस्थ बुद्ध की है। इस मठ का बड़ा लामा छह वर्षीय बालक है जिसे एक वर्ष पूर्व मैसूर से लाया गया है। इससे पूर्व इसे मैसूर मठ में रखा गया था।

विचित्र लामा परंपरा के अनुसार अल्मोड़ा के लामा ने बताया कि मैसूर में हंसू नामक स्थान में फलाँ आदमी के घर लामा का जन्म हुआ है, जो इस मठ का अधिष्ठाता बनेगा। बस, वहाँ से इस शिशु को माता-पिता से ले लिया गया।

इस तरह बच्चे को लामा का अवतार समझ ले जाने की घटना कुछ वर्ष पूर्व मनाली में भी हुई थी। उस शिशु को मनाली से मैसूर के एक गोम्पा में ले जाया गया था। वह शिशु माता-पिता की एकमात्र संतान था। यहाँ का शिशु लामा भी माता-पिता का एक ही पुत्र है।

इस मठ में यह शिशु मठ के ऊपर वाले कमरे में अलग रहता है। इसके साथ इसका शिक्षक रहता है। बच्चे की माँ भी कुछ दिनों के लिए साथ आई है, जो नीचे अलग कमरे में रहती है। एक छोटी बहन भी है, जो अब ज़ोमो भिक्षुणी बनेगी। पिता नेपाल में रहता है। उसने पत्नी को छोड़ रखा है। माँ ने बताया, ऐसा परिवार अपने को धन्य समझता है जिसमें लामा अवतार ले। यद्यपि उसे मठ को सौंपती बार दुःख होना स्वाभाविक है।

मठ के ऊपरी कमरे में जब हम परदा हटा अंदर घुसे तो शिशु लामा चारपाई पर विराजमान थे। शिक्षक नीचे लेटा था। शिशु लामा के चेहरे पर एक विलक्षण आभा थी। चौड़े-चौड़े क़ान जैसे दूर-दूर से ध्वनि सुनने को आतुर। पास ही शिक्षक द्वारा अभी-अभी शिमला से लाया एक खिलौना पड़ा था। खिलौने के प्रति उसका विशेष लगाव नहीं था, हाँ, हमारे साथ गए बच्चों को देख आँखों में एक बालसुलभ चमक आ गई।

ड्री गुंग काग्युद मठ से आगे 'गुरुद्वारा श्री रिवाल्सर साहिब' ऐतिहासिक स्थान पातशाही दसवीं स्थित है। इस ऐतिहासिक स्थान में सिक्खों के दसवें गुरु गोविंदसिंह ने बाईस पहाड़ियों के छोटे-बड़े राजाओं को एकत्रित कर मुगलों के अत्याचारों के खिलाफ एकता का आवाहन किया था।

झील के दूसरे किनारे गुरुद्वारे के सामने घाट के साथ मंदिर हैं। एक बड़ा शिवालय, दूसरा छोटा शिवालय जो लोमश ऋषि की तपोभूमि भी बताया जाता है। तीसरा लक्ष्मीनारायण मंदिर। इस मंदिर में बौद्ध शैली की लक्ष्मीनारायण की मूर्तियाँ हैं। एक मंदिर थोड़ा ऊपर की ओर है।

कथा है कि एक बार ऋषि लोमश यहाँ तपस्या करने बैठे। उनकी तपस्या से देवलोक काँप उठा। देवगण उनकी तपस्या भंग करने के लिए विष्णु के पास गए। विष्णु ने कहा

कि शिवजी के पास जाओ, शिव कोई वर देंगे, तभी ऋषि की समाधि टूटेगी। देवताओं के आग्रह पर शिव रिवाल्सर आए तो देखा, ऋषि समाधिस्थ हैं। शिव ने उनकी समाधि भंग करने के उपाय सोचे। अंततः शिव ने अपने चमत्कार से झील में भूखंड तैराने आरंभ किए। जब ऋषि ने आँख खोली तो देखा, पानी में भूखंड तैर रहे हैं। सामने साक्षात् शिव-पार्वती खड़े हैं। शिव ने प्रसन्न होकर कहा, "वर माँगो !" ऋषि आश्चर्यचकित हो भूखंडों को तैरते हुए देखते रहे और बोले, "आपकी माया अपरंपार है। सुनो ! आपने पृथ्वी को पानी में तैरा दिया। आपकी यह माया सदा बनी रहे, यही वर दीजिए।" शिव ने तथास्तु कहा और उस दिन से भूखंड तैरने लगे।

[यह यात्रा-विवरण मई, 1985 का है। इस बीच रिवाल्सर में मुख्य गोम्पा के ऊपर एक और गोम्पा बन गया है। वर्ष 1994 से रिवाल्सर के छिशु उत्सव को सरकार द्वारा राज्यस्तरीय उत्सव घोषित कर दिया गया है।]

पराशर झील मंडी

ऐसी अद्भुत दूसरी झील है जिला मंडी के पराशर में। 15 जून से यहाँ दो दिवसीय सरानाहुली मेला लगता है। इसे 'पराशर' या 'पड़ासर' भी कहते हैं। पौराणिक पराशर, जो क्षमाशील वशिष्ठ के पौत्र और मुनि शक्ति के पुत्र थे। कहते हैं, उन्होंने गर्भ में ही सौ पुत्रों की मृत्यु से संतप्त वशिष्ठ को जीवन जीने की प्रेरणा दी। महाभारत में प्रसंग है :

"उस बालक ने गर्भ में आकर परासुः अर्थात् मरने की इच्छा वाले वशिष्ठ जी को पुनः जीवित रहने के लिए प्रोत्साहित किया था, इसीलिए वे लोक में 'पराशर' के नाम से विख्यात हुए।"

पराशर झील शिमला से 158 किलोमीटर व चंडीगढ़ से 304 किलोमीटर दूर मंडी के उत्तर-पूर्व में लगभग 9000 फुट की ऊँचाई पर स्थित है। झील तक पहुँचने के लिए पहला और सुगम मार्ग कटौला-बागी मार्ग है। मंडी-बागी तक सड़क है और बस सुलभ है। इससे आगे जोंकों से भरा आठ किलोमीटर पैदल मार्ग है। जुराबों में जोंकें समाने से बचना हो तो जीप योग्य सड़क से भी जाया जा सकता है। दूसरा मार्ग, राष्ट्रीय मार्ग पर पंडोह झील से सनोर-बदार होकर है। तीसरा मार्ग हणोगी माता मंदिर से बान्हदी होकर है। बान्हदी में ही देवता पराशर का भंडार है। इसी भंडार में देवता के मोहरे (मास्क) रखे रहते हैं। भंडार में देवता के तीन चाँदी के घोड़े भी हैं। एक अन्य मार्ग हणोगी से आगे पनारसा से है। कुल्लू की ओर से आने वाले यात्री बजौरा से कंढी होते हुए आते हैं। मंदिर और झील के समीप साधारण सराय और वन विभाग का एक विश्रामगृह भी है।

झील के साथ पराशर ऋषि का पैगोडा शैली का तिमंजिला मंदिर है। मनाली का हिडिंबा मंदिर, दयार (कुल्लू) का त्रिजुगी नारायण व कुल्लू का पराशर मंदिर और मंडी का यह पराशर मंदिर पैगोडा शैली के गिने-चुने मंदिर हैं। ठीक इसी तरह का ऋषि मंदिर है

कुल्लू के कमांद में, जहाँ एक झील भी है, किंतु छोटे आकार की। उस मंदिर में भी अद्भुत काष्ठकला का उत्कीर्ण हुआ है।

पराशर का यह काष्ठ मंदिर तेरहवीं या चौदहवीं शताब्दी में मंडी के राजा बाणसेन द्वारा बनवाया गया। मंदिर के द्वार पर की गई लकड़ी की नक्काशी ध्यान आकर्षित करती है। मंदिर के भीतर ऋषि की पिंडी के अतिरिक्त ऋषि की भव्य पाषाण प्रतिमा और विष्णु-शिव व महिषासुरमर्दिनी की पाषाण प्रतिमाएँ हैं।

शिखर पर लगभग डेढ़ किलोमीटर कटोरीनुमा पहाड़ी के ठीक बीच में है झील, जिसके एक किनारे है अर्द्धचंद्राकार भूखंड। यह भूखंड धीमी गति से चलता है। स्थानीय पुजारियों के अनुसार यह पहले इधर से उधर चलता था, अब कुछ वर्षों से कोने में स्थिर हो गया है। झील की गहराई का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता। किंवदंती है कि मंडी के एक शासक ने झील की गहराई मापनी चाही। आसपास के क्षेत्र से सब रस्सियाँ इकट्ठी कर बाँधी गईं और सिरे में लोहे का 'घण'। रस्सियाँ कम पड़ गईं, किंतु गहराई मापी न जा सकी।

जब महर्षि पराशर अध्यात्म-चिंतन के लिए एकांत स्थान की खोज में थे तो इस स्थान को उपयुक्त पाकर उन्होंने भूमि पर गुर्ज से प्रहार किया। भूमि से जल की धारा फूटी, जिससे यह सुंदर झील बन गई। झील के किनारे ऋषि समाधिस्थ हो गए।

इस अनुपम स्थल तक पहुँचने के लिए भिन्न-भिन्न ऋतुओं में समागम दिवस निश्चित हुए। ऋषि के जन्मदिवस पर भादों के शुक्ल पक्ष की पंचमी को एक मेला लगता है। इस अवसर पर बान्हदी स्थित भंडार से ऋषि का रथ सजाकर मेले में लाया जाता है। आसपास के देवता मेले में खुशी मनाने आते हैं। आषाढ़ की संक्रांति को 'सरानाहुली' नाम का मेला लगता है। यह एक बड़ा मेला है, जिसमें सनोर, बदार, उत्तरसाल, सिराज के लगभग तीस देवता आते हैं। मेले में मंडी व कुल्लू क्षेत्र के श्रद्धालु समान रूप से भाग लेने आते हैं। एक अन्य मेला वैशाख में लगता है जब आसपास की देवियाँ यहाँ पधारती हैं। मेलों के अतिरिक्त भी विभिन्न पर्व मंदिर में समय-समय पर मनाए जाते हैं।

इन मेलों में मनुष्य व देवताओं का अद्भुत संगम होता है। मेलों में परंपरागत संस्कृति के दर्शन भी होते हैं। देवताओं के वाद्यों की मधुर ध्वनि के साथ देवताओं के गूर 'गूर-खेल' या 'देउखेल' करते हैं। गूरों के इस खेल में संगल, कटार आदि के साथ नृत्य होता है। 'भारथा' में देवता का गूर देवता की कथा सुनाता है। भविष्यवाणियाँ की जाती हैं।

हिमालय में 'सर' मात्र दर्शनीय ही नहीं, पूजनीय भी हैं। हर सर वंदनीय है, जहाँ मेले लगते हैं। देवता और मनुष्य जुड़ते हैं। श्रद्धालु सोना, चाँदी, सिक्के, धूप-दीप इन झीलों में चढ़ाते हैं। न जाने कितना खजाना इन झीलों में दबा पड़ा है। ऐसी कथाएँ भी प्रचलित हैं कि इन झीलों के गर्भ में पड़ा सोना, चाँदी, भाँड़े-बर्तन समय पड़ने पर देवता की इच्छा से जरूरतमंदों को दिए जाते हैं। रिवाल्सर झील के बारे में जनश्रुति है कि लोग विवाह आदि के अवसर पर झील से प्रयोग के लिए बड़े-बड़े बर्तन ले जाया करते थे। समय बदला, लोगों की नीयत बदली। लोगों ने ये वस्तुएँ हड़प करनी आरंभ कर दीं और धीरे-धीरे झील का

यह खजाना पानी के गह्वर में गायब हो गया। ऐसे ही झील के खजाने की बात मंडी के ही कामरू नाग झील के बारे में भी की जाती है।

खजियार झील

खजियार एक अनुपम प्राकृतिक स्थल है, जो चंबा तथा डलहौजी के बीच पड़ता है। डलहौजी से छब्बीस किलोमीटर और चंबा से बाईस किलोमीटर की दूरी पर घने जंगल के बीच स्थित यह स्थान प्रकृति का अजूबा है। डलहौजी तथा चंबा से बस सेवा भी उपलब्ध है और टैक्सी आदि भी सुगमता से मिल जाती हैं। सड़क मार्ग ऊँचे-ऊँचे देवदारों से भरपूर है।

दोनों ओर घने जंगल और गगनचुंबी वृक्षों से घिरा एक हरा-भरा लंबा-चौड़ा मैदान है। मैदान के ठीक बीच में है झील। झील के एक ओर खज्जी नाग का पुरातन काष्ठ मंदिर है। मंदिर के दरवाजे तथा छत में लकड़ी की सुंदर नक्काशी हुई है। मंदिर के भीतर खज्जी नाग की मानवाकार प्रतिमा है। सामने हिडिंबा का मंदिर है। एक छोटा शिवमंदिर भी है।

मैदान में बीचोबीच है मनोहारी झील। यद्यपि झील अब काफी सिकुड़ गई है। एक ओर सरकंडों से भरा भूखंड है, जो अब उथला और जमा हुआ है। घास और सरकंडों के कारण झील का अधिकांश भाग जलरहित होता जा रहा है। कहते हैं, यहाँ पहले भूखंड तैरता था।

झील में गगनचुंबी देवदार वृक्षों के प्रतिबिंब संपूर्ण माहौल को एक विलक्षणता प्रदान करते हैं। मैदान में घूमने के लिए पर्याप्त स्थान है। कुछ घोड़े वाले झील के चारों ओर घुड़सवारी का अवसर प्रदान करते हैं।

$32^0$26' उत्तर और $76^0$32' पूर्व में लगभग 6300 फुट की ऊँचाई पर स्थित यह झील आकर्षक परिवेश में मनोहारी दृश्य प्रस्तुत करती है। खज्जी नाग और हिडिंबा का मंदिर राजा पृथ्वीसिंह (1641) की धाय बाटलू ने बनवाया।

श्रीकृष्णद्वैपायन वेद व्यास

एक धारा फूटी है 3976 मीटर ऊँचे रोहतांग दर्रे से। यह धारा है व्यास की। व्यास, जो यहाँ एक बूँद होकर निकली है, मैदानों में जाकर दरिया हुई है। इसी प्रकार व्यास ऋषि, जो कभी साधारण मुनि थे, कालांतर के बाद दरिया बने हैं। कुल्लू व लाहुल घाटी के सेतु रोहतांग दर्रे पर व्यास कुंड को देखकर लगता है, व्यास ऋषि और नदी एक हो गए हैं।

व्यास विस्तार का नाम है। ऋषि और नदी, दोनों अपने उद्‌गम में बूँद होते हैं जो फैलते-फैलतें सागर हो जाते हैं। आसपास की प्रकृति, वातावरण तथा अनुभवों को समेटते

उनके व्यक्तित्व में विस्तार होता जाता है।

रोहतांग के दूसरी ओर सोलंग नाले के ऊपर 'व्यास रिखी' का आश्रम है। कुछ लोग व्यास रिखी से आने वाले सोलंग नाले को असली व्यास मानते हैं। अब रोहतांग के व्यास कुंड की महत्ता अधिक हो गई है।

ऋषि और नदी का मूल जाना नहीं जा सकता—पुराण वाक्य है। मूल चाहे कोई भी हो, बात अस्तित्व की है।

व्यास ऋषि से संबद्ध विलासपुर में व्यास गुफा भी है, जहाँ यह माना जाता है कि व्यास ऋषि ने तपस्या की थी।

पूरा महाभारत व्यासमय है। आदि से अंत तक। हर समय, हर क्षण में वहाँ व्यास विद्यमान है। वास्तव में व्यास एक नहीं, अनेक हुए। इस कल्प में व्यतीत हुए द्वापर युगों की संख्या के अनुसार अब तक अट्ठाईस व्यास हो चुके हैं। अंतिम व्यास का नाम श्रीकृष्ण-द्वैपायन था।

शिव पुराण में कहा है—"समय के प्रभाववश समस्त पुराणों के ग्रहण में असमर्थता के कारण व्यासस्वरूपी भगवान् ब्रह्मा जी युग-युग में संग्रह के निमित्त चार लाख श्लोकों वाले पुराणों की रचना प्रत्येक द्वापर युग में रचते हैं, जो अठारह भागों, अष्टादश पुराणों के रूप में प्रकाशित होते हैं।" पुराणों में व्यास का परिचय इस प्रकार दिया गया है : "व्यास कोई एक व्यक्ति नहीं होता। प्रत्येक द्वापर में नवीन व्यास हुआ करते हैं। व्यास किसी का नाम नहीं, अपितु पदवी है। गोल वृत्त में जो एक सीधी रेखा निकल जाती है, उसका नाम व्यास है। इसी प्रकार वेद वृत्त में जो सीधा निकल जाएं, उसका नाम वेद व्यास होता है। जितने व्यास हुए हैं, वे वेद और पुराणतत्त्व के ज्ञाता हुए हैं।"

जिस व्यास की बात चल रही है उनके जन्म के विषय में कहा जाता है, "इस वर्तमान चतुर्युगी तीसरे युग 'द्वापर युग' में महर्षि पराशर के द्वारा वसु कन्या सत्यवती के गर्भ से भगवान् के कलावतार योगी राज व्यास जी का जन्म हुआ।"

उग्रश्रवा ने भी इस बात की पुष्टि की है कि व्यास का जन्म पराशर के द्वारा सत्यवती के गर्भ से यमुना के रेती में हुआ।

इसी वसु कन्या सत्यवती पर राजा शांतनु आसक्त हुए और सशर्त विवाह किया। सत्यवती के शांतनु से दो अन्य पुत्र हुए—चित्रांगद और विचित्रवीर्य। चित्रांगद युद्ध में मारा गया, विचित्रवीर्य क्षय रोग से चल बसा। विचित्रवीर्य की दो पत्नियाँ थीं—अम्बिका और अम्बालिका। भीष्म ने तो विवाह न करने का व्रत ले रखा था। अतः सत्यवती ने अपने पूर्व पुत्र व्यास को बुलवाया। माँ सत्यवती की आज्ञा से व्यास ने अम्बिका से धृतराष्ट्र और अम्बालिका से पांडु व दासी से विदुर उत्पन्न किया।

श्रीकृष्णद्वैपायन की घृताची अप्सरा से एक पुत्र हुआ शुकदेव। शुकदेव के ब्रह्मज्ञानी और संसार से विरक्त होने पर श्रीकृष्णद्वैपायन विचलित हो गए। उनके इस प्रसंग का ग्रंथों में मार्मिक वर्णन मिलता है—"इस प्रकार उन्हें सिद्धि का उत्क्रमण करते जान उनके पिता वेद व्यास स्नेहवश उनके पीछे-पीछे आने लगे। उन्होंने वह पर्वत देखा जिसके दो टुकड़े कर

शुकदेव आगे बढ़े थे। जब वहाँ रहने वाले ऋषियों से व्यास ने पुत्र का अलौकिक वर्णन सुना तो उन्होंने शुकदेव का नाम लेकर बड़े जोर से क्रंदन किया।"

पुत्र-शोक से विह्वल यही श्रीकृष्णद्वैपायन वेद व्यास के नाम से जाने जाने लगे। इन्होंने पंचम वेद महाभारत की रचना कर डाली।

महाभारत की रचना के समय व्यास जी ने ब्रह्मा से कहा, "भगवन् ! मैंने एक श्रेष्ठ काव्य की रचना की है। इसमें वैदिक और लौकिक सभी विषय हैं। इसमें वेदांग सहित उपनिषद्, वेदों का क्रिया-विस्तार, इतिहास, पुराण, भूत, भविष्यत् और वर्तमान के वृत्तांत, बुढ़ापा, मृत्यु, भय, व्याधि आदि के भाव-अभाव का निर्णय, आश्रम और वर्णों का धर्म, पुराणों का सार, तपस्या, ब्रह्मचर्य, पृथ्वी, चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और युगों का वर्णन किया है।

ब्रह्मा जी ने इसे लिखने के लिए उन्हें गणेश जी का स्मरण करने को कहा। गणेश जी ने कहा, "यदि मेरी कलम एक क्षण के लिए भी न रुके तो मैं काम करूँगा।" व्यास ने कहा, "ठीक है, किंतु आप बिना समझे न लिखिएगा।" व्यास जी ने कुछ श्लोक ऐसे बनाए जो ग्रंथ की गाँठ हैं। उन्होंने स्वयं कहा—आठ हजार आठ सौ श्लोकों का अर्थ मैं जानता हूँ, शुकदेव जानते हैं। संजय जानते हैं या नहीं, इसका कुछ निश्चय नहीं है। बिना विचार किए इन श्लोकों का अर्थ नहीं खुलता।

व्यास ऋषि के मंदिर रोहतांग (मूल उद्गम), कुंईर (आनी) में हैं। बिलासपुर में व्यास गुफा है।

शतद्रु के किनारे

नदियाँ सभ्यताएँ जनती हैं। विश्व की समस्त सभ्यताएँ नदियों के किनारे ही विकसित हुईं हैं। आज हम आपको उस सभ्यता की ओर ले चलते हैं जो नदी के मूल की सभ्यता है, जिसमें आज भी पौराणिकता जुड़ी हुई है। मैदानों की सभ्यता-संस्कृति खंडित होती जा रही है, परंतु मूल की सभ्यता को गिराने कोई विजेता नहीं पहुँच पाया। मूल की सभ्यता अधिक कोमल, अधिक सुकुमार रही है, जो कली समान होती है। इसमें पत्ती दर पत्ती कोमलता के साथ सुगंध रची-बसी रहती है और साथ ही बीज का भाव भी। पर्वत-कंदराओं की संस्कृति होने के कारण यह रहस्य के रोमांच से पूर्ण भी है।

शिमला से हम ऊपर की ओर चलते हैं। नारकंडा तक पहुँचते-पहुँचते अपने को हम एक दूसरे लोक में पाते हैं, जहाँ नगरों की भीड़ के स्थान पर लंबे साधक देवदारुओं के बीच शांत व स्निग्ध वातावरण है। मोटरकारों की चिल्ल-पों की जगह यहाँ प्रकृति का धीमा-धीमा मधुर संगीत उभरता है। नारकंडा से आगे बस धीरे-धीरे घुमावदार मोड़ों में जैसे फँसती-फँसती नीचे उतरती जाती है। यहाँ समग्र रूप से सतलुज की उपत्यकाओं के दर्शन होते हैं। चारों

ओर दिखता है पहाड़ों का विस्तार—एक ओर सेबों का गढ़, कोटगढ़ तो दूसरी ओर कुमारसेन। उस पार कुल्लू का बाहरी सिराज और ऊपर, बहुत ऊपर किन्नर कैलास ! चारों ओर ढलानदार हरे-भरे पहाड़, जिनकी उतराई सतलुज को छूती है। नारकंडा से सैंज तक पहुँचते-पहुँचते उतराई विश्राम लेती है और बस सतलुज की धारा के विपरीत रामपुर की ओर चलती है। सैंज से ही लूहरी होकर आनी को सड़क जाती है। लूहरी से आगे कच्ची सड़क है। रामपुर की ओर सड़क पक्की है। वास्तव में कच्ची सड़क ही बाहरी सिराज की विशेषता है। बाहरी सिराज में एक इंच भी पक्की सड़क नहीं है। रामपुर एक पुरानी रियासत है, जो सतलुज के बाएँ किनारे पर बसा है। रामपुर के पार ही है निरमंड, जो पौराणिक परशुराम से जुड़ा है। रामपुर से पीछे नग्गर या दत्तनगर से झूले द्वारा सतलुज पार कर भी पाँच किलोमीटर पैदल चल निरमंड पहुँचा जा सकता है। दत्तनगर में दत्तात्रेय जी का प्राचीन मंदिर है। यहीं नीरथ नामक स्थान में हजार वर्ष पुराना सूर्य मंदिर है, जो देश के गिने-चुने सूर्य मंदिरों में से एक है।

परशुराम का गाँव निरमंड पहाड़ी पर बसा एक बड़ा गाँव है, जिसके बराबर की आबादी वाले गाँव हिमाचल में कम ही मिलते हैं। इस गाँव में ठहरने की सुविधा के लिए लोक-निर्माण विभाग का विश्रामगृह है।

निरमंड, जिसे कुछ लोग श्रीपटल भी कहते हैं, नामकरण के अनुसार 'नरमुंड' या 'नृमुंड' से जोड़ा जाता है। लोकास्था है कि शिव सती को कंधे पर उठाए जब घूम रहे थे तो इस स्थान पर आकर सती का मुंड गिर गया, जिससे यह 'नृमुंड' कहलाया।

निरमंड व्यास की उपत्यकाओं का अंतिम छोर है और सतलुज का पहला। व्यास-सतलुज दोनों की संस्कृतियों का सम्मिश्रण होने के साथ-साथ यहाँ की संस्कृति का अपना वैशिष्ट्य है। यहाँ व्यास की सभ्यता पर सतलुज की सभ्यता हावी हो गई लगती है। यहाँ की संस्कृति ने रामपुर, कोटगढ़ की ओर देखा है। कुल्लू की संस्कृति जलोड़ी जोत से होकर आनी तक तो पहुँची है, किंतु यहाँ तक आते-आते मानसून की भाँति शुष्क हो गई है।

निरमंड से ऊपर श्रीखंड है। श्रीखंड या खंडेश्वर महादेव की यात्रा पर आषाढ़ मास में जाते हैं।

निरमंड को छोटी काशी कहा जाता है। इस नाम की यथार्थता का बोध तब हो जाता है जब हम यहाँ के प्राचीन मंदिरों की मूर्तियों की कलात्मकता, भित्तिचित्रों की उत्कृष्ट कला को देखते हैं।

सबसे ऊपर शिव मंदिर है। मंदिर के बाहर शिवलिंग व नंदी बैल हैं। समीप ही रखी सूर्य, भगवती आदि की उत्कृष्ट पाषाण मूर्तियाँ हैं। नीचे एक जलाशय भी है। भीतर शिवलिंग के स्थान पर एक प्राकृतिक पत्थर है जो इस मंदिर से जुड़ी लोककथा को पुष्ट करता है। लोकास्था है कि पहले यह स्थान वीरान था। झाड़-झंखाड़ों से भरपूर। गौएँ चरती थीं यहाँ। एक दुधारू गाय को जब दुहने बैठते तो थन खाली होते। गाय के स्वामी हैरान थे। आखिर एक दिन ग्वालों ने देख लिया कि गाय तो एक पत्थर के ऊपर दूध की धाराएँ

गिराती है। तब से इसे मानने लगे। अब भी गाँव में दुधारू पशु के दूध की पहली धार यहाँ चढ़ाई जाती है।

शिव मंदिर के नीचे चंडी मंदिर है। इस मंदिर की काले रंग की मूर्तियाँ बरबस ध्यान आकर्षित करती हैं। इसके साथ ही एक छोटा शिवालय भी है। शिवालय के नीचे ही है एक बावड़ी, जिसका उपयोग भुंडा उत्सव के समय कलश में पानी भरने के लिए किया जाता है।

गाँव के सिर पर है परशुराम का ऐतिहासिक मंदिर, जो बंद रहता है। यह भुंडा उत्सव के समय खुलता है।

इसके नीचे गाँव की दूसरी ओर, एक ओर अम्बिका माता का मंदिर है तो दूसरी ओर दक्षिणेश्वर महादेव का। अम्बिका माता के मंदिर के मुख्य द्वार तथा दक्षिणेश्वर महादेव के मंदिर के भीतरी काष्ठ द्वार पर की गई नक्काशी देखते ही बनती है।

गाँव के बीच में है सत्यनारायण या लक्ष्मीनारायण का मंदिर। इसमें भी उत्कृष्ट काष्ठकला के दर्शन होते हैं।

वर्तमान मंदिरों के अलावा ऐसा भी प्रतीत होता है कि कुछेक मंदिर गिर चुके हैं। परशुराम मंदिर के समीप 'अखाड़ा' नामक स्थान है। यहाँ छोटे-छोटे मंदिर हैं और एक शिवलिंग व अन्य मूर्तियाँ हैं। यहाँ भी एक शिवालय था। यहीं पाँच पांडवों की मूर्तियाँ भी हैं।

निरमंड से कुछ पीछे देवढाँक है जहाँ एक गुफा है। इस गुफा में जगह-जगह ऊपर से पानी रिसता रहता है। गुफा के सँकरे मार्ग में से गुजर जाने वाला भाग्यशाली समझा जाता है।

मंदिरों के इस गाँव में आकर ऐसा अनुभव होता है कि किसी पुरातन देवनगरी में आ गए हों, जहाँ मूर्तियों की दुनिया के पीछे शिव, अम्बिका, चंडी, परशुराम, पांडव, हिडिंबा का एक अज्ञात पौराणिक परिवेश है।

देव-संस्कृति

स्पिति के मूलवासी बों-पा लोग बों-छोस धर्मावलंबी माने लाते हैं। ये लोग घुमंतू थे। ताबो मठ से ऊपर वे शिलाएँ विद्यमान हैं, जहाँ स्वस्तिक चिह्न, सूर्य, घोड़े की आकृतियाँ बनी हुई हैं। किन्नौर में दीर्घकपाल लोग बसते थे, जो मृतकों को दबाते थे। इसी प्रकार लाहौल में लूङ-पई-छोस लोग थे जो वृक्ष-पूजा के साथ-साथ पत्थर-चट्टानों, जल-स्रोतों की पूजा किया करते थे। यह सब बौद्ध धर्म के इन क्षेत्रों में आगमन से पूर्व था।

इसी प्रकार कुल्लू में आर्य ऋषियों तथा बौद्ध स्तूपों की स्थापना से पूर्व कौन लोग

रहते होंगे। बौद्ध धर्म यहाँ से पूर्णतया समाप्त हो गया, अवशेष भी कुछ ही शेष हैं। किंतु वर्तमान देव परंपरा और पुरातन बौद्ध मठों के अस्तित्व से पहले भी यहाँ लोग रहते होंगे।

कोल

आर्यों का सर्वप्रथम जिस संघ से संघर्ष हुआ, वह कोल संघ था। ऋग्वेद में कहा है–

'उतं दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि। अवाहित्रंद्र शम्बरम् ॥' ऋ॰ 4 : 30 : 14 ॥

शंबर कोल से इतर या दूसरे संघ का राजा हो सकता है किंतु कोल संघ उस समय विद्यमान था। 'दास राज' शंबर ने आर्यों से संघर्ष किया। शंबर के सौ दुर्ग थे, जिन्हें विजय करने में आर्यों को चालीस वर्ष लगे।

ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा में इंद्र से प्रार्थना की गई : "हे देव ! जो लिंग को देवता मानते हैं, शिश्न देव हैं। उन्हें हमारी सीमा में प्रवेश न करने दो।"

लिंग पूजा शिव पूजा का एक पुरातन रूप है। शिव का महादेव रूप आदि देव का रहा है। कुल्लू के एक मूल उत्सव काहिका में लिंग पूजा की जाती है। लकड़ी का बना एक लिंग लोगों को दिखाया जाता है। मजाक में कइयों के हाथों में थमा दिया जाता है। ऐसा किन्नौर में भी किया जाता है।

आर्यों ने कोल समुदाय को काला, भद्दी नाक वाला और दास कहा है। इन्हें लिंग पूजक भी कहा गया। इतिहासकारों ने इन्हें पंचनद का पर्वतवासी माना है। इन्हें आधुनिक या वर्तमान कोली जाति से संबद्ध माना जाता है।

अतः कुल्लूवासी, जिन्हें 'कोलटा' भी कहा जाता है, कोली नहीं हैं। कोली जाति पूरे हिमाचल प्रदेश में पाई जाती है। निचले क्षेत्र में इस वर्ग को उतना निम्न नहीं माना जाता और ये विवाहादि उत्सवों में भोज के लिए पत्तल बनाते हैं। ऊपरी हिमाचल में इन्हें अपेक्षाकृत निम्न माना जाता है।

आर्यों ने इन्हें म्लेच्छ कहा है। इसी कारण ये लोग सवर्ण नहीं माने गए। इन्हें शिल्पकार माना जाता है। उत्तर प्रदेश के गढ़वाल, देहरादून तथा हिमाचल में पाई जाने वाली यह जाति बिखरी हुई है। इस समय यह समुदाय एक स्थान पर विद्यमान नहीं है। अतः कुल्लूवासी 'कोल' नहीं कहे जा सकते और न ही ये लोग यहाँ से विभिन्न स्थानों में गए। कोल लोग नृत्य, वादन, धातुशिल्प, मूर्तिकला, बाँस से वस्तुएँ बनाने में प्रवीण थे। इनका एक वर्ग 'मुंडा' वर्ग तथा बिहार के संथालों में देखा जा सकता है।

किरात

किरात भी आर्यों द्वारा म्लेच्छ माने गए। कोल-किरात शब्द इकट्ठे आते हैं। अतः कुछ इतिहासकारों का मानना है कि कोल जब बीहड़ वनों में जीवनयापन करते थे, किरातों ने हिमालय में प्रवेश किया और कोल लोगों को यहाँ से खदेड़ दिया। ये लोग असम से चलकर नेपाल, कुमाऊँ, काँगड़ा होते हुए लाहुल स्पिति तक गए। कोल नाटे कद के हृष्ट-पुष्ट, गालों

की उभरी हड्डियों वाले, ऊन जैसे बालों वाले और असुंदर कहे गए हैं, वहाँ किरात चपटी नाक, छोटी-छोटी आँखों वाले, दाढ़ी-मूँछविहीन, रोम-रहित और नाटे कद के कहे गए हैं।

नेपाल के पूर्वी भाग को किराती प्रदेश कहा गया है। महाभारत में इन्हें पर्वत कंदराओं के वासी माना गया है।

किरातों का उल्लेख अथर्ववेद, तांडव, ब्राह्मण, बृहत् संहिता से लेकर कालिदास तक हुआ है।

शिश्न पूजा यदि कोल समुदाय की देन है, तो किरातों ने इससे आगे बढ़कर बलि-प्रथा का प्रचलन किया। लिंग पूजा किरातों में प्रमुख रही, जो आज भी कुल्लू में विद्यमान है। किरातों के दो वर्ग माने गए हैं—भील किरात और राज्य किरात। भील और किरातों का उदाहरण किरातार्जुनीय है, जिसमें भील वेशधारी शिव का युद्ध अर्जुन से हुआ। लोकास्था के अनुसार यह युद्ध कुल्लू के पर्वत में हुआ।

लोकास्था तथा पर्वतों के नामकरण के अनुरूप कुल्लू तथा स्पिति के बीच के पर्वत को इंद्रजीत कहा जाता है। इसे देऊ टिब्बा भी कहते हैं। कुल्लू में ही जगतसुख के ऊपर हामटा है, जहाँ 'अर्जुन गुफा' है। ये नाम अर्जुन द्वारा शंकर से पाशुपतास्त्र प्राप्त करने की पौराणिक घटना का स्मरण कराते हैं। पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के उद्देश्य से जब अर्जुन इंद्रकील पर्वत के समीप पहुँचे तो उन्हें एक आवाज सुनाई दी, 'खड़े हो जाओ !' अर्जुन ने देखा, एक वृक्ष के नीचे एक तपस्वी बैठा है। तपस्वी ने अर्जुन को धनुप-बाण फेंकने के लिए कहा। इसके बाद किरात वेशधारी शंकर का अर्जुन से युद्ध हुआ। और अंत में पाशुपतास्त्र प्राप्त किया।

भील या किरात वेशधारी शिव यहाँ किरातों की उपस्थिति की पुष्टि करते हैं। जगतसुख के पास शुरू में शबरी का मंदिर है। अतः कुल्लूवासी किरात हैं, जो किन्नरों के समीप रहते थे।

किरात और किराती (कणाशी) का उदाहरण मलाणा में आज भी विद्यमान है।

नाग

किन्नर-किरातों के सजातीय नागों के अवशेष भी कुल्लू में विद्यमान हैं। नागपूजा के रूप में इस संस्कृति के चिह्न आज भी विद्यमान हैं। जलस्रोत के साथ नागपूजा जुड़ी हुई है। ऋग्वेद के इंद्र-वृत्र युद्ध में वृत्र को 'अहि' नाग माना गया है।

नाग भी किरात की भाँति एक अनार्य जाति थी, जिसे इंद्र से युद्ध करना पड़ा। यह जाति जलस्रोतों पर अपना अधिकार रखती थी। जलस्रोतों को अपने अधीन करने के लिए आर्यों ने इनसे युद्ध किया।

नाग जलस्रोतों के स्वामी, पशुधन के रक्षक माने गए हैं। कुल्लू में सभी नागों की उत्पत्ति जलस्रोतों में हुई।

पांडु पुत्र अर्जुन ने नागकन्या उलूपी से विवाह किया। भीम को नागों के विष से मुक्ति दिलाई। महाभारत के बाद जनमेजय ने सर्वयज्ञ कर नागों का संहार किया। जनमेजय

के शत्रु नाग तक्षक का राज्य यमुना के तट पर था। गोमती के तट पर, चंपावती, काशी आदि स्थानों में भी नागवंश के राजाओं का आधिपत्य रहा।

कुल्लू में मुख्यतः नाग जलस्रोतों के स्वामी हैं। लोकास्था के अनुसार यहाँ नागों की उत्पत्ति वासुकि नाग तथा स्थानीय कन्या के संसर्ग से हुई। अठारह नाग पैदा हुए और विभिन्न दिशाओं में गए। वासुकि नाग की एक अन्य पत्नी भोटंती का भी उल्लेख है, जिसके सात पुत्र हुए। छह उसने स्वयं मार दिए, सातवाँ बच निकला।

इस प्रकार नागपूजा कुल्लू में प्रभावी है, जो आदि पूजा है पुरातन काल से चली हुई। कुल्लू के अधिकांश मंदिरों के द्वारों पर नाग बनाए हुए हैं।

कुलूत

त्रिगर्त के बाद कुलूत एक महत्त्वपूर्ण जनपद था। यह व्यास नदी की ऊपरी घाटी में स्थित था। कश्मीर तथा त्रिगर्त के बाद कुलूत एक महत्त्वपूर्ण राज्य था, जिसके एक ओर औदुंबर था तो दूसरी ओर कुलिंद। कुलूत की एक पुरातन मुद्रा प्राप्त हुई है, जिस पर 'राजनः कुलूतस्य वीरयश' लिखा है। इस मुद्रा को लिपि के आधार पर पहली या दूसरी शताब्दी का माना जाता है।

ह्यूनसांग ने इसे जालंधर से 117 मील उत्तर-पूर्व की ओर बताया है। इसे पाँच सौ मील चौड़ा कहा है, जो उस समय रहा होगा। चीनी यात्री ने यहाँ घाटी के बीच एक स्तूप, बीस बौद्ध मठों का भी उल्लेख किया, जिसमें लगभग एक हजार भिक्षु रहा करते थे। लगभग पंद्रह अन्य मंदिर थे। कुछ गुफाएँ थीं, जिनमें ऋषि रहा करते थे।

कुलांत पीठ

कुलूत के कुलांत पीठ बनने तक आर्य संस्कृति यहाँ पूरी तरह हावी हो गई। एक नई देव-संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ, जिसमें देवी-देवता, ऋषि-मुनि सामने आए। अठारह नागों के मुकाबले अठारह नारायण बने। अनेक ऋषियों के आश्रम बने जो बाद में मंदिरों में बदले।

एक प्राचीन पांडुलिपि में कुल्लू को कुलांत पीठ कहा गया है। इसमें कुलांत पीठ का वर्णन यूँ आरंभ होता है—

ब्रह्मोवाच— *अथातः संप्रवक्ष्यामि कुलांतं पीठ मुत्रमम्।*
तत्पीठे वे स्मास्मृत्य मुनयो सिद्धिमागतः।।

ब्रह्मा जी बोले, अब मैं कुलांत पीठ जो सबसे उत्तम है, उसको कहूँगा। जिस पीठ का स्मरण करने मात्र से ही मुनि सिद्धि को प्राप्त हुए हैं।

इस माहात्म्य में व्यास, पार्वती नदी, वशिष्ठ, महादेव, शबरी देवी के स्मरण के साथ मणिकर्ण माहात्म्य लिखा गया है। कुलांत पीठ को जालंधर पीठ के ईशान्य में और हेमकूट (हामटा) के दक्षिण में स्थित बताया गया है।

इस आर्य संस्कृति के आगमन पर बौद्ध धर्म अवशेष बनकर रह गया। कई स्थानों पर बौद्ध मूर्तियाँ अनजाने में हिंदू ऋषियों की प्रतिमूर्तियाँ मान पूजी जाने लगीं। उदाहरणतः क्लाथ में कपिल मुनि के मंदिर में अब लोकीतेश्वर की मूर्ति है। निरमंड में परशुराम मंदिर में बुद्ध की दो मूर्तियाँ पुरातात्त्विक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मूर्तियाँ हैं।

श्री रघुनाथ का आगमन

कुल्लू में श्री रघुनाथ के आगमन से पूर्व राजा लोग नाथ या शैव संप्रदाय को मानते थे। नाथ ही राजाओं के गुरु थे। नाथों की मुद्राओं की पूजा होती थी। मुद्रा-दर्शन के बिना राजा भोजन ग्रहण नहीं करते थे।

सत्रहवीं शताब्दी में एकाएक परिवर्तन हुआ। राजा जगतसिंह (1637-1662) के समय अवध से श्री रघुनाथ का आगमन हुआ। राजा वैष्णव हुआ और राजमहल में सभी त्योहार मनाए जाने लगे। वन विहार, जल विहार, वसंत पंचमी और होली के साथ मनाया जाने वाला प्रसिद्ध कुल्लू दशहरा।

इसी दशहरे के साथ वादी के सभी देवता भी रघुनाथ के पास 'हाजरी' देने लगे। 'ठारा करड़' या अठारह करोड़ देवता की बात आगे आई और सभी देवता देव शिरोमणि रघुनाथ के पास नमन करने लगे।

कौन थे मूल देवता

कुल्लू में वर्तमान देव संस्कृति से पहले कौन देवता थे, यह बता पाना कठिन है। मंदिर के भीतर मूर्ति किसी अन्य देवता की है तो पूजा किसी और की होती है। समय के अनंतर देवी-देवताओं के अस्तित्व में व्यापक फेरबदल आया। कुछ देवता पृष्ठभूमि में गए तो नए-नए सामने आए।

किंतु मूल देवता 'सेमीगॉड्ज' हैं, जिन्हें कुछ यूरोपियनों द्वारा 'डेविल गॉड्ज' कहा गया। अर्थात् आधे दानव, आधे देवता। यह भी कहा जा सकता है कि पहले 'दानव' ही देवता थे। आज भी जब किसी मनुष्य के भीतर देवशक्ति प्रवेश करती है तो उससे पूछा जाता है : 'देऊ सा कि दानु सा' अर्थात् 'देवता हो या दानव ?' इन दानव-देवताओं का प्रभुत्व आरंभ में कुल्लू क्षेत्र में रहा, यह निश्चित है। इनके बाद या साथ-साथ नागों का अस्तित्व भी रहा।

अतः मलाणा का जमलू, लाहुल का घेपङ्, ढूंगरी की हिडिंबा पुरातन देव हैं। जमलू और घेपङ् (लाहुल) भाई-भाई माने जाते हैं। हिडिंबा इनकी बहन है। जबकि अन्य देवी भोटंती, जो वासुकि नाग की पत्नी थी और जिससे नाग पैदा हुए, भी पुरातन देवी है।

जमलू पहले समय में जमदग्नि नहीं, जमलू ही था। स्पिति की ओर इसे जमलङ् कहते हैं। जमलू के कुल्लू में कई मंदिर हैं। घेपङ्, जो नाग है, जमलू का भाई है। जमलू का मूल स्थान प्राचीन किरात संस्कृति का मूल मलाणा है। इसी प्रकार हिडिंबा को 'हिरमा' या 'हिरबणी' कहा जाता है, जो हिडिंबा बाद में बनी। हिरमा का ताँदी भाई माना जाता है जो

राक्षस था। लोक में महाभारत का हिडिंब उसका भाई नहीं है।

मलाणा का जमलङ् या जमलू आज भी दशहरा में अपनी हाजरी नहीं देता। हिडिंबा को राजपरिवार ने अपनी 'दादी' माना। अतः वह दशहरे में आती है। उसके बिना दशहरे का कोई कृत्य आरंभ नहीं हो सकता। राजा द्वारा हिडिंबा को विशेष आग्रह के साथ बुलाया जाता है। इसी प्रकार भेखली माता दशहरे के लिए कटोरी में टीका भेजती है।

जमलू जैसे बहुतेरे मूल देवता बाद में ऋषियों में परिवर्तित हुए। जमलू या जमलङ् जैसे जमदग्नि हुए, वैसे ही सकीरणी देऊ (बंजार) को पता नहीं कब शृंगी ऋषि कहा जाने लगा। उधर निरमंड की ओर परशुराम का आधिपत्य हुआ।

अठारह नागों के समक्ष अठारह नारायण आ खड़े हुए। व्यास, वशिष्ठ, कपिल आदि ऋषि आश्रम बने।

महादेव के रूप में लिंग पूजा भी यहाँ प्राचीन पूजा है। अधिकांश मंदिरों में 'पिंडी' का उल्लेख किया जाता है। मंदिरों में कोई मूर्ति न होकर 'पिंडी' मात्र होती है। पिंडी में देवता वास करता है। शिवलिंग को भी पिंडी कहा जाता है। शिवलिंग का पत्थर घड़ा हुआ होता है, किंतु पिंडी एक अनघड़ा प्राकृतिक पत्थर भी हो सकता है। यह लिंग पूजा का दूसरा रूप है।

कुल्लू के अधिकांश देवता पिंडी में वास करते हैं। पिंडीस्वरूप देवता कहीं ब्रह्मा हैं, कहीं विष्णु, कहीं शिव। उन्हें 'देऊ' कहा जाता है। ग्राम देव मंदिर में कौन-सा देवता स्थापित है, इससे ग्रामीणों को कोई सरोकार नहीं है, वह ग्राम देवता का देऊ है।

वर्तमान देव-संस्कृति

वर्तमान देव-व्यवस्था में शिव, ब्रह्मा-विष्णु, अनेकानेक ऋषि, नाग, सिद्ध, देवियाँ विद्यमान हैं। इन देवताओं की कहानियाँ आश्चर्यजनक और रोमांचक हैं। ये देवता पत्थर या धातु की मूर्तियाँ मात्र नहीं हैं अपितु ये अपनी प्रजा से बात करते हैं। रूठते हैं, मनते हैं। रुष्ट-प्रसन्न होते हैं। अपने जन्मदिवस मनाते हैं। एक-दूसरे से मिलते हैं। एक-दूसरे से इनका नाता-रिश्ता है।

देवता राजा है, ग्रामीण उसकी प्रजा है। वह स्वामी है, रक्षक है। पालक है, संहारक भी वही है। वही न्याय करता है, दंड देता है। विपत्तियों से बचाता है, राह दिखाता है। यहाँ देवता में धार्मिक तथा राजनीतिक दोनों शक्तियाँ निहित हैं।

कितने देवता ! कितने मंदिर !!

'धिक् भस्मरहित भालं, धिक् ग्रामंशिवालयम्'

(बिना भस्म के ललाट एवं शिवालय के बिना ग्राम धिक्कार योग्य हैं।)

इस धिक्कार से बचने का खूब उपाय हुआ है देवघाटी कुल्लू में। यहाँ कोई गाँव देवताविहीन नहीं है। कुछ ग्रामों में एक से अधिक देवता प्रतिष्ठित हैं। ग्राम देवताओं के सजे रथों, उनके स्थानों, भंडारों, निर्जनों में जोगनियों के बंद मंदिरों के अतिरिक्त यहाँ अन्य मंदिर भी हैं, जिनमें बजौरा, मणिकर्ण, दयार, दशाल, जगतसुख, नग्गर, मनाली, निरमंड आदि के मंदिर उल्लेखनीय हैं। इस धरा पर अनेक ऋषि—मनु, वशिष्ठ, पराशर, जमदग्नि, परशुराम, मार्कंडेय, शृंग, कपिल, दुर्वासा, नारद आदि; कई देवी-देवता—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, रघुनाथ, कृष्ण, दुर्गा, पांडव, हिडिंबा आदि के अतिरिक्त नाग, सिद्ध व जोगनियाँ हैं।

मुख्यतः यहाँ दो प्रकार के मंदिर हैं—एक ग्राम देवता के और दूसरे जिन्हें सार्वजनिक मंदिर कहा जा सकता है। ग्राम देवता के मंदिरों के भीतर कोई मूर्ति नहीं होती और न ही लोगों द्वारा विधिवत् प्रतिदिन पूजन ही होता है। देवता के मोहरे या तो पुजारी के घर में होते हैं या देवता के भंडार में। प्रतिदिन देवता का पुजारी इन मोहरों को या केवल धड़छ, घंटी आदि को ही धूप देता है। देवता का रथ विशेष अवसरों पर ही सजता है, जब वह मंदिर में आकर विराजता है। फिर यहाँ पर धार्मिक कृत्य होते हैं। नृत्य होते हैं। मंदिर के समीप ही भंडार में देवता की संपत्ति सुरक्षित रखी रहती है। इन धार्मिक कृत्यों के बाद पुनः मोहरों को उतारकर भंडार में या पुजारी के घर में रख दिया जाता है और पुनः इन मंदिरों में शांति छा जाती है। वास्तव में ये मंदिर देवता की कार्यवाही के समय एक सराय के रूप में प्रयुक्त होते हैं। ग्राम देवता के ऐसे कुछ मंदिरों, जैसे—वशिष्ठ, दयार, त्रिपुरा सुंदरी तथा संध्या गायत्री आदि में मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित हैं। ग्राम देवता की सारी व्यवस्था पुजारी, गूर तथा कारदार करते हैं। पुजारी के जिम्मे पूजा का कार्य रहता है। गूर देवता का वक्ता होता है। कारदार के हाथों देवता की सारी व्यवस्था रहती है। देवता के कारजों के समय वह पूरा इंतजाम करता है। कुछ देवताओं के पुरोहित भी होते हैं। गूर प्रायः एक ही खानदान से देवता की अनुकंपा पर निकलता है। पुजारी व पुरोहित एक ही वंश से होते हैं। कारदार को बदला जा सकता है। इनके अलावा देवता का बाजा होता है, जो मंगलाचरण के लिए प्रयुक्त होता है।

दूसरे प्रकार के मंदिर हैं जो समस्त भारत में पाए जाते हैं, जिनके भीतर मूर्तियाँ होती हैं, पुजारी होता है, नित्यप्रति पूजा-अर्चना होती है। श्रद्धालु आते हैं। इस तरह के उत्कृष्ट मंदिर भी यहाँ कम नहीं। यह मंदिर संस्कृति फैली है—बजौरा से लेकर व्यास के दोनों किनारों पर और विशेषकर बाएँ किनारे जगतसुख से नग्गर तक। जगतसुख का संध्या गायत्री देवी व शिव मंदिर, दशाल का शिव मंदिर, सजला का शिव मंदिर, नग्गर के शिव, गौरी-शंकर, मुरली मनोहर मंदिर अपनी बेजोड़ कला व प्राचीनता के कारण प्रसिद्ध हैं। इसी

तरह प्राचीन निरमंड में भी हैं। बजौरा का शिव मंदिर आठवीं शताब्दी के मध्य का बताया जाता है। जगतसुख का मिनिएचर शिव मंदिर सातवीं शताब्दी का। बजौरा से प्राप्त सूर्य मूर्ति आठवीं शताब्दी से भी पहले की बताई जाती है।

बजौरा में वर्ष 1980 में दरिया के समीप ही एक चौंका देने वाला शिवलिंग निकला। यह शिवलिंग छह फुट ऊँचा है और छह फुट के लगभग ही इसकी परिधि है। इसे निकालने का साहसिक कदम एक साधु ने उठाया, जो बजौरा में सड़क के किनारे रहता है। यद्यपि यह लिंग पहले भी दिखाई देता था। इसका ऊपरी भाग उभरा हुआ था, किंतु किसी व्यक्ति को इसे खोदकर लाने की हिम्मत न हुई। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ महाकालेश्वर का मंदिर था। साधु ने ग्रामीणों की मदद से यह कार्य पूरा किया और ट्रैक्टर में लाद इसे सड़क के किनारे पहुँचाया। अब यह सड़क के किनारे स्थापित कर दिया गया है। इसके साथ मंदिर का गोलाकार ऊपरी हिस्सा भी वहाँ से उठाकर लाया गया।

इसके अतिरिक्त भी यदा-कदा मंदिर व मूर्तियाँ निकलती रहती हैं। सन् 1977-78 में अनेक मूर्तियाँ प्रकट हुईं। इन नई (यद्यपि पुरानी) निकली मूर्तियों में हैं—गाँव सजला, चौदह मील, पंद्रह मील, पिरड़ी, जिया आदि में धरती के गर्भ से उपजी मूर्तियाँ।

व्यास के बाएँ किनारे पर जगतसुख और नग्गर के बीच ही है गाँव सजला। सड़क पर मजदूर कार्यरत थे और ऊपर की ओर निकल आया बावड़ी सहित मंदिर। ये घटना 5 जुलाई, 1978 की है। बावड़ीनुमा मंदिर के सामने शेषशैया पर विष्णु लेटे हैं, आमने-सामने दीवारों पर ब्रह्मा-महेश हैं। यद्यपि मूर्तियाँ वास्तुकला की दृष्टि से उत्कृष्ट नहीं हैं तथापि गाँव के बुजुर्गों ने अपनी यादगार में इस बावड़ी के बारे में कभी नहीं सुना।

14 मील, जो पतली कुह्ल से आगे है, में श्री देवीसिंह सुपुत्र श्री टशीराम के घर गंगा की मूर्ति आश्चर्यजनक रूप से प्रकट हुई। श्री टशीराम के अनुसार घर की पक्की दीवार में बार-बार दरार पड़ने पर तांत्रिक की सहायता से मूर्ति का पता चला। रेत और पानी से निकली यह मूर्ति मगर पर आसीन गंगा की है। अब यहाँ एक नया मंदिर बनाकर इसे प्रतिष्ठित कर दिया गया है।

इसी तरह पिरड़ी में मंदिर के पास खुदाई के समय दो पाषाण मूर्तियाँ निकलीं। एक देवी की और दूसरी समाधिस्थ पुरुष की। ऐसा कहा जाता है, इस स्थान पर राणाओं के महल थे। इसी तरह ज़िया गाँव में भी राणाओं के महलों का कभी निर्माण आरंभ हुआ था। वहाँ भी शिव मंदिर व एक अन्य भव्य मंदिर के अवशेष मिले हैं। पंद्रह मील पर भी सड़क के किनारे शिव मूर्ति निकली, जिसमें शिवलिंग एक पत्थर के अंदर फिट है।

एक विष्णु की मूर्ति नग्गर में शिव मंदिर के पास निकली। इसी तरह से शमशी के पास तथा नग्गर में पुराने राजाओं व सती हुई रानियों की यादगार में पत्थर की बनी मूर्तियाँ ढेरों के हिसाब से पड़ी हैं, जो कुछ धरती पर हैं, कुछ नीचे दब गई हैं।

ग्राम देवताओं के साथ-साथ यहाँ अन्य सार्वजनिक मंदिर भी अनेक रहे हैं। जो मंदिर अभी भी विद्यमान हैं, वे दूरी व रास्ते की दुर्गमता के कारण उतने प्रसिद्ध नहीं हो पाए।

पहले यहाँ सार्वजनिक मंदिर दिए जा रहे हैं, जो पुरातात्त्विक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

ये मंदिर एक वैभवशाली राज्य के प्रतीक हैं। ये मंदिर हैं—विश्वेश्वर महादेव (बजौरा), शिव मंदिर (जगतसुख), नग्गर के मंदिर, वशिष्ठ मंदिर, शिव मंदिर (दशाल) आदि।

इसके आगे ग्राम देवता हैं, जो यहाँ की संस्कृति को विशिष्टता प्रदान करते हैं।

नीली व्यास का देश

मौन मनस्वी हिमालय। चिंतकों, विचारकों का आश्रयस्थल। महान् ऋषियों, योगियों ने मैदानों की नगरीय गहमागहमी से भाग जिसकी शीतल कंदराओं में परमार्थ चिंतन किया, वह हिमालय। साधकों, तपस्वियों, मनस्वियों की स्थली, जिसने ज्ञान-विज्ञान, अध्यात्म की धाराएँ प्रवाहित की हैं, जो मैदानों तक पहुँचते-पहुँचते दरिया हो गईं। ऐसी ही एक धारा फूटी है 3976 मीटर की ऊँचाई पर रोहतांग दर्रे से। कुल्लू और लाहुल घाटी के बीच का सेतु है रोहतांग दर्रा, जो मनाली से लगभग 15 किलोमीटर की दूरी पर है।

रोहतांग, जहाँ पहुँचने पर हम अपने को सबसे ऊँचा पाते हैं, वास्तव में आसपास की चोटियों से अपेक्षाकृत नीचा है। तभी यह गम्य है। आसपास के पर्वतों से नीचा, फिर भी हमारे लिए सबसे ऊँचा। दोनों ओर ऊँचाई और बीच में छोटा-सा मैदान, जैसे पर्वतों ने स्वयं ही हटकर किसी ऋषि को रास्ता दे दिया है। मैदान के अंतिम छोर से दिखते हैं लाहुल स्पिति के बर्फीले पहाड़। आगे सीधी उतराई जहाँ नीचे चंद्रा नदी कैलांग की ओर बह रही है। रोहतांग पर आकर लगता है कि यहाँ प्राणी मात्र का संसार शेष हो गया है। परंतु यह अंत नहीं है। इससे परे भी नदियों का देश है, चंद्रा और भागा का देश, चंद्रभागा का देश। दूसरी ओर मानसून नहीं पहुँचता, अतः रोहतांग से इस ओर नीचाइयों पर ऊँचे-ऊँचे पेड़ हैं, फल-फूल हैं। दूसरी ओर कोई पेड़-पौधा नहीं। बस, नंगे पहाड़ हैं जो सिर्फ बर्फ पहनते हैं। दर्रे पर कुल्लू की ओर ठीक उस जगह, जहाँ से उतराई आरंभ होती है, व्यास कुंड है। यहीं से व्यास की एक नन्ही धारा प्रस्फुटित होती है जो आगे उछलती-कूदती हुई वयस्क हो जाती है।

व्यास का उद्गम ! एक नन्ही धारा। जैसे एक कोंपल फूटी। एक कली विकसी। एक अबोध शिशु ने आँखें बंद किए ही पहली किलकारी मारी।

यहाँ लगता है कि व्यास--ऋषि और नदी—एक हो गए हैं। व्यास भी मैदानों में जाकर दरिया हो गए थे। व्यास विस्तार का नाम है। ऋषि और नदी, दोनों मूल से निकलने पर बूँद होते हैं, जो फैलते-फैलते सागर हो जाते हैं। रोहतांग के दूसरी ओर सोलंग नाले के ऊपर व्यास ऋषि का आश्रम है जिसे 'व्यास रिखी' कहा जाता है। सोलंग नाला, जहाँ अब स्कीइंग आदि बर्फ के खेल होते हैं, व्यास में रोहतांग के आधार पर पलचांग में आकर मिलता है। कुछ लोग व्यास रिखी से आने वाले सोलंग नाले को वास्तविक व्यास मानते हैं।

परंतु अधिक महत्ता रोहतांग के व्यास कुंड की ही है। यह भ्रांति व्यास ऋषि व नदी, दोनों के दरियाई व्यक्तित्व के कारण ही है। व्यास कहाँ से निकली, यह बुजुर्गों ने खोजा है, पता नहीं कब ! जहाँ वे भटकन के बाद सुगमता से पहुँच पाए, वहीं। फिर भी अब तक कोई अन्य स्रोत नहीं खोज पाया। जैसे रोहतांग दर्रा खोजा है। कोई और सुगम मार्ग नहीं मिल पाया, अतः आज तक यह स्वीकार्य है कि रोहतांग ही सर्वाधिक सुगम प्रवेश है लाहौल घाटी का।

रोहतांग पर ही एक ओर है शैला-सौर ! शैला-सौर अर्थात् शीतल सरोवर। इस सरोवर में श्रद्धालु बीस भादों को स्नान करते हैं।

व्यास की धारा के साथ नीचे उतरते हुए आता है मढ़ी। यहाँ अब लाहुल घाटी की ओर जाने वाली बसें भोजनादि के लिए रुकती हैं। बसों के बंद हो जाने पर पैदल यात्री यहीं आकर रात बिताते हैं। केलांग की ओर खोखसर से पैदल चले यात्री यहीं आकर रुकते हैं। इस ओर मनाली के बाद मढ़ी ही पड़ाव आता है। कहीं बीच में रुक जाएँ तो वहीं बर्फ हो जाते हैं। खोखसर से चढ़ने वाले लोग मढ़ी तक रुक नहीं सकते। चलते ही रहना पड़ता है। रुकने का दूसरा नाम है मौत। दर्रे को निश्चित समय से पूर्व ही लाँघा जा सकता है, नहीं तो तूफानी हवाएँ जानलेवा हो जाती हैं। लगभग जून से नवंबर तक बस सेवा के बाद अप्रैल से जून तक तथा अनुकूल मौसम के अनुसार दिसंबर-जनवरी तक पैदल यात्री चलते रहते हैं। ये अधिकतर लाहुलवासी साहसी लोग होते हैं या कर्मचारी या मजदूर।

हिडिंब की चीत्कार

मढ़ी के सामने, आसपास पर्वतों पर हर ऋतु में बर्फ देखी जा सकती है। रोहतांग पर अगस्त तक बर्फ के ढेर जमे रहते हैं। गर्मियों में चंबा-लाहुल की ओर से आने वाले गद्दी अपनी भेड़-बकरियाँ चराते चलते रहते हैं। सितंबर में मढ़ी के नीचे देवदारुओं के बीच की धरती रंग-बिरंगे फूलों से सज जाती है। अक्तूबर तक आरंभ होने वाली पतझड़ पर रंग बदलते पत्ते और ही दृश्य उत्पन्न कर देते हैं।

मढ़ी के सामने ही है एक भयंकर नाला, जिसमें गंभीर ध्वनि से बर्फानी पानी गिरता है। इसे 'सागू-छो' या 'सागू नाला' कहते हैं। सागू एक राक्षस का नाम है। यह भी जनास्था है कि भीम ने हिडिंब को मनाली से उठाकर यहाँ ला पटका जहाँ नाले में उसकी मृत्यु हो गई। आज भी राक्षस की अंतिम चीत्कार गहरे नाले से सुनाई पड़ती है। लोकास्था में घटोत्कच का एक भाई ताँदी भी था। ताँदी केलांग से पीछे चंद्रा व भागा के संगम-स्थल का नाम है।

भीम-हिडिंबा की विहारस्थली

हिडिंब मारा गया। भीम ने हिडिंबा को अंगीकार किया। महाभारत का वह महत्त्वपूर्ण प्रसंग ! राजपुरुष का नरभक्षी राक्षस जाति से पाणिग्रहण। प्रेमी भीम को लेकर हिडिंबा सुरम्य पर्वतों, मनोहर सरोवरों, गुफाओं में विहार करती है। दोनों के प्रेम का अंकुर घटोत्कच

के रूप में फूटता है। घटोत्कच, अपने मामा हिडिंब के विपरीत सात्त्विक वृत्ति का है। वह द्रौपदी सहित पांडवों व ब्राह्मणों को पीठ पर उठा बदरिकाश्रम ले जाते समय कैलाश की ओर ले उड़ता है। रथयूथपतियों का अधिपति वीर घटोत्कच, जिसके पास रीछ के चमड़े से मढ़ा विशाल रथ था, पांडवों की ओर से लड़ता हुआ महारथी कर्ण के प्राण संकट में डाल देता है। कुल्लू के लोकमानस में वीर घटोत्कच का नाम बड़े गर्व से लिया जाता है।

मनाली में ढूँगरी नामक स्थान पर ही हिडिंबा का मंदिर है। महाभारत के समय की राक्षसी, जिसे पांडवों ने मनुष्यों में स्थान दिया, यहाँ देवी के रूप में पूजी जाती है। पैगोडा शैली के मंदिर के दरवाजे पर की गई नक्काशी काष्ठ कला का बेहतर नमूना है। द्वार पर दुर्गा, शिव, विष्णु, साधक आदि के चित्र खुदे हैं। टाँकरी में एक लेख है। मंदिर सोलहवीं शताब्दी के मध्य राजबहादुर सिंह (1546-1569) ने बनवाया। कुल्लू के पालवंशीय राजा हिडिंबा को अपनी दादी कहते हैं, क्योंकि देवी के प्रसाद से ही उन्हें कुल्लू का राज्य मिला है।

मंदिर के भीतर एक बड़ा पत्थर है। इसके पास ही एक छोटी चट्टान के नीचे देवी के चरण हैं। पुजारी का विश्वास है कि देवी इसी चट्टान के नीचे रहती थी। यद्यपि बड़े पत्थर के पास एक मूर्ति भी रखी है, किंतु पूजने वाले पाँव ही पूजते हैं। पाँव ही तो पूजनीय होते हैं। पूजने हैं तो पाँव ही पूजिए।

आसपास घना जंगल है। यद्यपि भीम का हिडिंबा से साक्षात्कार का स्थान महाभारत के वर्णन के अनुसार मनाली प्रतीत नहीं होता, तथापि यह स्पष्ट है कि भीम और हिडिंबा विहार के लिए ऐसे ही मनोहारी स्थानों में आए होंगे। बंजार का एक देवता हिडिंबा का पुत्र माना जाता है।

मनु का नौकायन : ऊँचाई की खोज

ढूँगरी के ऊपर मनालसू नाले के पार है मनाली गाँव। यहीं पर मनु महाराज का मंदिर है। जल-प्लावन के बढ़े हुए पानी में लड़खड़ाती हुई मनु की नौका जहाँ टकराई, वह मनाली है। एक पल आँखें मूँद सोचता हूँ, सारी सृष्टि जलमय हो गई है। पानी ऊपर चढ़ रहा है। व्यास की धरती में चढ़ता हुआ पानी यदि कहीं ठहरेगा, तो वह स्थान मनाली गाँव ही होगा।

सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु, सातवें मनवंतर में सप्तऋषियों के साथ बैठे ऊपर चढ़ रहे थे। नौका सींग वाले मत्स्य के साथ बँधी है। अन्न, औषधियों, बीजों का संग्रह सँभाले वे ऊँचाई की खोज में यहाँ किनारे आ लगे।

वशिष्ठ, भृगु

व्यास के उस पार, मनु के मंदिर के ठीक सामने है वशिष्ठ आश्रम। जैसे अभी-अभी पाशमुक्त हो वशिष्ठ समाधिस्थ हुए हों। लकड़ी के बने मंदिर के भीतर महर्षि की काले रंग की विशाल मूर्ति है। साथ ही है गर्म जलस्रोत। इसी गर्म जल को कुछ नीचे ले जाकर हिमाचल पर्यटन विकास निगम ने स्नानगृह बनाए हैं। वशिष्ठ मंदिर के साथ श्रीराम मंदिर भी है।

वशिष्ठ आश्रम के ऊपर चोटी पर है भृगु तुंग। वशिष्ठ के ऊपर जोत में इस ओर के पशु बरसात में चराने के लिए छोड़े जाते हैं। पशु व घोड़े आदि इस मौसम में खूब तगड़े हो जाते हैं। इन चरागाहों से आगे ही है भृगु तुंग। इस स्थान पर एक सुंदर जलाशय है। श्रद्धालु यहाँ बीस भादों को स्नान करने जाते हैं।

मनाली का बायाँ किनारा आरंभ होते ही बौद्ध संस्कृति के भी दर्शन होने लगते हैं। व्यास के पत्थरों पर, पर्वतों की चट्टानों पर बौद्ध मंत्र खुदे हैं। मनाली में अब एक बौद्ध मंदिर भी बन गया है।

जगतसुख

व्यास के बाईं ओर ही नीचे लगभग पाँच किलोमीटर की दूरी पर आता है जगतसुख। जगतसुख कुल्लू के राजाओं की प्रारंभिक राजधानी रहा। यहीं पर मायापुरी के निर्वासित राजकुमार विहंगमणिपाल को जयधार में राजा घोषित करवाया गया था। यहीं एक बुढ़िया को राजकुमार ने पीठ पर उठा धुआंगणु नाला पार करवाया था। वह बुढ़िया और कोई नहीं, देवी हिडिंबा ही थी जिसने राजकुमार को इसके बदले ऊँचे पत्थर पर खड़ा कर दूर दृष्टि की सीमा तक का राज्य आशीष में दिया। राजकुमार ने कुल्लू को स्पिति के अत्याचारी शासकों तथा आपस में झगड़ते छोटे-छोटे राणाओं के चंगुल से मुक्त कराया।

जगतसुख में संध्या देवी का काष्ठ मंदिर है और साथ में ही है शिखर शैली का एक छोटा-सा शिव मंदिर, जो नवीं या दसवीं शताब्दी का है।

हामटा : इंद्रकील

जगतसुख से ऊपर है हामटा। यहाँ भी एक झील है। महर्षि जमदग्नि किन्नर कैलाश की यात्रा के बाद यहीं आकर रुके थे। वे एक टोकरी में देवताओं की प्रतिमाएँ उठाए हुए थे। यहीं से वे मलाणा गए। चंद्रखणी पर्वत पर आँधी आई और ऋषि के सिर से देवताओं की टोकरी गिर गई, जिससे देवता विभिन्न स्थानों में जा गिरे और प्रतिष्ठित हुए।

इंद्रकील, कुल्लू और स्पिति के बीच का पर्वत है, जिसे 'देउ टिब्बा' भी कहते हैं। इस पर्वत के विषय में भी अनेक विश्वास प्रचलित हैं। कहा जाता है कि जितना इसके समीप जाने का प्रयत्न करो, उतना ही यह दूर होता जाता है। कोई आज तक इस पर्वत तक पहुँच नहीं पाया। हामटा के पास ही है अर्जुन गुफा। इंद्रकील और अर्जुन गुफा पुनः भीम के अनुज समर्थ अर्जुन का स्मरण दिलाते हैं। शंकर से पाशुपतास्त्र प्राप्त करने के उद्देश्य से अर्जुन जब इंद्रकील की ओर प्रस्थान करते हैं तब उन्हें एक आवाज सुनाई देती है : 'खड़े हो जाओ !' इधर-उधर देखने पर उन्हें पता चलता है कि एक वृक्ष के नीचे कोई तपस्वी बैठा हुआ है। वे उसके आदेश पर रुक जाते हैं। तपस्वी कहता है : "तुम धनुष-बाण, कवच और तलवार धारण किए हुए कौन हो ? यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ? यहाँ शस्त्रों का कुछ काम नहीं। यहाँ शांत स्वभाव तपस्वी रहते हैं। युद्ध होता नहीं, इसलिए तुम अपना धनुष फेंक दो।"

तपस्वी वेशधारी इंद्र से भेंट के बाद हुआ अर्जुन-किरात समागम। अर्जुन-किरात युद्ध ! युद्ध में शिथिल होकर जब उनके समस्त शस्त्र निरर्थक हो गए, बाहुबल जवाब दे गया, शिव-आराधना कर पाया कि किरात ही शिव हैं। आज भी यहाँ पार्वती शबरी के रूप में मंदिर में प्रतिष्ठित हैं।

नग्गर

जगतसुख के बाद आता है नग्गर ! यह भी कुल्लू के राजाओं की राजधानी वर्षों तक रहा। यहीं पर गुफा में रहता था वैष्णव बाबा किशनदास पौहारी, जिसने सत्रहवीं शताब्दी के मध्य राजा जगतसिंह तथा संपूर्ण प्रजा को वैष्णव बना दिया। अवध से रघुनाथ जी की मूर्ति लाई गई और सारा राज्य रघुनाथ जी को सौंप राजा छड़ीबरदार (मुख्य सेवक) हुआ।

यहाँ ऊपर ठाह्वा में मुरली मनोहर का मंदिर है और नीचे हैं शिव, गौरी-शंकर, त्रिपुरा सुंदरी आदि के कई मंदिर।

नग्गर का पुराना किला अब पर्यटन विकास निगम का आवासगृह है। किले के भीतर लिखा है कि यह राजा सिद्धसिंह (1500-1546) ने बनवाया। भीतर एक छोटा-सा मंदिर है, जिसमें मूर्ति के स्थान पर एक बड़ा चपटा-सा पत्थर है। किंवदंती है कि यह बड़ा पत्थर जिसे 'जगती पौट' कहा जाता है, मनाली के पास नेहरू कुंड से लाया गया और लाया भी मधुमक्खी रूपधारी देवताओं ने।

रोरिक आर्ट गैलरी

किले से कुछ दूर है 'रोरिक आर्ट गैलरी'। किले व गैलरी के प्रांगण से ऊपर रोहतांग के पर्वत तथा नीचे मंडी तक की पहाड़ियाँ नजर आती हैं। बीच में व्यास, आसपास ऊँचे-नीचे पहाड़ों की शृंखलाएँ। संध्या के समय सूर्य के उतरने पर ऐसा दृश्य उपस्थित हो जाता है जो साँस खींच लेता है। ऐसे ही चित्ताहारी दृश्य हैं गैलरी के भीतर टँगे चित्रों में। चित्रों में चमकते रंग धूप व चाँदनी का सजीव दृश्य प्रस्तुत करते हैं।

टूटा तारा, दूर देश का आगत, कल्कि अवतार, दाता बुद्ध, त्रिरत्न आदि प्रसिद्ध चित्रों के निर्माता महान् चित्रकार, खोजी, पुरातत्त्ववेत्ता, वैज्ञानिक, कवि, लेखक, दार्शनिक, शिक्षाविद् निकोलस के। रोरिक 9 अक्तूबर, 1874 को रूस के सैंट पीटर्सबर्ग में जन्मे और 13 सितंबर, 1947 को कुल्लू के नगर में समाधिस्थ हुए। कहाँ रूस ! कहाँ कुल्लू ! वादी के अदृश्य तंतुओं ने किस प्रकार उन्हें खींचा, आश्चर्यजनक है। वे हिमालय में इंस्टीट्यूट स्थापित करना चाहते थे। इस उद्देश्य से 1928 में उन्होंने मंडी के राजा से हाल-एस्टेट नग्गर खरीदा। सात हजार से अधिक चित्रों के निर्माता रोरिक गोबी रेगिस्तान, चीन, तिब्बत तथा मध्य एशिया के बीहड़ों में भटकने के बाद हिमालय के इस कोने में शांति पा सके।

सदा ही चिंतन-मनन में लीन शांत शैल, गगन की ओर उठे हुए वृद्ध देवदारु। बीच में गुनगुनाती व्यास, जिसने उद्विग्न वशिष्ठ को पाशमुक्त किया, वह अर्जिकीया आदि धारा है, जिसका गायन वेदों ने किया।

सार्वजनिक मंदिर

विश्वेश्वर महादेव, बजौरा

बजौरा एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इस गाँव का पुराना नाम हाट था। 'हाट' एक व्यापारिक केंद्र या बाजार या पड़ाव का प्रतीक भी है। व्यापारी इस रास्ते आकर विश्राम करते होंगे। गाँव में हाटकेश्वरी देवी का मंदिर भी है। हाटकेश्वरी देवी को महर्षि पराशर की पत्नी माना जाता है। महर्षि पराशर का स्थान कमांद में है, जो बजौरा से कुछ आगे मोहल के ऊपर पहाड़ी पर है। बजौरा में एक ओर तो मंडी-मनाली राष्ट्रीय मार्ग, जो पुराने समय से कुल्लू के लिए रूट रहा है, दूसरी ओर मंडी-कटौला होते हुए कुल्लू को जोड़ता मार्ग भी यहाँ निकलता है। यद्यपि आज के समय यह सड़क मुख्य मार्ग नहीं बन पाई तथापि पुराने समय में यह भी एक महत्त्वपूर्ण मार्ग था, जो कुल्लू को मंडी के भीतरी भाग से जोड़ता है, जहाँ की संस्कृति एक है। जिला कुल्लू की सीमा आज भी बजौरा के साथ-झीड़ी से आरंभ होती है। उससे पीछे जिला मंडी है। प्रसिद्ध यात्री मूरक्राफ्ट ने भी यहाँ गुजरते हुए मंदिर का उल्लेख किया है। यह एक व्यापार मार्ग था।

पुराने समय में यह महत्त्वपूर्ण स्थान था। कुल्लू के नग्गर, ठाह्वा, मनाली, मकड़ाह्र, जगतसुख की भांति यहाँ भी पुराने मंदिरों के अवशेष मिलते हैं। वर्ष 1980 में यहाँ व्यास के किनारे बजौरा मंडी से कुछ ऊपर लगभग छह फुट ऊँचा और इतनी ही परिधि का शिवलिंग मिला। यह लिंग पहले भी दबा हुआ था और दिखाई देता था, किंतु किसी व्यक्ति को इसे उखाड़ने की हिम्मत नहीं हुई। बजौरा के आसपास व्यास के ही दाईं ओर समतल जगह है, जहाँ दरिया का पानी आ जाता है। इस कारण कभी कोई मंदिर यहाँ दबा होगा। बजौरा में ही सड़क के किनारे रहने वाले एक साधु ने साहस कर इस शिवलिंग को उठवाया और चुंगी के सामने सड़क के साथ स्थापित किया, जहाँ यह साधु पहले रहता था। उस स्थान पर शिखर शैली के मंदिर का एक ऊपरी हिस्सा भी मिला है। कहा जाता है, यहाँ कालेश्वर मंदिर था।

बजौरा का विश्वेश्वर महादेव मंदिर उत्तरी भारत के उत्कृष्ट मंदिरों में से एक है। यह कुल्लू से पंद्रह किलोमीटर व्यास के दाईं ओर 1097 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। मुख्य सड़क से भी मंदिर का कुछ भाग दिखाई पड़ता है।

मंदिर में मंडप नहीं है, बल्कि सीधा प्रवेश-द्वार है। पूर्वाभिमुख मंदिर में शिवलिंग स्थापित है।

परवर्ती गुप्तकालीन कला के प्रतीक इस मंदिर के द्वार के दोनों ओर गंगा-यमुना की आकर्षक आकृतियाँ हैं, जिनके साथ अप्सराएँ भी हैं। मंदिर का बाहरी भाग आयताकार पाषाण पट्टियों से बना है, जिसके ऊपर आमलक है। मुख्य मंडपों में ब्रह्मा-विष्णु-महेश त्रिमूर्ति मुख्य हैं। मंदिर का बीच का भाग अधिक चौड़ा लगता है।

गर्भगृह में शिवलिंग के अतिरिक्त तीन महत्त्वपूर्ण मूर्तियाँ हैं। अष्टभुजा दुर्गा, विष्णु तथा गणेश की उत्कृष्ट प्रतिमाएँ बरबस ध्यान आकर्षित करती हैं। अष्टभुजा देवी को शुंभ, निशुंभ और महिषासुर का वध करते दिखाया गया है। हाथों में खड्ग, गदा, त्रिशूल, फरसा आदि हैं। दाएँ पैर से महिषासुर को दबाया हुआ है, बाएँ हाथ में त्रिशूल है जो महिषासुर की छाती पर है। एक हाथ में उसके केश पकड़ रखे हैं। विष्णु की प्रतिमा भी पूरी तरह अलंकृत है।

प्रांगण के बाहर एक विष्णु प्रतिमा लकड़ियों में कसी पड़ी है। इसे राज्य संग्रहालय शिमला के लिए ले जाया जाना था, जो स्थानीय लोगों की आपत्ति के कारण नहीं ले जाई जा सकी। आज भी वह प्रतिमा बँधी पड़ी है।

इस मंदिर को आठवीं शताब्दी में निर्मित माना जाता है। जहाँ प्रसिद्ध रूसी चित्रकार रोरिक ने इसकी वास्तुकला की भूरि-भूरि प्रशंसा की है, वहाँ डॉ० वोगल ने इसे प्राचीन बताया है। डॉ० हरमन गोट्ज ने मंदिर की मूर्तियों को सातवीं शती की मूर्तियों की अनुकृति बताया जो ग्यारहवीं शताब्दी में बनाई गई। मंदिर के विषय में डॉ० वोगल ने कोई तिथि निर्धारित नहीं की, इसे केवल पुराना बताया। जे०एन० बनर्जी ने इसे सातवीं-आठवीं शताब्दी का माना, जब डॉ० कृष्णदेव ने नौवीं शताब्दी का। हरमन गोट्ज ने इसे कन्नौज के यशोवर्धन के समय अर्थात् आठवीं शताब्दी के मध्य में निर्मित बताया।

महत्त्वपूर्ण मूर्तियाँ

विश्वेश्वर महादेव मंदिर के पास मिली बैकुंठ मूर्ति महत्त्वपूर्ण है। भूरे पत्थर की बनी इस मूर्ति के चौड़े कंधे गुप्तकालीन कला के प्रतीक हैं। ह्यूनसांग ने सातवीं शताब्दी में जब कुल्लू का भ्रमण किया तो इस राजधानी बजौरा के आसपास ही रही होगी। इस स्थान पर बौद्ध मठ भी हो सकता है जिसका ह्यूनसांग ने उल्लेख किया है। कुल्लू से मिला कलात्मक लोटा, जिसमें राजकुमार सिद्धार्थ की शोभा यात्रा दिखाई गई है, इंडियन म्यूजिक कलकत्ता में है।

बैकुंठ मूर्ति में (जो आधी रह गई है) चौड़े कंधे, सिर पर मुकुट, कंधों पर फैले बाल, हार, मेखला, कमर में कटार, यज्ञोपवीत, कानों में कुंडल; इसे सातवीं शताब्दी का सिद्ध कहते हैं।

दूसरी महत्त्वपूर्ण मूर्ति सूर्य की है। यह भी भूरे पत्थर की बनी हुई है। इसे आठवीं शताब्दी का माना जाता है और यह अब राज्य संग्रहालय शिमला में है। गुप्तकाल तथा परवर्ती गुप्तकाल में सूर्य मंदिर बनते रहे हैं। सूर्य पूजा वैदिक काल से चली आ रही है। बजौरा में भी कभी सूर्य मंदिर रहा होगा। बजौरा में प्राप्त सूर्य प्रतिमा का सिर का पहनावा गुप्तकालीन मूर्तियों की भाँति है। सूर्य एक लंबा गाउन तथा बूट पहने हैं। बाईं ओर लंबी तलवार लटक रही है जो इस मूर्ति के प्राचीन होने की द्योतक है।

शिव मंदिर, जगतसुख

शिव मंदिर जगतसुख लघु आकार का शिखर शैली का मंदिर है, किंतु पुरातात्त्विक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। लगभग साढ़े पाँच मीटर ऊँचे इस शिवालय में आठवीं शताब्दी के आरंभ का शिल्प देखा जा सकता है। कलात्मक पत्थर, संतुलित आकार, शिखर, आमलक उत्कृष्ट शिल्प की दृष्टि से दर्शनीय हैं।

इस मंदिर के आसपास भी कलात्मक पट्टिकाएँ और पत्थर पड़े हैं। स्तंभ उत्कीर्ण किए गए पत्थर आदि शिखर मंदिर में अवशेष हैं। एक पत्थर पर महिषासुरमर्दिनी की मूर्ति बनी है। इन शिलाखंडों को देखकर लगता है कि इस मंदिर की मरम्मत होती रही है।

डॉ० वी०सी० ओहरी के अनुसार, प्रतिहारों के समय ऐसे मिनि मंदिर बनाने की परंपरा ही है। इससे भी छोटे आकार का एक मंदिर नग्गर में है। ये छोटे मंदिर एक बड़ा मंदिर बनाने के पहले मॉडल के रूप में बनाए गए।

मंदिर के गर्भगृह के आगे छोटा-सा मंडप है। मंडप के स्तंभ गोल हैं और इन पर चौकोर पत्थर रखे हैं जो पाषाण कलाकृतिपूर्ण हैं। स्तंभों के ऊपर पहले शिव प्रतिमा है, ऊपर त्र्यंबक या भद्रमुख। शिखर पर आमलक है। आमलक से नीचे पत्थरों की पट्टिकाएँ बड़े करीने से रखी गई हैं।

गर्भगृह के पीछे तथा दोनों ओर प्रकोष्ठों में ये प्रतिमाएँ हैं। एक ओर के प्रकोष्ठ में चतुर्भुज ब्रह्मा तो दूसरी ओर विष्णु मूर्तियाँ हैं। पिछली ओर के प्रकोष्ठ की प्रतिमा टूट चुकी है।

गर्भगृह के भीतर शिवलिंग है। शिवलिंग के साथ त्रिमुखी शिव-पार्वती की आकर्षक प्रतिमाएँ हैं। एक प्रतिमा महिषासुरमर्दिनी की है। महिषासुरमर्दिनी को महिष के धड़ वाले असुर को मारते हुए दिखाया गया है। गर्भगृह में कुछ और प्रतिमाएँ भी पड़ी हैं।

कुछ वर्ष पूर्व मंदिर को, ऊपर से मलबा आने से क्षति आई थी। यह मंदिर आठवीं शताब्दी का माना जाता है।

नग्गर के मंदिर

जगतसुख के बाद नग्गर कुल्लू के राजाओं की राजधानी कई वर्षों तक रहा। नग्गर में पुराना किला भी है, जो राजा सिद्ध सिंह (1500-1546) ने बनवाया था। लगभग छठी शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ तक नग्गर राजधानी रहा।

नग्गर में मुरलीधर मंदिर, गौरीशंकर मंदिर, त्रिपुरा सुंदरी आदि के महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन मंदिर हैं।

मुरलीधर मंदिर

नग्गर के ऊपर ठाह्वा में मुरलीधर मंदिर है। मंदिर का पुनर्निर्माण हुआ है। मूल मंदिर आठवीं शताब्दी का माना जाता है। वर्तमान मंदिर शिखर शैली का है। जिसमें अलंकृत प्रवेश-द्वार, भद्रमुख, शिखर पर आमलक आकर्षक वास्तुकला का उदाहरण है। शीर्ष भाग में हिमपात की सुरक्षा के लिए छत्र बना है।

मंदिर मूल रूप में शिव को समर्पित रहा है, क्योंकि नग्गर में ही नीचे शिव मंदिर है। इस समय यह मुरलीधर मंदिर कहलाता है क्योंकि मुख्य मूर्ति राधा-कृष्ण की है। सत्रहवीं शताब्दी में जब राजा जगतसिंह (1637-1662) के समय वैष्णव धर्म का प्रादुर्भाव हुआ, अवध से श्री रघुनाथ की मूर्ति कुल्लू लाई गई, उसी समय यह मुख्य वैष्णव मंदिर बना होगा। वैष्णव बाबा किशनदास पौहारी, जिन्होंने राजा को वैष्णव बनाया, नग्गर की एक गुफा में ही रहते थे।

मिनिएचर शिव मंदिर

यह मंदिर नग्गर के पास खेतों में स्थित है। छोटा-सा यह शिव मंदिर, जो अब गिरने की स्थिति में है, सातवीं शताब्दी का बताया जाता है। इसी मंदिर के पास गणेश मंदिर है जो इस समय जमीन में धँस गया है। यह शिव मंदिर जगतसुख के शिव मंदिर से भी छोटा है और एक मॉडल के रूप में निर्मित है।

गौरीशंकर मंदिर

गौरीशंकर मंदिर, जो नग्गर में नीचे की ओर स्थित है, एक पुरातन मंदिर रहा है। ठाह्वा के मंदिर की भाँति इसका भी पुनर्निर्माण होता रहा। शिखर शैली में इस मंदिर के प्रवेश-द्वार के स्तंभों पर आकर्षक नक्काशी हुई है। मंदिर के शिखर, बाहर के प्रकोष्ठों में विशेष अलंकरण नहीं हुआ है। भीतर गौरीशंकर की प्रतिमा है। गर्भगृह के बाहर नंदी स्थापित है।

लक्ष्मीनारायण मंदिर

गौरीशंकर मंदिर के समीप लक्ष्मीनारायण मंदिर है, जो यहाँ वैष्णव प्रभाव होने के फलस्वरूप निर्मित हुआ है। शिखर शैली के इस मंदिर में भी नक्काशी हुई है। यह मंदिर सत्रहवीं शताब्दी के बाद का हो सकता है, जब यहाँ राजा वैष्णव हो गए थे।

जगती पौट

नग्गर किले के भीतर एक छोटे मंदिर में बड़ी शिला रखी गई है। इस शिला को 'जगती पौट' कहते हैं। लोकविश्वास है कि यह जगती पौट मनाली (नेहरू कुंड के पास) से मधुमक्खी रूपधारी देवताओं द्वारा उठाकर लाया गया।

वशिष्ठ मंदिर, वशिष्ठ

मनाली में व्यास नदी के पार मनाली से तीन किलोमीटर दूर वशिष्ठ ऋषि का मंदिर है। वशिष्ठ एक छोटा-सा गाँव है जो मनाली-लेह मार्ग के ऊपर की ओर स्थित है। गाँव से पहले गर्म पानी के चश्मे हैं, जहाँ मणिकर्ण की तरह उबलता पानी तो नहीं है, किंतु गर्म अवश्य है। गाँव के बीच वशिष्ठ का मंदिर है।

यह मंदिर पहाड़ी शैली में लकड़ी व पत्थर की चिनाई से निर्मित है। मंदिर की कुछ वर्ष पहले मरम्मत हुई है। अतः पुरातन कुछ शेष नहीं है, तथापि जीर्णोद्धार उसी शैली में किया गया है। मंदिर के बाहर बरामदा है। छोटे प्रवेश-द्वार के भीतर ऋषि की काले पत्थर की प्रतिमा स्थापित है। प्रवेश-द्वार पर सुंदर नक्काशी है।

मुख्य मूर्ति पगड़ी पहने और यज्ञोपवीत धारण किए हुए है। आँखें चाँदी से बनाई गई हैं।

वशिष्ठ मंदिर के साथ शिखर शैली का पाषाण मंदिर है, जिसमें सीता-राम-लक्ष्मण की प्रतिमाएँ हैं।

वशिष्ठ मंदिर के साथ भी गर्म पानी का जलाशय है, जिसमें लोग स्नान करते हैं।

शिव मंदिर, दशाल

नग्गर और जगतसुख के बीच सड़क के ऊपर शिखर शैली का गौरीशंकर मंदिर दशाल गाँव में स्थित है।

मंदिर के गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित है। प्रवेश-द्वार पर बजौरा में शिव मंदिर की भाँति गंगा-यमुना की प्रतिमाएँ बनी हैं। मंदिर की काष्ठकला दर्शनीय है। शिव-पार्वती, नंदी की प्रतिमाएँ, गरुड़ासीन विष्णु, कार्तिकेय आदि की पाषाण कलाकृतियाँ आकर्षक हैं। नृत्य करते गंधर्व और अप्सराएँ भी चित्रित की गई हैं।

यह मंदिर नौवीं-दसवीं शताब्दी का माना जाता है। पेनलाप चेटवुड ने इसकी नक्काशी को देखते हुए इसे कम से कम नौवीं या दसवीं शताब्दी का माना है। मंदिर के मुख्य द्वार में द्वारपालों की प्रतिमाएँ इस मंदिर को कुल्लू के प्राचीन मंदिरों में एक सिद्ध करती हैं।

शिव मंदिर, दलास

दलास में शिव मंदिर है जिसे जोगेश्वर महादेव कहा जाता है। मंदिर काष्ठ वास्तुकला का अच्छा उदाहरण है। पहाड़ी शैली में इसे देवदार के शहतीरों तथा बीच में पत्थर की चिनाई से बनाया गया है। आयताकार आधार पर बने इस मंदिर का छोटा-सा प्रवेश-द्वार है। छत्र पर सतोर है और ऊपर छतरीनुमा छत्र। इस छत्र को लकड़ी के तख्तों से छाया गया है। इस तरह मंदिर की तीन छतें हैं। सबसे ऊपर ताम्र कलश भी है। मंदिर के मुख्य द्वार, स्तंभ, सभी पर अच्छी नक्काशी हुई है।

नाग उत्पत्ति : पौराणिक आख्यान

सर्प यज्ञ

एक बार राजा जनमेजय ने अपने मंत्रियों से अपने पिता की मृत्यु के बारे में जानना चाहा। मंत्रियों ने जनमेजय के पिता राजा परीक्षित के धर्मात्मा, उदार और प्रजापालक होने का उल्लेख करते हुए उनके राज्य और शासन की प्रशंसा की। उन्हें बड़ा बुद्धिमान, धर्मात्मा, जितेंद्रिय और नीति-निपुण बताया। राजा परीक्षित ने साठ वर्ष शासन किया और परलोक सिधार गए।

जनमेजय ने पुनः पूछा कि पिता की मृत्यु का कारण तो बताया नहीं गया ? यह तो इनके प्रजापालक की ही बात की गई है जो कि सभी पूर्वज होते आए हैं।

पुनः ऐसा प्रश्न किए जाने पर मंत्रियों ने परीक्षित की सर्प के मारने से मृत्यु और सर्पदंश उतारने की क्षमता रखने वाले ब्राह्मण की कथा कुछ यूँ सुनाई—

राजा परीक्षित पांडु की तरह शिकार-प्रेमी थे। एक बार वे शिकार खेलने गए और एक हरिण को बाण मारकर उसका पीछा करने लगे। वे दूर तक वन में निकल गए किंतु हरिण नहीं मिल पाया। साठ वर्ष के होने के कारण वे थक गए। उन्होंने एक मुनि को देखा। वे मुनि मौनी थे। राजा ने उनसे पूछा किंतु मुनि ने कोई उत्तर नहीं दिया। भूखे और थके होने के कारण राजा क्रोधित हो उठे और वास्तविकता न जानकर उन्होंने एक मरा हुआ साँप उनके कंधे पर डाल दिया। मुनि शांत भाव से बैठे रहे और राजा राजधानी लौट आए।

मुनि का नाम शमीक था और उनके पुत्र शृंगी बड़े तेजस्वी थे। जब शृंगी ने सुना कि उनके पिता का अपमान किया गया है तो उन्होंने राजा को शाप दे दिया : "जिसने मेरे निरपराध्न पिता के कंधे पर मरा हुआ साँप डाल दिया, उस दुष्ट को तक्षक नाग क्रोध करके अपने विष से सात दिन के भीतर ही जला देगा।" शाप देकर शृंगी ने अपने पिता से यह बात कही। शमीक मुनि को यह अच्छा नहीं लगा और उन्होंने राजा के पास अपना शिष्य गौमुख यह समाचार देने भेजा। इस समाचार से राजा परीक्षित सावधान हो गए।

सात दिन बीतने पर तक्षक नाग राजा को डसने चल दिया। रास्ते में उसे काश्यप नाम का ब्राह्मण मिला। तक्षक नाग ने ब्राह्मण से पूछताछ की तो ब्राह्मण ने बताया कि वह राजा परीक्षित के यहाँ जा रहा है। राजा को साँप डसेगा और मैं उन्हें जीवित कर दूँगा। तक्षक ने अपना परिचय दिया और कहा कि उसका काटा जीवित नहीं रह सकता। उसने अपनी शक्ति दिखाने के लिए एक वृक्ष को डस लिया। वह वृक्ष उसी क्षण जलकर राख हो गया। काश्यप ब्राह्मण ने अपनी विद्या से उस वृक्ष को तुरंत हरा-भरा कर दिया।

ब्राह्मण की विद्या से प्रभावित होकर तक्षक ने ब्राह्मण को प्रलोभन दिए। जितना धन तुम राजा से लोगे, उतना मुझसे ले लो और लौट जाओ। ब्राह्मण मान गया और तक्षक से मुँहमाँगा धन लेकर वापस हो गया।

तक्षक छल से आया और महल में बैठे राजा परीक्षित को डसकर मार डाला।

अपने पिता की मृत्यु का कारण सुन राजा जनमेजय दुखी हो गए। उन्होंने कहा कि यदि तक्षक उस ब्राह्मण को आने देता तो मेरे पिता जीवित हो जाते। शाप भी पूरा होता और ब्राह्मण की विद्या से पुनः जीवन भी मिल जाता। तक्षक ने ऐसा भी नहीं होने दिया। मेरे पिता की मृत्यु में एक तक्षक ही कारण है। इस तरह शोक और क्रोध में भरकर राजा जनमेजय ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने की ठानी।

राजा जनमेजय ने अपने पुरोहित और ऋत्विजों को बुलाकर परामर्श किया और क्रूर सर्प को धधकती आग में होमने का उपाय पूछा। उन्होंने राजा को सर्प-यज्ञ करने का परामर्श दिया।

सर्प-यज्ञ की तैयारी हो गई। सामग्री का संग्रह हुआ। भूमि माप ली गई, जहाँ वह यज्ञ मंडप बनना था। यज्ञ मंडप मापते समय सूत ने कहा कि इस यज्ञ-स्थली को देखकर आभास होता है कि किसी ब्राह्मण के कारण यह यज्ञ पूरा नहीं होगा। राजा ने बिना सूचना के यज्ञ-मंडप में किसी मनुष्य का प्रवेश बंद करवा दिया।

सर्प-यज्ञ आरंभ हुआ। ऋत्विज मंत्रोच्चारण के साथ हवन करने लगे। यज्ञ के समाचार से सभी सर्प काँप उठे। सभी सर्प तड़पते हुए आग में गिरने लगे। छोटे, लंबे, मोटे-पतले सभी आकार-प्रकार के सर्प यज्ञ की अग्नि में भस्म हो रहे थे।

इस यज्ञ में च्यवनवंशी चंडभार्गव होता था। कौत्स, उद्‌गाता, जैमिनी, ब्रह्मा तथा शार्गरव और पिंगल अध्वर्यु थे। शिष्यों सहित व्यास, उद्धालक आदि ऋषि भी वहाँ उपस्थित थे। सर्पों के अग्नि में जलने से चारों ओर दुर्गंध फैल गई। यज्ञ की खबर सुनकर तक्षक घबराकर इंद्र के पास छिप गया।

इस यज्ञ में बहुत-से सर्प मर गए तो वासुकि को बड़ा दुःख हुआ। अपनी घबराहट की बात वासुकि ने अपनी बहन जरत्कारू से की। वासुकि की बहन जरत्कारू का विवाह ऋषि जरत्कारू से हुआ था। ब्रह्मा जी के कथनानुसार इनका पुत्र आस्तीक ही इस सर्प-यज्ञ को बंद कर सकता था। ऋषि-पत्नी जरत्कारू ने नागों की रक्षा के लिए आस्तीक को प्रेरित किया। आस्तीक ने वासुकि को आश्वस्त किया कि वह इस यज्ञ से उनको बचाएगा।

जरत्कारू ऋषि, वासुकि की बहन जरत्कारू, इनके विवाह और उनके पुत्र आस्तीक का उपाध्यान अलग से है।

वासुकि नाग से बात करने के बाद आस्तीक यज्ञशाला की ओर चल दिए। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि यज्ञशाला तेजस्वी ऋषियों और सभासदों से भरी हुई है। भीतर जाने की विनती सुनकर जनमेजय ने उन्हें यज्ञशाला में प्रवेश की अनुमति दे दी।

यज्ञशाला में आकर आस्तीक ने सभी उपस्थित जनों की स्तुति की। उसकी स्तुति से सभी प्रसन्न हुए। राजा ने प्रसन्न हो उस बालक को वर देने की बात कही। वर देने से पहले राजा ने तक्षक नाग को यज्ञ-कुंड में बुलाने की बात कही। उसने राजा इंद्र सहित तक्षक को लाने को कहा। होता ने मंत्र पढ़ा। उसी समय इंद्र सहित तक्षक आकाश में दिखाई दिए। यज्ञ को देख इंद्र तक्षक को छोड़कर भाग गए। तक्षक जब अग्निकुंड के पास

आने लगा, ब्राह्मणों ने आस्तीक को वर देने के लिए कहा। जनमेजय ने आस्तीक से वर माँगने को कहा। आस्तीक ने वर माँगा, "राजन् ! मुझे यही वर दीजिए कि यह यज्ञ बंद हो जाए और इसमें गिरते हुए सर्प बच जाएँ।"

इस पर राजा ने इस वर के बदले कुछ भी ले लेने को कहा, किंतु आस्तीक ने स्वीकार नहीं किया। इंद्र के हाथों से छूटते ही जब तक्षक गिरने को हुआ था, आस्तीक ने उसे तीन बार 'ठहर जा' कहकर आकाश में रोक लिया था।

सभासदों के बार-बार कहने पर राजा जनमेजय ने यज्ञ रोक दिया। सर्प-यज्ञ बंद होने से नाग वासुकि बहुत प्रसन्न हुए और आस्तीक से वर माँगने को कहा। आस्तीक ने कहा कि जो इस प्रसंग का स्मरण करे, पाठ करे उसे विषधर सर्पों से भय न हो।

विषधर सर्पों का नाश तो मनुष्य ही करता रहता है, सर्पदंश के उपाय भी काश्यप ब्राह्मण-की तरह कई लोग जानते हैं। मंत्र द्वारा साँप को पकड़ लेना, चले हुए साँप को जड़वत् बना देना, विष उतारना जैसे प्रयोग करने का आज कुछ लोग दावा करते हैं।

नागों की उत्पत्ति

हमारे पुराण साहित्य में सर्पों की जन्मकथा का वृत्तांत मिलता है। दक्ष प्रजापति के दो कन्याएँ थीं—कद्रू और विनता। दोनों का विवाह कश्यप ऋषि से हुआ। कश्यप ऋषि से कद्रू ने एक हजार समान तेजस्वी पुत्र माँगे और विनता ने तेज, शरीर और बल-पराक्रम में कद्रू के पुत्रों से श्रेष्ठ केवल दो पुत्र।

बात कुछ विचित्र है कि समय आने पर कद्रू ने एक हजार और विनता ने दो अंडे दिए। दासियों ने इन्हें गर्म पात्रों में रख दिया। पाँच सौ वर्ष पूरे होने पर कद्रू के हजार पुत्र निकल आए। विनता के अंडे नहीं फूटे। विनता ने जल्दबाजी में एक अंडा अपने आप ही फोड़ डाला। अतः शिशु का आधा भाग कच्चा रह गया। शिशु ने माता को शाप दिया कि तू अपनी सौत की पाँच सौ वर्ष तक दासी रहेगी। वह बालक सूर्य का सारथी अरुण बना।

उच्चैःश्रवा नामक घोड़े को आकाशमार्ग में जाते देख दोनों बहनों की शर्त लग गई। कद्रू ने कहा, घोड़ा तो श्वेत है, पूँछ काली है। विनता ने कहा, पूरा घोड़ा श्वेत है। कद्रू के नागपुत्र माता की बात रखने के लिए घोड़े की पूँछ से लिपट गए और पूँछ काली दिखने लगी। फलतः विनता दासी बन गई।

समय पूरा होने पर अंडा फोड़ महातेजस्वी गरुड़ बाहर निकले। जन्मते ही वे आकाश में बहुत ऊपर उड़ गए। गरुड़ ने माता के दासी होने के कारण सर्पों को अपने ऊपर बिठाकर कई लोकों की सैर करवाई और उनसे माता के दासत्व की मुक्ति माँगी। सर्पों ने गरुड़ से अमृत लाने की शर्त रखी।

गरुड़ अनेक बाधाओं को पार कर अमृत ले आए। इसी यात्रा के बीच उन्होंने विष्णु का वाहन होने का वर भी प्राप्त कर लिया। गरुड़ ने अमृत कुशा पर रखकर सर्पों को स्नान करने के लिए कहा। जब सर्प स्नान करने लगे तो इंद्र कलश लेकर स्वर्ग भाग गए। अमृत कलश गायब होने से सर्पों ने अपनी जीभ से कुशा को चाटा, जिससे उनकी जीभ के दो

टुकड़े हो गए। अमृत के स्पर्श के कारण कुश पवित्र माना जाने लगा। गरुड़ की माता दासत्व से मुक्त हुई।

सर्प और उनकी माता कुटिल प्रकृति के थे। इन्ही सर्पों में शेषनाग भी थे, जिन्होंने कद्रू और अन्य भाइयों का साथ छोड़कर कठिन तपस्या की। अपनी इंद्रियों को वश में करके उन्होंने गंधमादन, बदरिकाश्रम, गोकर्ण और हिमालय में एकांतवास किया। ब्रह्मा जी ने प्रकट होकर वर माँगने को कहा तो शेषनाग ने अपनी बुद्धि धर्म, तपस्या और शांति में लगी रहने का वर माँगा। तब ब्रह्मा ने उन्हें प्रजा के हित के लिए पूरी पृथ्वी अपने सिर पर धारण करने को कहा।

इन भाइयों में एक नाग वासुकि था। नागों के नाश के शाप (शाप माता कद्रू ने दिया था) से घबरा वे वासुकि की अध्यक्षता में सलाह करने लगे। ब्रह्मा जी ने नागवंश के नाश से बचने का उपाय बताया कि जरत्कारू ऋषि का पुत्र आस्तीक ही सर्पों को नाश से बचा पाएगा।

तक्षक नाग द्वारा अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए राजा जनमेजय ने सर्प यज्ञ किया, जिसमें सभी सर्प जलने लगे। जब यज्ञ-कुंड में तक्षक के गिरने की बारी आई तो आस्तीक ने उसे बचा लिया।

इस व्याख्यान में विषधर सर्पों के छल और उनके नाश से बचने का दृष्टांत है।

कुल्लू में भी नाग-उत्पत्ति की कथाएँ हैं, जिसमें घाटी के नागों की उत्पत्ति अपने ढंग से बखानी गई है।

कुल्लू के अधिकांश काष्ठ मंदिरों में प्रवेश-द्वार के स्तंभों पर सर्प उकेरे गए हैं। वे सर्प एक-एक या दो-दो आपस में गुँथे हुए हैं। इस आधार पर कुछ पुरातत्त्ववेत्ताओं तथा समाजशास्त्रियों ने कुल्लू में सर्प-पूजा को प्रमुख बताया है।

कुल्लू में नाग-उत्पत्ति कथा

जिला कुल्लू के सौर नामक गाँव में वासुकि नाग रहता था। गाँव में एक सुंदर सरोवर था, जिसके नीचे पाताल में उसने अपना घर बनाया हुआ था। सरोवर में नाग विहार करता था और कभी मनुष्य रूप धरकर पृथ्वी पर विचरण करता था। उस गाँव की एक कन्या व्यास के बाएँ किनारे गुशाल में ब्याही हुई थी। गुशाल में उसके घर एक अद्वितीय कन्या पैदा हुई। एक बार वह अपनी ननिहाल आई हुई थी। वासुकि नाग उसे देखकर मोहित हो गया। वह उसे वश में करने के उपाय खोजने लगा।

नाग ने अपनी माया से सरोवर के बीच एक कमल खिला दिया। कमल का सुंदर फूल देखते ही बनता था। जब कन्या पानी भरने आई तो उस फूल पर मोहित हो गई। वह फूल तोड़ने नीचे पानी में उतरी। किंतु जितना वह आगे जाती, फूल उतना ही और आगे सरक जाता। जब वह सरोवर के बीच में पहुँची, वासुकि नाग झट उसे खींचकर पाताल में अपने महल में ले गया।

कन्या को अपने महल में रखकर नाग ने कई प्रलोभन दिए। फिर भी वह उदास रहती। नाग दिन में उसकी आँखों में एक सलाई फेर देता, जिससे उसे कुछ दिखाई नहीं

देता। रात को दूसरी सलाई फेरने से कन्या को दिखाई देने लगता। काफी समय बीत गया। कन्या गर्भवती हो गई।

वासुकि नाग मनुष्य-वेश में गाँव की सैर करने जाता था। एक दिन कन्या के हाथ सलाई लग गई। उसने सलाई आँखों में डाली तो उसे दिखाई देने लगा। उसकी स्मृति भी लौट आई। अतः वह एकदम तालाब से बाहर आ गई।

कथा के दूसरे रूपांतर के अनुसार कन्या को अपने गाँव गुशाल में मेले की याद आई। इस जातर या मेले में सभी बंधु-बांधव मिलते थे। नाग ने बताया कि जब मैं तुम्हारी जंघा पर सिर रखकर सोऊँगा, तुम मेरी पगड़ी जरा-सी हटाना, तुम्हें बंधु-बांधव सहित मेला यहीं से दिखेगा। किंतु पूरी पगड़ी कभी न हटाना। जब नाग सो गया तो कन्या ने पगड़ी हटाई। उसे पूरी जातर, बंधु-बांधव दिखाई देने लगे। धीरे-धीरे उसने पूरा मेला देखने के लिए पूरी पगड़ी हटा दी। नाग जाग गया और नाराज हो उसने कन्या को महल से बाहर निकाल दिया।

जब कन्या तालाब से बाहर निकली तो सौर गाँव में उसे देख लोग डरने लगे। उसे मरा हुआ समझ भूत या चुड़ैल समझ डर के मारे भागने लगे। आखिर माँ ने उसे पहचान लिया और अपने घर ले गई।

माँ ने उसके गर्भ से पैदा होने वाले नागों के लिए पहले ही एक घड़ा बनवाकर रख लिया। समय आने पर उस कन्या ने अठारह नागों को जन्म दिया। कन्या ने नागों को मिट्टी के घड़े या भांदल में रख दिया और गुप्त रूप से लालन-पालन करने लगी।

कन्या उस भांदल में प्रतिदिन धड़छ में आग जला धूप देती थी। एक बार संयोगवश कन्या बाहर गई थी तो माँ ने सोचा, क्यों न आज वही पात्र को धूप दे दे। लड़की भी तो रोज देती है। माँ धड़छ में धूप और आग डाल भीतर गई। जब उसने पात्र का मुँह खोला तो वहाँ से जीभ लपलपाते सर्प बाहर निकलने लगे। वह डर गई और डर के मारे धड़छ हाथ से छूट गया और आग धूप सहित घड़े में गिर गई। आग और धुआँ होने से नाग घबरा गए और घड़े के मुँह से हड़बड़ी में निकल भागे। किसी का शरीर जल गया, कोई काला हो गया। एक नाग पीला हो गया। एक नाग का मुँह पात्र के बिल में फँस गया जिससे वह चपटा हो गया। वह धूम्बल नाग कहलाया। इसी तरह काला काली नाग, पीला पिऊंली नाग बना। ये सभी भिन्न-भिन्न दिशाओं में भागकर भिन्न-भिन्न स्थानों में जा बसे।

कहा जाता है, जिस पात्र (भांदल) में ये नाग पैदा हुए, वह आज भी कुल्लू के गोशाल गाँव में रखा हुआ है। लोग इसकी पूजा करते हैं।

इस कथा का दूसरा रूपांतर इस प्रकार है–

कथा है कि देवता वासु या वासुकि नाग की नागिन जब प्रसूता होनी थी, तो वह एक कच्चे घड़े में छिप गई। घड़ा अभी कच्चा था जिसे पकाने के लिए कुम्हार ने उसे गर्म किया। घड़ा गर्म होने पर नागिन ने सात बच्चे दिए जो इधर-उधर भाग गए। घड़ा गर्म होने से नाग जब बदहवासी में भागे तो किसी न किसी रूप में क्षतिग्रस्त हुए। जो घड़े से निकल भागे, वे निम्न सात थे–

1. सिरगल या सरगुल, जो सबसे पहले भागा, उसका सिर घड़े में फँस गया। ये नाग

जगतसुख चला गया।

2. फाल नाग इसके बाद निकला जो फाल नाले के समीप बस गया।
3. गोशाल नाग गोशाल में बसा और अंधा हो गया।
4. पिऊंली नाग धुएँ से पीला हो गया और बटाहड़ में जा बसा।
5. काली नाग काला हो गया और रायसन चला गया।
6. सागू नाग राल्हा नाले के पास सागू में बसा।
7. धूम्बल नाग भी धुएँ से निकला और हलाण की ओर गया।

वासुकि नाग की दूसरी पत्नी भोटंती देवी थी, जिससे सात पुत्र और हुए। छह पुत्र तो देवी ने स्वयं मार दिए। सातवाँ कियाणी में भागा। कियाणी में उसका मंदिर बना और वह कियाणी नाग कहलाया।

वासुकि का एक भाई 'तुड़नाग' है।

कुल्लू में अठारह नाग और अठारह नारायण माने जाते हैं।

अन्य कथाएँ

नाग उत्पत्ति की इस मुख्य कथा के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न नागों की उत्पत्ति के बारे में अन्य धारणाएँ भी हैं। जैसे नाग द्वारा गायों का चोरी से दूध पीना और अंततः पता चलना। यह कथा कुई नाग, करथ नाग आदि के बारे में है। कहीं नाग ने स्वयं स्वप्न में अपनी उपस्थिति बताई और मंदिर बनाने को कहा। ऐसा छमाहू नाग, बालू नाग, पाणै नाग की उत्पत्ति में हुआ।

इन कथाओं के अनुसार देवताओं के मंदिर अलग स्थानों में हैं। जैसे कथा के अनुसार वासुकि नाग का मंदिर सौर गाँव में होना चाहिए, किंतु वासुकि नाग मंदिर थाटी बीड़ में है। गोशाल में गौतम ऋषि और कंचन नाग है। धूम्बल नाग भी गोशाल में है।

बड़ी या बूढ़ी नागण का मंदिर शरेऊल सर में है। इसे भी सभी नागों (अठारह) की माता माना जाता है। यहाँ भी नागिन की सहेली ने जब नागों को देखा तो गर्म राख उन पर फेंक दी, जिससे नाग विभिन्न दिशाओं में भाग खड़े हुए।

कुछ नागों का विवरण

छमाहू नाग

एक ब्राह्मण जब नहाने गया तो वहाँ उसे बड़ा सर्प मिला, जिसने फन उठाकर कहा कि वह शेषनाग है। उसे पूजोगे तो सुख-संपत्ति मिलेगी। ब्राह्मण ने पूजा-अर्चना आरंभ की,

मंदिर बनवाया। यहाँ चैत्र तथा बैसाख नवरात्रों, माघ-फागुन में मेले लगते हैं। आषाढ़ में व्यास पूजा, भादों में नाग पंचमी मनाई जाती है।

बड़ी या बूढ़ी नागिन

एक बार एक व्यक्ति भेड़ें चरा रहा था तो उसे बड़ा सरोवर दिखा, जो पहले कभी नहीं होता था। उसे स्वप्न हुआ कि पाताल से नागिन आई है, उसकी पूजा होनी चाहिए। 7 बैसाख और 15 जेठ को मेला होता है। बूढ़ी नागिन का मंदिर फाटी (सराज) में है।

बालू नाग

एक ब्राह्मण मंडी नमक खरीदने गया तो बालू के जंगल में रात पड़ गई, जहाँ उसे एक बालक ने जमीन खोदने को कहा। जमीन से उसे मूर्ति मिली। बालक अदृश्य हो गया। प्रातः एक कुम्हार, जो बकरियाँ चराने आया था, 'खेल' पड़ा और नाग की उपस्थिति बताई। 20 बैसाख तथा भादों की पूर्णिमा को मेला लगता है। बालू नाग मंदिर चेथर (सराज) में है।

सरसई नाग

एक बार चार महिलाएँ पानी भरने गईं तो एक का घड़ा डूब गया। उसने पानी के किनारे वाली प्रतिमा से घड़े की वापसी की प्रार्थना की। घड़ा मिल गया किंतु वह नमन करना भूल गई। फलतः सात दिन तक लगातार वर्षा हुई। अंततः गाँव वाले वह प्रतिमा लाए और मंदिर बना।

दाणवी नाग

यह नाग सरसई नाग का भाई है।

पनेऊ नाग

इसे कुंगश भी कहते हैं। रानीकोट के ठाकुर की रानी को स्वप्न में बताया गया कि वह नाग मंदिर का निर्माण सरोवर के किनारे करे, तो पुत्र-प्राप्ति हो सकती है। प्रातः ठाकुर ने भी एक नाग सरोवर में तैरता हुआ देखा और नाग ने बताया कि वह कुरुक्षेत्र से आया है। ठाकुर ने मंदिर बनवाया। यहाँ 2 तथा 12 असूज को और 10 मार्गशीर्ष को मेला लगता है। पनेऊ नाग मंदिर कुंगश (आनी) में है।

कुई नाग

कुई नाग की कथा भी नाग द्वारा दूध पीने की है। यह नाग श्रीगढ़ के ठाकुर श्रीचंद की गाय का दूध पी जाता था। अतः पता लगने पर मंदिर बनवाया। कुई नाग मंदिर तहसील आनी में है। जेठ संक्रांति तथा भादों में दीवाली को मेला लगता है।

शंखु नाग

प्रथम भादों तथा प्रथम फागुन को मेले लगते हैं।

टकारसी नाग

प्रथम जेठ, प्रथम पौष तथा 10-12 श्रावण को मेले लगते हैं।

जालसू नाग

2-3 श्रावण को पूजा होती है।

इनके अतिरिक्त आयडू नाग (कराल), काली नाग (हुरंग), चोतरू नाग (शोधा), धूम्बल नाग (गोशाल), नाग देव (सुचेहण) आदि हैं।

वासुकि नाग

वासुकि नाग का मंदिर ग्राम थाटी बीड़, कोठी गोपालपुर, तहसील बंजार में स्थापित है। देवता का गूर श्री लज्जेराम, कारदार तुलसीराम तथा पुजारी श्री उत्तमराम है। स्वर्ण छत्र से दीप्तिमान शीर्ष भाग से युक्त खड़ा रथ है, जिसके चारों ओर आठ मोहरे सज्जित हैं, जिनमें एक मोहरा अष्टधातु का तथा अन्य स्वर्णनिर्मित हैं।

मणिकर्ण में स्नान करते हुए एक दिन माँ पार्वती के कर्णाभूषण की मणि जल में गिर गई। बहुत ढूँढ़ने पर भी वह मणि, जो पार्वती जी को अति प्रिय थी, न मिली। अतः उन्होंने शंकर जी से उसे ढूँढ़ने के लिए निवेदन किया। मणि के न मिलने पर जब शंकर जी क्रुद्ध हुए तो शेषनाग ने अपनी फुंकार से अन्य कई मणियों के साथ उस मणि को भी धरती की ओर फेंका। उससे पृथ्वी पर गर्म जल की धारा फूट पड़ी और असंख्य मणियाँ दिखाई देने लगीं। परंतु शिव-पार्वती को जब वास्तविक मणि का पता न चला तो शेषनाग ने वासुकि नाग को मणि खोजने के लिए पृथ्वी पर भेजा। उसने माँ पार्वती की मणि ढूँढ़कर दी। उसके बाद उसकी भेंट थाटी बीड़ के एक वृद्ध व्यक्ति से हुई जो नाग को अपने गाँव ले आया और वहाँ देवता के रूप में उसकी पूजा आरंभ हो गई।

देवता के निमित्त यहाँ लोहड़ी, फागली, बैसाखी, नाग पंचमी तथा नाहुली त्योहार मनाए जाते हैं।

धूम्बल नाग

धूम्बल नाग का मंदिर हलाण, कोठी बड़ागढ़ में है। इसका गूर श्री कालिदास, कारदार श्री जीतराम, पुजारी श्री डोलेराम तथा भंडारी श्री कौलु है। देवता का फेटा रथ छत्रयुक्त शीर्ष वाला है, जिसके दोनों कोनों पर फुल्लियाँ शोभित हैं। इसे उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। रथ के अग्रभाग में रजतनिर्मित आठ मोहरे विराजित हैं।

गोशाल गाँव में किसी स्त्री के अठारह नाग पैदा हुए। उसने इन नागों को भांदल (मिट्टी का बना बड़ा घड़ा) में बंद कर दिया और प्रतिदिन इनकी पूजा धौड़छु (कलछीनुमा

धूपपात्र) में धूप लेकर करती थी। एक दिन माता किसी कार्य से बाहर गई तो घर की दूसरी स्त्री ने इनकी पूजा करते हुए भांदल का ढक्कन हटाया और नागों को देखते ही वह डर गई और हड़बड़ाहट में धूपपात्र की आग नागों पर गिर गई। उससे नाग झुलसकर वहाँ से भागे। जिस नाग का रंग आग के धुएँ से धूम्र वर्ण का हो गया था, वह नाग बाद में धूम्बल नाग कहलाया। धूम्बल नाग गोशाल से भागकर दिल्ली पहुँचा। वहाँ से वापस आकर पाँगी पाडर से महाचीन तक गया। महाचीन में भी मन नहीं लगा तो वहाँ से अनेक स्थानों पर जाकर और उन स्थानों के अत्याचारी व्यक्तियों को समाप्त कर कालीहैण, छानघाट, छौन डेहरा आदि स्थानों पर अपने चमत्कार दिखाने के बाद वह हलाण में आया। इस स्थान को उपयुक्त समझकर नाग देवता ने यहीं अपना मुख्य स्थल स्थापित किया।

काली नाग

काली नाग का मंदिर कराल, कोठी मंडलगढ़ में है। देवता का गूर श्री कृष्णचंद, कारदार श्री मोहर सिंह तथा पुजारी व भंडारी श्री उदय चंद है। देवता का रथ फेटा है, जिसे उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। रथ के अग्रभाग में एक अष्टधातु तथा ग्यारह चाँदी के मोहरे स्थापित हैं।

कहते हैं कि एक निःसंतान बूढ़ा दंपती खेत से काम करके घर लौट रहा था तो उन्होंने हिंबरी में एक चट्टान की आड़ में दो जुड़वाँ बच्चों को खेलते हुए देखा। उन्हें देखते ही बुढ़िया का ममत्व जागृत हुआ। उसने बच्चों को स्तनपान कराया। अद्भुत लीला हुई कि उसके स्तनों में प्रसूता स्त्री की तरह दूध निकला। बुढ़िया को बड़ा संतोष हुआ। वह बच्चों को घर लाने की सोच ही रही थी कि वे लुप्त हो गए। उसी रात बुढ़िया को स्वप्न आया कि जिन बच्चों को उसने दूध पिलाया, उनमें से एक काली नाग और दूसरा देवता वीरनाथ है। जिनमें से देवता वीरनाथ आगे निकल गया है और काली नाग यहाँ वास करना चाहता है। बुढ़िया ने यह बात अपने पति को बताई और गाँव वालों से बातचीत करके वहाँ काली नाग की स्थापना की। कालांतर में कांली नाग की मान्यता दूर-दूर तक हुई और कराल गाँव में भी देवता का मंदिर बना।

आयड़ू नाग

आयड़ू नाग का मंदिर देहुरी, कोठी बुंगा, उपतहसील सैंज में है। देवता का गूर श्री लोजू, कारदार श्री गोकलराम, पुजारी श्री लोतमा और भंडारी श्री नोखू है। देवता का रथ खड़ा है, जिस पर छत्र सुसज्जित है। रथ के चारों ओर मिश्रित धातु के बने आठ मोहरे भूषित हैं।

जनश्रुति है कि बड़ेई खानदान के किसी व्यक्ति को कनोण गाँव में देवता का एक मोहरा मिला। घर आकर उस व्यक्ति ने मोहरे की पूजा आरंभ की। उसकी पूजा से प्रसन्न होकर नाग देवता प्रकट हुए और बताया कि वह आयड़ू नाग है। जब उसकी कृपा से लोगों को रोग-व्याधि से मुक्ति मिलने लगी तो सभी गाँव वाले श्रद्धापूर्वक इसे देवता के रूप में

मानने लगे।

देवता के यहाँ शौईरी मनाई जाती है।

करथ नाग

करथ नाग का मंदिर कंडी, तहसील बंजार में स्थापित है। देवता का गूर श्री कांशीराम, कारदार श्री सूरतराम तथा पुजारी श्री सोहनलाल है। देवता का रथ सीधा है, जिसके शिखर पर छत्र सज्जित है। रथ में आठ मोहरे शोभायमान हैं, जिनमें से सात सोने के हैं तथा एक अष्टधातु का है।

जनश्रुति है कि कंडाल खानदान के एक व्यक्ति को जंगल में पशु चराते हुए देवता का मोहरा मिला। उसी रात उस व्यक्ति को स्वप्न आया कि यह मोहरा करथ नाग का है। उसने गाँववासियों को पूरी घटना सुनाई। तब से कंडी गाँव के लोग करथ नाग को पूजने लगे, जिससे क्षेत्र में सुख-समृद्धि आई।

चोतरु नाग

चोतरु नाग का मंदिर शोधा, कोठी रघुपुर, तहसील आनी में स्थित है। देवता का गूर श्री बालकराम तथा कारदार व पुजारी श्री जय सिंह है। देवता का रथ झालरयुक्त छत्र से भूषित शिखर वाला है। इसे उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। इसमें दो चाँदी के तथा ग्यारह पीतल के बने मोहरे भासित हैं।

कहते हैं कि चोतरु नाग ने मानसरोवर में जन्म लेकर अपनी यात्रा आरंभ की। शरेउलसर में इसका पहला पड़ाव था। वहाँ से यह जलोड़ी आया। जलोड़ी में पहले महाकाली से खूब टकराव हुआ और बाद में परस्पर भाई-बहन का धर्म का मधुर रिश्ता स्थापित किया। जलोड़ी से रघुपुर में प्रवेश करके इसने अत्याचारी, अभिमानी ठाकुर शासकों का विनाश किया और फिर शोधा में प्रकट होकर लोगों को सुख-समृद्धि प्रदान करने लगा। चोतरु नाग को लोग पौराणिक देवता शेषनाग मानते हैं।

देवता के सिसरी, कठाधार तथा राणीकोट में मेले लगते हैं।

छमाहूँ नाग (एक)

छमाहूँ नाग का मंदिर बड़ाग्राँ, तहसील बंजार में है। इसका गूर श्री चेतराम, कारदार श्री किशन सिंह तथा पुजारी श्री लोभूराम है। देवता का खड़ा रथ है, जिसका शीर्ष भाग छत्र से भूषित है। इसमें सात स्वर्णनिर्मित व पाँच अष्टधातु के मोहरे शोभायमान हैं।

छमाहूँ नाग के प्रति लोगों की दो धारणाएँ प्रचलित हैं। कुछ लोग इसे षड्मुख (छह मुख वाला) देवता, भगवान् शिव का पुत्र कार्तिकेय स्वामी मानते हैं तथा कुछ लोग इसे शेषनाग मानते हैं। कहते हैं कि सबसे पहले यह सराजगढ़ में पैदा हुआ था। वहाँ इसने अपने बदन से दो नाग निकाले। इनमें से एक करथ नाग तथा दूसरा वासुकि नाग था। इन दोनों को डनोला नामक स्थान प्रदान करके स्वयं अपनी मान्यता इलाका पौलधी के बड़ाग्राँ

में स्थापित की।

देवता के यहाँ फाल्गुन व चैत्र मास में गढ़जात्रा, बैसाख मास में बैसाखी, नाहुली तथा शौईरी मनाई जाती है।

छमाहूँ नाग (दो)

छमाहूँ नाग का मंदिर दलियाड़ा, कोठी बुंगा में स्थित है। इसके गूर श्री रामदास तथा श्री हुक्म सिंह, कारदार श्री निरत सिंह तथा श्री मोहन सिंह हैं। पुजारी श्री हुक्म सिंह तथा भंडारी श्री गुलाब सिंह हैं। देवता का छत्र से सुशोभित खड़ा रथ है। इसमें स्वर्णनिर्मित आठ मोहरे चारों ओर अलंकृत हैं।

छमाहूँ नाग प्रथमतः सारी नामक स्थान में एक बुजुर्ग के सामने नाग रूप में प्रकट हुआ। उसने नाग की देवता रूप में पूजा शुरू की। धीरे-धीरे इसकी मान्यता दूर-दूर तक फैली। लोगों ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर इसके मंदिर बनाए, जिनमें जिला सिराज के दलियाड़ा और पौलधी तथा जिला मंडी के धामण और खणी के मंदिर प्रमुख हैं। दलियाड़ा इसका मूल स्थान माना जाता है। इसे षड्मुख स्वामी कार्तिकेय भी माना जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि षड्मुख से ही छमाहूँ शब्द की व्युत्पत्ति हुई है।

देवता के वर्ष-भर में दस मेले लगते हैं।

टरूणु नाग

टरूणु नाग का मंदिर ग्राम भगोणा, तहसील बंजार में है। देवता का गूर श्री डोला सिंह, कारदार श्री तुलुराम और पुजारी श्री भूप सिंह है। इसका खड़ा रथ है, जिसमें आठ मोहरे लगे हैं।

जनश्रुति है कि एक बार भगोणा ग्राम के समीप चपाली में एक स्थान पर टरूण-टरूण की ध्वनि होने लगी। वहाँ से आते-जाते लोगों ने यह ध्वनि सुनी। वे वहाँ पर एकत्र हो गए और इस संबंध में जानने का प्रयास किया तो उस स्थान पर एक व्यक्ति प्रकट हुआ और उसने कहा कि वह नाग देवता है। यदि लोग उसकी पूजा करेंगे तो उस क्षेत्र का कल्याण होगा। यह कहकर वह लुप्त हो गया। इसके बाद लोग इसे पूजने लगे। जहाँ वह प्रकट हुआ था, उस स्थान पर टरूण-टरूण की ध्वनि होने के कारण लोगों ने देवता को टरूणु नाग नाम दिया।

देवता के यहाँ फाल्गुन व भाद्रपद की संक्रांति मनाई जाती है।

नाग देव

नाग देव का मंदिर सुचेहण, कोठी बनोगी में स्थित है। इसका गूर श्री तेजा सिंह, कारदार श्री मेहरचंद तथा पुजारी श्री प्रेमचंद है। देवता का चाँदी के छत्र से सुसज्जित खड़ा रथ है, जिसके चारों कोनों पर चाँदी की घुंडियाँ लगी हैं। एक अष्टधातु का तथा सात स्वर्णनिर्मित मोहरे रथ के चारों ओर सुशोभित हैं।

कमल पुष्प के बीच से जन्म लेकर नाग देवता पृथ्वी पर घूमने लगा। अनेक स्थानों से होते हुए वह मरौड़ा नामक स्थान पर पहुँचा। वहाँ उदू वरडाई नाम के जादूगर से मुकाबला कर उसे हराया। वहाँ से राईला और रोपा में जाकर देवता लक्ष्मीनारायण के साथ मेल-मिलाप किया। टुंगरू में बैठने के लिए अपनी थौल (चबूतरा) बनाई। नरवाली और केवली बोणा के लोगों को राक्षस तंग किया करते थे। श्री नाग देवता ने दानवों का नाश करके अंत में अपना स्थान सुचेहण में स्थापित किया।

देवता के यहाँ फागली, बैसाखी, जेठ तीर्थस्नान व भादों व्रत और होम मनाए जाते हैं।

पटरूणू नाग

पटरूणू नाग का मंदिर पघोणा, कोठी बुंगा में है। इसका गूर श्री डोले सिंह, कारदार श्री तुलेराम तथा पुजारी श्री भूप सिंह है। देवता का खड़ा रथ छत्र से शोभायमान है। पीतल के बने आठ मोहरे रथ के चारों ओर दो-दो विराजमान हैं।

जनश्रुति है कि पहले-पहल डाडी और बीराब्रील खानदान के लोगों पर नाग देवता की विशेष कृपा हुई तो उन्होंने इसे मानना आरंभ किया। बाद में नाग देवता की महिमा से प्रभावित होकर सभी इसे मानने लगे।

देवता के निमित्त बाली मेला, बंजार मेला, सैंज मेला तथा नया संवत् मनाया जाता है।

बूढ़ी नागण

बूढ़ी नागण का मंदिर शरेऊलसर, तहसील बंजार में स्थित है। इसका गूर श्री भाग सिंह, कारदार श्री ज्ञानचंद तथा पुजारी श्री मिलखराज है। देवी का खड़ा रथ चाँदी के छत्र से सुशोभित शिखर वाला है। इसे दो अर्गलाओं द्वारा उठाया जाता है। रथ के चारों ओर आठ मोहरे सुसज्जित हैं, जिनमें से एक मोहरा सोने का है तथा शेष चाँदी के हैं।

बूढ़ी नागण को नाग माता कहा जाता है। नागों में वयोवृद्ध होने के कारण इसे बूढ़ी नागण का नाम प्राप्त हुआ है। कहते हैं कि यह अठारह नागों की जन्मदात्री है। इन्हें गुप्त स्थान में रखकर यह इनका पालन-पोषण किया करती थी। एक बार देवी की सहेली ने इन्हें देखा तो भयभीत होकर उसने इन पर गर्म-गर्म राख फेंक दी। इससे नाग भिन्न-भिन्न दिशाओं में भाग गए। नाग माता उन्हें ढूँढ़ती हुई अनेक स्थानों पर गई। जहाँ-जहाँ नाग मिले, वहाँ-वहाँ उन्हें हार-द्वार (प्रजाक्षेत्र) प्रदान किए। बूढ़ी नागण ने शरेऊलसर की पवित्र झील के किनारे अपना वास चुना। लोगों ने वहाँ माता का छोटा-सा मंदिर बनाया और घियागी में देवी का भंडार बनाया, जहाँ देवी का रथ भी है।

7 वैशाख और 15 जेठ को देवी का मेला लगता है।

देवी परंपरा

हिडिंबा मंदिर, मनाली

हिडिंबा का मंदिर मनाली बाजार से लगभग तीन किलोमीटर ऊपर देवदार के जंगल में है। अब मंदिर तक छोटे वाहन योग्य सड़क बन गई है किंतु पुराने समय में यह स्थान जंगल होने से डरावना रहा होगा। हिडिंबा को ढूँगरी देवी कहा जाता है, अतः इस स्थान का नाम ढूँगरी है।

मंदिर के भीतर एक चट्टान है जिसके नीचे देवी का स्थान माना जाता है। चट्टान अर्थात् 'ढूँग' के कारण ही इसे ढूँगरी देवी कहा जाता है। इस चट्टान के बाहर पैगोडा शैली का कलात्मक मंदिर निर्मित है। मंदिर में शिला पर महिषासुरमर्दिनी अंकित है, जबकि स्थानीय परंपरा के अनुसार लाक्षागृह से पांडवों के वनगमन के समय भीम का विवाह हिडिंबा से हुआ। इस पौराणिक आख्यान के साथ-साथ हिडिंबा को राजपरिवार अपनी 'दादी' मानता है। लोककथा के अनुसार हिडिंबा ने ही कुल्लू के प्रथम शासक विहंगमणिपाल को यहाँ का शासन बख्शा था। अब भी कुल्लू दशहरा का आरंभ हिडिंबा के रथ के आगमन के बिना नहीं हो सकता। यहाँ मई मास में ढूँगरी जातर लगती है। इस जातर में पहले भैंसा काटा जाता था। जे० कैलबर्ट ने अपनी पुस्तक 'दि सिलवर कंट्री' में भैंसा काटे जाने का एक चित्र दिया है। अतः देवी का महिषासुरमर्दिनी रूप भी जनमानस में रहा है।

हिडिंबा एक ऐसी देवी है जिसका मंदिर भी है, जिसमें विधिवत् पूजा होती है और रथ भी है जो उत्सवों के समय सजता है। प्रायः उन देवताओं के नित्यप्रति पूजा वाले मंदिर नहीं हैं जिनके रथ बने हैं।

देवी के मोहरे (मास्क) में इसके राजा उद्धरणपाल के समय सन् 1418 में बने होने का उल्लेख है, जबकि मंदिर के द्वार पर टाकरी के लेख के अनुसार मंदिर का निर्माण राजा बहादुर सिंह (1546-1569) ने सन् 1553 में करवाया। अतः स्पष्ट है वर्तमान मंदिर से पहले भी देवी का अस्तित्व रहा है और देवी किसी न किसी रूप में, चाहे लोक देवी के रूप में ही सही, पूजी जाती रही है।

वर्तमान मंदिर

वर्तमान मंदिर पैगोडा शैली और उत्कृष्ट काष्ठकला का एक आकर्षक उदाहरण है। मंदिर के प्रवेश द्वार तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ हैं। सीढ़ियों के ऊपर समतल जगह में मंदिर निर्मित है। पैगोडा की तीनों ढलवाँ छतों पर लकड़ी लगाई गई है। सबसे ऊपर का हिस्सा शंकु की तरह है। पैगोडा नीचे से ऊपर पतला होता गया है। गर्भगृह के बाहर प्रदक्षिणा पथ बरामदे में है। मंदिर का निर्माण पहाड़ी शैली में परंपरागत ढंग से हुआ है। देवदारों के शहतीरों के भीतर पत्थर लगाए गए हैं। दीवारों पर मिट्टी का पलस्तर और गोबर की पुताई हुई है। निचली मंजिल में गर्भगृह के बाहर बरामदा है।

दक्षिणेश्वर महादेव निरमंड की भाँति इस मंदिर के द्वार पर भी उत्कृष्ट नक्काशी हुई है। द्वार पर सिंह मुख का हैंडल लगा है। द्वार के ऊपर बारहसिंगा, भेड़ें आदि के सींग लगाए गए हैं, जिनकी वहाँ बलि दी गई होगी। दरवाजे की द्वारसाखों पर ऊपर तथा नीचे दोनों ओर नक्काशी है। द्वार के निचले भाग में एक ओर महिषासुरमर्दिनी और दूसरी ओर दुर्गा अंकित है। सामने दोनों ओर साधक खड़े हैं। गौरीशंकर, लक्ष्मीनारायण के चित्र भी काष्ठ में उकेरे गए हैं। इन पट्टिकाओं को फूल-पत्तों से आकर्षक बनाया गया है। प्रवेश-द्वार के मध्य में गणेश प्रतिमा के साथ नवग्रह, नृत्य करते हुए गंधर्व चित्रित हैं। कृष्णलीला के कुछ चित्र भी पट्टिका पर अंकित हैं।

द्वार की पट्टिकाओं पर घुड़सवार और उपासक के चित्र भी अंकित हैं, जो राजा बहादुर सिंह के हो सकते हैं।

नवग्रह, गंधर्व, देव-प्रतिमाएँ तथा पुण्य पत्र आदि की नक्काशी उत्कृष्ट कोटि की है जो इस पैगोडा शैली के मंदिर की काष्ठकला, काष्ठवास्तुकला को गरिमा प्रदान करती है। मंदिर के गवाक्षों में काष्ठकला चित्रित हुई है। एक गवाक्ष में मैथुन में प्रवृत्त युगल की कृति उल्लेखनीय है।

मुख्य मंदिर के अतिरिक्त लकड़ी के तख्तों से छाया एक छोटा मंदिर भी है। इस मंदिर के ऊपर तीन त्रिशूल स्थापित हैं। यह मंदिर वर्तमान पैगोडा से पहले का है।

यह मंदिर त्रिजुगी नारायण दयार की परवर्ती कला के विकास का उदाहरण है।

मंदिर में पहली से तीन ज्येष्ठ तक ढूँगरी जाच़ मनाई जाती है।

जनश्रुति

जनश्रुति है कि एक बार सोलंगी नाग और देवी हिड़मा व्यास नदी में खेल रहे थे। उन्होंने नदी को रोककर झील बनाई जो एक स्थान से टूट गई। नाग ने हिड़मा से उसे बंद करने को कहा। जैसे ही वह उसे बंद करने लगी कि नाग ने लात मारकर झील का बाँध पूरी तरह तोड़ दिया। पानी के तीव्र प्रवाह में बहती हुई देवी हिड़मा मनाली के पास एक चट्टान से टकराकर वहीं रुक गई। यह वही चट्टान थी जो ढूँगरी में हिड़मा मंदिर के भीतर आज भी विद्यमान है। देवी जमलू तथा घेपङ् की बहन मानी जाती है। तांदी राक्षस को भी इसका भाई मानते हैं।

पौराणिक कथा

ढूँगरी में हिडिंबा देवी के रूप में प्रतिष्ठित है। कुल्लू में देवी का स्थान देवशिरोमणि रघुनाथ जी से कम नहीं है। कुल्लू दशहरा देवी के कुल्लू आगमन के बिना आरंभ नहीं हो सकता। कुल्लू का राजवंश इसे अपनी कुलदेवी मानता है और 'दादी' कहता है। एक जनश्रुति के अनुसार कुल्लू के राजाओं को यह राज्य हिडिंबा के प्रताप से ही प्राप्त हुआ है। कुल्लू के पाल वंश का प्रथम राजा विहंगमणिपाल जब कुल्लू आया तो जगतसुख के पास उसने एक बुढ़िया को पीठ पर बैठाकर नाला पार करवाया। वह बुढ़िया और कोई नहीं,

हिडिंबा ही थी। बुढ़िया ने उसे दूर दृष्टि की सीमा तक राज्य वरदान में दिया।

महाभारत के आदि पर्व में हिडिंबा का प्रसंग आता है। कुटिल कणिक की कूटनीति से प्रेरित धृतराष्ट्र व दुर्योधन पांडवों को वारणावत भेज देते हैं। विदुर का इशारा पाकर वे स्वयं ही लाक्षागृह को आग लगा सुरंग खोद भाग निकलते हैं।

जहाँ भीम का हिडिंबा से साक्षात्कार हुआ, वह स्थान महाभारत में वर्णित स्थल के आधार पर मनाली नहीं हो सकता। पांडव सुरंग से निकलकर एक वन से होते हुए गंगा-तट पर पहुँचे। गंगा नाव द्वारा पार की और दक्षिण दिशा की ओर बढ़े। घने जंगल और थकावट के कारण वे प्यास से व्याकुल हो गए। भीमसेन ने उन्हें एक वटवृक्ष के नीचे बिठाया और स्वयं जल लेने गए। जब वापस आए तो देखा, कुंती सहित सभी भाई थकान से चूर होकर सो गए हैं। भीम बहुत दुखी हुए और जागकर पहरा देने लगे।

पास ही एक शाल के वृक्ष पर हिडिंबासुर बैठा हुआ था। वह बड़ा क्रूर और पराक्रमी था। उसका शरीर काला, आँखें पीली और आकृति भयंकर थी। उल्लेखनीय है कि जहाँ हिडिंब शाल के वृक्ष पर बैठा था और पांडव वटवृक्ष के नीचे सोए थे, वह स्थान ऊँचाई वाला नहीं हो सकता। अतः यह स्थान मनाली नहीं था।

गंगा के समीप उस शाल वन में रहने वाले हिडिंब ने अपनी बहन हिडिंबा से कहा, "बहन ! आज बहुत दिनों बाद मुझे अपना प्रिय मनुष्य मांस मिलने का सुयोग दिखता है। जीभ पर बार-बार पानी आ रहा है। आज मैं अपनी दाढ़ें इनके शरीर में डुबो दूँगा और ताजा-ताजा गरम खून पीऊँगा। तुम इन मनुष्यों को मारकर मेरे पास ले आओ। तब हम दोनों इन्हें खाएँगे और ताली बजा-बजाकर नाचेंगे।"

हिडिंबा उन्हें मारने के लिए गई किंतु भीम के सुंदर बलिष्ठ शरीर को देख अपने आने का प्रयोजन भूल बैठी और मानवी रूप धरकर भीमसेन के सामने प्रकट हो गई। वह भीम को अपना परिचय देकर उन्हें पति रूप में वरण करने की बात कहने लगी।

उधर, हिडिंब अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं कर सका और पांडवों की ओर चला। हिडिंबा को मानवी रूप में देख वह क्रोधित हो उठा और पांडवों की ओर बढ़ा। वीर भीम ने उसे बाहुयुद्ध में धराशायी कर दिया।

कुंती और युधिष्ठिर ने हिडिंबा का विवाह-प्रस्ताव ठुकरा दिया, किंतु हिडिंबा पीछे-पीछे चलने लगी। अंततः उसे अपना लिया गया और भीम ने उसके साथ पुत्र होने तक रहने का वचन दिया।

विवाह के बाद वे विहार के लिए पहाड़ों की चोटियों पर, जंगलों में, तालाबों में, गुफाओं में, नगरों में, दिव्य भूमियों में विचरण करने लगे। यह संभव है कि हिडिंबा ने मानव-साहचर्य में अपना निवास, संस्कारों में मूल परिवर्तन के कारण बदल लिया हो।

समय आने पर उसके गर्भ से एक पुत्र हुआ जिसके विकट नेत्र, विशाल मुख, नुकीले कान, भीषण शब्द, लाल होंठ, विशाल शरीर था। माता-पिता ने उसके 'घट' अर्थात् सिर को 'उत्कच' यानी केशहीन देख घटोत्कच नाम दिया।

इस घटना के बाद घटोत्कच का प्रसंग वन पर्व में आता है। बदरिकाश्रम जाते समय

द्रौपदी के थक जाने पर भीम ने अपने पुत्र घटोत्कच का स्मरण किया। भीम द्वारा घटोत्कच का हिमालय में स्मरण उसके हिमालयवासी होने का प्रमाण है। घटोत्कच ने द्रौपदी को और अन्य राक्षसों ने पांडवों को उठाकर यात्रा की।

संध्या गायत्री मंदिर, जगतसुख

हिमाचल प्रदेश के बहुत-से भागों में ऐसे मंदिर विद्यमान हैं, जो पहले शिखर शैली के पाषाण मंदिर थे। उनके किसी कारण गिरने पर उनके स्थान पर पहाड़ी शैली के काष्ठ मंदिर खड़े कर दिए गए। निश्चित है कि शिखर शैली के निर्माण के अब कारीगर उपलब्ध नहीं थे। शिखर शैली के पाषाण अवशेष—कलात्मक पत्थर, पट्टिकाएँ या घड़े हुए पत्थर लोग उठा ले गए और घरों में लगा दिए गए। मंदिर की मूल मूर्ति भी उसी तरह स्थापित की गई हो, यह शंका है। जो मूर्तियाँ बाहर थीं, वे भीतर रखी गईं, जो भीतर थीं, वे बाहर– यह भी संभव है। ममलेश्वर महादेव, दत्तात्रेय मंदिर आदि इसके सजीव उदाहरण हैं।

ऐसा ही एक मंदिर जगतसुख में संध्या गायत्री मंदिर है। व्यास के बाएँ किनारे मनाली से पाँच किलोमीटर नीचे जगतसुख स्थित है, जो कुल्लू के राजाओं की प्राचीन राजधानी भी रहा है। कुल्लू के प्रथम शासक विहंगमणिपाल को यहीं राजा घोषित किया गया था, ऐसा लोकविश्वास है। अतः इस स्थान पर प्राचीन मंदिर के अवशेष मौजूद हैं।

सड़क के ऊपर की ओर स्थित संध्या गायत्री मंदिर अब पहाड़ी शैली का मंदिर है जिसके भीतर संध्या गायत्री की पंचमुखी प्रतिमा तीस-चालीस वर्ष पूर्व ही प्रतिष्ठित की गई है।

पहाड़ी शैली के मंदिर की लकड़ी-पत्थर की चिनाई में पाषाण मंदिर की पट्टिकाएँ प्रयोग में लाई गई हैं। ये पट्टिकाएँ कलात्मक तो हैं ही, इनमें मूर्तियाँ भी बनी हैं। मंदिर के प्रांगण में सीढ़ियों के पास प्रस्तर स्तंभ पड़े हैं, जिनका प्रयोग नहीं किया जा सका। एक स्तंभ में गणेश की मूर्ति बनी हुई है।

मंदिर में कुछ सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद बरामदे में पहुँचते हैं। बरामदे में लकड़ी के स्तंभ लगे हैं। इन स्तंभों पर काष्ठकृतियाँ बनी हुई हैं। ये बरामदा और काष्ठ स्तंभ मलाणा के जमलू मंदिर का स्मरण कराते हैं। जमलू मंदिर मलाणा तथा कुछ अन्य राम मंदिरों में भी पूरी इसी शैली के स्तंभों वाले बरामदे बने हुए हैं। मंदिर की सीढ़ियों में भी कुछ पुराने मंदिर के पत्थर लगाए हुए हैं। छत्र में घुरड़ियाँ या काठ की घंटियाँ लगी हुई हैं।

प्रवेश द्वार के ऊपर गणेश की मूर्ति बनी है। संध्या गायत्री की मुख्य प्रतिमा के साथ एक चतुर्भुज विष्णु की पाषाण प्रतिमा है। विष्णु शंख, चक्र, गदा और पद्‌म लिए हुए हैं। एक पुरानी पाषाण प्रतिमा और भी है जो महिषासुरमर्दिनी की है। शिव-पार्वती की पाषाण प्रतिमा भी यहाँ विद्यमान है। गर्भगृह में ही दो वातायन भी बने हैं। इनमें भी गणेश तथा महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। ये भी शिखर शैली के मंदिर के अवशेष हैं।

मंदिर की काष्ठकला में स्थानीय शैली के चित्र बने हैं जो उतने उत्कृष्ट नहीं हैं। मंदिर की मरम्मत होती रही है जिससे काष्ठ शिल्प में विकास नहीं हुआ दिखता।

दोचा मोचा देवी, गजाँ

जब दोचा मोचा देवी का मंदिर गजाँ में देखा था, तब उसका पुरातात्त्विक दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं जाना जाता था, यद्यपि एक ग्राम देवता के रूप में दोनों देवियों का गजाँ और करजाँ में महत्त्व पहले से था।

5 जुलाई, 1978 की बात है जब जगतसुख-नग्गर के बीच सजला गाँव में सड़क के किनारे निकली मूर्तियाँ देखने गया था। सड़क पर काम कर रहे मजदूरों को ये मूर्तियाँ सड़क के किनारे मिलीं। खोदते-खोदते एक पूरा मंदिर बावड़ी सहित निकल आया। पुराने समय में बावड़ी या पानी के स्रोतों पर कुछ मूर्तियाँ स्थापित रहती थीं। उसी प्रकार यहाँ भी छत वाली बावड़ी के चारों ओर मूर्तियाँ हैं। सामने शेषशय्या पर विष्णु लेटे हैं, आमने-सामने दीवारों पर ब्रह्मा और महेश हैं। यद्यपि मूर्तियाँ कला की दृष्टि से उत्कृष्ट या प्राचीन प्रतीत नहीं होतीं, तथापि ग्रामवासी यह नहीं जानते कि कभी यहाँ बावड़ी रही होगी। अतः कम से कम डेढ़ सौ वर्ष से पहले इस बावड़ी का अस्तित्व रहा होगा, जो कभी ऊपर से मलबा आने या किसी दूसरे कारण से ढक गई।

जगतसुख से नीचे और नग्गर से ऊपर सजला के पास ही करजाँ और गजाँ गाँव हैं। ये कोई बड़े गाँव नहीं हैं। गजाँ में सड़क के किनारे एक-दो दुकानें हैं, जहाँ बस रुकती है। गजाँ में ही सड़क के नीचे दोचा मोचा देवी का छोटा-सा मंदिर है। यद्यपि मंदिर अधिक दूर नहीं है, तथापि धान के खेतों में पानी था, अतः उछलते हुए जाना पड़ा।

मंदिर

देवी का मंदिर खेतों के नीचे पार की ओर है। आसपास कोई घर नहीं है। गजाँ गाँव ऊपर रह जाता है। मंदिर के पास दयार के पुराने पेड़ हैं। मंदिर साधारण है। छोटा-सा, छोटा और सँकरा प्रवेश द्वार। लकड़ी-पत्थर से निर्मित देशज शैली का एकमंजिला मंदिर विशेष आकृष्ट नहीं करता। प्रवेश द्वार का डिजायन हिडिंबा मंदिर मनाली की तरह है किंतु नक्काशी के नाम पर कुछ बेल-बूटे बने हैं।

मंदिर के छोटे और अँधेरे गर्भगृह में दो पाषाण प्रतिमाएँ हैं। चारों ओर अँधेरा प्रदक्षिणा पथ है, जिसमें पीछे की ओर लकड़ी की कुछ प्रतिमाएँ रखी हैं। अँधेरे में ये मूर्तियाँ नजर नहीं आ पाईं। गाँव से मंदिर तक साथ आए एक व्यक्ति ने बताया कि देवी इन मूर्तियों को मंदिर के भीतर नहीं मानती, अतः गर्भगृह के बाहर रखी हैं।

पुरातत्त्व

हमारे क्षेत्र में पुरातत्त्व की जानकारी विदेशियों ने दी। चंबा के पुरातत्त्व के बारे में वोगल ने सन् 1911 में आकर बताया कि यहाँ तो अपार पुरातात्त्विक संपत्ति है। लेडी चेटवुड ने कुल्लू आकर बताया कि यहाँ के मंदिरों-मूर्तियों में अभूतपूर्व काष्ठकला है, किंतु गजाँ की ये काष्ठ प्रतिमाएँ चेटवुड की नजरों से बची रहीं। लगभग 1981 में किसी पत्र या पत्रिका में खबर छपी कि गजाँ तो कुल्लू की सबसे प्राचीन प्रतिमाएँ हैं, जो छठी शताब्दी की रही होंगी।

इस सूचना पर गजाँ में दोबारा जाना हुआ। काष्ठ प्रतिमाएँ वैसे ही अँधेरी प्रदक्षिणा में रखी हुई थीं। शायद गर्भगृह में धूप जलने या हवन या आग जलने से कुछ काली भी पड़ने लगी थीं। मंदिर के कर्मचारी ने उन्हें बाहर निकालने से मना किया। अतः लैंप जलाकर मूर्तियाँ देखीं और कुछ चित्र लिए। दोबारा जाना वर्ष 1982 में हुआ और उसके बाद डॉ० वी०सी० ओहरी के साथ।

इस प्रक्रिया में राज्य सरकार द्वारा भाषा संस्कृति विभाग के माध्यम से इस मंदिर को राज्य संरक्षित स्मारक घोषित कर दो कर्मचारी रखे गए।

काष्ठ प्रतिमाएँ

गर्भगृह की दो पाषाण प्रतिमाओं में एक सूर्य की है। प्रदक्षिणा पथ में कुल छह काष्ठ प्रतिमाएँ रखी हुई हैं।

ये प्रतिमाएँ समय के प्रभाववश गलने लगी हैं, यद्यपि देवदार की लकड़ी बहुत वर्षों तक अप्रभावित रहती है। अधिकांश प्रतिमाओं के चेहरे सपाट हो चुके हैं। सभी के निचले हिस्सों की लकड़ी गल चुकी है। फिर भी पूरी आकृति एक बहुत ही संतुलित और आकर्षक प्रभाव छोड़ती है, जो गुप्तकालीन पाषाण कला में रहा है। पूरे शरीर का संतुलन, लचीली मुद्राएँ और अंगवस्त्र सहज ही एक उत्कृष्ट काष्ठकला का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

छह प्रतिमाओं में आकृतियों और बनावट से दो पुरुष और चार महिला प्रतिमाएँ स्पष्ट नजर आती हैं।

पुरुष आकृतियों में एक सूर्य और दूसरी वैसी ही सामान्यता के आधार पर सूर्य, कुबेर या सूर्य का सेवक माना गया है। ये दोनों प्रतिमाएँ स्वतंत्र प्रतिमाएँ हैं अर्थात् किसी चौखट में जड़ी हुई नहीं हैं। पहली प्रतिमा (सूर्य) का निचला हिस्सा टूट चुका है जबकि दूसरी के निचले हिस्से में स्टैंड बनाया गया है, जिसके ऊपर मूर्ति खड़ी है। यह स्टैंड पहली मूर्ति में भी कभी रहा हो सकता है। पहली मूर्ति जिसकी दोनों भुजाएँ टूट चुकी हैं, लंबा कोट पहने है, जिसे बेल्ट से बाँधा गया है। गले में मालाएँ हैं, कानों में कुंडल और सिर के आसपास कीर्तिमुख है। यह मूर्ति बजौरा से मिली पाषाण सूर्य प्रतिमा से मिलती-जुलती है।

दूसरी मूर्ति में कीर्तिमुख नहीं है, कानों में कुंडल हैं। लंबा कोट और बेल्ट वैसी ही है। गले में हार है। सिर में लंबे बाल हैं। दोनों भुजाएँ आधी के बाद टूट चुकी हैं।

चारों महिला प्रतिमाएँ लकड़ी के एक फ्रेम में निर्मित हैं, जिससे लगता है, ये किसी मंदिर की द्वारशाखाओं में जड़ी होंगी।

इनमें सबसे बड़ी मूर्ति ने हाथ में बाईं ओर घट जैसा ले रखा है। सिर पर लंबा वस्त्र है, कान में गहने हैं। दूसरी मूर्ति के हाथ पीछे की ओर हैं। इसके सिर पर भी लंबा वस्त्र है जो नीचे तक आया है। दूसरी बाजू टूटी हुई है। दोनों मूर्तियों के पैर टूट गए हैं।

तीसरी और चौथी प्रतिमाएँ पहली से दो प्रकार से भिन्न हैं। तीसरी प्रतिमा ने हाथों में गोलाकार (आईने की तरह) कुछ पकड़ रखा है। एक पैर के भार खड़ी है, दूसरा पैर पहली के पीछे आराम की मुद्रा में है। टाँगों में दोनों ओर वस्त्र लटक रहा है। चौथी प्रतिमा

की टाँगों की स्थिति भी पहली की भाँति है। एक टाँग के भार खड़ी प्रतिमा की दूसरी टाँग पीछे से होकर आराम की मुद्रा में है। प्रतिमा की दोनों बाँहें टूट चुकी हैं। कानों में कर्णफूल हैं, पैरों में नूपुर हैं।

इन दोनों प्रतिमाओं के सिर पर अच्छी नक्काशी हुई है। पैरों के नीचे प्रतिमाओं का भार उठाए घुटनों के बल बैठी छोटी प्रतिमाएँ हैं।

ये चारों प्रतिमाएँ किसी भव्य काष्ठ मंदिर में लगी होंगी, यह निश्चित है। वह भव्य मंदिर, जो काष्ठ से परिपूर्ण रहा होगा, यहीं आसपास रहा होगा।

ये प्रतिमाएँ छठी-सातवीं या नौवीं-दसवीं शताब्दी की हैं, इस बारे में पुरातत्त्ववेत्ताओं में मतभेद है। एम० पोट्टल ने इन्हें सातवीं शताब्दी की कहा। इन प्रतिमाओं की तुलना लक्ष्मण देवी भरमौर की काष्ठ कला-कृतियों से की जा सकती है। दक्षिणेश्वर महादेव निरमंड के प्रवेश द्वार में भी ऐसी उत्कृष्ट कलाकृतियाँ हैं।

देवी का रथ

इसका गूर श्री भोलेराम, कारदार श्री उग्रसेन, पुजारी श्री पोलहोराम शर्मा तथा भंडारी श्री लालचंद है। देवता के रथ का आकार फेटा है, जिसमें छह छत्र अलंकृत हैं। इसे दो अर्गलाओं की सहायता से उठाया जाता है। रथ में चाँदी के बने दस मोहरे भासमान हैं।

जनश्रुति है कि पहले गजाँ गाँव में चरागाह थी, जहाँ ग्वाला स्थानीय राजा की गाएँ भी चराने के लिए ले जाया करता था। राजा की एक गाय यहाँ झाड़ी विशेष के पास थनों से स्वयं दूध छोड़ा करती थी। शाम को जब गाय को दुहा जाता था तो वह कम दूध देती थी। इस बात की छानबीन की गई। जब झाड़ी के पास गाय को दूध की धारा छोड़ते देखा गया तो राजा के परामर्श से झाड़ी उखाड़ी गई। झाड़ी के नीचे से दो मूर्तियाँ प्रकट हुईं। देव प्रक्रिया से मालूम हुआ कि यह दोचा मोचा भगवती की मूर्तियाँ हैं। इन्हें पौराणिक देवियाँ—जया और विजया माना जाता है। जब देवियों की प्रतिष्ठा हुई तो इनको अपने-अपने गाँव में स्थापित करने के लिए गजाँ और करजाँ गाँवों के लोगों का आपस में झगड़ा हुआ। तब राजा ने आदेश दिया कि देवियों का मूल स्थान गजाँ में रहेगा तथा रथ और मोहरे करजाँ गाँव में रहेंगे।

देवता का चैत्र की पूर्णिमा को चार दिवसीय चचोहली मेला लगता है।

त्रिपुरा सुंदरी मंदिर

त्रिपुड़ा सुंदरी, त्रिपुरा सुंदरी या त्रिपुर सुंदरी को दस महाविधाओं में एक माना जाता है। वज्रेश्वरी कांगड़ा में भी माता का त्रिपुर सुंदरी रूप ही पूजा जाता है।

पैगोडा शैली के इस मंदिर में महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमा स्थापित है। पैगोडा शैली का यह मंदिर अपनी वास्तुकला के कारण आकर्षित करता है। लगभग पंद्रहवीं शताब्दी में बने इस मंदिर का अब पुनर्निर्माण हुआ है। पुनर्निर्माण में मंदिर का मूल स्वरूप सुरक्षित रखा गया है और उसी शैली में निर्माण हुआ है। मंदिर में तीन छतें हैं जो पैगोडा बनाती हुई छोटी

होती गई हैं। सबसे ऊपर छतरीनुमा छत है।

मंदिर में प्रवेश द्वार के साथ चारों ओर बरामदा है जो प्रदक्षिणा-पथ का कार्य करता है।

एक लेख के अनुसार नग्गर गाँव देवी ने बसाया। देवी गाँव की कुलदेवी भी मानी जाती है। इसे बुशहरी देवी भी कहते हैं, जिससे लगता है, मंदिर बुशहर की राजकुमारी द्वारा बनवाया गया था, जो यहाँ ब्याही गई थी।

आशा पूरी

आशा पूरी का मंदिर धलयारा में है। देवता का गूर श्री खीमदेव शर्मा, कारदार श्री हरिराम तथा पुजारी श्री टेकराम है। शिखर पर छत्र से शोभायमान खड़ा रथ है। देवता का रथ आठ मोहरों से भूषित है, जिसमें से सात मोहरे सोने के हैं तथा एक मोहरा अष्टधातु का है।

ज्वाला

देवी ज्वाला का मंदिर फोजल, कोठी हुरंग में स्थित है। इसका गूर श्री नरसिंह दास, कारदार श्री प्रीतम चंद तथा पुजारी श्री प्रेमचंद है। शिखर पर तीन छत्रों से भूषित फेटा रथ है, जिसमें दो पीतल तथा दस रजत निर्मित मोहरे सज्जित हैं।

जनश्रुति है कि अरदार जोत (पर्वत) पर अमृत की पाँच बूँदों से चार नारायण देवता और एक देवी ज्वाला पैदा हुई। उन दिनों यहाँ अत्याचारी ठाकुरों का राज था। इन देवी-देवताओं ने ठाकुरों को मारकर अलग-अलग स्थानों की ओर प्रस्थान किया। ज्वाला देवी वहाँ से महाचीन गई। वहाँ से लौटकर वह फोजल में प्रकट हुई। फोजल में उन दिनों पानी का अभाव था। पानी कालीचाँग में नाग देवता ने नियंत्रित कर रखा था। देवी ने नाग के पास जाकर उसके साथ जुआ-पासा खेला। इसमें नाग पराजित हुआ। देवी ज्वाला ने विजयी होकर कालीचाँग का पानी फोजल तक पहुँचाया।

देवता के यहाँ बिरशु, कापू तथा कजेली मेले व त्योहार मनाए जाते हैं।

ज्वालामुखी

ज्वालामुखी देवी का मंदिर शमशी, कोठी खोखण में स्थित है। इसका गूर श्री साधुराम, कारदार श्री होतराम तथा पुजारी श्री पुरुषोत्तम राम है। देवी का खड़ा रथ छत्रों से अलंकृत है, जिसे दो अर्गलाओं की सहायता से चार व्यक्ति उठाते हैं। रथ के अग्रभाग में स्थापित अठारह मोहरों में नौ पीतल तथा नौ चाँदी के हैं।

मूलतः सोमसी (शमसी) की ज्वालामुखी सोहड़ी खानदान की इष्ट देवी रही है। यहाँ आने से पूर्व जहाँ यह खानदान रहता था, वहाँ ये देवी ज्वालामुखी को मानते थे। यहाँ पर भी ये देवी को पूर्ण श्रद्धाभाव से मानते रहे। कालांतर में देवी की शक्ति से प्रभावित होकर अन्य लोग भी माता ज्वालामुखी को मानने लगे और इनकी आराधक प्रजा का पर्याप्त

विस्तार हुआ।

देवी का सोमसी बिरशु नाम से मेला लगता है।

टुंडी देवी

टुंडी देवी का मंदिर भुलंग, कोठी खोखण में है। इसका गूर श्री गुमतराम, कारदार श्री तुलेराम तथा पुजारी श्री गिरिधर है। देवी का रथ शोभनीय छत्र से भूषित है। इसमें चौदह चाँदी के तथा एक अष्टधातु का मोहरा शोभायमान है।

जनश्रुति है कि पहले देवी ने शिल्हा गाँव के चेहड़ा खानदान में एक कन्या के रूप में जन्म लिया। एक दिन कन्या अचानक लुप्त हो गई। इसके माता-पिता दोनों बहुत परेशान हो गए। तब कन्या ने अपने पिता को स्वप्न में बताया, "मैं नयना देवी हूँ, किसी पूर्वजन्म के वचन के आधार पर मैं आपके घर में पैदा हुई थी। अब मैं भुलंग गाँव के पास प्रकट होऊँगी। जिस स्थान पर ताजा पानी निकला हो और उसके साथ आग जली हो, वही मेरा पूजा स्थल समझना।" देवी को सर्वप्रथम चेहड़ा खानदान ने ही माना। इसलिए आज भी देवी इस खानदान के बिना मंदिर से बाहर नहीं निकलती। एक बार देवी देवता पराशर कमांद के कणोण मंदिर स्थल से देवदार वृक्षों का सारा बीज चुराकर ला रही थी। अभी वह मार्ग में ही थी कि देवता को पता चल गया। देवता ने बीज छुड़ाने के लिए तीर छोड़ा, जो देवी के हाथ में लगा और सारा बीज उसके हाथ से कणोणी नाले में छूट गया। तीर के प्रहार से देवी का हाथ स्थायी रूप से विकलांग हो गया, इसीलिए यह लोक में टुंडी देवी के नाम से प्रसिद्ध हुई।

देवी के निमित्त माहुल जाच़, धारा जाच़, शान्हूँ जाच़, शनौहली तथा मुंधर पुनु मेले व त्योहार मनाए जाते हैं।

चामुंडा

देवी चामुंडा का मंदिर नशाला, कोठी नग्गर में है। इसका कारदार श्री ऐखराम, पुजारी श्री प्यारेचंद तथा भंडारी श्री दिलेराम हैं। देवी का फेटा रथ छत्रों से शोभायमान है। इसे दो अर्गलाओं द्वारा चार व्यक्ति उठाते हैं। रथ में दो अष्टधातु के बने तथा सोलह रजत निर्मित मोहरे सुसज्जित हैं।

महिषासुर ने जब पृथ्वी पर अत्याचार करते हुए अति कर दी तो इसका अंत करने के लिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश और देवताओं के शक्ति अंश से एक देवी रूप बना। महिषासुर को मारने से पहले देवी ने कुछ और राक्षसों का भी नाश किया। इन राक्षसों में देवी ने चंड और मुंड नामक राक्षसों का वध किया तो वह चामुंडा कहलाई। देवी जब चंड-मुंड को मारकर अपने शिविर में लौट रही थी तो नशाला गाँव में उसकी छाया पड़ी थी। इसलिए बाद में उस स्थान पर देवी चामुंडा ने अपने को प्रकट किया।

देवी के निमित्त बिरशु और शाऊण जाच़ लगती है।

दशमी वारदा

देवी दशमी वारदा का मंदिर काईस में स्थित है। इसका कारदार श्री गौतमचंद तथा पुजारी कुरमदत्त है। इसका दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ है। इसमें रजतनिर्मित बीस मोहरे भासित हैं।

तँदला गाँव की एक लड़की ने सरसों का एक पौधा बड़े चमत्कारिक ढंग से बढ़ते देखा। वह उसे पहले दिन जितना तोड़ती थी तो दूसरे दिन वह उतना ही बढ़ता था। उसने इस बारे में लोगों को बताया। लोगों ने सरसों का पौधा उखाड़कर देखा तो वहाँ एक मोहरा मिला। उस लड़की के परिवार वालों ने मोहरा घर लाकर माश की एक कोठड़ (बक्सा) में रखा। कोठड़ में माश नाममात्र थे, परंतु अगले दिन जब कोठड़ खोलकर देखी गई तो वह माश से पूरी पाई गई। इस बारे में पूछताछ हुई तो पता चला कि यह देवी दशमी वारदा है। लोगों ने देवी के चमत्कार से प्रभावित होकर इसे पूजना शुरू किया। देवी ने अपनी शक्ति से यहाँ अत्याचारी फागु राजा का अंत किया, इससे देवी की मान्यता और अधिक व्यापक हुई।

देवी के निमित्त बिरशु, शौण, शौईरी, फागली, शान्हू, पौष मास की दियाली तथा कोन्हा बिरशू मनाए जाते हैं।

नेईत्रा देवी

नेईत्रा देवी का मंदिर खशाम्भली धार कोठी खोखण में स्थित है। इसका गूर श्री गोलूराम, कारदार श्री ठाकरू तथा पुजारी व भंडारी श्री सबलु है। झालरयुक्त छत्र से अलंकृत शीर्ष वाला देवी का खड़ा रथ है। इसके मुखभाग में स्वर्णनिर्मित नौ मोहरे स्थापित हैं।

खशाम्भली धार के किसी व्यक्ति को पत्थर की एक पिंडी मिली, जिसे देखकर उसे लगा कि यह किसी देवी-देवता की पिंडी है। ऐसा सोचते ही उसे देवखेल आई। कुछ लोग देवखेल आती देखकर उसके पास आए और देवशक्ति के बारे में पूछताछ करने लगे। तब उसने बताया कि पत्थर की वह पिंडी देवी नेईत्रा है। इस देवी की यहाँ स्थापना की जाए। देवी की आज्ञा शिरोधार्य करके लोगों ने देवी की स्थापना की और श्रद्धापूर्वक इन्हें मानने लगे।

देवता के यहाँ बैसाखी, पाँजू, शनौहली तथा बिरशु मेले व त्योहार मनाए जाते हैं।

पंचाली देवी

पंचाली देवी का मंदिर पंचाली, कोठी फतेहपुर, तहसील बंजार में है। इसका गूर श्री जगदीश शर्मा, कारदार श्री धनीराम, पुजारी श्री मोतीराम शर्मा तथा भंडारी श्री कालिदास है। देवी का चाँदी के छत्र से सज्जित खड़ा रथ है। इसमें चार मोहरे सोने के, तीन चाँदी के तथा एक अष्टधातु का विराजमान है।

जनश्रुति है कि किसी समय पंजाली गाँव से कोई व्यक्ति माता ज्वालामुखी के दर्शन

करने ज्वालामुखी गया। वहाँ माता ज्वाला के दर्शन करते हुए उसके समक्ष पत्थर की एक विशाल मूर्ति प्रकट हुई। उसी रात देवी ने उसे स्वप्न में दर्शन देकर मूर्ति को साथ ले जाने के लिए कहा। उस व्यक्ति ने इतनी बड़ी मूर्ति को उठाने में असमर्थता प्रकट की तो देवी ने उसे आश्वस्त किया कि मूर्ति फूल-सी हलकी होगी। वह व्यक्ति ब्रह्म मुहूर्त में उठा और मूर्ति को उठाकर अपनी राह चल पड़ा। वहाँ से वह गुम्मा पहुँचा। गुम्मा से आठ मन नमक भी ले आया। चलते-चलते वह मंगलौर पहुँचा। उन दिनों वहाँ अत्याचारी राजा मंगलसेन का राज था। राजा उस समय कैल वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहा था। देवी ने उसका अंत करने की सोची। अकस्मात् कैल वृक्ष में लगने वाले तिनकों में से एक तिनका गिरकर राजा के सिर पर लगा और उसी से राजा की मृत्यु हो गई। यहाँ से देवी के आदेश के अनुसार यह व्यक्ति अनेक स्थानों से होता हुआ अपने गाँव पंजाली पहुँचा और विधिवत् देवी की स्थापना की। इस देवी को पंचाली देवी कहते हैं, जिसे महिषासुरमर्दिनी माना जाता है।

देवी के निमित्त तुआर, हुम, फरियाउत, बागी मेला व नवरात्रि पूजन मनाए जाते हैं।

देवी फुँगणी

देवी फुँगणी का मंदिर शिरढ, कोठी रायसन में है। इसका गूर श्री आत्माराम, कारदार श्री सुंदर सिंह तथा पुजारी व भंडारी श्री जगतराम है। देवता का छत्र दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ है। इसमें तीन अष्टधातु के तथा ग्यारह चाँदी के बने मोहरे विद्यमान हैं।

शिरढ में तीन देवियों ने अत्याचारी राणे-ठाकुरों को समाप्त करके अपना अस्तित्व समाप्त किया। वे तीनों यहाँ एक ही मंदिर में रहती थीं। एक दिन वहाँ काली नाग आया और उनको जुआ-पासा खेलने के लिए प्रेरित किया। जुआ-पासा के खेल में देवियाँ हार गईं। उन्हें अपना मंदिर स्थल छोड़ना पड़ा। उनमें एक देवी काली ओड़ी अरछंडी में और दूसरी काली ओड़ी डोभी में बस गई। तीसरी देवी फुगणी को काली नाग ने यहीं रुकने को कहा। इनके मूल मंदिर पर तो काली नाग ने अपना अधिकार जमा लिया, लेकिन अपने साथ में ही देवी फुगणी को स्थान प्रदान कर दिया जहाँ देवी का मंदिर बनवाया गया।

देवता के कोन्हा बिरशु, शनोहली तथा काहिका मेले लगते हैं।

श्यामा काली

श्यामा काली का मंदिर ग्राम दलासणी, कोठी भलाहण, फाटी रोट में स्थापित है। देवी का कारदार श्री जयचंद तथा पुजारी श्री पुरुषोत्तम शर्मा है। इसका खड़ा रथ है जिसके शिखर पर रजतनिर्मित भव्य छत्र सुशोभित है। रथ में लगे कुल नौ मौहरों में दो चाँदी के, दो अष्टधातु के तथा पाँच सोने के हैं। इनमें से तीन मोहरे रथ के अग्रभाग में तथा शेष तीनों ओर स्थापित हैं।

जनश्रुति है कि एक बार पुंगी खानदान के किसी व्यक्ति को खेत में काम करते हुए अष्टधातु का एक मोहरा मिला। वह उसे घर ले आया और इस संबंध में गाँव वालों को बताया। उन्होंने देखा कि मोहरा किसी देवी का है। इसी बीच किसी व्यक्ति में दैवी शक्ति

प्रकट हुई और उसने बताया कि वह श्यामा काली है। तब लोगों ने यहाँ देवी की पूजा-अर्चना आरंभ की।

देवी के निमित्त यहाँ हूम, बिरशु, शौऊज तथा माघ मेला लगता है।

बाला त्रिपुरा सुंदरी

बाला त्रिपुरा सुंदरी का मंदिर नग्गर में विद्यमान है। इसका कारदार श्री पन्नालाल आचार्य तथा पुजारी श्री जयकृष्ण है। देवता का फेटा रथ है, जिसके शिखर पर मध्य में सोने का छत्र तथा दोनों ओर चाँदी के छत्र सुशोभित हैं। रथ को उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। इसके अग्रभाग में रजतनिर्मित बारह मोहरे भूषित हैं। रथ में अलंकृत सभी अलंकार भी चाँदी के हैं।

कहते हैं कि जहाँ आज बाला त्रिपुरा सुंदरी का मंदिर स्थापित है, वहाँ पहले भेखल नामक कँटीली झाड़ी का पौधा था। लोग इस स्थान पर अपने पशु चराने लाते थे। कुछ दिनों से एक ब्राह्मण की गाय शाम को कम दूध देने लगी तो एक दिन उसने छिपकर देखा कि कहीं दिन को ग्वाले गाय का दूध पी तो नहीं जाते ? परंतु उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि गाय भेखल की झाड़ी के पास बैठ गई और एक कन्या झाड़ी से प्रकट होकर स्वतः निसृत गोदुग्ध का पान करने लगी। जब ब्राह्मण सामने आया तो कन्या लुप्त हो गई। उसने इस संबंध में गाँव वालों से बात की। परामर्श करने के बाद भेखल की झाड़ी उखाड़ी गई तो उसके नीचे से पत्थर की पिंडी निकली। तब एक व्यक्ति को देवखेल आई और उसने बताया कि यह भगवती बाला त्रिपुरा सुंदरी है। जब नग्गर कुल्लू राज्य की राजधानी बना तो राजा ने यहाँ देवी का मंदिर बनवाया।

देवता के यहाँ पाँच ज्येष्ठ से दस ज्येष्ठ तक शाढ़ी जाच़ लगती है।

भागासिद्ध (एक)

देवी भागासिद्ध का मंदिर गाँव पीढ़ी में स्थापित है। इसका गूर श्री चोलूराम, कारदार श्री नूपराम तथा पुजारी श्री मोहरसिंह है। देवी का फेटा रथ है जिसमें उन्नीस रजतनिर्मित व एक अष्टधातु का मोहरा प्रतिष्ठित है।

एक बार कोई व्यक्ति अपने पशु चराने के लिए वन में गया हुआ था। शाम को जब वह अपने पशु लेकर घर लौट रहा था तो कुछ दूर पर उसे आग की लौ दिखाई दी। उत्सुकतावश वह उस स्थान पर गया तो उसे वहाँ पूजा की सामग्री और धूपपात्र मिले। वह उन्हें वहाँ से अपने घर ले आया जिसके प्रभाव से उसका घर धन-धान्य से पूर्ण हुआ। इस बात की चर्चा अन्य लोगों में भी हुई और वे घंटी और धूपपात्र के बारे में जानने को उत्सुक हुए। उसी समय किसी व्यक्ति को देवखेल आई और उसने बताया कि ये घंटी और धूपपात्र देवी भागासिद्ध के हैं। तब लोगों ने वहाँ देवी की स्थापना की।

देवी के निमित्त शान्हु, शौण, मुंधर पुन्नु, पौष में दियाली, काहिका, फागली, बिरशु तथा ज्येष्ठ मास में फूल पूजा की जाती है।

भागासिद्ध (दो)

देवी भागासिद्ध का मंदिर गाँव नगोरी, कोठी कोटकंडी में स्थित है। इसका गूर श्री शामनाथ, कारदार श्री सालगीराम और पुजारी श्री रोशनलाल है। देवी का छह छत्रों से अलंकृत फेटा रथ है जिसे दो अर्गलाओं से उठाया जाता है। रथ पर एक अष्टधातु का तथा अठारह चाँदी के मोहरे सज्जित हैं। सभी मोहरे रथ के अग्रभाग में लगे हैं।

जनश्रुति है कि नगोरी गाँव में कभी नीरू नाम का एक अत्याचारी ठाकुर हुआ। उसका विनाश करने के लिए देवी ने एक सुंदर कन्या का रूप धारण किया। कन्या के विलक्षण सौंदर्य को देखकर ठाकुर कामांध हो गया। उसने कन्या पर अपनी कुदृष्टि डाली तो कुपित हो देवी ने उसका नाश कर दिया। इससे वहाँ के लोगों को उस ठाकुर के अत्याचारों से मुक्ति प्राप्त हुई और वे भक्तिभाव से देवी भागासिद्ध की अर्चना करने लगे।

देवी के यहाँ बैसाखी, कथाची, शाऊण तथा पुन्नु मेले लगते हैं।

भोटंती

भोटंती देवी का मंदिर ग्राम नग्गर में स्थित है। इसका कारदार श्री फकीरचंद तथा पुजारी श्री बिशनदास है। देवी का फेटा रथ है जिसमें रजतनिर्मित सात छत्र शोभित हैं। कुल सत्रह मोहरे रथ में विराजमान हैं, जिनमें दो मोहरे अष्टधातु के, दो पीतल के तथा तेरह चाँदी के हैं।

लोक विश्वास है कि नग्गर गाँव में किसी औरत को खेत में गोड़ाई करते हुए एक मोहरा मिला। वह उस मोहरे को घर ले आई। जब मोहरा प्रकट होने की खबर गाँव में फैली तो सभी को उसके बारे में जानने की उत्सुकता हुई। एक रात किसी व्यक्ति को स्वप्न में देवी ने दर्शन दिए और बताया कि वह भोटंती देवी का मोहरा है। देवी की चमत्कारिक शक्ति से लोग बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने वहाँ देवी की स्थापना की तथा उसकी आराधना करने लगे।

देवी के निमित्त नग्गर में शाढ़ी जाच़, शौईरी, बिरशु तथा देई री जाच़ मनाई जाती है।

भारथा देवी

भारथा देवी का मंदिर ग्राम गलछेत, कोठी मंडलगढ़ में अवस्थित है। इसका गूर श्री आत्माराम, कारदार श्री भीमीराम तथा पुजारी श्री रेपतराम है। देवी का फेटा रथ छत्रों से अलंकृत है जिसे दो अर्गलाओं से उठाया जाता है। रथ के अग्रभाग में एक पीतल तथा ग्यारह चाँदी के मोहरे सुशोभित हैं।

जनश्रुति के अनुसार गलछेत गाँव के कोठे खानदान में एक गूर था। उसे कहीं पर एक मोहरा मिला। उसने मोहरे को घर लाकर अनाज के संदूक में रख दिया। प्रातः उसने उस मोहरे को संदूक के ऊपर निकला हुआ पाया तो वह आश्चर्यचकित रह गया। उसने अन्य लोगों को भी मोहरे के पास ले जाकर सारी घटना सुनाई। इसी बीच उसमें दैवी शक्ति

प्रविष्ट हो गई और उसने कहा कि वह भारथा देवी है। लोगों ने देवी से सुख-शांति की प्रार्थना करके गाँव में उसकी स्थापना की।

देवी के यहाँ कापू का मेला लगता है।

महामाई

महामाई का मंदिर ग्राम कच्छैणी, उपतहसील सैंज में विद्यमान है। देवी का गूर श्री झाबेराम, कारदार श्री सूरतराम तथा पुजारी श्री मस्तराम है। इसका खड़ा रथ है, जिसके शीर्ष पर छत्र सुशोभित है। रथ के चारों ओर चार चाँदी के तथा चार सोने के मोहरे स्थापित हैं।

दैवी शक्तियों के बल पर ही देवता अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त करके शक्तिमान होते हैं। प्रत्येक देवता के साथ किसी न किसी रूप में शक्ति का संबंध रहता है। कच्छैणी की महामाई यहाँ देव ब्रह्मा से संबंधित शक्ति के रूप में पूजित है।

देवता के निमित्त हूम, दीपमाला, बशाद साजा तथा शौईरी मनाई जाती है।

शबरी

शबरी देवी का मंदिर ग्राम शुरू में अवस्थित है। इसका गूर श्री हरदयाल, कारदार श्री रूपचंद तथा बालक राम और पुजारी श्री धनीराम है। देवी का फेटा रथ सात छत्रों से शोभायमान है जिसे उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। रथ पर चाँदी के बने आठ मोहरे विराजमान हैं।

महाभारत के युद्ध में विजय प्राप्त करने की कामना से अर्जुन इंद्रकील पर्वत पर शिवजी की तपस्या कर रहा था। एक दिन शिव जी शबर का वेश धारण करके जब अर्जुन की परीक्षा लेने चले तो पार्वती भी शबरी बनकर उनके साथ चल पड़ीं। जब वे इंद्रकील पर्वत के समीप पहुँचे तो शबरी पास के गाँव में ही रुक गई और शिव ने अर्जुन के सामने मायावी हिरन प्रकट किया। उसी समय दोनों ने एक साथ उस पर बाण साधा और हिरन मारा गया। अब उस शिकार के लिए दोनों में द्वंद्व युद्ध हुआ। शिवजी ने अर्जुन की शक्ति से आश्वस्त होकर उसे अपने वास्तविक रूप में दर्शन दिए तथा पाशुपतास्त्र प्रदान किया। गाँव में वापस आकर शिवजी पार्वती के साथ कैलास लौट गए परंतु शबरी रूपधारी पार्वती की देवकला का कुछ अंश यहीं रहा, जिससे देवी शबरी यहाँ पूजित हुई। यहाँ लोग सामान्यतः शबरी भगवती को 'शुरू री देवी' कहते हैं।

देवी के निमित्त वैशाख मास में यहाँ सीता नवमी मनाई जाती है।

त्रिदेव

बिजली महादेव

व्यास और पार्वती के संगम की 2464 मीटर ऊँची पहाड़ी पर बिजली महादेव मंदिर स्थित है।

पहाड़ी शैली में निर्मित यह आयताकार मंदिर ग्यारह मीटर लंबा और लगभग साढ़े सात मीटर चौड़ा है। दीवारें लकड़ी और पानी-गारा रहित चिनाई से निर्मित हैं। गर्भगृह के ऊपर ढलवाँ छत है। छत के ऊपर लंबे शहतीर पर अनेक त्रिशूल गाड़े गए हैं। प्रवेश द्वार के साथ बरामदा प्रदक्षिणा पथ का काम करता है। बरामदे के गवाक्षों में आकर्षक काष्ठ कार्य हुआ है। मंदिर के स्तंभों पर साँप चित्रित हैं।

दीवारों के पाषाण भी अलंकृत हैं, जिनमें कृष्ण तथा रामलीला के चित्रण उकेरे गए हैं। रावण की ओर हवा में बंदूकें भी चलती दिखाई गई हैं। ये कृतियाँ उन्नीसवीं शताब्दी की हो सकती हैं।

मंदिर के सामने नंदी की दो प्रतिमाओं के साथ कुछ घड़े हुए पत्थर भी हैं। प्रांगण में अठारह मीटर ऊँचा खंभा है, जिसे धजा या ध्वज कहा जाता है। ध्वज में झंडा लगा रहता है। यदि इस खंभे पर कभी बिजली गिरे और यह जल जाए या नई छत पड़े या काहिका हो; देवता की बताई विधि से इसे पुनः गाड़ा जाता है। ऐसे ऊँचे-ऊँचे ध्वज कई मंदिरों के आगे यहाँ दिखाई देते हैं। बिजली महादेव का ध्वज कुल्लू के मंदिरों में संभवतः सबसे लंबा है।

कुछ वर्ष पहले मंदिर में आग लगने से बहुत-सी काष्ठकला नष्ट हो गई थी।

कहा जाता है कि शिवलिंग पर कुछ समय के अंतराल के बाद बिजली गिरती है और शिवलिंग टूट जाता है। शिवलिंग के टुकड़े हर जगह जा गिरते हैं, जिन्हें पुजारी उठाकर मक्खन से जोड़ता है। बिजली गिरने की यह घटना प्रतिवर्ष या बारह वर्ष के बाद होनी मानी जाती है। किंतु कोई भी ऐसा जीवित वृद्ध व्यक्ति नहीं मिला जिसने यह घटना अपने जीवनकाल में देखी हो। बस, लोककथा की भाँति यह घटना यात्रा कर रही है।

अब बिजली महादेव के लिए नग्गर से होती हुई सड़क बन गई है। वैसे यह मंदिर कुल्लू के ठीक सामने पहाड़ी के अंतिम छोर पर स्थित दिखाई पड़ता है।

बिजली महादेव का मंदिर मथाण गाँव में है।

देवता का रथ

देवता का गूर श्री रामनाथ, कारदार श्री राजेश कुमार व श्री दुनीचंद तथा पुजारी श्री जयकृष्ण है। देवता का फेटा रथ पाँच छत्रों से भासित है, जिसे चार व्यक्ति दो अर्गलाओं की सहायता से उठाते हैं। रथ में कुल चौबीस मोहरे सुसज्जित हैं, जिनमें से तीन सोने के, चार अष्टधातु के तथा सत्रह चाँदी के हैं। सभी मोहरे रथ के अग्रभाग में सुशोभित हैं।

जनश्रुति है कि कुलंत नामक दानव ने इस शांत पहाड़ी प्रदेश में बड़ा उत्पात मचा रखा था। देवताओं ने उसे मारने का प्रयत्न किया, लेकिन वे सफल न हुए। तब शिवजी ने अपनी गुर्ज के प्रहार से उसे मारा और लोगों को अत्याचार से मुक्त किया। ये दुष्ट शक्तियाँ फिर से न उभरें, इसके लिए शिव बार-बार पृथ्वी पर आकाशीय बिजली गिराते हैं। इससे अन्यत्र नुकसान न हो, इसलिए वे इसे अपनी पिंडी पर धारण करते हैं। मथाण में शिव पिंडी पर बार-बार बिजली गिरती है, इसीलिए शिव को यहाँ बिजली महादेव कहते हैं।

देवता के यहाँ कोडू साजा, मथाण फेरा तथा त्राम्बली जाच़ मनाई जाती है।

मंगलेश्वर महादेव

मंगलेश्वर महादेव का मंदिर ग्राम छेआऊँर, कोठी कोटकंडी में स्थित है। देवता का गूर श्री भागूराम, कारदार श्री बालेराम तथा पुजारी श्री श्यामलाल है। देवता का दो अर्गलाओं से युक्त खड़ा रथ है, जिसका शिखर चाँदी के छत्र से शोभायमान है। रथ में अष्टधातु के अठारह मोहरे विराजित हैं।

कहते हैं कि सैकड़ों वर्ष पहले छेआऊँर गाँव में मंगला नाम की रानी रहती थी। एक ग्वाला उसकी गायों को चराने के लिए जंगल में ले जाया करता था। एक शाम को किसी गाय ने दूध न दिया तो रानी ने ग्वाले से पूछताछ की पर वह कुछ न बता सका। अगले दिन रानी स्वयं गाय के पीछे-पीछे गई। उसने देखा कि स्थान विशेष पर पहुँचते ही एक पत्थर पर गाय के स्तनों से स्वतः दूध निकलने लगा और उस दूध को एक काला नाग पी गया। रानी की समझ में कुछ न आया। रात को उसे स्वप्न में देवता के दर्शन हुए और उसने कहा कि वह महादेव हैं। प्रातः उठते ही रानी ने महादेव के पूजन की व्यवस्था की। क्योंकि सर्वप्रथम महादेव ने मंगला रानी को दर्शन दिए थे, इसलिए इनका नाम मंगलेश्वर महादेव पड़ा। इनकी पिंडी समय-समय पर आकाशीय विद्युत् से खंडित हो जाती है तथा मक्खन से विधिपूर्वक जोड़ने पर कुछ ही दिनों में पुनः अपने पूर्वरूप में आ जाती है।

देवता के यहाँ मक्खशरी, काहिका तथा बैसाखी मनाई जाती है।

खोड़ू महादेव (एक)

खोड़ू महादेव का मंदिर त्रेहण, कोठी कोटकंडी में स्थित है। देवता का गूर श्री मेहरचंद, कारदार श्री निमतराम, पुजारी श्री लालचंद तथा भंडारी श्री परमराम है। देवता का रथ सीधा है, जिसके शिखर पर झालर से अलंकृत छत्र भूषित है। इसे उठाने के लिए दो अर्गलाओं का प्रयोग होता है। रथ के चारों ओर मिश्रित धातु के बने आठ मोहरे स्थापित हैं।

जनश्रुति है कि लगभग चालीस वर्ष पूर्व कारदार निमतराम को त्रेहण गाँव में खेत में काम करते हुए एक पिंडी जैसी चीज मिली, जिसे उसने सामान्य पत्थर समझकर खेत के किनारे रख दिया। कुछ दिनों बाद उसे देवता का दोष (प्रकोप) लग गया। गणकों से गणना करवाने के पश्चात् पता चला कि पिंडीरूपी वह पत्थर सामान्य पत्थर नहीं था, बल्कि खोड़ू महादेव की पिंडी थी। तब अज्ञानता से हुई गलती के लिए क्षमा याचना करने के पश्चात्

खोड़ू महादेव की स्थापना की गई।

देवता के निमित्त मक्खशर, चैत्र तथा नरोगी जाच मनाई जाती है।

खोड़ू महादेव (दो)

खोड़ू महादेव का मंदिर धारा, कोठी चैहणी, तहसील बंजार में स्थित है। देवता का गूर श्री संगतराम, कारदार श्री धर्मदास तथा पुजारी श्री महेराम है। देवता का रथ खड़ा है, जिस पर झालरयुक्त छत्र सुसज्जित है। रथ में पीतल के बने आठ मोहरे भूषित हैं।

जनश्रुति है कि एक बार महादेव किसी प्रयोजन से खोड़ (अखरोट) के रूप में प्रकट हुए, इसलिए इन्हें खोड़ू महादेव कहा जाता है।

देवता के यहाँ शायरी, नया संवत् व आठ माघ को त्योहार तथा बंजार मेला लगता है।

त्रिजुगी नारायण, दयार

हिडिंबा, आदि ब्रह्मा, त्रिपुरा सुंदरी के बाद पैगोडा शैली में निर्मित चौथा मंदिर दयार में त्रिजुगी नारायण है। दयार, बजौरा के पार पहाड़ी पर है।

इस मंदिर का निर्माण भी स्थानीय तकनीक से शहतीरों के बीच खुश्क पत्थरों की चिनाई से हुआ है। मंदिर की तीन छतें ढलवाँ हैं और सबसे ऊपर वाली छत की तरह है। छतें नीचे से ऊपर पतली होती गई हैं। छतों में सलेटों का प्रयोग हुआ है। धरातल मंजिल से ऊपर की दो मंजिलों में बरामदे बने हुए हैं। ऊपर की दो मंजिलें अँधेरी हैं और किसी प्रयोग में नहीं लाई जातीं।

यह मंदिर टेढ़ा हो गया है। गर्भगृह में वशिष्ठ मंदिर की तरह काले पत्थर की बड़ी मूर्ति है।

यहाँ भी देवता का रथ है, जो उत्सवों के समय सजाया जाता है। आदि ब्रह्मा को, ब्रह्मा-विष्णु-महेश तीनों शक्तियों का संयुक्त रूप माना जाता है।

देवता का गूर श्री श्यामलाल शर्मा, कारदार श्री पुरुषोत्तम शर्मा, पुजारी श्री भोजप्रकाश, श्री ठाकरदास तथा श्री प्रकाशचंद हैं। इसका फेटा रथ है, जिसमें बारह मोहरे स्थापित हैं।

जनश्रुति है कि किसी समय ब्रह्मा, विष्णु और महेश भ्रमण करते-करते दियार में कुछ काल के लिए विश्राम करने ठहरे थे, जिस कारण इस स्थान पर उनकी शक्ति स्थापित हुई। कालांतर में एक गाय उस स्थान पर अपने आप स्तनों से दूध की धारा छोड़ती थी। यह देखकर लोगों ने उस स्थान को खोदा तो नीचे से त्रिजुगी नारायण की मूर्ति निकली। उस क्षेत्र में देवता की बड़ी मान्यता हुई।

देवता के निमित्त श्रावण मास में काहिका मनाया जाता है।

काली नारायण

काली नारायण का मंदिर जोंगा, कोठी महाराजा में है। देवता के गूर श्री झावेराम तथा

श्री जगतराम हैं। कारदार श्री टेकचंद, पुजारी श्री भीमीराम तथा भंडारी श्री देवीचंद है। देवता का खड़ा रथ झालरयुक्त छत्र से अलंकृत है। रथ में एक अष्टधातु तथा सात रजतनिर्मित मोहरे शोभायमान हैं।

कहते हैं कि एक बार जोंगो गाँव से जिंदु नामक व्यक्ति मंडी की गुम्मा खान से नमक लेने गया था। जब वह किलटे में नमक लेकर वापस आया तो गाँव पहुँचकर उसने रोई के डुंख (देवदार जाति के रई नामक वृक्ष के कटे हुए आधार भाग) पर आराम किया। कुछ देर आराम करने के बाद आगे चलने के लिए जब उसने किलटा उठाना चाहा तो वह उससे उठाया न जा सका। इस बीच गाँव की एक औरत ने यहाँ अलौकिक दृश्य देखा और उसने कहा कि मंडी के हुरंग गाँव से यहाँ देवता आया है। गाँव वालों ने उसकी पूजा-अर्चना की। एक व्यक्ति ने देवखेल में बताया कि वह काली नारायण है।

देवता के निमित्त मार्गशीर्ष मास में मुंघर पुनु नाम से मेला लगता है।

छमाणी नारायण

छमाणी नारायण का मंदिर ग्राम छमाण, कोठी काईस, फाटी खशाऊरी में स्थित है। देवता का गूर श्री स्यामू, कारदार श्री गोपीचंद तथा पुजारी श्री थरीलाल है। इसका फेटा रथ है, जिसमें एक स्वर्ण, तीन अष्टधातु तथा चौदह चाँदी के मोहरे अलंकृत हैं।

जनश्रुति के अनुसार कभी एक लड़की को खेत में काम करते हुए एक मोहरा मिला। वह उसे घर ले आई और उसे माश के पेड़ू में रख दिया। पेड़ू में थोड़े-से माश थे परंतु दूसरे दिन घरवालों के आश्चर्य की कोई सीमा न रही जब उन्होंने पेड़ू को माश से भरा पाया। फिर मोहरे को अनाज की आधी कोठड़ी में रखा गया तो वह भी अनाज से भर गई। घरवालों ने सोचा कि अवश्य ही यह कोई देवता है, लेकिन एक लड़के को इसमें संदेह था। उसने कहा कि मोहरे को काटो, यदि काटने पर खून निकले तो समझना कि यह राक्षस है। यह सुनते ही मोहरा साँप के रूप में परिणत हो गया। उसे काटा गया तो वहाँ दूध की धारा बहने लगी। साँप फिर मोहरे में बदल गया। लड़का फिर भी तर्क-कुतर्क करता रहा, जिससे कुपित होकर मोहरा वहाँ से लुप्त हो गया और एक लोहार के घर में प्रकट हुआ। वे लोग उसे श्रद्धापूर्वक मानने लगे। धीरे-धीरे इस देवता की अन्य लोग भी आराधना करने लगे।

देवता के यहाँ शान्हु, बिरशु, मुंघर, पुनु तथा जन्माष्टमी मनाई जाती है।

जुआणु महादेव

जुआणु महादेव का मंदिर जुआणी, कोठी साईस में स्थित है। इसका गूर श्री जोगीराम, कारदार श्री ओमप्रकाश तथा पुजारी श्री टेकराम है। देवता का रथ फेटा है, जिसे दो अर्गलाओं से चार व्यक्तियों द्वारा उठाया जाता है। इसमें कुल इकतीस मोहरे, जिनमें से चार अष्टधातु के तथा सत्ताईस चाँदी के हैं, सुशोभित हैं।

कहते हैं कि महादेव सर्वप्रथम जिला कुल्लू में बराण में प्रकट हुआ, फिर सियाल गया। सियाल से ढूँगरी में पहुँचकर देवी हिडिंबा से इसका टकराव हुआ। वहाँ से रोहतांग

पार करके लाहौल में घेपन से मेल-मिलाप किया। पुनः वापस लौटकर दशौहर, द्राम ढौघ, बौश्ट (वशिष्ठ), भनारा, नग्गर, लराँ, केलो होते हुए जुआणी में आया और अपनी गुण-शक्ति से लोगों का पूज्य बना।

देवता के निमित्त एक चैत्र को नुआँ सोमत (नया संवत्), बिरशु तथा शाऊण मेला लगता है।

थान नारायण

थान नारायण का मंदिर भुट्ठी में स्थित है। इसका गूर श्री चेतराम, कारदार श्री रामसिंह तथा पुजारी श्री जीवाराम है। देवता का फेटा रथ है, जिसे चार व्यक्ति दो अर्गलाओं की सहायता से उठाते हैं। इसमें आठ रजतनिर्मित तथा नौ अष्टधातु के बने मोहरे विद्यमान हैं।

किसी स्त्री को खेत में काम करते हुए एक मोहरा मिला। उसने घर आकर वह मोहरा एक ऐसे घड़े में रखा जिसमें थोड़ा-सा अनाज था। दूसरे दिन जब वह घड़ा खोलकर देखा गया तो वह घड़ा अनाज से भरपूर था। उसे लगा यह कोई देवशक्ति है। शंका दूर करने के लिए उसने कहा कि यदि वह देवता है तो गाय को दुहते समय ही दूध जम जाए। ऐसा ही चमत्कार हुआ कि दूध दुहते-दुहते ही जम गया। एक दिन वह मोहरे को साथ लेकर घराट में आटा पीसने लगी। उसका एक खलड़ू (अनाज रखने के लिए भेड़ की खाल का बना बैगनुमा पात्र) अनाज था, लेकिन आटा दो खलड़ू हो गया। इन सब चमत्कारों से प्रभावित होकर उसने देवता का विधिवत् पूजा-विधान बनाया। अन्य लोग भी देवता के गुण-यश को देखकर इन्हें थान नारायण के नाम से मानने लगे।

देवता के यहाँ नुआँ सोमत, जेठा बिरशु, कोन्हा बिरशु, सलाहर, शनोहली तथा शौईरी मेले व त्योहार मनाए जाते हैं।

नारायण (एक)

नारायण का मंदिर बड़ी शिल्ह, कोठी रायसन में स्थित है। इसका गूर श्री बीरूराम, कारदार श्री दौलतराम तथा पुजारी श्री इंद्रसिंह है। देवता का रथ फेटा है, जिसे उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयोग में लाई जाती हैं। इसमें पाँच पीतल तथा नौ चाँदी के बने मोहरे विद्यमान हैं।

कहते हैं कि एक बार बड़ी शिल्ह गाँव में देवता का मेला था, दिन के समय देवता के कारकुन गाँव के समीप बहुत बड़ी चट्टान पर देवता का रथ रखकर खाना खाने गाँव गए और एक गूँगा आदमी देवता के पहरे के लिए रखा। मौका पाकर किसी दूसरे देवता ने यहाँ हमला किया और उक्त बड़ी चट्टान के नीचे रथ और साजो-सामान दबा दिया। केवल एक वाद्ययंत्र भाणा बचा था, जिसे गूँगा पहरेदार उठा लाया था। उसके बाद कई वर्षों तक देवता का रथ नहीं बना, परंतु देवता के आग्रह पर अंततः सन् 1962 में रथ बना दिया गया।

देवता के यहाँ फागली तथा परुँई मेले लगते हैं।

नारायण (दो)

नारायण का मंदिर मेहा, कोठी बड़ागढ़ में है। इसका गूर डागू, कारदार श्री किशनदास, पुजारी श्री डालू तथा भंडारी श्री केसु है। देवता का फेटा रथ है, जिसे उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। इसके अग्रभाग में चार अष्टधातु तथा नौ रजतनिर्मित मोहरे अलंकृत हैं।

जनश्रुति है कि अरदार जोत पर स्थित एक विशाल सपाट शिला पर अमृत की पाँच बूँदें गिरने से चार देवता—नारायण देवता मेहा, हुरंग नारायण दराल, देव ब्रह्मा ब्राह्मण तथा हरिनारायण काथी पैदा हुए और इन्हीं के साथ ज्वाला माता फोजल भी प्रकट हुई। इन देवी-देवताओं का यहाँ के अत्याचारी शासक ठाकुर से वाद-विवाद हुआ। उन्होंने उसे वीरता प्रदर्शन के लिए एक बड़ी स्लेट उठाने को कहा। उससे वह उठाई नहीं गई। तब देवताओं ने ठाकुर को इसे पीठ के सहारे उठाने को कहा। ठाकुर ने जैसे ही स्लेट पीठ के सहारे उठाई, देवताओं ने उसे स्लेट के नीचे दबाकर समाप्त कर दिया। फिर पाँचों देवी-देवता अलग-अलग स्थानों पर प्रकट हुए। इनमें देवता नारायण मेहा गाँव में किसी औरत को खेत में निराई करते हुए मोहरे के रूप में मिले। निराई करते समय मोहरे पर किलणी का निशान लगा था जो अभी भी देखा जा सकता है।

बलिनारायण

बलिनारायण का मंदिर ग्राम बशकोला, कोठी बड़ागढ़ में स्थित है। इसका गूर श्री बबलूराम, कारदार श्रीमती शीरू देवी, पुजारी श्री प्रीतम सिंह है। देवता का फेटा रथ है जिसमें एक अष्टधातु का तथा ग्यारह चाँदी के मोहरे शोभित हैं।

जनश्रुति है कि बशकोला ग्राम की एक लड़की का विवाह खरोल गाँव में हुआ था। उनका इष्टदेव बलिनारायण था। उस समय गाँव में एक सौ आठ परिवार रहते थे। किसी समय उन्होंने देवता की उपेक्षा कर दी, जिसके फलस्वरूप सारा गाँव नष्ट हो गया और केवल वही स्त्री बची जो बशकोला गाँव से ब्याहकर लाई गई थी। वहाँ से वह अपने मायके वापस आ गई और यहीं उसने अपने इष्ट बलिनारायण की स्थापना की, जिसे बाद में सारे गाँव वाले मानने लगे।

देवता के यहाँ कटासणी तथा फागली मेले लगते हैं।

लक्ष्मीनारायण (एक)

लक्ष्मीनारायण का मंदिर ग्राम कोलीबेढ़ में है। देवता का गूर व कारदार श्री ढालेराम है। देवता का खड़ा रथ है जिसमें आठ मोहरे सुशोभित हैं।

जनश्रुति है कि कोलीबेढ़ के कुछ बच्चे खेल-खेल में देवता का रथ बनाकर उसे कंधे पर उठाकर नचाया करते थे। एक दिन जब वे कंधे पर उठाए उस रथ को नीचे बिठाने लगे तो वह नीचे नहीं उतारा जा सका। समस्या के समाधान हेतु बच्चों ने अन्य लोगों को

बुलाया। तब एक व्यक्ति को देवखेल आई और उसने बताया कि वह देवता लक्ष्मीनारायण है। लोगों ने देवता को शीश नवाया और पूजा-आराधना करने का वचन दिया। बाद में विधिवत् देवता का मंदिर, रथ व भंडार बनाए गए।

कोलीबेढ़ में देवता के निमित्त आषाढ़ मास में नाहुली मेला लगता है।

लक्ष्मीनारायण (दो)

लक्ष्मीनारायण का मंदिर ग्राम रायला, उपतहसील सैंज में है। इसका गूर श्री खेमदेव, कारदार श्री तापेराम तथा पुजारी श्री विद्याभूषण है। देवता का स्वर्णनिर्मित छत्र से सुशोभित शीर्ष वाला खड़ा रथ है। रथ के चारों ओर सोने के आठ मोहरे विराजित हैं।

जनश्रुति के अनुसार एक बार गाँव की चरागाह में किसी गाय के थनों से स्वतः ही एक काले पत्थर पर दूध की धार निकलने लगी। जिसकी गाय थी उसने घर आकर यह बात अपने पिता को बताई। पिता कुछ लोगों के साथ उस स्थान पर गया जहाँ वह पत्थर था। वहाँ एक साधु बैठा था। लोगों ने उससे पूछा कि वह कहाँ से आया है ? तो साधु ने कहा कि वह क्षीर सागर से आया है और वह लक्ष्मीनारायण है। इतना कहते ही वह लुप्त हो गया। तब लोगों ने उस स्थान पर लक्ष्मीनारायण का मंदिर बनाया और इस क्षेत्र में उसकी मान्यता हुई।

वाराही

देवी वाराही का मंदिर ग्राम मौईल, कोठी शैंशर, उपतहसील सैंज में अवस्थित है। देवी का गूर हीरालाल, कारदार सबजचंद तथा पुजारी ठाकरदत्त है। इसका 'खड़ा रथ' है, जिसके चारों ओर कोनों पर चाँदी की फुल्लियाँ लगी हैं और शिखर पर छत्र सुशोभित है। रथ के चारों ओर कुल आठ मोहरे स्थापित हैं, जिनमें एक अष्टधातु का तथा शेष रजतनिर्मित हैं।

जब-जब पृथ्वी संकटग्रस्त हुई, तब-तब भगवान् ने उसका उद्धार करने के लिए अवतार लिया। इसी तरह एक बार पृथ्वी को जल से बाहर निकालने हेतु भगवान् ने वराहावतार धारण किया। जिस शक्ति के बल पर प्रभु ने पृथ्वी को संकट से छुड़ाया, वह वास्तव में देवी वाराही की शक्ति थी। जब पृथ्वी संकटमुक्त हो गई तो देवी ने शांत स्थान पर वास करने की इच्छा प्रकट की। इस पर भगवान् ने देवी को मौईल की शांत व निष्पाप धरती प्रदान की। तभी से देवी की यहाँ मान्यता है।

शपराड़ा नारायण (एक)

शपराड़ा नारायण का मंदिर ग्राम आशणी, कोठी कोटकंडी में स्थित है। देवता का गूर श्री चैनेराम, कारदार श्री रोहतराम तथा पुजारी श्री हेतराम है। देवता का खड़ा रथ है जो छत्र से शोभायमान है। इसके चारों ओर आठ मोहरे सुसज्जित हैं, जिनमें एक मोहरा अष्टधातु का, एक स्वर्ण का तथा छह रजतनिर्मित हैं।

कहते हैं कि कभी आशणी गाँव का नारायण देवता काशी से पहाड़ की ओर चल

पड़ा। चलते-चलते वह अनेक स्थानों से होता हुआ सिराज में करमाड़ गाँव पहुँचा। गाँव वालों ने उसे अनाज के संदूक में बंद कर दिया, परंतु थोड़ी देर बाद उन्होंने देखा कि वह संदूक के ऊपर रखे शूर्प पर बैठा था। लोगों ने समझ लिया कि यह कोई देवता है और शूर्प पर प्रकट होने के कारण इसे शपराड़ा नारायण के नाम से पुकारने लगे। करमाड़ से वह बाहू, पूईणा, नीणू होते हुए आशणी में पहुँचा। वहाँ अत्याचारी शासकों का विनाश कर शपराड़ा नारायण लोगों का पूज्य बना।

देवता के यहाँ श्रावण मास में शाऊण मेला वैशाख मास में बैसाखी तथा आश्विन मास में शौईरी मनाई जाती है।

शपराड़ा नारायण (दो)

शपराड़ा नारायण का मंदिर ग्राम भड़ोगी, कोठी कोटकंडी में विद्यमान है। देवता का गूर श्री नेस, कारदार श्री गिरिधर तथा पुजारी श्री अमीचंद है। इसका दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ है, जिसके अग्रभाग में एक पीतल का तथा नौ चाँदी के मोहरे अलंकृत हैं।

जनश्रुति के अनुसार शपराड़ा नारायण भड़ोगी पहुँचने से पहले कहीं अनाज पछोड़ने के पात्र शूर्प पर प्रकट हुआ था, जिस कारण इसका नाम शूपराड़ा नारायण पड़ा, जो अब उच्चारण में शपराड़ा नारायण हो गया है। भड़ोगी गाँव में किसी औरत को खेत में काम करते हुए देवता का मोहरा मिला। जब पता चला कि यह मोहरा शपराड़ा नारायण का है तो लोगों ने इनके चमत्कार से प्रभावित होकर इन्हें पूरे श्रद्धाभाव से मानना आरंभ किया।

देवता के यहाँ ज्येष्ठ, श्रावण तथा मार्गशीर्ष मास में मेले लगते हैं।

हरिनारायण

हरिनारायण का मंदिर गाँव काथी, कोठी हुरंग में विद्यमान है। देवता का गूर श्री रूपचंद, कारदार श्री रूपदास तथा पुजारी श्री धर्मचंद है। इसका चाँदी के छत्र से सुशोभित फेटा रथ है, जिसके अग्रभाग में तीन अष्टधातु के तथा सोलह चाँदी के मोहरे सज्जित हैं।

जनश्रुति है कि एक दुष्ट शासक का अंत करने के लिए अरदार पर्वत की एक सपाट शिला पर अमृत की पाँच बूँदें गिरीं। इन बूँदों से एक देवी और चार देवताओं की उत्पत्ति हुई। इनमें से एक देव हरिनारायण थे। वहाँ अपनी शक्ति से उस शासक का अंत कर वे विभिन्न स्थानों की ओर चले गए। हरिनारायण गाँव काथी में प्रकट हुए तथा लोगों को सुख देने लगे और इस स्थान पर देवता के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

काथीगाँव में देवता के निमित्त कजेली, शनौहला तथा फागली त्योहार मनाए जाते हैं।

हुरंग नारायण (एक)

हुरंग नारायण का मंदिर गाँव दराल, कोठी हुरंग में विद्यमान है। देवता का गूर कालूराम, कारदार बेलीराम, पुजारी ढालेराम है। इसका फेटा रथ है जिसमें कुल उन्नीस मोहरे सुसज्जित हैं। सभी मोहरे रथ के अग्रभाग में स्थापित हैं। इनमें एक मोहरा अष्टधातु

का तथा अन्य चाँदी के हैं।

जनश्रुति है कि अरदार नामक स्थान में एक सपाट शिला पर पैदा हुए पाँच देवी-देवताओं में से एक हुरंग नारायण थे। इनके जन्म लेने का यह उद्देश्य था कि वहाँ के अत्याचारी शासक से प्रजा को मुक्ति दिलाई जाए। इन पाँचों देवी-देवताओं ने अपनी शक्ति से यहाँ के शासक का अंत कर दिया और बाद में सभी अलग-अलग स्थान पर चले गए। वहाँ से चलकर हुरंग नारायण दराल पहुँचे और लोगों में पूज्य हुए।

दराल में देवता के यहाँ फागली, ठडोर तथा कोलू त्योहार मनाए जाते हैं।

हुरंग नारायण (दो)

हुरंग नारायण का मंदिर ग्राम गदियाड़ा में है। देवता का गूर श्री पूर्णचंद, कारदार श्री अभेराम, पुजारी श्री जिंदुराम है। देवता का खड़ा रथ है जिसे उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयोग में लाई जाती हैं। इसमें आठ मोहरे स्थापित हैं।

जनश्रुति के अनुसार यह देवता मंडी की चौहार घटी के हुरंग ग्राम से जिंदु नामक व्यक्ति के नमक के किलटे में आया था। देवता ने जोंगा गाँव में अपना स्थान चुना। बाद में अन्य स्थलों पर भी देवता के मंदिर बने, जिनमें गदियाड़ा भी एक है।

मंघर मास में देवता अपनी 'हार' में फेरा लगाता है।

आदि ब्रह्मा, खोखण

भुंतर से लगभग अढ़ाई किलोमीटर ऊपर की ओर खोखण गाँव में आदि ब्रह्मा का पैगोडा शैली का उत्कृष्ट मंदिर है।

चारमंजिला यह मंदिर आकार में हिडिंबा के मंदिर से बड़ा है। मंदिर की सभी मंजिलों, बाहरी बनावट में आकर्षक शैली का प्रयोग हुआ है। हिडिंबा मंदिर की भाँति इस मंदिर में भी उत्कृष्ट काष्ठकला देखी जा सकती है। मंदिर की सभी शाखाएँ, उसमें लगे लकड़ी के स्तंभ अलंकृत हैं।

पूरा मंदिर पहाड़ी शैली में निर्मित है, जिसमें शहतीरों के बीच पत्थरों की खुश्क चिनाई की गई है। मंदिर लकड़ी के मजबूत चौखटों के बीच जकड़ा हुआ है। गर्भगृह के ऊपर ढलवाँ छत्र में सलेट लगाए गए हैं। चिनाई में लगे पत्थर भी अलंकृत हैं। काष्ठ स्तंभ तथा छतों के बाहर निकले काष्ठ सर्पाकार घड़े गए हैं। मंदिर की चारों मंजिलों में ढलवाँ छत में सलेट लगाए गए हैं। सभी स्तंभ नक्काशी में सजाए गए हैं। दूसरी और तीसरी मंजिल के कोनों में बाहर को पशु तथा पक्षियों के सिर बनाए गए हैं। अतः यह एक अलंकृत पैगोडा का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

आदि ब्रह्मा का हिडिंबा की भाँति रथ है। आदि ब्रह्मा इस क्षेत्र का एक प्रमुख देवता है, जिसके पास पर्याप्त शासन (भूमि) हुआ करता था। देवता के एक मोहरे पर अंकित तिथि के अनुसार यह मंदिर सन् 1753 में राजा टेढ़ी सिंह के समय बना। अतः यह मंदिर अठारहवीं शताब्दी में निर्मित हुआ माना जा सकता है।

आदि ब्रह्मा को समर्पित उत्तरी भारत का यह एकमात्र मंदिर है।

देवता का गूर श्री भीमीराम, कारदार श्री राम सिंह तथा पुजारी श्री तेजराम व श्री केशवराम हैं। देवता का रथ फेटा है, जिसे उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। रथ में चौदह मोहरे शोभायमान हैं, जिनमें एक अष्टधातु, दो पीतल तथा ग्यारह चाँदी के हैं।

जनश्रुति है कि खोखण के समीप एक राजपूत विधवा स्त्री अपनी छह मास की लड़की को पेड़ के नीचे रखकर खेत में निराई कर रही थी। कुछ देर बाद वह स्त्री कुदाली नीचे रखकर बच्ची के पास आकर बैठ गई। बच्ची ने खेलते-खेलते वह कुदाली उठाई और जमीन पर मारी। जमीन से अष्टधातु का मोहरा निकला। वह स्त्री मोहरा घर में लाई और उसकी पूजा करने लगी। बटेलू ब्राह्मणों को जब पता चला कि आदि ब्रह्मा प्रकट होकर राजपूत स्त्री के घर में पूजे जा रहे हैं तो वे उस मोहरे को अपने पास लाए। उन्होंने चमड़े की नहार (आँत) का जनेऊ पहनकर गोबर के उपले और तंबाकू के धुएँ से ब्रह्मा की पूजा की। ब्रह्मा ने रुष्ट होकर बटेलू गाँव को विध्वंस किया और पुनः खोखण में प्रकट होकर पूजित हुए। आदि ब्रह्मा का मंदिर रोहलगी गाँव में भी है। इसके पीछे लोकधारणा है कि एक बार आदिब्रह्मा त्रिजुगी नारायण दियारी ठाकर की पत्नी को भगाकर ले आए, जिससे इन दोनों देवों में संघर्ष हुआ। उसी समय ब्रह्मा ने रोहलगी गाँव में पहुँचकर लोगों की सहायता से दियारी ठाकर का मुकाबला करके युद्धविराम किया। तब खोखण और रोहलगी दोनों स्थलों पर आदिब्रह्मा के मंदिर बने।

देवता के यहाँ बिरशू, शान्हूँ, शौईरी, माहुल जाच़, धारा जाच़ तथा पुनु त्योहार व मेले मनाए जाते हैं।

पौराणिक आख्यान

ब्रह्मा को आदिदेव कहा गया है। सृष्टि के जन्मदाता के रूप में ब्रह्मा त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) में एक महत्त्वपूर्ण स्थान लिए हुए हैं। इसीलिए ब्रह्मा को 'आदि ब्रह्मा' कहा गया है।

जब-जब पृथ्वी पर पाप का भार बढ़ा, पृथ्वी भयाक्रांत हो ब्रह्मा जी के पास गई, यद्यपि कालरूप धारण कर संहार करने का कार्य शंकर का है। ब्रह्मा प्रजा उत्पन्न करने वाले, विष्णु पालक और शंकर संहारक माने गए हैं। किंतु ब्रह्मा जी ने भी पृथ्वी को भारमुक्त करने के लिए समय-समय पर देवताओं को नियुक्त किया है।

पृथ्वी की भारमुक्ति में ब्रह्मा जी की योजना के अनुसार विभिन्न देवताओं का मनुष्य रूप में अवतरित होना और महाभारत जैसा युद्ध कर पृथ्वी का भार हलका करना एक पहलू है। दूसरे मत के अनुसार एक सहस्र युग के बाद महाप्रलय होनी अनिवार्य है। इस महाप्रलय में सारी पृथ्वी जलमग्न हो जाएगी। ऐसी महाप्रलय में जब सारे लोक जलमग्न हो जाते हैं, स्थावर, जंगम, देवता, असुर, सूर्य आदि सभी जातियाँ नष्ट हो जाती हैं, केवल ब्रह्मा जी जीवित रहते हैं और उनकी उपासना में लीन मुनि मार्कंडेय। यह महाप्रलय सहस्रयुग की

समाप्ति के अंतिम भाग में होती है, जब सभी मिथ्यावादी हो जाते हैं।

महाभारत के आरंभ में (आदि पर्व) ब्रह्मा की उत्पत्ति का वर्णन यूँ किया है :

"जिस समय यह जगत् ज्ञान और प्रकाश से शून्य तथा अंधकार से परिपूर्ण था, उस समय एक बहुत बड़ा अंडा उत्पन्न हुआ और वही समस्त प्रजा की उत्पत्ति का कारण बना। वह बड़ा ही दिव्य और ज्योतिर्मय था। श्रुति उसमें सत्य सनातन, ज्योतिर्मय ब्रह्म का वर्णन करती है। वह ब्रह्म अलौकिक, अचिंत्य, सर्वत्र सम, अव्यस्त, कारणस्वरूप तथा सत् और असत दोनों ही हैं। उसी अंडे से लोकपितामह प्रजापति ब्रह्मा जी प्रकट हुए। तदंतर दस प्रचेता, दक्ष, उनके सात पुत्र, सप्तऋषि और चौदह मनु उत्पन्न हुए। विश्वेदेव, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, यक्ष, साध्य, पिशाच, गृहय्क, पितर, ब्रह्मऋषि, राजर्षि, जल, द्युलोक, पृथ्वी, वायु, आकाश, दिशाएँ, संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात और जगत् में जितनी भी वस्तुएँ हैं, सभी उसी अंडे से उत्पन्न हुईं।"

ब्रह्मा जी के मानसपुत्र मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलत्स्य, पुलह और क्रतु माने गए हैं। मरीचि से कश्यप हुए और कश्यप से ही सारी प्रजा उत्पन्न हुई।

मनु को भी ब्रह्मा जी का मानसपुत्र माना गया है। मनु से प्रजापति हुए। इसी तरह महर्षि भृगु को ब्रह्मा जी के हृदय से उत्पन्न हुआ मानते हैं जिनके शुक्राचार्य और च्यवन ऋषि हुए।

श्रीमद्भागवत में उल्लेख है, "सृष्टि के आदि में भगवान् (विष्णु) ने लोगों के निर्माण की इच्छा की। इच्छा होते ही उन्होंने महत्त्व आदि के निष्पन्न पुरुष-रूप ग्रहण किया। उसमें दस इंद्रियाँ, एक मन और पाँच भूत—ये सोलह कलाएँ थीं। उन्होंने कारण जल में शयन करते हुए जब योगनिद्रा का विस्तार किया, तब उनके नाभि सरोवर में से एक कमल प्रकट हुआ और उस कमल से प्रजापतियों के अधिपति ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए।"

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध में ब्रह्मा जी की उत्पत्ति का आख्यान दिया है :

"सृष्टि से पूर्व यह संपूर्ण विश्व जल में डूबा हुआ था। उस समय एकमात्र श्री नारायणदेव शेषशय्या पर सोए हुए थे। अपनी ज्ञानशक्ति को अक्षुण्ण रखते हुए वे योगनिद्रा का आश्रय ले आत्मानंद में मग्न थे···इस प्रकार अपनी स्वरूपभूत्ता इच्छाशक्ति के साथ एक सहस्र चतुर्युगपर्यंत जल में शयन करने के अनंतर जब उन्हीं के द्वारा नियुक्त उनकी कालशक्ति ने उन्हें जीवों के कर्मों की प्रवृत्ति के लिए प्रेरित किया, तब उन्होंने अपने शरीर में लीन हुए अनंत लोक देखे। जिस समय भगवान् की दृष्टि अपने में निहित लिंग शरीरादि सूक्ष्म तत्त्व पर पड़ी, तब वह कालाश्रित रजोगुण से क्षुभित होकर सृष्टि की रचना के निमित्त उनके नाभि देश से बाहर निकला। कर्मशक्ति को जागृत करने वाले काल के द्वारा विष्णु भगवान् की नाभि से प्रकट हुआ वह सूक्ष्म तत्त्व कमलकोश के रूप में सहसा ऊपर उठा और उसने सूर्य के समान अपने तेज से उस अपार जलराशि को देदीप्यमान कर दिया।···उस कमल की कर्णिका पर बैठे हुए ब्रह्मा जी को जब कोई लोक दिखाई नहीं दिया, तब वे आँखें फाड़ चारों दिशाओं में गर्दन घुमाकर देखने लगे। इससे उनके चारों दिशाओं में चार मुख हो गए।"

इसके बाद ब्रह्मा जी द्वारा श्री हरि की स्तुति तथा उनके कहने पर तपस्या और सृष्टि उत्पन्न करने का वर्णन दिया गया है। सृष्टि में दस प्रकार की सृष्टियों का वर्णन किया गया है।

ब्रह्मा

ब्रह्मा का मंदिर कनोण, कोठी बुंगा में स्थापित है। इसका कारदार श्री भीमीराम तथा पुजारी श्री मस्तराम है। देवता का खड़ा रथ छत्र से सुशोभित शिखर वाला है। रथ के चारों ओर एक अष्टधातु तथा सात सोने के बने मोहरे विराजमान हैं।

जनश्रुति है कि गुलरे खानदान के व्यक्ति पहले समय में जिस स्थान में रहते थे वहाँ देऊ ब्रह्मा उनका कुल देवता था। जब वे कनोण में आकर बसे तो वहाँ भी उन्होंने देवाज्ञा से ब्रह्मा को कुल देवता के रूप में मानना आरंभ किया। बाद में देवता की प्रसिद्धि से अन्य लोग भी इसे मानने लगे।

देवता के निमित्त बैसाखी, हूम तथा शौईरी मनाई जाती है।

मणियों की घाटी : पार्वती घाटी

पर्वतपुत्री पार्वती जहाँ नदी होकर बहती है, वह घाटी कुल्लू में पार्वती घाटी कहलाती है। पार्वती शमशी के पास व्यास में मिलती है। अनेक बार पार्वती का पानी व्यास के पानी से अधिक होता है और लगता है, व्यास पार्वती में समा गई है। व्यास सीधी बह रही है, पार्वती एक ओर से उछलती-कूदती आकर इसमें मिलती है, इसीलिए व्यास में पार्वती मिली, ऐसा ही समझा जाता है, यद्यपि पार्वती का मटमैला पानी व्यास के नीले पानी पर पूरी तरह हावी हो जाता है।

मणिकर्ण

पार्वती के बर्फानी पानी में एक ऐसा स्थल है, जहाँ एक ओर बर्फ का पानी बह रहा है तो किनारे पर धरती से उबलता पानी फूट रहा है। एक ओर पानी में बर्फ-सी छुअन ! दूसरी ओर उँगली लगे तो जलकर खाल उतर जाए ! ऐसा अद्भुत स्थल है मणिकर्ण। आसपास ऊँचे पर्वत, बीच में पार्वती। इसी स्थान पर पार्वती दो बड़ी चट्टानों के बीच सँकरे मार्ग से वेग से प्रस्फुटित होती है।

मणिकर्ण में रघुनाथ मंदिर के पुजारियों के पास उपलब्ध एक प्राचीन पांडुलिपि में इस स्थल के माहात्म्य का वर्णन है। इस स्तुति में कुल्लू को 'कुलांत पीठ' के नाम से संबोधित किया गया है। जालंधर पीठ की भाँति कुलांत पीठ और चौहार पीठ का स्मरण हुआ है। पुजारियों के अनुसार वास्तविक पांडुलिपि खो गई है। उपलब्ध पांडुलिपि को संशोधित

करवाकर गुरुद्वारे के बाबा हरि नारायण जी ने छपवाया था, जो अब अनुपलब्ध हो गई है।

पुरातनकाल से यह तीर्थ तपस्वियों, साधु-महात्माओं व श्रद्धालु धर्म-यात्रियों के लिए आकर्षण का केंद्र रहा है। यह स्थान कुल्लू से लगभग नौ किलोमीटर पीछे, भुंतर से पैंतीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। आज तो यहाँ तक कुल्लू से सीधी बस सेवा उपलब्ध है किंतु पुराने समय में लोग कई दिनों का सफर तय कर दूर-दूर से इस घाट पर दुर्गम मार्गों से होते हुए आते थे। हिमाचल में मणिकर्ण और मनीमहेश, ये दो यात्राएँ साधुओं की जबान पर रहती थीं।

कहानी सोने-चाँदी की

जे० कैलवर्ट ने मणिकर्ण को 'होली-सिटी' कहा है और वर्णन किया है इस घाटी में विद्यमान चाँदी की खानों का। इस घाटी में मणिकर्ण से आगे उचच नामक स्थान में एक चाँदी की गुफानुमा खान है। कैलवर्ट ने इस खान के उत्पादन का 1863 में लाहौर संग्रहालय में प्रदर्शन का उल्लेख किया है।

इस खान से चाँदी निकाली जाती थी–यह लोकास्था भी है। ऐसा कहा जाता है, चाँदी बनाने का फॉर्मूला जरी के पास बगियाँदा के कायस्थों के पास था। वही चाँदी बनाया करते थे। किंवदंती है कि एक बार राजा के मन में आया कि क्यों न वह कायस्थ परिवार से चाँदी बनाने का फॉर्मूला हथिया ले और स्वयं ही चाँदी बनवाए। इस उद्देश्य से उसने कायस्थ बुजुर्गों को तंग किया। क्रोध में आकर बुजुर्गों ने फॉर्मूला ही जला दिया।

कहा जाता है रघुनाथ मंदिर में एक चाँदी की चादर चढ़ाई गई थी। मंदिर के प्रांगण में पत्थरों पर भी चाँदी चढ़ी थी। एक हस्तलिखित पांडुलिपि में उल्लेख है कि राजा प्रीतमसिंह (1767-1806) ने अपने राज्य में चाँदी के सिक्के चलाए। जब कोष में चाँदी समाप्त हो गई तो मंदिर की चादर लेकर सिक्के बनाए गए। वास्तव में जिस व्यक्ति के पास ये सिक्के जाते थे, वह इन्हें वापस नहीं करता था। ऐसा कहा जाता है, बंजार में चैहणी के एक सुनार के पास ये सिक्के उपलब्ध थे। चाँदी बनाने वाले इस कायस्थ परिवार के वंशज अब भी भुंतर में विद्यमान हैं।

फॉर्मूला नष्ट हो जाने के बाद भी चाँदी बनाने का प्रयास हुआ। यह चाँदी अब सोने से भी महँगी पड़ने लगी। दूसरे, यह ठीक नहीं उतरी। कहा जाता है कि चादर बनाती बार यह बिखर-बिखर जाती थी।

चाँदी का मोह और कैलवर्ट की कब्र

जे० कैलवर्ट ने अपनी पुस्तक 'द सिलवर कंट्री' में इस घाटी में अनेक चाँदी की खानों का उल्लेख किया है। इनमें से अधिकतर सिक्खों के आक्रमण के समय बंद करवा दी गई थीं। कैलवर्ट ने शमशी के पास दरिया के पानी से सोना एकत्रित करने के धंधे का भी जिक्र किया है। कैलवर्ट ने इस सोने को पंद्रह रुपए प्रति तोला बेचे जाने का उल्लेख किया जो उसके अनुसार महँगा था।

बजौरा से आगे कैलवर्ट की कब्र है। कैलवर्ट के विषय में लोगों में यह धारणा है कि उसने चाँदी बनाने का बहुत प्रयास किया। चाँदी सोने से भी महँगी पड़ी और इसी प्रयत्न में वह अपनी सारी पूँजी लुटा बैठा।

इस बात की पुष्टि कैलवर्ट की पुस्तक से नहीं होती। चाँदी बनाने या पूँजी लुटाने का कहीं पुस्तक में उल्लेख नहीं है। केवल सोने, चाँदी व अन्य धातुओं की खानों के अन्वेषण का उल्लेख है। अलबत्ता उसे हामटा में दुर्लभ मणियाँ मिलीं। खनिज पदार्थों के अन्वेषण से संबद्ध होने के कारण संभवतः लोगों में यह भ्रांति जागी हो कि वह यहाँ चाँदी बनाने के चक्कर में ही आया होगा।

शैव-वैष्णव संगम

सदियों पहले इस स्थल पर शैव-वैष्णवों का संगम हुआ।

कैलाशवासी शंकर की पार्वती की मणि खो जाने और पुनः मिलने के कारण इस स्थान को मणिकर्ण नाम मिला। शिव-पार्वती एक बार घूमते-घूमते किन्नर कैलाश से यहाँ आ निकले। स्थान रमणीक था, अतः रुक गए। देवी पार्वती के कान की मणि खो गई। उन्होंने भोले शंकर से मणि खोजने का अनुरोध किया। बहुत खोजने पर भी मणि जब न मिली तो शंकर कुपित हो उठे। उनकी कुपित दृष्टि ने पाताल तक मार की। फलस्वरूप मणियाँ ही मणियाँ निकलने लगीं। इस कथा के शेषनाग द्वारा मणि चुराने आदि से संबंधित दो-तीन रूपांतर प्रचलित हैं। परंतु कथा मुख्यतः शिव-पार्वती से ही जुड़ी हुई है।

मणिकर्ण से आगे खीर गंगा है, जहाँ से किन्नर कैलाश को रास्ता जाता है। कुछ उत्साही धर्मयात्री व पर्वतारोही इस मार्ग से मानतलाई तक जाते हैं, जहाँ एक रमणीक सरोवर है।

वर्तमान

इस समय मणिकर्ण में एक छोटा-सा शिव मंदिर है। इसी के पास यात्री उबलते पानी में चावलों की पोटली बाँध छोड़ देते हैं जो पंद्रह मिनट बाद पक जाते हैं। रोटियाँ फेंकी जाती हैं, जो पककर ऊपर तैर आती हैं। दाल-सब्जियाँ पक जाती हैं।

ऊपर रघुनाथ जी का मंदिर है। नीचे पुराना मंदिर धँस गया है और इसकी मूर्तियाँ भी ऊपर मंदिर में रख दी गई हैं। यह मंदिर एक शताब्दी पूर्व भी धँसा हुआ था। इसकी पुष्टि जे० कैलवर्ट के कथन से होती है। रघुनाथ मंदिर के नीचे छोटे-से मैदान में एक रथ खड़ा रहता है। ठीक वैसा ही रथ जैसा ढालपुर मैदान, कुल्लू में खड़ा रहता है और जिसका प्रयोग कुल्लू दशहरा में रथ-यात्रा के समय होता है। मणिकर्ण में भी कुल्लू की भाँति दशहरा मनाया जाता है और रथ-यात्रा होती है।

ऐसा भी विश्वास है कि कुल्लू में स्थित रघुनाथ जी की मूर्ति पहले यहीं प्रतिष्ठित थी। राजा जब सुलतानपुर चले गए तो उन्होंने मूर्ति को कुल्लू मँगवा लिया क्योंकि कुल्लू से यहाँ आकर पूजा-अर्चना करने में कठिनाई होती थी।

यदि यह मंदिर उसी मूर्ति से संबद्ध रहा हो तो यहाँ वैष्णव प्रभाव राजा जगत सिंह

के समय सोलहवीं शताब्दी में ही आया। उससे पहले यह स्थान पूर्णतया शिव-पार्वती का था, यह निश्चित है। मणिकर्ण के पास टिपरी के ब्राह्मण की कथा है जिसमें कुल्लू में रघुनाथ मूर्ति आने की चर्चा है। इस कथा में भी राजा मणिकर्ण की ओर जा रहा था, जब उसने ब्राह्मण से मोती लेने चाहे थे। मणिकर्ण से राजा की वापसी पर ब्राह्मण के जिंदा जल जाने का हादसा हो गया, अतः नाथ संप्रदाय के पतन और वैष्णव के प्रभाव से ही यहाँ भव्य मंदिर बने, यह संभावित है।

मणिकर्ण माहात्म्य में मणिकर्ण की कथा का इस प्रकार से वर्णन है–हिमालय के चरणों में हरिन्द्र पर्वत के पास आश्रम में गरम और शीतल जल के सरोवर हैं। पार्वती के क्रीड़ास्थल में उनके कान की मणि खो गई। पार्वती की उस खोई हुई मणि को खोजने के लिए शंकर ने अपने गणों और भूतों को आज्ञा दी। बहुत खोजने पर भी जब गणों को मणि न मिली तो वे क्रोधित हो उठे और सबको नष्ट करने पर तुल गए। जब शंकर क्रोधित हो त्रिनेत्र से त्रिलोकी को जलाने पर आमादा हो गए तो योगियों ने शेषनाग को जगा दिया। भयभीत शेषनाग मणियाँ ही मणियाँ फुंकारने लगे।

इस स्थान में अब तक सचमुच ये मणियाँ निकलती थीं। उफनते पानी के साथ यह एक दूसरा आश्चर्य था। एक बार मणिकर्ण के पुजारी ने वे मणियाँ दिखाईं। वे छोटे-छोटे सुडौल गोल पत्थर थे, जो अब पुजारी के पास बहुत कम रह गए हैं। पहले ये लोग इन्हें प्रसाद के रूप में देते थे और जो श्रद्धालु यहाँ स्नान के लिए न आ पाए वे अपने स्नान के पानी में इन्हें डालकर नहाते थे तो इस तीर्थ का पुण्य पाया हुआ मानते थे।

कहा जाता है, वर्तमान राम मंदिर के पीछे एक उफनते पानी का स्रोत था, जिसमें बहुत ऊँचे तक पानी उफनता था। इसी से ये मणियाँ निकलती थीं। यह ऊँची धारा सात फुट तक ऊपर उछलती थी। 1905 के भूकंप में यह बंद हो गई। इस बात की पुष्टि मणिकर्ण में पुजारियों के पास उपलब्ध दर्शकों की सम्मतियों से भी होती है।

काँगड़ा के एक दर्शक श्री मेलाराम, जो यहाँ सोलह वर्षों के बाद 21.7.1915 में आए, ने लिखा है कि रामचंद्र मंदिर वाले गर्म पानी के स्रोत 1905 के भूकंप से बदल गए हैं। ये आठ से दस फुट तक ऊँचे उठते थे, किंतु अब ये 12 इंच से ऊपर नहीं जाते।

डी०एस० कॉलेज, लाहौर के प्रोफेसर एन०एन० गोबोल, जो मणिकर्ण में 24 जून, 1919 में आए, ने लिखा है कि मणिकर्ण के गर्म पानी के चश्मे उन्होंने इंग्लैंड, फ्रांस तथा जर्मनी; सबमें अधिक गर्म पाए। इनमें से एक चश्मा जो आठ से दस फुट तक ऊँचा उठता था, अब केवल दस इंच ऊँचा ही रह गया है।

ऐसा कहा जाता है कि आठ से दस फुट तक ऊँचे उठने वाले इसी चश्मे से कभी-कभी मणियाँ निकलती थीं।

बुजुर्ग लोग इस बात का दावा भी करते हैं कि यहाँ एकाधिक शिव-मंदिर थे जिन्हें बाद में राम-मंदिरों में बदल दिया गया।

शंकर, राम के बाद गुरु नानक

इस समय यहाँ एक भव्य गुरुद्वारा है जहाँ यात्रियों के ठहरने की व्यवस्था के साथ-साथ हर समय लंगर लगा रहता है। कोई भी व्यक्ति पंगत में बैठ पेट-भर प्रसाद खा सकता है। सेवादार आपको खाने-पीने, बैठने-ठहरने के लिए आदरयुक्त शब्दों में पूछेंगे। पार्वती पार करने का पुल सीधा गुरुद्वारे में जाता है और कुछ सैलानी यह भी नहीं जान पाते कि ऊपर मंदिर भी है। पहले सीधे मंदिर में जाने का रास्ता पुल से था, जहाँ पार्वती बहुत सँकरी होकर दो चट्टानों के बीच से निकलती है। अब झूलने वाला रस्सों का पुल सीधा गुरुद्वारे में प्रवेश करता है। गुरुद्वारे के बाबा जी के अनुसार, जो यहाँ गत पचास वर्षों से हैं, गुरु नानक यहाँ अपने शिष्यों बाला-मरदाना सहित पधारे थे।

और अब हिप्पी

अब इस क्षेत्र में हिप्पियों का दखल भी बढ़ गया है। उनका पाश्चात्य संगीत पार्वती की साँय-साँय ध्वनि पर बुरी तरह हावी हो जाता है। कई बार सारा मणिकर्ण हिप्पियों से आच्छादित हो जाता है। वे यहाँ होटलों, दरिया के किनारे, मंदिर के बाहर बैठे, लेटे, सुस्ताते देखे जा सकते हैं। बहुत-से मणिकर्ण व इसके आसपास गाँवों में किराए के मकानों में रहते हैं। नशे की खुमारी में आराम से पसरे रहना या ध्यानावस्था में लीन हो जाना ही इनका नित्यकर्म है।

ऋषि परंपरा

पराशर ऋषि कमांद

मंडी जिला में स्थित पड़ासर या पराशर मंदिर की भाँति कुल्लू में मोहल के ऊपर चढ़ाई पर कमांद गाँव आता है। कमांद गाँव से ऊपर जंगल में पराशर ऋषि का पैगोडा शैली का विशिष्ट मंदिर है।

पैगोडा की दो मंजिलें लकड़ी से छाई हुई हैं, तीसरी में शंकुनुमा शिखर है।

उत्तर की ओर मंदिर का छोटा प्रवेश द्वार है। मंदिर के भीतर देवता की 'पिंडी' है। पुजारी के अनुसार, यह एक प्राकृतिक पत्थर है जिसे पिंडी के रूप में पूजा जाता है। मंदिर के द्वार में पराशर मंदिर मंडी की भाँति उत्कृष्ट काष्ठकृतियाँ बनी हुई हैं। कुल्लू के अन्य मंदिरों की भाँति यहाँ भी प्रवेश के अंतिम स्तंभों में सर्पाकार आकृतियाँ बनी हुई हैं। ये सर्प जिनके मुँह ऊपर की ओर हैं, कुल्लू के अधिकांश मंदिर द्वारों पर चित्रित हैं। स्तंभों में कुंभ या घट या फूल-पत्ते बने हैं। गंगा-यमुना, गणेश की मूर्तियाँ भी चित्रित की गई हैं।

मंदिर के चारों ओर खिड़कियों में भी महत्त्वपूर्ण चित्रकारी हुई है। पश्चिम की ओर कीर्तिमुख, नृत्य करते गंधर्व, शिव आदि बनाए गए हैं। दक्षिण में विष्णु के साथ गंधर्व बनाए गए हैं।

ऐसी चित्रकारी सभी मंजिलों में की गई है। आपस में मिले हुए सर्प, कुंभ, फूल-पत्ते दर्शनीय हैं।

मंडी के पराशर मंदिर का काल निर्धारण इतिहास के अनुसार किया गया है। कुल्लू के पराशर मंदिर का उल्लेख इतिहास में नहीं मिलता। दोनों मंदिरों में बहुत समानताएँ हैं। दोनों पैगोडा शैली के मंदिर हैं। दोनों पराशर ऋषि को समर्पित हैं। कमांद में भी ऋषि के मंदिर के पास एक झील है, किंतु मंडी के पराशर जैसी नहीं। यहाँ संभवतः सर्दियों या बरसात में ही थोड़ा पानी भरता है।

मोहल से मैं स्थानीय आदमी के साथ कमांद की चढ़ाई चढ़ा था। धूप तेज थी और वह आदमी बड़ी सुगमता से बकरी की तरह पहाड़ी चढ़ा जा रहा था। चढ़ाई चढ़ते ही मैं बड़ी कठिनाई से अपना साँस संयत कर पा रहा था। हर चढ़ाई पर गाँव दिखने की चाह करता। अंत में जब कमांद गाँव में पहुँचे तो वहाँ देवता की सभा बैठी हुई थी और एक महत्त्वपूर्ण फैसला लिया जा रहा था। दरअसल एक व्यक्ति से नशे में अनजाने से एक व्यक्ति का खून हो गया था। वह व्यक्ति गाँव में आया हुआ था और रात पीते-पिलाते किसी प्रकार हत्या हो गई। दोषी व्यक्ति पुलिस तथा अदालत से छूट गया था किंतु देवता से छूटना आसान न था।

'हत्या होने से देवता को छूत लग गई है, जिसका प्रायश्चित्त निहायत जरूरी है,' एक व्यक्ति ने बताया। छूत के लिए देवता की सेवा में उसे प्रायश्चित्त करना जरूरी था, चाहे अदालत से छूट जाए।

यह न्याय दरबार मलाणा के जमलू की भाँति ही था जहाँ किसी भी झगड़े के लिए न्यायालय जाना नहीं होता।

प्रादुर्भाव

देवता यहाँ कैसे आया, इस विषय में कोई कथा नहीं है। ग्रामीण बताते हैं कि इस विषय में बुजुर्गों ने कुछ नहीं बताया।

कहा जाता है कि 1905 के भूकंप में मंदिर का एक जोड़ हिल गया। मंदिर की मरम्मत के लिए उसी खानदान का कारीगर बुलाया गया, जिसने पहले ये मंदिर बनाया था। रात को देवता कारीगर को डिजायन बताता था और कारीगर दिन में बनाता था। 1905 के बाद भी उसी खानदान का लड़का बुलाया गया जो बारह साल का था। अब तक तो वह बूढ़ा हो गया होगा। मंदिर के लिए पेड़ काटने पर बकरा भी काटा जाता है।

मंदिर का उस समय (1972) कारदार बालीराम था। पुजारी धर्मदास और तीन गूर– रामचंद्र, बशाखूराम और बीरचंद। भंडारी भोलेराम था। मंदिर की एक प्रबंधक कमेटी भी बनी हुई है, जिसमें प्रधान देवी सिंह नेगी तथा सचिव बृजलाल सहित खड़ियार, मुथल, पिरड़ी आदि गाँव के पंद्रह सदस्य हैं।

उत्सव

देवता के उत्सवों को उच्छव कहा जाता है। देवता के वर्ष में कई उत्सव मनाए जाते हैं। माघ मास में कमांदीपूर नाम का उत्सव मनाया जाता है। कमांदीपूर दस और सोलह प्रविष्टों के बीच रविवार या वीरवार (लगभग 26 जनवरी) को होता है। इसे दीवाली की तरह मनाया जाता है। 'पूर' का अर्थ 'आग की लपटें' है। उत्सव के दिन बीच में खूब आग (घियाना) जलाई जाती है। गूर आग के चारों ओर नृत्य करते हैं। जागरण (जागा) होता है। अगले दिन, दिन में मेला जुटता है। नाच-गाना होता है। तीसरे दिन देवता के आदमी अपना आयोजन करते हैं, जिसमें खानपान भी होता है।

वैशाख में बैसाखी मनाई जाती है। संक्रांति के बाद रविवार या वीरवार को उत्सव होता है जिसमें देवता का रथ मंदिर में जाता है। लोग पुच्छ लेते हैं, प्रश्न पूछते हैं। इसके बाद भोज किया जाता है।

श्रावण में भी वैशाख की तरह रविवार या वीरवार को शनोह्ली मेला लगता है। यह उत्सव भी एक दिन का होता है।

कमांद के पास मुथल में भी हर तीसरे वर्ष जाच़ (मेला) होता है।

भादों मास में पुजारी एक महीना लगातार मंदिर में जाकर पूजा करता है। एक समय खाना खाएगा। दीपक जलाया जाएगा। इन दिनों पुजारी मंदिर में ही रहेगा। पुजारी के साथ एक आदमी और रहता है क्योंकि मंदिर निर्जन स्थान में है।

देवता का एक रथ सिर पर उठाने वाला 'करड़ू' है।

संकीरणी देऊ (शृंगी ऋषि)

संकीरणी देऊ का मंदिर बंजार में है। इसे चैहणी कोठी कहा जाता है। चैहणी कोठी का यह किलानुमा टावर पहाड़ी वास्तुकला का अनूठा उदाहरण है। यह किला लगभग डेढ़ सौ फुट ऊँचा है, जहाँ उस पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ न होकर लकड़ी का शहतीर रखा गया है जिसमें सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। ऐसा प्रायः कुल्लू के पुराने घरों में भी है, जहाँ ऊपर की मंजिल में जाने के लिए सीढ़ियाँ काट-काटकर पूरे के पूरे शहतीर रखे जाते हैं।

डेढ़ सौ फुट ऊँचा यह आठ मंजिला टावर है जिसमें काष्ठकला के भी दर्शन होते हैं। ऊपर की मंजिल में ऋषि की प्रतिमाएँ रखी हुई हैं। आधारतल में मुरलीधर स्थापित है।

संकीरणी देऊ को ऋषि भी और नाग भी कहा जाता है। बंजार से लगभग पंद्रह किलोमीटर उधर धार पर ऋषि का छोटा-सा मंदिर है। इसे भी ऋषि का मूल स्थान माना जाता है। यह मंदिर ज्येष्ठ संक्रांति को खुलता है जब यहाँ कई लोग आते हैं।

संकीरणी देव का नाम पहले कांडानाग भी था। मंदिर के साथ एक छोटा टावर है जिसमें देवता का भंडार है।

शृंगी ऋषि का यह ऊँचा टावर वास्तुकला का अद्‌भुत नमूना है। इसकी प्रथम मंजिल तक देवदार के शहतीर द्वारा पहुँचा जा सकता है, जिसमें सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। टावर का

आधार और लगभग चालीस फुट ऊपर तक लकड़ी के शहतीरों के बीच पत्थरों की चिनाई से बनाया गया ढाँचा है। पहली मंजिल से ऊपर की चार मंजिलें सीढ़ियों से जुड़ी हुई हैं। सबसे ऊपर की मंजिल में बरामदा है, जहाँ से चारों ओर देखा जा सकता है। इस मंजिल में योगनी या जोगनी का वास माना जाता है, जहाँ जोगनियों के मोहरे रखे हुए हैं।

संकीरणी देऊ का मंदिर ग्राम बागी, तहसील बंजार में विद्यमान है। देवता का कारदार श्री भगतराम भारद्वाज व पुजारी श्री मोहर सिंह है। इसका खड़ा रथ है जिसमें चारों ओर आठ मोहरे शोभित हैं।

संकीरणी देऊ को ऋषि शृंगी भी कहते हैं। संकीरणी टीले पर कई वर्ष तक तप करने के कारण इनका नाम संकीरणी देऊ पड़ा। पहले इन्हें कांडा नाग कहते थे। किंवदंती है कि एक बार बाहू और लाँबरी की योगिनियाँ संकीरणी टीले की ओर जाते हुए सोने की गेंद से खेल रही थीं। राह में उदू वरडाई नामक जादूगर ने उनकी गेंद पकड़ ली। उन्होंने उससे विनती की कि वह उनकी गेंद लौटा दे, क्योंकि उन्हें संकीरणी टीले पर शृंगी ऋषि के पास जाना है। जादूगर ने उनकी गेंद लौटा दी। उन योगिनियों से उसे पता चला कि संकीरणी देऊ ही शृंगी ऋषि हैं। उसी से अन्य लोगों को भी इस बात का पता चला। यह वही शृंगी ऋषि माने जाते हैं जिन्होंने राजा दशरथ के यहाँ पुत्रेष्टि यज्ञ किया था।

देवता के यहाँ ज्येष्ठ मास में बंजार मेला लगता है।

व्यास ऋषि

व्यास ऋषि का मंदिर ग्राम कुँईर, कोठी रघुपुर, फाटी विषलाधार, तहसील आनी, कुल्लू में विद्यमान है। देवता का गूर श्री मोतीराम, कारदार श्री लक्ष्मी तथा पुजारी श्री कर्मचंद है। देवता का त्रिकोण आकार का 'खड़ा रथ' है जिसके शीर्ष पर छत्र शोभित है, जिसे उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। इसके अग्र भाग में दो चाँदी व पाँच पीतल के मोहरे विराजित हैं।

कहते हैं कि कुँईर गाँव के समीप जंगल में एक व्यक्ति को पेड़ काटते हुए उसमें से आवाज़ आई, 'मुझे मत काटो।' कुछ क्षण बाद उस व्यक्ति ने जब पेड़ पर दोबारा कुल्हाड़ी मारी तो उसमें से एक मोहरा निकला। वह उसे घर ले आया और गाँव वालों को इस विषय में बताया। लोगों ने जब इस रहस्य को जानने का प्रयास किया तो सिद्ध हुआ कि मोहरा व्यास ऋषि का है। तब से इस स्थान पर व्यास ऋषि की मान्यता हुई।

देवता के यहाँ राणी कोट, सिसरी, बाल्ह, टगाली, भरेस, बशाऊल, मिथनु तथा भडेरा मेले व त्योहार मनाए जाते हैं।

गौतम ऋषि

गौतम ऋषि का मंदिर मनिहार, कोठी कोटकंडी में है। देवता का कारदार श्री ठाकरू तथा पुजारी श्री आलमचंद है। चाँदी के छत्र से भूषित शीर्षभाग वाला खड़ा रथ है, जिसके चारों कोनों पर चाँदी की घुंडियाँ लगी हैं। रथ चारों ओर से मोहरों से सजा है, जिनमें से

एक मोहरा अष्टधातु का, एक पीतल का तथा सात मोहरे चाँदी के बने हैं।

जनश्रुति है कि गौतम ऋषि प्राचीन काल से मनिहार में रहते थे। एक समय ऐसा आया कि यहाँ के लोग दुष्ट वृत्ति के हो गए। वह अपनी दुष्टता को छिपाने के लिए देवता की पिंडी धोकर उसका जल पीते और सच्चा होने की कसमें खाते। इस तरह झूठी कसमें खाने से उनका सर्वनाश हो गया। केवल एक गर्भवती महिला बची। अकेले रहने के डर से वह गड़सा आ गई और अपने मायके में रहने लगी। वहाँ उसने एक पुत्र को जन्म दिया, लेकिन कुछ दिन के बाद उस बालक की छाती में फोड़ा हुआ। कई उपचार करने पर भी वह ठीक नहीं हुआ। छाती में इतना बड़ा घाव हुआ कि कलेजा नजर आने लगा। देवी-देवताओं से पूछ डाली गई तो ज्ञात हुआ कि गौतम ऋषि के प्रकोप से ऐसा हुआ है। गौतम ऋषि से प्रार्थना की गई तो बताया कि यह स्त्री मनिहार में रहकर मेरी पूजा-अर्चना करे। वह स्त्री बच्चे को लेकर मनिहार चली गई और वहाँ देवता की पुनः स्थापना की।

देवता के बैसाखी, कौंढा तथा फागली मेले लगते हैं।

गौतम ऋषि, वेदव्यास और कंचन नाग

देवता का मंदिर गौशाल, कोठी मनाली में विद्यमान है। देवता का गूर श्री रिड़कू राम, कारदार श्री खीमराज, पुजारी श्री बुधराम तथा भंडारी श्री बलिराम है। इसका रथ फेटा है, जिसके शिखर भाग पर मुकुट सुशोभित है। रथ के अग्रभाग में दोनों कोनों पर चाँदी की घुंडियाँ लगी हैं तथा उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। रजत निर्मित छह मोहरे रथ के आगे विराजित हैं।

गोशाल गाँव में लोद खानदान का एक गूँगा व्यक्ति खेत में हल चला रहा था। अचानक एक स्थान पर उसका हल एक पत्थर में फँस गया। उसने हल निकालने का प्रयत्न किया तो उस स्थान से आवाज आई कि वे गौतम ऋषि, वेद व्यास और कंचन नाग हैं। गूँगा डर गया और गाँव में जाकर इशारे से लोगों को खेत में लाया। जब उसने पुनः हल निकालने की कोशिश की तो वही आवाज फिर से आई। लोगों ने उस स्थान को खोदा तो पत्थर की एक त्रिमुखी पिंडी मिली। इसी स्थान पर लोगों ने तीन देवों की स्थापना करके मंदिर बनाया और बाद में तीनों देवों का संयुक्त रथ बनाया गया।

सराणी, शौईरी तथा फाल्गुन मास में फागली मेले लगते हैं।

चमन ऋषि

चमन ऋषि का मंदिर नजाँ, कोठी कोटकंडी में विद्यमान है। देवता का गूर श्री रामचंद, कारदार श्री डीणूराम तथा पुजारी श्री जींदूराम है। देवता का खड़ा रथ चाँदी के छत्र से शोभायमान है, जिसके चारों कोनों पर चाँदी की फुल्लियाँ लगी हैं। रथ को उठाने के लिए दो अर्गलाओं का प्रयोग किया जाता है। इसके चारों ओर छह सोने, दो अष्टधातु, एक ताँबे तथा एक चाँदी के बने मोहरे स्थापित हैं। इनमें से एक मोहरा कुल्लू नरेश बहादुर सिंह ने च्यवन ऋषि नजाँ की शक्ति से प्रभावित होकर देवता के निमित्त प्रदान किया है, जो आज

भी रथ में लगाया जाता है।

कहते हैं कि मणिकर्ण के समीप शिल्हा गाँव में किसी काल में देवता चमन ऋषि प्रकट हुए थे। कालांतर में शिल्हा निवासी नजाँ गाँव में आकर बस गए। उन्होंने यहाँ भी अपने इष्टदेवता की स्थापना की। इनकी शक्ति के कारण अन्य लोगों में भी देवता के प्रति श्रद्धा बढ़ गई।

देवता के यहाँ कौंढा, माघ, सौहा जाच़ तथा फागली मनाई जाती है।

दरवासा ऋषि

दरवासा ऋषि का मंदिर पालगी, कोठी भलाहण में स्थित है। इसका गूर श्री कुंदनलाल, कारदार श्री राजसिंह तथा पुजारी श्री खीमराज है। देवता का खड़ा रथ छत्र से विभूषित शीर्ष वाला है। इसमें एक सोने का, चार चाँदी के तथा छह अष्टधातु के बने मोहरे सुसज्जित हैं।

दुर्वासा ऋषि जिन्हें स्थानीय लोकभाषा में दरवासा ऋषि कहते हैं, बड़े क्रोधी स्वभाव के रहे हैं। ये जब भी अपनी तपस्या पूरी करते तो किसी न किसी पर क्रोध कर बैठते और अपनी वर्षों की तपस्या को निष्फल कर देते। अंत में इन्होंने घोर तपस्या की ठानी। वे पालगी गाँव में आए और यहाँ उन्होंने सिर को पृथ्वी में गाड़कर टाँगें आकाश की ओर करके कठिन तपस्या की, जिससे वे क्रोध पर विजय पाकर तपस्या में पूर्ण सफल हुए और अपने कल्याणकारी गुणों से लोगों में पूज्य हुए।

देवता के यहाँ वैशाख साजा, बीस वैशाख को बीहा रा फेरा तथा बीस ज्येष्ठ को घाहा री जाच़ मनाई जाती है।

नारद मुनि

नारद मुनि का मंदिर नीणू, कोठी कोटकंडी में है। इसका गूर श्री खूबराम, कारदार व पुजारी श्री भीमीराम तथा भंडारी श्री नानकचंद है। देवता का खड़ा रथ है, जिसके शीर्ष पर चाँदी की पट्टिकायुक्त टोपी भूषित है। इसमें एक अष्टधातु तथा दस चाँदी के बने मोहरे शोभायमान हैं।

एक बार देवर्षि नारद पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए नीणू से जा रहे थे तो वहाँ उन्हें गाँव की महिलाओं के कोकिल कंठों से आध्यात्मिक गीतों के मधुर स्वर सुनाई दिए। नारद मुनि इन स्वरों से आकृष्ट होकर वहीं रुके। लोगों ने पूरे श्रद्धाभाव से इनकी सेवाभक्ति की और तब से ही ये यहाँ के इष्ट देवता बने। अब भी सावन-भादों में जब नारद मुनि का पर्व होता है तो उस अवसर पर प्राचीन समय के उन आध्यात्मिक गीतों का नीणू लामण के नाम से गायन करके नारद मुनि को रिझाया जाता है।

देवता का श्रावण व भाद्रपद मास में त्योहार मनाया जाता है।

पंडीर ऋषि

पंडीर ऋषि का मंदिर कथेऊगी में स्थित है। इसके गूर श्री तुलेराम व श्री नरोत्तमराम,

कारदार श्री लोतम व श्री मेहरचंद तथा पुजारी श्री नुरमचंद व श्री रोशनलाल हैं। चाँदी के छत्र से भासित शिखर वाला देवता का सीधा रथ है। इसमें सात स्वर्णनिर्मित तथा एक अष्टधातु का मोहरा शोभायमान है।

पंडीर ऋषि को पौराणिक पुंडरीक ऋषि माना जाता है। यह ऋषि पहाड़ी प्रदेश में आकर सराहन, थनाईल कंढा, करटाह आदि स्थानों से होता हुआ कथेऊगी में पहुँचा। यहाँ यह पत्थर की पिंडी को विस्फोटित करके सर्प रूप में प्रकट हुआ और मकड़ी के रूप में लार-सूत्र से घेरा बाँधा और अपना देवस्थल बनवाया। इस संबंध में देवता की कथा-भारथा के बोल लोक भाषा में निम्नलिखित हैं—

कथेऊगी भीतरै, सर्पा रूपै पिंडी फूटा
गलाहू रै सूत्रै फेरा धिन्ना, अपणा धमेऊला बणाई बेठा

देवता के यहाँ असौज होम, मंघर-दियाली, फागुण फेरा, बैसाख स्नान, आषाढ़-सर की डुबी तथा भादों होम मनाए जाते हैं।

मार्कंडेय ऋषि (एक)

मार्कंडेय ऋषि का मंदिर ग्राम बालागढ़, कोठी शिकारी, तहसील बंजार, कुल्लू में अवस्थित है। इसका गूर श्री हेतराम, कारदार श्री चेतन शर्मा तथा पुजारी श्री हीरालाल शर्मा है। देवता के छत्र से शोभित शीर्ष भाग वाले 'खड़े रथ' को दो अर्गलाओं से उठाया जाता है। रथ के चारों ओर आठ मोहरे सुसज्जित हैं, जिनमें से एक मोहरा अष्टधातु का है, शेष सोने के हैं।

बालागढ़ में श्री त्रिपुर बाला सुंदरी और मार्कंडेय ऋषि एक ही मंदिर में वास करते हैं। लोक विश्वास है कि बाला सुंदरी की प्रसिद्धि के कारण ही इस स्थान का नाम बालागढ़ पड़ा। स्थानीय बोली में इसे 'बौला' भी कहते हैं। यहीं एक शिवलिंग भी है जिसके बारे में धारणा है कि यहाँ मार्कंडेय ऋषि ने शिव शक्ति की उपासना करके सिद्धि प्राप्त की थी। ऐसा मानना है कि शिवलिंग का मूल पाताल तक है।

देवता के यहाँ बाला अवतार, जीरू, रक्षाबंधन और बंजार मेला मनाया जाता है।

मार्कंडेय ऋषि (दो)

मार्कंडेय ऋषि का मंदिर मँगलौर, कोठी मँगलौर, जिला कुल्लू में विद्यमान है। देवता का गूर श्री गिरधारीलाल, कारदार श्री जीवनचंद तथा पुजारी श्री दौलतराम हैं। देवता का छत्र से भूषित शिखर वाला खड़ा रथ है। रथ के चारों ओर दो-दो मोहरे स्थापित हैं जिनमें से एक मोहरा अष्टधातु का, एक चाँदी का तथा छह स्वर्णनिर्मित हैं।

मँगलौर सैकड़ों वर्ष तक मंडी राज्य की राजधानी रही। यहाँ का राजवंश मार्कंडेय ऋषि को अपना कुलदेवता मानता था। कालांतर में कुल्लू के राजा ने मंडी नरेश को मारकर इस क्षेत्र को अपने राज्य में मिला लिया। मँगलौर में राजधानी उजड़ जाने के बाद मार्कंडेय

ऋषि राजवंश के देवता तो न रहे, परंतु जनसाधारण की आज भी उनमें पूर्ण आस्था है।

देवता के निमित्त फाग तथा विट्ठ त्योहार मनाए जाते हैं।

लोमश ऋषि

लोमश ऋषि का मंदिर ग्राम पेखड़ी, कोठी नुहांडा, तहसील बंजार में विद्यमान है। देवता का गूर श्री वेदराम पंडित, कारदार व पुजारी श्री ज्वाला सिंह है। इसका 'खड़ा रथ' है, जिसके ऊपर चाँदी का छत्र सुशोभित है। रथ के चारों ओर आठ मोहरे विराजित हैं, जिनमें एक अष्टधातु का है तथा शेष स्वर्णनिर्मित हैं।

कहते हैं कि चाईले खानदान का एक व्यक्ति जब अपने खेत में हल चला रहा था तो वहाँ उसे देवता का एक मोहरा मिला। लोगों ने इस बारे में जाँच की तो पता चला कि यह लोमश ऋषि हैं। जिस व्यक्ति को मोहरा मिला था, वह पूजा करने में असमर्थ था। अतः रहेड़ा खानदान का व्यक्ति देवता का पुजारी बना। किसी कारणवश रहेड़ा खानदान समूल नष्ट हो गया तो इस खानदान की विरासत जुफरा खानदान को मिली और तब से यही खानदान लोमश ऋषि का पुजारी है।

देवता के यहाँ बैसाखी, दियाली, फागली, शणयाज, बंजार मेला तथा गुशैणी मेला लगता है।

गर्ग ऋषि

गर्ग ऋषि का मंदिर ग्राम रोट में विद्यमान है। देवता का गूर श्री जीतराम, कारदार श्री हरफेराम तथा पुजारी श्री ओमप्रकाश शर्मा है। इसका खड़ा रथ है, जिसमें कुल आठ मोहरे सुशोभित हैं।

गर्ग ऋषि को स्थानीय बोली में देऊरिशा भी कहते हैं। किसी समय वे दिल्ली से चलकर लारजी, कणोण, धाऊगी, बनोगी, शैंशर, रैला, गोही, भलाहण, खनयारगी होते हुए रोट पहुँचे। यहाँ इन्होंने अलौकिक चमत्कार दिखाए, जिससे वे लोगों में पूज्य बने।

रोट में देवता के निमित्त धनसार वैशाख तथा कृष्ण जन्माष्टमी मनाई जाती है।

गर्गाचार्य

गर्गाचार्य का मंदिर ग्राम लाशणी में स्थित है। इसका गूर श्री खीमू, कारदार श्री लोतमराम तथा पुजारी श्री फतेहचंद है। देवता का फेटा रथ है जिसमें आठ मोहरे लगे हैं।

जनश्रुति है कि एक समय लाशणी गाँव में एक साधु आया। उसने जिस स्थान पर अपना त्रिशूल गाड़ा वहाँ से पानी का स्रोत निकल आया। लोग इस चमत्कार को देखकर उसके आगे नतमस्तक होने लगे। साधु का परिचय प्राप्त होने पर पता चला कि वे गर्गाचार्य हैं। एक दिन साधु अचानक अंतर्धान हो गया। तब से लोग उसे देवता के रूप में मानने लगे।

देवता के यहाँ भादों, शौईरी व चैत्र संक्रांति मनाई जाती है।

अन्य ग्राम देवता

मनु मंदिर

सृष्टि के आदि पुरुष मनु को ऋग्वेद में 'पिता' कहा गया है। पिता, जो पालक है, रक्षक है। जिससे मानव-वंश का प्रारंभ हुआ, जो सृष्टि का संस्थापक और सामाजिक विधान का मार्गदर्शक है। मनु ने मनुष्यों को दास या दस्युओं से मुक्त करवाया। यज्ञ और श्राद्ध के नियामक मनु का मत्स्य पुराण, शतपथ ब्राह्मण, महाभारत में बार-बार स्मरण किया गया है।

मनु एक व्यक्ति का नाम नहीं है। मनु एक परंपरा है जो शताब्दियों से भारतीय मानस में विद्यमान है। मनु एक नहीं, अनेक हुए हैं। पौराणिक परंपरा के अनुसार प्रत्येक मन्वंतर का अलग-अलग मनु हुआ है। जिस प्रकार अनेक व्यास हुए, समय के अंतर जब-जब वेदों के विस्तार की आवश्यकता पड़ी, नया व्यास हुआ। कहा जाता है कि अब तक अट्ठाईस व्यास हो चुके हैं। इसी प्रकार सृष्टि के विध्वंस के बाद जब-जब नवनिर्माण हुआ, मनु प्रकट हुए। भागवत पुराण में जिन मनुओं के नाम आते हैं, वे हैं : स्वायंभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, धर्म सावर्णि, रुद्र सावर्णि, देव सावर्णि, इंद्र सावर्णि। भारतवर्ष के प्रसिद्ध क्षत्रिय राजवंश मनु तथा उसकी संतानों से ही चले हैं। मरीच, ऋषभ, ध्रुव, दक्ष, विवस्वान आदि प्रतापी राजा मनु वंश में हुए। विवस्वान के पुत्र वैवस्वत मनु को सातवें मन्वंतर का मनु माना जाता है, जिनके समय जलप्लावन हुआ और समस्त पृथ्वी जलमय हो गई।

महाभारत में इस जलप्लावन और उसकी भूमिका का उल्लेख है। एक बार जब मनु हाथ धोने लगे तो उनके हाथ एक छोटी मछली आई। मछली के आग्रह पर मनु ने इसे एक बड़े पात्र में डाल दिया। मछली के आकार में वृद्धि के साथ मनु ने इसे तालाब, नदी और समुद्र में डाल दिया। जलप्लावन के समय मनु ने अपनी नौका इसी मत्स्य के सींग के साथ बाँधी। नौका में मनु सहित सप्तऋषि सवार थे। सबसे महत्त्वपूर्ण सामग्री जो नौका में रखी गई, वह थी–अन्न, औषधि और बीज।

जलप्लावन के समय मनु के नौकायन के साथ आरंभ होती है मनाली के वर्तमान मनु मंदिर की गाथा। पृथ्वी के जलमय होने पर जब नौका ऊँचाई की खोज में ऊपर चढ़ी तो वह स्थान रहा होगा मनाली गाँव। हिमालय के उत्तुंग शिखर पर अन्न, औषधि और बीज का भंडार लिए मनु की नौका टकराई होगी–

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह।।

कामायनी में जल और हिम से युक्त हिमालय की जिस अद्‌भुत छटा का वर्णन किया गया है, वह इस सुरम्य भूमि से मेल खाती है।

कुल्लू से चालीस किलोमीटर दूर राष्ट्रीय उच्च मार्ग पर स्थित है मनाली। मनाली शहर से लगभग अढ़ाई किलोमीटर ऊपर मनालसू नाले के पार है पुराना मनाली गाँव, जहाँ मनु का प्राचीन मंदिर है। पहाड़ी शैली का मनु मंदिर छोटा और साधारण किंतु आस्था प्राचीन और दृढ़। मंदिर के भीतर मनु की लगभग पचास सेंटीमीटर पाषाण प्रतिमा है, इसके साथ महिषासुरमर्दिनी और शिवलिंग भी स्थापित है। मंदिर के पीछे देवी तथा विष्णु की प्रतिमाएँ हैं।

मंदिर में हर मास संक्रांति को पूजा होती है। छह वैशाख को मनु का जन्मदिन मनाया जाता है। ग्यारह दिन तक 'फागली' का आयोजन होता है। फागली के मेले में ही मंदिर के चबूतरे पर रखे लकड़ी के शहतीरों को तीसरे वर्ष बदला जाता है। यह उत्सव एक दैत्य की याद में मनाया जाता है, जो ऋषि की तपस्या भंग करता था। दैत्य के अनुरोध पर ऋषि ने उसका विवाह एक कन्या से करवा दिया, जिसे वह खा गया। इस पर ऋषि ने उसके मुँह में तोस की लकड़ी के ग्यारह शहतीर ठूँस दिए। इसलिए परंपरा निभाने के लिए हर तीसरे वर्ष ग्यारह शहतीर रखे जाते हैं।

मंदिर की स्थापना के विषय में एक प्रचलित दंतकथा है :

मनाली गाँव के धौणाचाणी वंश की गौरी नामक कन्या से एक बार एक साधु ने दूध की भिक्षा माँगी। कन्या द्वारा असमर्थता प्रकट करने पर साधु ने एक बछड़ी को दूहने के लिए कहा। बछड़ी के थनों से दूध निकल आया। इसी तरह दूसरे बरतन में डालने पर दूध दही बन गया। कन्या ने आश्चर्यचकित हो साधु से परिचय पूछा तो उसने कहा, मैं मनु हूँ। यह मेरा निवास है। इसे नीचे तक खोदो तो एक मूर्ति मिलेगी। गौरी के परिवार ने खुदाई करवाई तो मूर्ति भूमि से निकल आई। वहाँ मंदिर का निर्माण किया गया।

सातवें मन्वंतरण के सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु प्रथम पुरुष के साथ विधान निर्माता और नियामक थे। मनु के समय के जिस प्रलय का वर्णन हमारे पुराणों में हुआ है, वह विश्व की दूसरी सभ्यताओं में भी मिलता है। मनु द्वारा स्थापित सिद्धांतों को बाद में ऋषियों द्वारा संकलित-संपादित किया गया। भृगु ने मनुस्मृति का संकलन किया। गौतम, वशिष्ठादि ऋषियों ने मनु की मान्यताओं को संपादित किया।

मनु का यह मंदिर हमारी उस परंपरा का प्रतीक है जिसके अंतर्गत हमारी संस्कृति में छोटे-छोटे स्थानों को भी विशेष महत्ता प्रदान की गई है। रोहतांग में व्यासाश्रम मात्र एक स्थान है जहाँ व्यास का उद्‌गम हुआ। यहाँ लगता है व्यास ऋषि और नदी एक हो गए हैं। उसी तरह हिमालय के पाँच खंडों में से एक जालंधर के अंतर्गत 'कुलांत पीठ' में अनेक ऋषि-मुनियों के स्थान हैं। व्यास, वशिष्ठ, भृगु, नारद, कपिल, जमदग्नि, परशुराम, दुर्वासा, शृंगि, मार्कंडेय, लोमश आदि ऋषि यहाँ ग्राम देवताओं के रूप में विद्यमान हैं।

मनु मंदिर के जीर्णोद्धार तथा एक भव्य मंदिर निर्माण के लिए पहली अप्रैल, 1991 को प्रदेश के मुख्यमंत्री शान्ता कुमार द्वारा आधारशिला रखी गई है। इस योजना में मंदिर

परिसर, मुख्य मंदिर, पाकशाला, सराय, शौचालय तथा पुष्पवाटिकाएँ होंगी। 16.55 ऊँचे मंदिर में गर्भगृह, सभामंडप तथा यज्ञमंडप होंगे। अढ़ाई फुट के आधार के ऊपर मंदिर-निर्माण शिखर तथा स्थानीय शैली में किया जाएगा। मंदिर के लिए दो प्रवेश द्वार होंगे जिन्हें सड़क-मार्ग से जोड़ा जाएगा। मंदिर-निर्माण में लगभग पच्चीस लाख रुपए लागत आएगी, जिसके लिए धन चंदे द्वारा एकत्रित किया जा रहा है। [अब यह मंदिर बन चुका है]

मनु मंदिर, शैंशर

पैगोडा शैली में निर्मित आनी के निकट शैंशर में मनु का मंदिर है। इस मंदिर के, कुल्लू के पैगोडा मंदिरों में सबसे अधिक पाँच खंड हैं। सभी मंजिलों में बरामदे बने हुए हैं, यह एक दूसरी विशेषता है। सबसे ऊपर की छत छतरीनुमा है।

बैहना महादेव

आनी से पहले सतलुज नदी के ऊपर बैहना महादेव का मंदिर है। पैगोडा शैली में निर्मित इस मंदिर के भीतर शिवलिंग स्थापित है। लकड़ी तथा पत्थर से बने इस मंदिर में सतलुज घाटी की शैली देखी जा सकती है। लकड़ी के खंबों में आकर्षक नक्काशी हुई है। इनमें गणेश, विष्णु, गरुड़, लक्ष्मी, शिव की प्रतिमाएँ बनाई गई हैं।

शिव के प्रादुर्भाव की वही लोक प्रचलित कथा है जिसमें गाय एक शिवलिंग पर दूध की धाराएँ गिराती है और अंततः शिव का पता चलता है।

गौहरी देऊ (एक)

गौहरी देऊ का मंदिर जनाहल, कोठी खोखण में स्थापित है। देवता का गूर श्री नाथू व श्री देवीराम है। कारदार श्री भक्तराम तथा पुजारी श्री बैसाखु है। इसका रथ फेटा है, जिसको उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयोग में लाई जाती हैं। अष्टधातु से निर्मित चार तथा चाँदी के बने दस मोहरे रथ में अलंकृत हैं।

जनाहल के गौहरी देऊ का रथ पहले खोखण गाँव में होता था, जहाँ देवता का प्रस्तर मूल पिंडा (पिंडी) आज भी विद्यमान है। एक बार देवता कुल्लू दशहरा में शामिल होने के बाद खोखण वापस जा रहा था तो रास्ते में कुल्लू शहर से भूंतर की ओर दो किलोमीटर दूर 'टिक्कर बाई' नामक स्थान से जनाहल गाँव का मियाँ शोखी नाम का व्यक्ति रथ को बलात् जनाहल ले आया और इसे वहाँ स्थापित किया।

देवता के यहाँ माहुल जाच़, शान्हूँ जाच़, माला जाच़ तथा मागशीर्ष मास में मुंधुर पुनु नाम से मेले लगते हैं।

गौहरी देऊ (दो)

गौहरी देऊ का मंदिर पनगाँ, कोठी रायसन में स्थित है। देवता का गूर श्री मद्दू, कारदार श्री टेकराम, पुजारी श्री रोशनलाल तथा भंडारी श्री जगन्नाथ है। देवता का फेटा

रथ है, जिसके शीर्ष पर चाँदी का कलश भासित है। रथ के दोनों कोनों पर चाँदी की फुल्लियाँ लगी हैं तथा उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। बारह मोहरे रथ के आगे सुशोभित हैं, जिनमें एक मोहरा अष्टधातु का तथा शेष चाँदी के हैं।

जनश्रुति है कि देवता गौहरी एक बार अपने मूल स्थान थाचा माशण से देवता काली नाग के साथ चला। देवता काली नाग आगे जाकर हिंबरी गाँव में ठहर गया लेकिन वीरनाथ देऊ गौहरी पनगाँ ग्राम में प्रकट हुए।

इस देवता के कापू, शौईरी, राणी री जाच़, जेठा विरशु, मेहण मेले लगते हैं।

गौहरी देऊ (तीन)

देवता का मंदिर हुरला, कोठी कोटकंडी में स्थित है। इसका गूर श्री झाबेराम, कारदार श्री टेढ़ी सिंह, पुजारी श्री खूबराम महंत तथा भंडारी श्री नारायण सिंह है। शिखर पर गुंबद आकार के छत्र से शोभायमान खड़ा रथ है।

जनश्रुति है कि इस धरती पर शिवजी के साथ नाथ आए और वे राजा के गुरु रहे। कुल्लू में राजा जगत सिंह के समय तारानाथ राजगुरु थे। इस काल में बाबा फुआरी कुल्लू पधारा और वह किसी तरह तारानाथ से गुरु का पद छीनकर स्वयं उसका अधिकारी बना। उससे पहले कुल्लू में नाथों की बहुत मान्यता थी। वीरनाथ भी उन मान्यताप्राप्त नाथों में से एक था। अपने मानवीय शरीर से मुक्त हो वीरनाथ किसी काल में देव रूप में प्रकट होकर लोगों के आराध्य बने।

देवता के निमित्त चैत्र संवत्, बैसाखी, बीस भादों, फाल्गुन संक्रांति तथा शौईरी मनाई जाती है।

गौहरी देऊ (चार)

गौहरी देऊ का मंदिर डमचीण, कोठी हुरंग में है। इसका गूर श्री माधूराम, कारदार श्री गंगूराम तथा पुजारी श्री रामचंद है। देवता का रथ फेटा है, जिसे उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। इसमें सोलह मोहरे भूषित हैं, जिनमें से एक अष्टधातु तथा पंद्रह चाँदी के बने हैं।

जनश्रुति है कि थाचा-माशण के लोगों ने वीरनाथ संत की हत्या करके उसे दफना दिया। उस संत के साथ एक कुतिया थी। कुतिया डेरे में लौटी और वीरनाथ की बहन को लेकर वहाँ पहुँची जहाँ वीरनाथ को दफनाया गया था। कुतिया ने मिट्टी कुरेदी तो उस स्थान को खोदा गया। वहाँ लाश के स्थान पर फूलों का ढेर था। वीरनाथ की बहन ने ये फूल इधर-उधर फेंके। जहाँ-जहाँ ये फूल गिरे, वहाँ-वहाँ वीरनाथ के पूज्य-स्थल बने। उन्हीं स्थलों में से डमचीण भी एक है। थाचा-माशण के गौहर (ऊँचाई में बसा दुर्गम स्थान) में देवत्व प्राप्त होने के कारण वीरनाथ को गौहरी देऊ कहा गया। कुछ लोगों के अनुसार वीरनाथ के पास सदैव गरा नामक लकड़ी की लाठी होती थी। अतः गरा के सान्निध्य से यह गौहरी देऊ कहलाया।

देवता के यहाँ श्रावण मास में शाऊण मेला, फाल्गुन मास में फागली मेला तथा माला जातर लगती है।

गौहरी देऊ (पाँच)

गौहरी देऊ का मंदिर बागन, कोठी महाराजा में स्थित है। इसका गूर श्री भक्तराम, कारदार श्री लोतराम तथा पुजारी श्री मोतीराम है। देवता का चाँदी के छत्र से सुशोभित शिखर भाग वाला खड़ा रथ है। इसके चारों ओर पीतल के बने आठ मोहरे स्थापित हैं।

जनश्रुति है कि थाचा-माशण गाँव, जहाँ गौहरी देवता का मूल स्थान है, में लहलू-जेहलू खानदान के दो भाई रहते थे। जब दोनों भाइयों का बँटवारा हुआ तो एक भाई बागन में आकर बसा। उसने यहाँ आकर अपने इष्ट देवता देऊ गौहरी की स्थापना की, जिसे बाद में अन्य गाँववासी भी मानने लगे।

देवता के निमित्त शौईरी, बिरशु तथा मक्खशर मनाए जाते हैं।

गौहरी देऊ (छह)

देऊ गौहरी का मंदिर फोजल, कोठी हुरंग में है। इसका गूर श्री ख्यालु, कारदार श्री रामधन, पुजारी श्री बुधराम तथा भंडारी श्री डोला है। देवता का रथ फेटा है, जिसे दो अर्गलाओं द्वारा उठाया जाता है। इसके अग्रभाग में तीन पीतल व नौ चाँदी के बने मोहरे सज्जित हैं।

एक बार कोई व्यक्ति थाचा-माशण से खनाणी आया और उसके बाद फोजल आकर स्थायी रूप से बस गया। यहाँ पर उसने अपने इष्ट देवता वीरनाथ, जिसे देऊ गौहरी के नाम से भी जाना जाता है, का स्थान बनाकर पूजा आरंभ की। देवता से सुफल पाकर धीरे-धीरे अन्य लोग भी इसे मानने लगे।

देवता के कापू, शौईरी, श्रावण मास में शाऊण जाच़ तथा मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा को पुनु मेले मनाए जाते हैं।

गौहरी देऊ (सात)

गौहरी देऊ का मंदिर बुआई, कोठी महाराजा में है। देवता के गूर श्री वीरदास तथा श्री बीरबल हैं। कारदार श्री मंगलचंद, पुजारी श्री किशनचंद तथा भंडारी श्री इंद्रसिंह हैं। देवता का खड़ा रथ है, जिसके ऊपर रजतनिर्मित छत्र सुसज्जित है। इसमें पीतल के बने आठ मोहरे शोभायमान हैं।

देवता का मूल पिंडी प्रस्तर शिला के रूप में गाँव बुआई के समीप डेहरी धार में है। वास्तव में इसका संबंध थाचा माशण में प्रकट हुए वीरनाथ देवता से है, परंतु यहाँ लोग इसकी पूजा महावीर नाम से भी करते हैं। इसका कारण यह बताया जाता है कि जोंगाबुआई वासियों के फसलों के खेत बंदरों द्वारा उखाड़ दिए जाते थे। लोगों ने गौहरी देवता से सुरक्षा के लिए प्रार्थना की। इनकी कृपा से बंदरों को उत्पात लगभग समाप्त

हुआ। इस प्रकार बंदरों से सुरक्षा प्राप्त करने के फलस्वरूप इन्हें लोग महावीर हनुमान के नाम से मानने लगे।

आश्विन मास में देवता के यहाँ मेला लगता है।

गौहरी देऊ (आठ)

गौहरी देऊ का मंदिर ग्राम दचाणी, बड़ागढ़ में अवस्थित है। देवता का कारदार श्री जवाहरलाल तथा पुजारी श्री रेपतराम है। इसका फेटा रथ है जिसमें चार अष्टधातु तथा बारह चाँदी के मोहरे सुसज्जित हैं।

जनश्रुति है कि दचाणी गाँव में एक औरत को खेत में काम करते हुए कोई साधु मिला। वह उसे घर ले आई। घर पहुँचकर साधु ने कहा कि वह दूध पीना चाहता है। परंतु घर पर कोई दुधारू गाय न होने के कारण स्त्री ने असमर्थता प्रकट की।

साधु ने कहा कि वह गाय के पास जाए और उसे दुहकर लाए। औरत जब गोशाला में गई तो उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि गाय ने असमय ही बछड़े को जन्म दिया था। तब वह स्त्री जब दूध दुहकर वापस आई तो साधु लुप्त हो चुका था।

लोगों ने इकट्ठे होकर इस घटना पर चर्चा की तो उस स्त्री को देवखेल आई और उसने कहा कि वह गौहरी देऊ है और क्षेत्र की रक्षा के लिए वे उसकी वहाँ स्थापना करें। लोगों ने देवता की आज्ञा को शिरोधार्य कर देवता की वहाँ स्थापना की।

देवता के यहाँ बैसाखी, शौईरी तथा पुन्नू मेले लगते हैं।

गौहरी देऊ (नौ)

गौहरी देऊ का मंदिर ढालपुर, कुल्लू में स्थापित है। देवता का गूर श्री देवीचंद, कारदार श्री राजकुमार तथा पुजारी श्री मोहनदास है। इसका रथ करंडीनुमा है, जिसे सिर पर उठाया जाता है। देवता के ग्यारह मोहरे हैं।

जनश्रुति है कि थाचा माशण में लोगों ने संत वीरनाथ की हत्या कर दी, उसके बाद उसे देवत्व प्राप्त हुआ और वह गौहरी देऊ के रूप में पूजित हुआ। एक बार राजा मानसिंह उस क्षेत्र में शिकार खेलने गया तो उसका घोड़ा उस गड्ढे में गिर गया, जिसमें वीरनाथ को दबाया गया था। राजा ने गौहरी देऊ से घोड़े की रक्षा के लिए प्रार्थना की तो उस गहरे गड्ढे में से भी घोड़ा बाहर निकल आया।

वापस आकर राजा ने यह घटना रानी को सुनाई। रानी देवता की शक्ति से प्रभावित हुई और उसने राजा से कहा कि गौहरी देऊ का मंदिर सुल्तानपुर के राजमहल के सामने ऐसी जगह बनवाएँ जहाँ से प्रातः उठते ही रानी देवता के दर्शन कर सके। राजा ने राजमहल के सामने ढालपुर में मंदिर बनवाया और थाचा माशण से देवता की प्रस्तर मूर्ति लाकर वहाँ प्रतिष्ठित की।

देवता के यहाँ बैसाखी, भाद्रपद की संक्रांति, असौज संक्रांति, पीपल जात्र तथा दशहरा मनाया जाता है।

गौहरी देऊ (दस)

देव गौहरी का मंदिर वारी तुनी, कोठी काईस में है। इसका गूर श्री कानूराम, कारदार श्री हरिचंद शर्मा, पुजारी श्री जयदेव शर्मा है। देवता का करड़ू है जो चाँदी के छत्र से भासित है। करड़ू में सात मोहरे विराजमान हैं, जिनमें से दो मोहरे अष्टधातु तथा पाँच चाँदी के हैं।

दक्ष प्रजापति के यज्ञ में जब उसकी बेटी सती बिना निमंत्रण के पहुँची तो पिता ने बेटी की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और आहुति के समय भी भगवान् शिव को आहुति अर्पित नहीं की तो सती ने कुपित होकर हवनकुंड में अपनी आहुति दे दी। जब भगवान् शिव को यह समाचार मिला तो उन्होंने अपनी जटाओं को उखाड़कर कुछ गण पैदा किए। इनमें प्रधान गण वीरभद्र था, उसे ही वीरनाथ कहते हैं। यही वीरनाथ थाचा माशण में देवरूप में प्रकट होकर गौहरी देऊ कहलाए। देवत्व प्राप्त कर प्रजा की भलाई के लिए यह अनेक स्थानों तक पहुँचे। उसी भावना से यह बारी तुनी में भी प्रकट हुए और अपनी दिव्य शक्ति से उन्होंने यहाँ के लोगों में आराध्य देव का स्थान प्राप्त किया।

देवता के यहाँ एक चैत्र को नया संवत्, बिरशु, शाउण जाच़, जन्माष्टमी तथा शौईरी मनाए जाते हैं।

पौंज वीर

पौंज वीर का मंदिर ग्राम बारवली, कोठी खोखण, फाटीशिलीहार में है। देवता का गूर श्री डागू, कारदार श्री बोधूराम तथा पुजारी श्री फाउजू है। इसका फेटा रथ है जिसके अग्रभाग में सुशोभित सभी चौदह मोहरे पीतल के हैं।

जनश्रुति के अनुसार बाखली ग्राम में पौंजवीर की मान्यता प्राचीन समय से मानी जाती है, परंतु बीच में दो-चार पीढ़ियों से यहाँ देवता की पूजा किसी अज्ञात कारण से बंद रही। सन् 1982 में देवता के वर्तमान गूर को देवता की खेल आई और उसने गाँव वालों से कहा कि वे देवता पौंजवीर की पूजा पुनः शुरू करें अन्यथा अनिष्ट हो सकता है। तब गाँववासियों ने देवता की पूजा पुनः आरंभ की।

देवता के निमित्त पुनु मेला मनाया जाता है।

कैला वीर

देवता कैला वीर का मंदिर कमांद, कोठी महाराजा में है। इसका गूर श्री कंबल, कारदार श्री हरिसिंह तथा पुजारी व भंडारी श्री शांघड़ू है। शीर्ष पर गुंबद के आकार के छत्र से शोभायमान खड़ा रथ है। रथ के चारों ओर पीतल के बने आठ मोहरे विराजमान हैं।

श्रावण मास में शाऊण मेला लगता है।

पौंज वीर

पौंज वीर का मंदिर लोट, कोठी महाराजा में विद्यमान है। इसका गूर श्री अमरचंद, कारदार श्री सेसराम तथा पुजारी व भंडारी श्री फतेहचंद हैं। देवता का छत्र से भूषित शिखर

वाला खड़ा रथ है। इसके चारों कोनों पर चाँदी की फुल्लियाँ सुशोभित हैं। दो अष्टधातु व सात चाँदी के बने मोहरे रथ के चारों ओर विद्यमान हैं।

जनश्रुति है कि लोट में केवल एक परिवार रहता था, जो मंडी चौहार के हुरंग गाँव से आकर यहाँ बसा था। एक दिन इस परिवार को खेत में काम करते हुए पत्थर की एक लंबी मोणी (सुंदर शिला) खड़ी नजर आई। वे उसे देखने लगे तो देखते-देखते वह कभी उत्तर, कभी दक्षिण तथा कभी पूर्व और कभी पश्चिम की ओर झुक जाती। इस चमत्कार का पता नहीं चल रहा था कि यह है क्या ? रात को परिवार के मुखिया को सपना आया कि वह पौंजवीर (पंजवीर) देवता है। उस परिवार ने पौंजवीर देवता को श्रद्धापूर्वक माना, जिसकी कृपा से यह परिवार खूब फूला-फला और सुख-समृद्धि से पूर्ण हो गया।

देवता के यहाँ बिरशु, शनौहली तथा मुंघर पुनु मेले व त्योहार मनाए जाते हैं।

टुंडी वीर

टुंडी वीर का मंदिर दलासणी में है। इसका कारदार व पुजारी श्री भक्तराम है। देवता का खड़ा रथ है, जिसका शिखर भाग गुंबदाकार छत्र से शोभायमान है। इसके अग्रभाग में तीन तथा तीनों ओर दो-दो मोहरे सुसज्जित हैं, जिनमें से एक चाँदी तथा आठ पीतल के बने हैं।

कहते हैं कि दलासणी में गूर खानदान के एक पूर्वज को वीर देवता ने दर्शन दिए और कहा कि वह माता श्यामाकाली के क्षेत्र में किसी दुष्ट शक्ति के प्रवेश को रोकने के लिए यहाँ रहता है। बाद में वीरदेवता ने अनेक चमत्कार दर्शाए। तब लोगों ने इसकी शक्ति को स्वीकार किया और वीर देवता के रूप में माना। इस वीर देवता का एक हाथ विकलांग है, इसलिए यह टुंडी वीर कहलाया।

देवता के यहाँ बिरशु तथा शौयर मेले व त्योहार मनाए जाते हैं।

महावीर (एक)

महावीर का मंदिर ग्राम उआली सेर, कोठी खोखण में स्थित है। देवता का गूर श्री धनीराम, कारदार श्री परसराम तथा पुजारी श्री खीमीराम है। देवता का दो अर्गलाओं से युक्त खड़ा रथ है जिसका शिखर छत्र से सुशोभित है और इसके चारों कोनों पर पीतल की फुल्लियाँ जड़ी हैं। रथ के चारों ओर पीतल के आठ मोहरे विराजमान हैं।

जनश्रुति है कि एक बार कोकड़े खानदान का एक व्यक्ति वन में भेड़-बकरियाँ चरा रहा था। वहाँ उसे अष्टधातु का एक मोहरा मिला। वह उसे घर ले आया। घर आकर उसे देवखेल आई और देवता ने कहा कि वह महावीर है। वह देवता ब्रह्मा के साथ रहता है और चाहता है कि अब उसकी अलग से स्थापना की जाए। देवता की आज्ञा पाकर भक्तों ने महावीर का मंदिर बनाकर उसमें देवता की स्थापना की।

देवता के यहाँ शाऊण जाच़ तथा मुंघर जाच़ मनाई जाती है।

महावीर (दो)

महावीर का मंदिर ग्राम मँगलौर, कोठी मँगलौर, तहसील बंजार में स्थित है। देवता का गूर श्री जोवनदास, कारदार श्री जेठूराम तथा पुजारी श्री अनूपराम है। गुंबदाकार छत्र से शोभित शिखर वाला देवता का 'खड़ा रथ' है। रथ में दो अष्टधातु तथा छह चाँदी के मोहरे चारों ओर लगे हैं।

जनश्रुति है कि देवता छाजनी नामक स्थान से एक व्यक्ति के साथ मँगलौर आया। उस व्यक्ति ने अपने घर में ही देवता का स्थान बनाया और उसकी आराधना करने लगा। बाद में ग्रामवासी भी देवता के यश और चमत्कारों से प्रभावित हुए और उन सबने मिलकर देवता के लिए गाँव में मंदिर का निर्माण किया और उसे पूजने लगे।

देवता के निमित्त माघ मास में ततेरी मेला, फाल्गुन में बिठ तथा होली मेला लगता है।

आयड़ू महावीर

आयड़ू महावीर का मंदिर शोहुल, कोठी बुंगा, उपतहसील सैंज में स्थित है। देवता का गूर श्री ऐलूराम, कारदार श्री चेतराम, पुजारी श्री नूपराम तथा भंडारी श्री दलुराम है। देवता का खड़ा रथ है, जिसके शीर्ष पर गुंबदाकार का छत्र अलंकृत है। मिश्रित धातु निर्मित आठ मोहरे रथ के चारों ओर स्थापित हैं।

कहते हैं कि आयड़ू महावीर किसी काल में लाहौल के प्रसिद्ध धार्मिक स्थल त्रिलोकनाथ में रहता था। वहाँ से रोहतांग जोत पार करके उसने देवभूमि कुल्लू में प्रवेश किया। नग्गर, गलयाण कुणी, करमाड़, शागे, मंडी राँगड़, बालाहण जोत, खनयारगी, सलवाड़, खमारेड़ आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए यह शोहुल में पहुँचा। शोहुल में धमेड़ा खानदान के एक व्यक्ति को दर्शन देकर अपनी महिमा से यह लोगों में पूजित हुए।

देवता के यहाँ शौईरी, जन्माष्टमी, दीपमाला तथा माघ मास में महाभारथ त्योहार तथा मेले मनाए जाते हैं।

वीर वराधी

वीर वराधी का मंदिर ग्राम करेरी कोठी महाराजा में विद्यमान है। देवता का गूर श्री केहर सिंह व धनीराम, कारदार श्री लालचंद तथा पुजारी श्री केशवराम है। देवता का चाँदी के छत्र से सुसज्जित फेटा रथ है जिसके दो कोनों पर चाँदी की फुल्लियाँ लगी हैं। इसे दो अर्गलाओं द्वारा उठाया जाता है। रथ के अग्रभाग में कुल ग्यारह मोहरे शोभित हैं जिनमें नौ मोहरे चाँदी के हैं तथा शेष दो अष्टधातु के।

वीर वराधी को पाँच पांडवों की एकात्म शक्ति का रूप माना जाता है। अतः इसे पौंजवीर भी कहते हैं। यह भक्तों की मनोकामना पूर्ण करने वाला देवता है। अतः इसे वराधी कहते हैं। देवता का मूल स्थान रूपी घाटी के कोटकंडी पर्वत पर है। करेरी गाँव में

देवता के प्रकट होने के संबंध में जनश्रुति है कि बूढ़ी खानदान का एक आदमी अपने खेत में हल चला रहा था। हल चलाते समय वह बार-बार किसी चीज से टकराता, परंतु उसे कुछ न दिखाई देता। अंत में हारकर वह विश्राम करने बैठ गया। उधर से एक अन्य व्यक्ति जा रहा था तो हलवाहे ने उसे रोककर अपनी व्यथा सुनाई। तभी उस व्यक्ति में दैवीशक्ति प्रवेश कर गई और उसने कहा कि वह वीर वराधी है जिसकी शक्ति कोटकंडी पर्वत से आई है। देवता की आज्ञा से खेत के उस भाग को खोदा गया जहाँ हल टकराता था तो वहाँ से देवता की पत्थर की पिंडी निकली जिसकी लोगों ने वहाँ प्रतिष्ठा की। वीर वराधी के साथ इस स्थान पर काली माँ और नरसिंह का भी वास है।

वनशीरा

वनशीरा का मंदिर ग्राम कनोण, कोठी बुंगा में निर्मित है। देवता का गूर हेमराज, कारदार निमतराम तथा पुजारी करतार सिंह है। इसका खड़ा रथ है जिस पर छत्र शोभायमान है। रथ के चारों ओर आठ स्वर्णनिर्मित मोहरे स्थापित हैं।

देवता वनशीरा को वनों का रक्षक माना जाता है। इसे कभी-कभी सफेद वस्त्र पहने जंगल में घूमते देखा जाता है। कनोण में वनशीरा का वास है। देवता वहाँ के वन्य क्षेत्रों की रक्षा के साथ-साथ भक्तजनों को सुख-समृद्धि का वरदान भी देता है।

देवता के यहाँ शौईरी, शन्हूँ तथा विट्ठ मनाए जाते हैं।

रूपणपाल

रूपणपाल का मंदिर ग्राम पाहा, कोठी महाराजा में है। देवता का गूर श्री पुरु, कारदार श्री रामदास तथा पुजारी श्री जीतू है। इसका 'सीधा रथ' है जिसमें पीतल के बने दस मोहरे सुसज्जित हैं।

जनश्रुति के अनुसार पाहानाला से ऊपर सर्गपुर में सोलह सुरगणियों (स्वर्ग की परियों) का स्थान माना जाता है। इन देवियों के साथ यहाँ सप्तर्षि, जिन्हें पाल देवता कहा जाता है, रहते थे। उनमें से एक रूपण पाल था। एक समय भीषण वर्षा के कारण सर्गपुर के देवता बाढ़ में बह गए। रूपणपाल बहता हुआ पाहानाला तक पहुँचा, जहाँ झीटी खानदान के एक व्यक्ति को देवता की प्रस्तर पिंडी मिली। देवता के आदेश से उसने अपने खानदान के अन्य लोगों को बताया कि देवता रूपणपाल यहाँ पिंडी रूप में प्रकट हुए हैं। वे पिंडी को पाहा ग्राम में लाए और इसकी पूजा-आराधना आरंभ की।

देवता के यहाँ नाहुली तथा शाढ़ी जाच़ लगती है।

रुपणु पाल

रुपणु पाल का मंदिर ग्राम 'तारी रा ग्राँ', कोठी खोखण में स्थित है। इसके गूर श्री हरफू और ठाकरू, कारदार श्री खेखू तथा पुजारी श्री जेयसू है। गुंबद आकार के छत्र से शोभित शिखर वाला तथा दो अर्गलाओं से युक्त देवता का खड़ा रथ है जिसके चारों ओर

मिश्रित धातु के बने आठ मोहरे प्रतिष्ठापित हैं।

कहते हैं कि तारी रा ग्राँ का एक व्यक्ति किसी समय मंड़ी रियासत के किसी गाँव में गया हुआ था। उस गाँव में रुपणु पाल देवता की मान्यता थी। उस व्यक्ति ने भी देवता की बड़ी निष्ठा से पूजा की तो देवता उसकी पूजा से बड़ा प्रसन्न हुआ और वापस लौटते समय वह उसी के साथ आ गया। वह व्यक्ति देवता की श्रद्धापूर्वक पूजा करता रहा। उस क्षेत्र के लोगों ने भी देवता की शक्ति को अनुभव किया और सारे क्षेत्र में उसकी मान्यता हो गई।

श्रावण मास में देवता के निमित्त शाऊणी जाच़ लगती है।

रणपाल

रणपाल का मंदिर ग्राम मौहल, कोठी खोखण में स्थापित है। देवता का कारदार व पुजारी श्री डोलाराम है। इसका फेटा रथ है जो दो अर्गलाओं से उठाया जाता है। रथ पर पाँच चाँदी के व पाँच पीतल के मोहरे विराजमान हैं।

जनश्रुति है कि देवता रणपाल अपने अन्य भाइयों के साथ सर्गपुर में योगिनियों के पास रहता था। एक बार भारी वर्षा के कारण भयंकर बाढ़ आई और वह बाढ़ में बहता हुआ मौहल पहुँच गया। यहाँ इसने लोगों को अपने चमत्कार दिखाए और लोगों द्वारा पूजित हुआ। लोगों का विश्वास है कि युद्ध क्षेत्र में यह देवता दुष्ट शक्तियों को पराजित कर लोगों की रक्षा करता है।

देवता के यहाँ माहुल जाच़, शान्हूँ तथा पुनु त्योहार मनाया जाता है।

भुहणी

भुहणी देव का मंदिर बौला, कोठी शिकारी, तहसील बंजार में विद्यमान है। इसका गूर श्री लेदराम, कारदार श्री गुरदयाल और पुजारी श्री खीमीराम है। देवता का खड़ा रथ रजत निर्मित छत्र से शोभित है। इसके चारों कोनों पर चाँदी की फुल्लियाँ जड़ी हैं। रथ पर कुल नौ मोहरे सुसज्जित हैं।

जनश्रुति है कि एक बार बौला गाँव में किसी के घर में आग लग गई। घर के अंदर सभी पशु जलकर मर गए। घर के मालिक ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार इसका प्रायश्चित्त किया, फिर भी लोगों ने उसे मार्कंडेय देवता की पूजा करने की आज्ञा न दी। यह परिवार किसी समय मंडी से इस स्थान पर आया था और वहाँ उनका इष्टदेव भुहणी था। अतः उसने यहाँ भुहणी देव की स्थापना की। यह व्यक्ति सुनारला खानदान का था। अतः आज भी इसी खानदान के लोग देवता की पूजा करते हैं।

देवता के निमित्त यहाँ नया संवत्, बंजार मेला तथा नौ माघ को मेला लगता है।

बलिंढू देव

बलिंढू देव का मंदिर काईस में स्थापित है। देवता के कारदार श्री हुक्मचंद व श्री रीतमचंद हैं तथा पुजारी श्री कुरमदत्त है। रथ का आकार फेटा है, जिसे उठाने के लिए

दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। इसके मुखभाग में रजतनिर्मित बारह मोहरे भासमान हैं।

कहते हैं कि बलिंढू नाम राक्षस के किसी परिवार से अच्छे संबंध थे। रात के समय वह परिवार की इच्छा के अनुरूप कार्य करता था और दिन को अदृश्य रहता था। उसकी इच्छानुसार उसे भूसा और राख का भोजन ओखली में परोसकर रखा जाता था। एक बार उसने धान की उलटी रोपाई कर दी, सिर पानी में और जड़ें ऊपर की ओर कर दीं। दूसरे दिन परिवार ने उसे सीधी रोपाई करने को कहा तो उसने रातोरात सभी पौधों को उखाड़कर ठीक तरीके से लगा दिया। परिवार की लड़की ने उसकी मेहनत को देखकर सौहार्दवश भूसे और राख के नीचे उसके लिए घी रख दिया। कहते हैं कि राक्षस घी से डरते हैं। ज्योंही भोजन करते ही उसने घी का स्पर्श किया, वह चिल्लाया और उस परिवार से वचन तोड़ने की बात कहकर वहाँ से भाग गया और बलिंढी में रहने लगा। देवी दशमी वारदा ने उसकी सक्षमता और कल्याणकारी भावना को देखते हुए उससे अपने साथ काईस में रहने का आग्रह किया और देवत्व प्रदान किया।

देवता के निमित्त पौष व भादों मास में भुँगड़ा मनाया जाता है।

बनशीरा

बनशीरा का मंदिर सिद्धवा, कोठी मँगलौर में स्थित है। इसका गूर श्री जीतराम, कारदार श्री तुलेराम तथा पुजारी श्री संगतु है। झालरयुक्त छत्र से भासित शीर्ष भाग वाला देवी का खड़ा रथ है। पीतल के बने दो-दो मोहरे रथ के चारों ओर विद्यमान हैं।

कहते हैं कि भादरू और कर्मू नामक दो व्यक्तियों को सिद्धवा गाँव में एक मोहरा मिला। जब इस मोहरे के बारे में जानकारी प्राप्त की गई तो ज्ञात हुआ कि यह मोहरा बनशीरा देवता का है। ये दोनों व्यक्ति बनशीरा देवता की नियमित पूजा-अर्चना करने लगे। धीरे-धीरे यह अपनी दैवी शक्ति के प्रभाव से अन्य लोगों के भी आराध्य देव बने।

देवता के निमित्त बंजार मेला तथा माघ मास के 13 प्रविष्टे को जगराता होता है।

पिरड़ू थान

पिरड़ू थान का मंदिर पिरड़ी, कोठी महाराजा में है। देवता के गूर श्री नाथूराम व श्री तेज सिंह हैं। कारदार श्री बलदेव तथा पुजारी श्री खानचंद है। देवता का दो अर्गलाओं से युक्त फेटा रथ है। पाँच अष्टधातु तथा बाहर चाँदी के बने मोहरे इसके मुख भाग में शोभायमान हैं।

कहते हैं कि पिरड़ी थान के आदि शिव हैं, इसलिए यह बिजली महादेव का दादू (दादा) भी कहलाता है। जब बिजली महादेव मथाण में आकर बसा तो उसने देखा कि पिरड़ू थान के पास देवदार का पेड़ नहीं है, जो देवस्थल की शोभा होती है। तब बिजली महादेव ने मथाण से देवदार का एक पेड़ पिरड़ी में फेंका, जो वहाँ पर उलटा जा पड़ा। सिर धरती में धँस गया और जड़ें ऊपर को रहीं। आज भी यह देवदार का पेड़ पिरड़ी में विद्यमान है, जिसका सिरा जड़ों की भाँति फैलाव लिए हुए है। इसके बदले में पिरड़ू थान ने एक

शेगल (कैथ) का पेड़ मथाण की ओर फेंका। वह पेड़ वहाँ सीधा पड़ा, जो आज भी मथाण में बिजली महादेव के पास अब तक खड़ा है।

देवता का पिरड़ी शान्हूँ नाम से मेला लगता है।

पझारी

पझारी देवता का मंदिर बाहू, तहसील बंजार में स्थित है। इसका गूर श्री हीरालाल, कारदार श्री वरचंद व तोताराम व पुजारी श्री भोलूराम है। देवता का सीधा रथ है, जिसके शिखर पर छत्र विराजमान है। इसके चारों ओर सात स्वर्णनिर्मित तथा एक अष्टधातु का मोहरा शोभायमान है।

जनश्रुति है कि प्राचीनकाल में कोई व्यक्ति शिमला क्षेत्र के किसी गाँव से देवता पझारी का लोहछड़, जिसे स्थानीय बोली में गुर्ज, गज या डाहुली कहते हैं, ले आया। जब वह लुहारी में पहुँचा तो पुल के अभाव में सतलुज पार करना कठिन हो गया, लेकिन देव कृपा से उसे हिम्मत हुई और वह सतलुज पार कर गया। वहाँ से वह दलाश, सेनागाड़, जलोड़ी, शरांडी गली, सोझा, खंडा रोपा होता हुआ बाहू पहुँचा और यहाँ उसने देवता की स्थापना करके मंदिर, भंडार और रथ बनाए। देवता पझारी को भगवान् लक्ष्मीनारायण माना जाता है।

देवता के फाल्गुन, वैशाख, श्रावण व अग्रहायण मास में मेले लगते हैं।

जेहर

जेहर का मंदिर निजाँ, कोठी कोटकंडी में स्थित है। इसका गूर श्री तुलुराम, कारदार श्री नैयणूराम तथा पुजारी श्री जोधूराम है। देवता का खड़ा रथ है, जिस पर चाँदी का छत्र सुसज्जित है। इसके चारों ओर दो-दो मोहरे विराजमान हैं। इनमें एक अष्टधातु का तथा सात चाँदी के बने हैं।

देवता जेहर निजाँ का स्थानीय देवता है। कहते हैं कि इसकी पूजा यहाँ अज्ञात काल से चली आ रही है। यह लोगों को भले-बुरे का परिणाम तत्काल देता है। एक मान्यता के अनुसार देवता का प्रभाव जहर की भाँति एकदम से होने के कारण इसे जेहर देवता कहा जाता है।

देवता के निमित्त कोंडा तथा चोहा त्योहार मनाए जाते हैं।

जनासर

जनासर का मंदिर रैंह, कोठी बनोगी में स्थित है। इसका गूर श्री परसराम, कारदार श्री दुर्गादास तथा पुजारी श्री लागनचंद है। देवता का खड़ा रथ है, जिसके शीर्ष पर छत्र विराजमान है। इसके चारों ओर अष्टधातु के बने मोहरे सुशोभित हैं।

जनश्रुति है कि समुद्र मंथन के बाद जनासर देवता लाहौल में आया। वहाँ से किन्नौर, मणिकर्ण, गढ़-गढ़ासर, वासु कंडा, हंस कुंड, पातल डुआरी आदि स्थानों से होते हुए वह रैंह

पहुँचा। वहाँ अपना स्थान बनाकर पूरी व्यवस्था स्थापित की। कथा भारथा में इस व्यवस्था के बोल इस प्रकार हैं–

चार थोम्बडू लाई बेठा
रथ छत्र लाई बेठा
साठ हार बणाई बेठा
झूण बेल डाही बेठा
गूर फातर बणाई बेठा

अर्थात् स्तंभों पर मंदिर बनाया। रथ और छत्र बनवाए। साठ परिवारों की अपनी प्रजा बनाई, पूजा-अर्चना का समय निर्धारित किया और देवता की पूरी कार्यविधि संपन्न करने के लिए गूर आदि पात्रों का चयन किया।

देवता के यहाँ चैत्र व भादों की एकादशी तथा 15 माघ को मेले व त्योहार मनाए जाते हैं।

पाशा कोट

पाशा कोट का मंदिर शेलड़ी, कोठी मंडलगढ़ में स्थित है। इसका गूर श्री तेजू, कारदार श्री महंतू तथा पुजारी श्री रूपचंद है। देवता के रथ का आकार फेटा है, जिसे दो अर्गलाओं की सहायता से उठाया जाता है। एक अष्टधातु तथा चौदह चाँदी के बने मोहरे रथ के अग्रभाग में शोभायमान हैं।

कहते हैं कि बरोट के समीप छोटा भंगाहल क्षेत्र का एक व्यक्ति वहाँ पाशाकोट देवता को इष्ट देव के रूप में मानता था। जब वह वहाँ से शेलड़ी गाँव में आया तो देवता पाशाकोट के घौंडी-धौड़छ (घंटी और धूपपात्र) अपने साथ ले आया। शेलड़ी में देवता के अलौकिक प्रभाव से अन्य लोग भी इनके उपासक बन गए और क्षेत्र में देवता पाशा कोट की मान्यता स्थापित हुई।

देवता के यहाँ शौईर और शाऊण त्योहार मनाए जाते हैं।

चम्भू

चम्भू का मंदिर कशोली, कोठी डौल, तहसील निर्मंड में स्थित है। देवता का गूर श्री मुशाराम, कारदार श्री लीलाचंद, पुजारी श्री तेजराम तथा भंडारी श्री देवी राम है। देवता का रथ पालकीनुमा है। इसमें एक अष्टधातु तथा पाँच चाँदी निर्मित मोहरे विराजमान हैं।

जनश्रुति है कि अंबिका माता को एक तालाब में ग्यारह अंडे तैरते नजर आए। माता ने वे अंडे तालाब से बाहर निकाले और उन्हें फोड़ा। फोड़ने पर उन अंडों में से चार चंभू और सात देवियाँ प्रकट हुईं। उन्होंने भिन्न-भिन्न स्थानों में जाकर अपनी मान्यता स्थापित की। उन्हीं में से एक चंभू देवता कशोली में प्रकट होकर पूजित हुआ।

देवता के निमित्त बिरशु तथा दियाली मनाई जाती है।

घटोत्कच

घटोत्कच का मंदिर सिद्धमा, कोठी मँगलौर में स्थित है। इसका गूर श्री टेकचंद, कारदार श्री देवचंद तथा पुजारी श्री राजू है। देवता का छत्रयुक्त शीर्षभाग वाला खड़ा रथ है। रथ के चारों ओर दो-दो मोहरे विद्यमान हैं। इनमें एक अष्टधातु, एक स्वर्ण तथा छह रजतनिर्मित हैं।

एक बार गरेहड़ू खानदान के हरजी गूर ने हवा में उड़कर आती एक लड़की को गाँव के पास एक स्थान पर गिरते देखा। वहाँ जाकर उसने देखा कि एक बड़ी चट्टान के फटने से पत्थर की एक मूर्ति बाहर आ निकली थी। थोड़ी देर में दूसरे लोग भी वहाँ इकट्ठे हुए। इस घटना के बारे में बातचीत चल रही थी कि हरजी गूर को देवखेल आई। उसने बताया कि यह देवता घटोत्कच है और क्षेत्र में महामारी को दूर करने के लिए यहाँ प्रकट हुआ है। लोगों ने इन्हें देवता के रूप में मानना शुरू किया।

देवता के निमित्त हूम तथा बंजार मेला लगता है।

काली ओड़ी

काली ओड़ी का मंदिर ग्राम अरछंडी, कोठी नग्गर में स्थापित है। देवी का कारदार किशनचंद और पुजारी शुक्रुराम है। इसका फेटा रथ है जिसमें चाँदी के बने इक्कीस मोहरे विराजित हैं।

जनश्रुति है कि काली ओड़ी और जीवनारायण जाणा ग्राम में भाई-बहन की तरह रहते थे। एक बार काली माता ने शिरढ़ गाँव के एक शव को अपने हाथ लंबे करके छू लिया। इस पर जीवनारायण को क्रोध आया और उसने लात मारकर काली ओड़ी को शिरढ़ पहुँचा दिया। वहाँ से वह कन्यावेश में अरछंडी पहुँची जहाँ के राणाओं से उसका विवाद हुआ और देवी ने सभी को मृत्यु के घाट उतार दिया और स्वयं मोहरे में परिणत हो गई।

यह मोहरा अरछंडी के भंडारी के खेत में काम कर रही किसी महिला को मिला। उसने घर लाकर मोहरे को अनाज से आधे भरे संदूक में रख दिया। कुछ दिनों बाद जब संदूक खोला तो वह अनाज से भरा हुआ था और मोहरा उसके ऊपर आ निकला था। इस विचित्र घटना को देखकर महिला उस मोहरे को भंडारी के घर ले गई और उसे सारी बात बताई। इसी बीच किसी को देवखेल आई और उसने बताया कि वह चंडी माता काली ओड़ी है। तब से लोगों में उसकी मान्यता हुई। कहते हैं कि देवी का मूल मोहरा अब भी भंडारी परिवार के पास है। उसे केवल तभी बाहर निकाला जाता है जब माता काली ओड़ी मणिकर्ण की यात्रा पर जाती है परंतु रथ में उसे छिपाकर रखा जाता है।

देवी के निमित्त अरछंडी में शाऊण तथा बिरशु मेले लगते हैं।

अरजीपाल (एक)

अरजीपाल का मंदिर नारगी, कोठी महाराजा में है। देवता का गूर श्री तौलूराम, कारदार श्री कालूराम तथा पुजारी श्री अनूपराम हैं। देवता का खड़ा रथ है, जिसके शिखर

पर चाँदी का छत्र है तथा उठाने के लिए दो अर्गलाएँ लगी हैं। रथ के चारों ओर आठ मोहरे विद्यमान हैं। इनमें से अष्टधातु का एक मोहरा रथ के अग्रभाग में सुसज्जित है तथा शेष मोहरे चाँदी के हैं।

एक दंपती किसी कलह के कारण बीड़ भंगाहल से घर छोड़कर भागा। वह अपने इष्ट देवता अरजीपाल के घुंडी-धौड़छ (पूजा की घंटी और धूपपात्र) भी साथ लाया। चलते-चलते वे दोनों एक रात बागन गाँव में शोखी नामक व्यक्ति के बाग में ठहरे। जब शोखी को इनके ठहरने का पता चला तो वह अपने कठोर स्वभाव के कारण उन्हें रात को ही वहाँ से निकालने लगा। बड़ी अनुनय-विनय करने के बाद उसने कहा कि रात खुलते ही वहाँ से चले जाएँ। लेकिन चमत्कार यह हुआ कि आसमान में बादल छा गए। भारी वर्षा हुई और बाढ़ में शोखी का मकान और बाग सब बह गए लेकिन दंपती वहाँ किनारे बचा रहा। इसे देव-कृपा समझकर यह परिवार बागन के समीप नारगी में आ बसा और इन्होंने यहाँ अपने इष्ट देवता की भी श्रद्धापूर्वक स्थापना की।

देवता के यहाँ शाऊण जाच तथा मौक्खशर मेले व त्योहार मनाए जाते हैं।

अरजीपाल (दो)

अरजीपाल का मंदिर झोकड़ी, कोठी हुरंग में है। देवता का कारदार व पुजारी श्री चीठूराम तथा भंडारी श्री रामू है। देवता का रथ फेटा है, जिसके शिखर पर चाँदी का छत्र सुशोभित है तथा दोनों कोनों पर चाँदी की घुंडियाँ लगी हैं। उठाने के लिए दो अर्गलाओं का प्रयोग किया जाता है। रथ के अग्रभाग में दो अष्टधातु के तथा बारह चाँदी के मोहरे स्थापित हैं।

भंगाहल क्षेत्र से कुछ व्यक्ति काम की खोज में झोकड़ी गाँव में आए। वे यहाँ अपने इष्ट देवता अरजीपाल, जिसे अजयपाल भी कहते थे, की नित्यप्रति पूजा करते थे। एक दिन उनमें से एक व्यक्ति को देवखेल आई और उसने बताया कि देवता ने अपनी कला यहाँ स्थायी रूप से स्थापित कर दी है। उसके बाद स्थानीय लोगों को देवता की कृपा से कई आधि-व्याधियों से मुक्ति मिलने लगी, जिससे लोगों ने यहाँ देवता की विधिवत् स्थापना की।

सूरजपाल

सूरजपाल का मंदिर बड़ाभूईण, कोठी कोटकंडी में स्थित है। देवता का गूर श्री उदू, कारदार श्री तेजा सिंह, पुजारी श्री नरेंद्र शर्मा है। इसका दो अर्गलाओं से युक्त खड़ा रथ है, जिसके शीर्ष पर छत्र शोभायमान है। देवता के ग्यारह रजतनिर्मित मोहरे रथ के अग्रभाग में विराजित हैं।

जनश्रुति के अनुसार एक बार काईथ और तारु खानदान के बच्चे जंगल में पशु चरा रहे थे। वहीं उन्हें एक मोहरा मिला। बच्चे उसे गाँव में ले आए। गाँव के लोगों ने जब उसे देखा तो सोचने लगे कि वह किस देवता का मोहरा है। इसी बीच किसी व्यक्ति में देवशक्ति का प्रवेश हुआ और उसने बताया कि वह देवता सूरजपाल है। तब लोगों ने देवता की वहाँ

स्थापना की और उसे मानने लगे।

देवता के यहाँ भूंतर मेला लगता है।

शरपाल

शरपाल का मंदिर ग्राम बोणलु, कोठी महाराजा में विद्यमान है। देवता का गूर श्री लज्जूराम, कारदार श्री उत्तमराम तथा पुजारी श्री धनीराम है। इसका फेटा रथ है जिसमें नौ चाँदी के तथा चार पीतल के मोहरे स्थापित हैं।

शरपाल वास्तव में क्षेत्रपाल देवता है जो अपने क्षेत्र का एक रक्षक है। ध्वनि परिवर्तन के कारण क्षेत्रपाल शरपाल हो गया और कुछ लोग इसे श्रीपाल भी कहते हैं। शरपाल देवता का मूल स्थान सर्गपुर में माना जाता है। कहते हैं कि एक बार यहाँ भारी वर्षा के कारण बाढ़ आ गई और शरपाल अपने अन्य भाइयों के साथ उसमें बह गया। कालांतर में ये भिन्न-भिन्न स्थानों पर प्रकट हुए। शरपाल बोणसु में प्रकट होकर वहाँ के लोगों द्वारा पूजित हुआ।

देवता के यहाँ बिरशु तथा मौक्खूशर त्योहार मनाए जाते हैं।

जमलू के अन्य स्थान

जमलू देवता (एक)

जमलू का मंदिर उड़सू, कोठी कोटकंडी में स्थित है। देवता का कारदार श्री नौमीराम तथा पुजारी श्री रामसरन है। चाँदी के छत्र से सुशोभित शिखर वाला खड़ा रथ है, जिसके चारों कोनों पर चाँदी की घुंडियाँ लगी हैं। रथ के चारों ओर दस मोहरे विराजमान हैं, जिनमें से आठ रजतनिर्मित तथा दो अष्टधातु के हैं।

देवता जमलू ही सतयुग के ऋषि जमदग्नि हैं। मलाणा में कालांतर में इन्होंने अपना आश्रम स्थापित किया था तथा लोगों ने बाद में इन्हें अपना कुलदेवता माना। देवता मलाणा से चलकर उड़सू गाँव के पीछे एक शिला पर बैठ गया जो आज भी देवता के प्रतीक के रूप में वहाँ विद्यमान है। देवता ने साधु के वेश में प्रकट होकर लोगों से कहा कि वह देवता जमलू है। लोगों ने कहा कि उनके पास एक दमाणू (कोदे से बने एक नशीले पेय 'सूर' का पात्र) सूर और एक पत्था सत्तू है। यदि इसे खाकर गाँव के सभी व्यक्ति तृप्त हो जाएँ तो वे उसे देवता जमलू मान लेंगे। लोग सत्तू खाने लगे, सूर पीने लगे। सबके पेट भर गए परंतु सूर और सत्तू उतने ही बचे रहे जितनी उनकी मात्रा शुरू में थी। इस चमत्कार से प्रभावित होकर लोग देवता जमलू को मानने लगे।

देवता के शाढ़, माक्शर, फाल्गुन मास में फागली तथा वैशाख मास में बैसाखी मेले व त्योहार मनाए जाते हैं।

जमलू देवता (दो)

जमलू देवता का मंदिर चकनाणी, कोठी महाराजा में विद्यमान है। इसका गूर श्री गोविंद, कारदार श्री देवी सिंह, पुजारी तथा भंडारी श्री हरि सिंह है। देवता का रथ छत्र से भूषित शिखर भाग वाला दो अर्गलाओं से युक्त है। इसमें सात रजतनिर्मित तथा एक अष्टधातु का बना मोहरा शोभायमान है।

गाँव के बच्चे मौढ़ाबाड़ी में पशु चराने ले जाते थे। वे दिन को देवता की खेल खेलते हुए लकड़ी की तलवार से मेढ़े की गर्दन काटने का अभिनय करते थे। इस अभिनय में एक दिन मेढ़े की गर्दन सचमुच कट गई। जब बच्चों ने गर्दन को धड़ से जोड़ा तो वह फिर से जुड़ गई। अगले दिन यही खेल दोहराया तो कटा सिर जुड़ नहीं पाया। जब बच्चों ने यह बात घर आकर सुनाई तो हौरू-रौतणू, जिनका यह मेढ़ा था, रोने लगे। सारी घटना सुनकर गाँव के कुछ व्यक्ति मौढ़ाबाड़ी पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मेढ़ा ठीक से चर-विचर रहा था। लोग इस रहस्य के बारे में सोच रहे थे कि उसी बीच एक को देवखेल आई और कहा, "मैं देवता जमलू प्रकट हुआ हूँ।" लोगों ने इसे मानना शुरू किया। उसी काल में शिल्हा गाँव में जाणा से एक औरत जमलू देवता को लाई थी। कुछ समय इनको अलग-अलग मानते रहे। बाद में इनका एक ही प्रजाक्षेत्र बना। चकनाणी में देवता का भंडार बना और दरपोइण में मेला स्थल बनाया गया।

देवता के यहाँ शाऊण जाच़, फागली, मौक्खशरा रा उच्छव, माघा री खेल तथा पीज सदयाला मनाया जाता है।

जमलू देवता (तीन)

जमलू देवता का मंदिर ग्राम सीस में है। इसका गूर श्री गेहरूराम, कारदार श्री रामू तथा पुजारी श्री बेलीराम है। देवता का खड़ा रथ है जिसमें आठ मोहरे शोभित हैं।

जनश्रुति है कि सीस गाँव में एक समय चलाल खानदान के लोग रहते थे। उनका देवता सूरजपाल था। उनके पास भादेल खानदान का एक नौकर था। एक दिन उन्होंने अपने नौकर को खूब डाँटा। तंग आकर वह वहाँ से रात को भाग निकला। एक स्थान पर उसने रात काटी और प्रातः जैसे ही वह आगे जाने लगा तो एक आदमी उसे मनाकर वापस ले आया। उसके बाद वहाँ एक स्त्री को 'मैं आऊँ, मैं आऊँ' शब्द सुनाई देने लगे। उसने चनालों से परामर्श किया और कहा कि 'आओ'। ऐसा कहते ही एक पहाड़ टूट पड़ा और सभी चनाल उसके नीचे दब गए। तब नौकर को लाने वाले व्यक्ति ने देव वेश धारण कर कहा कि वह जमलू देवता है। उस समय वहाँ एक मार्ग था। देवता जमलू ने मार्ग से ऊपर का स्थान चनालों के देवता सूरजपाल को दिया और नीचे वाला स्थान अपने लिए रखा। इस प्रकार जमलू देवता की सीस में प्रतिष्ठा हुई।

देवता के निमित्त बैसाखी, जन्माष्टमी तथा फागली मनाई जाती है।

जमलू देवता (चार)

जमलू देवता का पैगोडा शैली का बना मंदिर ग्राम श्याह में स्थित है। देवता का गूर श्री उदेराम, कारदार श्री दोतराम तथा पुजारी श्री भागचंद है। देवता का खड़ा रथ है जिसमें आठ मोहरे सुशोभित हैं।

जनश्रुति है कि श्याह ग्राम का धनु शांघड़ी नामक गड़रिया एक बार मलाणा के निकट की पहाड़ी 'गिरुआ कोठी' पर भेड़ें चराने ले गया। वहाँ से लौटते समय वह कोई वस्तु साथ ले आया। जब वह अपने गाँव पहुँचा तो उसे देवखेल आई और उसने बताया कि वहाँ से लाई गई वस्तु में मलाणा का देवता जमलू भी साथ आया है। तब गाँव वालों ने वहाँ देवता को प्रतिष्ठापित किया।

देवता के निमित्त वैशाख संक्रांति को विरशु, भाद्रपद मास की संक्रांति तथा माघ मास के सात प्रविष्टे को त्योहार मनाए जाते हैं।

जमलू देवता (पाँच)

जमलू देवता का पैगोडा शैली में निर्मित मंदिर ग्राम हवाई में है। देवता का कारदार श्री बुधराम व पुजारी श्री नारायण चंद है। इसका खड़ा रथ है जिसके चारों ओर कुल आठ मोहरे सज्जित हैं।

जनश्रुति के अनुसार मलाणा का देवता जमलू धनु शांघड़ी नामक व्यक्ति के साथ आकर श्याह गाँव में प्रकट हुआ। हवाई और श्याह गाँव पहले एक ही गाँव के भाग थे। अब ये अलग-अलग गाँव हैं और हवाई गाँव के लोगों ने देवता को अलग से मानना आरंभ कर गाँव में जमलू के मंदिर व रथ का निर्माण किया है।

देवता के निमित्त श्रावण मास में हवाई काहिका और वैशाख संक्रांति को बिरशु मनाया जाता है।

मंदिरों की नगरी : मंडी

मंडी को मंदिरों की नगरी या छोटी काशी कहा जाता है। यहाँ स्थान-स्थान पर मंदिर और देवस्थान हैं। इतिहासकार बताते हैं कि राजा अजबर सेन ने 1527 में व्यास के बाएँ किनारे राजधानी बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व यह स्थान मात्र चरागाह थी। संभवतः राजधानी बनने से ही राजा की श्रद्धा के अनुसार यहाँ मंदिर बने और बाद में भी राजाओं के समय मंदिरों का विस्तार होता गया।

भूतनाथ मंदिर

भूतनाथ मंदिर मंडी नगर के मध्य में स्थित है। राजा अजबर सेन द्वारा सन् 1527 में मंडी नगर की स्थापना के साथ ही भूतनाथ मंदिर का भी निर्माण हुआ।

मंदिर शिखर शैली में निर्मित है, जिसमें गर्भगृह, सभा मंडप, अर्धमंडप हैं। मंदिर के बाहर नंदी स्थापित है। नंदी की पूँछ पकड़े एक छोटे मानव की आकृति है, जो प्रायः दूसरे शिव मंदिरों में नहीं होती।

सभा मंडप प्रवेश द्वार में उत्कीर्ण हुआ है। सभा मंडप के बीच एक हवनकुंड है। यहाँ पहाड़ी शैली के देवमंदिरों की भाँति एक बड़ा ढोल लटका हुआ है। मंडप से आगे गर्भगृह है। गर्भगृह का तोरण द्वार हस्ति मस्तक, वीणाधारी गंधर्व-किन्नरों से अलंकृत है। सभा मंडप का मध्य आमलक से सुसज्जित है। शिखर के मध्य ब्रह्मा, विष्णु, महेश की त्र्यंबक प्रतिमा है। आमलक के ऊपर कलश है। सभा मंडप के बाहर शिखराकार स्थान बने हैं, जिनमें कुछ मूर्तियाँ हैं, कुछ खाली हैं।

मंदिर के भीतर शिव एक अनगढ़ पत्थर के रूप में है जो मूल तथा प्राकृतिक प्रतीत होता है।

लोककथा

जैसा कि प्रायः सभी शिव मंदिरों के बारे में कथा प्रचलित है, यहाँ भी वैसी ही कथा सुनाई जाती है। मंदिर के स्थान में पहले जंगल था और लोग पशु चराते थे। एक गाय एक शिला पर रोज दूध गिराती थी। गाय घर में दूध दूहने पर कभी कम और कभी बिलकुल भी दूध नहीं देती थी। इस आश्चर्यजनक घटना के फैलने के बाद शिव ने अपने भक्त राजा को स्वप्न में बताया कि वह अमुक स्थान में हैं। वहीं कपिला गौ प्रतिदिन मेरे स्वयंभू लिंग को दूध से स्नान करवाती है। राजा ने उस स्थान पर श्रद्धावश मंदिर का निर्माण करवाया।

त्रिलोकीनाथ मंदिर

त्रिलोकीनाथ मंदिर राजा अजबर सेन (1500-1534) की रानी सुलतान देवी ने बनवाया। यह मंदिर व्यास नदी के दाएँ किनारे पुल के पार स्थित है। पंचवक्तर और त्रिलोकीनाथ मंदिर आमने-सामने हैं। बीच में व्यास बहती है।

मंदिर शिखर शैली का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। गर्भगृह में त्रिमुखी शिव की पार्वती सहित पाषाण प्रतिमा है। द्वार मंडप दो स्तंभों पर है। इन स्तंभों पर द्वारपाल की मूर्तियों के अतिरिक्त पशु, पुष्प-पत्र उकेरे गए हैं। गर्भगृह के साथ सभा मंडप है। गर्भगृह के बाहर चार स्तंभों पर मंडप है। इन स्तंभों पर भी आकर्षक उत्कीर्ण हुआ है।

गर्भगृह में त्रिलोकीनाथ के सम्मुख नंदी की सुंदर, आकर्षक और सुडौल मूर्ति है।

सभा मंडप में विष्णु, काली, शिव-परिवार, गणेश आदि की आकर्षक मूर्तियाँ हैं। एक मूर्ति शिव की भी है जो त्रिमुखी है। इन मूर्तियों को देखकर लगता है, यहाँ और मंदिर भी

कभी रहा होगा। त्रिलोकीनाथ परिसर में एक छोटा मंदिर भी है जो प्राचीन प्रतीत होता है। ऐसा लघु मंदिर कुल्लू के जगतसुख के पास भी है। ऐसे मंदिर या तो कोई बड़ा मंदिर बनाने से पूर्व मॉडल के तौर पर बनाए जाते थे या इन छोटे मंदिरों के साथ ही बड़े मंदिर स्थापित किए जाते थे।

सभा मंडप के बाहर प्रकोष्ठ बने हैं जैसे कि सभी शिखर शैली के मंदिरों में होते हैं। ऊपर के प्रकोष्ठों में मूर्तियाँ अभी सलामत हैं।

पंचवक्तर मंदिर

व्यास और सुकेती नदी के संगम पर त्रिलोकीनाथ के सामने पंचवक्तर का मंदिर स्थित है। व्यास के किनारे यह मंदिर पंचवक्तर शिव की भव्य प्रतिमा के कारण अद्भुत है। मंदिर में सीधा सभा मंडप बनाया गया है, जिसके चार स्तंभ हैं। चारों स्तंभों पर उत्कृष्ट नक्काशी की गई है।

गर्भगृह में मुख्य प्रतिमा के सामने नंदी प्रतिमा है जिस पर सुंदर नक्काशी हुई है। मंदिर के प्रवेश द्वार पर दो साँप बनाए गए हैं। सभा मंडप में एक अन्य पंचवक्तर की प्रतिमा है, जो मुख्य प्रतिमा से मिलती है। संभवतः पहले यही प्रतिमा मुख्य प्रतिमा रही होगी। गर्भगृह के द्वार पर गंधर्व, किन्नर, अप्सराओं की प्रतिमाएँ उकेरी गई हैं।

इस मंदिर की मुख्य मूर्ति मंदिर की विशेषता है। चारों दिशाओं में चार मुखों के अतिरिक्त ऊपर की ओर पाँचवाँ मुख दिखाया गया है। चारों दिशाओं में दो भुजाओं वाली आकृतियाँ हैं।

मंदिर राजा सिद्धसेन (1684-1727) ने बनवाया। सिद्धसेन का तंत्र में अधिक विश्वास था। कहा जाता है कि मूर्ति तंत्रशास्त्र के अनुसार बनी है। इसे तंत्र में स्वच्छ भैरव कहा जाता है। चारों दिशाओं में चार मुख, पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण तथा पाँचवाँ आकाश की ओर इंगित करता है। ये पाँच मुख जल, पृथ्वी, तेज, वायु और आकाश के प्रतीक भी हैं। शिव के पाँच नामों या अवतारों—ईशान (आकाश), पुरुष (वायु), अघोर (अग्नि), काम संज्ञक (जल), ब्रह्म संज्ञक (पृथ्वी) के प्रतीक रूप में पंचवक्तर स्थापित है।

पंचवक्तर शिव की बाईं जाँघ पर पार्वती विराज रही हैं। शिव आभूषणों से अलंकृत हैं। सिर में जटाएँ सुशोभित हैं। माथे पर तिलक है। पाँच मस्तकों वाली यह मूर्ति बहुत भव्य है।

अर्द्धनारीश्वर मंदिर

मंडी में अर्धनारीश्वर को समर्पित एक पूरा पाषाण मंदिर है। यूँ तो शिव को अर्द्धनारीश्वर के रूप में जाना जाता है किंतु अर्द्धनारीश्वर के मंदिर बहुत कम हैं। मंडी के समखेतर में कन्या उच्च माध्यमिक पाठशाला के साथ अर्द्धनारीश्वर मंदिर स्थित है।

यह मंदिर मंडी के मंदिरों में प्राचीन माना जाता है। मंडी स्टेट गजेटियर में इस मंदिर को भूतनाथ, त्रिलोकीनाथ, पंचवक्तर की तुलना में नया बताया गया है। इस मंदिर को

पहले 'कलेसर मंदिर' कहते थे। कलेसर महादेव मंदिर का प्रसिद्ध मंदिर जिला काँगड़ा में व्यास के किनारे भी है जो कालेश्वर का अपभ्रंश है। दूसरे इसे मियाँ कलेसर ने बनवाया, इसलिए कलेसर मंदिर कहा गया। मियाँ कलेसर धूड़जटिया के तीन पुत्रों में से एक था। इसका समय अठारहवीं शताब्दी के अंत में माना जाता है। यह संभव है कि मियाँ कलेसर ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार किया हो।

मंदिर के गर्भगृह में अर्द्धनारीश्वर की आकर्षक प्रतिमा है। दाएँ भाग में शिव हैं, बाएँ में पार्वती। शिव जटा, मुंडमाला धारण किए हुए हैं तो पार्वती मुकुट तथा गहने धारण किए हुए हैं। शिव के एक हाथ में डमरू है, दूसरा वरदहस्त है। पार्वती के एक हाथ में माला, दूसरे में गेंद है। शिव-पार्वती के वाहन भी अपने-अपने हैं। एक ओर नंदी तो दूसरी ओर सिंह। कला की दृष्टि से यह एक अद्‌भुत प्रतिमा है।

गर्भगृह में शिवलिंग के साथ भैरव, शिव-पार्वती, गणेश की मूर्तियाँ उत्कीर्ण की हुई हैं।

मंदिर का अर्द्धमंडप सहित वितान पुराना है। सभा मंडप तथा वितान में बहुत उत्कृष्ट नक्काशी हुई है। प्रवेश द्वार पर मूर्तियों के प्रकोष्ठ अब खाली हैं। सभा मंडप को प्रवेश द्वार के साम्य भी उत्कीर्ण किए हुए हैं। सभा मंडप के भीतर बटुक और चतुर्भुज ब्रह्मा की मूर्तियाँ हैं। शिव के गण तथा हनुमान की प्रतिमा भी है। तोरण द्वार में गंधर्व कन्याएँ चित्रित की गई हैं। निचले भाग में हस्ति मस्तक पर दो महिला आकृतियाँ हैं। गंगा-यमुना की आकृतियाँ भी चित्रित हैं।

श्यामाकाली टारना

श्यामाकाली मंदिर मंडी बाजार से ऊपर टारना पहाड़ी पर स्थित है। इसे टारना मंदिर भी कहा जाता है।

मंडी स्टेट गजेटियर के अनुसार मंदिर का निर्माण सन् 1659 में हुआ। इसे राजा श्यामसेन ने बनवाया।

राजा श्यामसेन का सुकेत के राजा जीतसेन से वैमनस्य था। राजा जीतसेन श्यामसेन को टिक्कड़नाथ कहकर मजाक उड़ाता था। श्यामसेन ने श्यामाकाली से प्रार्थना करने के बाद जीतसेन से युद्ध छेड़ दिया। बल्ह में लौहारा नामक स्थान पर दोनों सेनाओं का युद्ध हुआ, जिसमें जीतसेन की पराजय हुई। जब ज़ीतसेन भाग रहा था तो एक कटोच सैनिक ने उसका पीछा किया। राजा जीतसेन ने प्राणों की भीख माँगी तो कटोच सैनिक ने उसका राजचिह्न छीनकर जीवनदान दिया। सैनिक ने वह राजचिह्न राजा श्यामसेन को भेंट किया, जिसके बदले उसे दृंग की नमक खानों को बिना किसी मूल्य के बख्श दिया।

राजा श्यामसेन ने जीत की खुशी में और अपनी इच्छा पूरी होने पर श्यामाकाली का मंदिर बनवाया। इसके बाद राज परिवार संतानोत्पत्ति के बाद शिशु को यहाँ माँ के आशीर्वाद के लिए लाने लगा।

मंदिर का निर्माण एक गुंबद के रूप में हुआ है। गुंबद की दीवारें सोने तथा चाँदी के

पानी से बेल-बूटों व डिजायनों से उकेरी गई हैं। कहा जाता है कि यह अलंकरण राजा ईश्वरी सेन (1788-1826) ने काँगड़ा के राजा संसारचंद की कैद से मुक्त होने के बाद करवाया। गर्भगृह के बाहर बरामदा है जो प्रदक्षिणा पथ है।

गर्भगृह की चित्रकारी का जीर्णोद्धार जोगेन्द्रसेन (1913-1941) ने भी करवाया।

गर्भगृह के भीतर श्यामाकाली की प्रतिमा धूप से बनाई जाती रही है। मंदिर के भीतर तारा (बौद्ध) की प्रतिमा भी है। एक शिव प्रतिमा भी है।

राजा जालिम सेन (1826-1839) ने टारना मंदिर में भित्तिचित्र बनवाए। ये भित्ति चित्र मंडी के सबसे पुराने भित्तिचित्रों में माने जाते हैं। ऐसे ही चित्र जालपा देवी के मंदिर में भी बनवाए। इन चित्रों में खनिज रंगों का प्रयोग हुआ है। चमक लाने के लिए सोना तथा चाँदी भी लगाया गया है। गर्भगृह की पूरी की पूरी दीवार में चित्रण एक विशेषता है। दूसरे ये चित्र स्थानीय विधि और स्थानीय रंगों से निर्मित हैं। यहाँ राजपरिवार के बच्चों का मुंडन संस्कार किया जाता है। आश्विन नवरात्रों में मेले लगते हैं।

माधोराय

माधोराय का मंदिर राजमहल में है। अब यह जिलाधीश कार्यालय के प्रांगण के सामने वाले हिस्से में स्थित है। यह राजपरिवार का एक निजी मंदिर है जैसा रघुनाथ मंदिर सुलतानपुर कुल्लू में है।

माधोराय की चाँदी की प्रतिमा को राजा सूरज सेन (1637) ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में माना। कहा जाता है राजा सूरज सेन के अठारह पुत्र हुए किंतु सभी राजा के जीवनकाल में ही मृत्यु को प्राप्त हो गए। अब उत्तराधिकारी के रूप में राजा ने एक चाँदी की प्रतिमा बनाई, जिसे माधोराय नाम दिया गया।

'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स' में उल्लेख है कि राजा ने अपना राज्य माधोराय को दिया। इस प्रतिमा में संस्कृत में लेख है : 'सूर्यसेन, भूपति तथा शत्रुनाशक ने इस पवित्र प्रतिमा, देवों के गुरु माधोराय को, भीमा स्वर्णकार द्वारा विक्रमी 1765, वीरवार, 15 फागुन को बनवाया।'

मंडी शिवरात्रि में माधोराय की सवारी पालकी में निकलती है। आसपास के सभी देवता यहाँ आकर हाजरी देते हैं।

सिद्धभद्रा मंदिर

व्यास-सुकेती के ऊपर सिद्धभद्रा मंदिर है। इसे राजा सिद्धसेन (1684-1721) ने बनवाया। यह मंदिर शिकारी देवी की भाँति बिना छत्र के था। संभवतः राजा सिद्धसेन मंदिर निर्माण पूरा होने से पहले ही स्वर्ग सिधार गए। पर यह भी माना जाता है कि सिद्धभद्रा अपने मंदिर के ऊपर छत स्वीकार नहीं करती। अब इस मंदिर के ऊपर एक छोटा और एक बड़ा गुंबद बना दिया गया है।

मंदिर में उत्कीर्ण कला सराहनीय है। प्रवेश द्वार के स्तंभों पर उत्कीर्ण कार्य हुआ है।

तोरण द्वार में भी फूल-पत्ते तथा गायन व नृत्य करते गंधर्व-किन्नर बनाए गए हैं।

मंडी में अठारहवीं शताब्दी में भुवनेश्वरी मंदिर का निर्माण किया गया। राजा बलवीर सेन (1834-1951) की माता अनूप नयनी ने व्यास के बाएँ किनारे साहि बनी मंदिर का निर्माण करवाया। इसके अतिरिक्त महामृत्युंजय मंदिर, एकादश रुद्र, सिद्धकाली, रूपेश्वरी, भीमारानी, जालपा देवी, शीतला देवी, रामचंद्र, जगन्नाथ, बाबा शेर आदि के मंदिर भी मंडी में स्थित हैं। मंडी शहर के बीच घंटाघर, मांडव्य शिला तथा राजाओं के बरसेले भी यहाँ विद्यमान हैं।

कालीमाता चामुंडा

चामुंडा मंदिर स्कूल बाजार में स्थित है। 29'-30' आकार में निर्मित यह मंदिर मिश्रित शिल्प का है। देवी का रथ है जो लंबे आकार का है। शीर्ष भाग पर दो छत्र हैं। चाँदी से निर्मित चाँदनी, भुजा, जाली तथा चारों कोनों में घुंडियाँ लगी हुई हैं। रथ में पाँच मोहरे लगाए जाते हैं, जिनमें एक चाँदी तथा चार अष्टधातु के हैं। ये सभी मोहरे रथ के अग्रभाग में पहले एक और नीचे दो-दो सजाए जाते हैं।

देवी शिवरात्रि उत्सव में भाग लेती है। वर्ष में सभी त्योहार मनाए जाते हैं। भाद्रपद मास में एक जागरण भी होता है। नवरात्रों में बकरे तथा भेड़े की बलि दी जाती है।

देवी का गूर सुंदरलाल, कारदार बीरी सिंह, पुजारी महेश प्रसाद है। एक भंडारी तथा सात बजंतरी हैं।

नैणा माता

नैणा माता का मंदिर सैण मुहल्ला में है। देवी का लंबे आकार का रथ है जिसके सिर पर छत्र है। रथ के अग्र भाग में पाँच मोहरे लगे रहते हैं जिनके नीचे नारायण की प्रतिमा है। सन् 1983 से माता को शिवरात्रि में लाया जाता है। बकरे की बलि दी जाती है।

गूर रवि, कारदार चौंड़ु, पुजारी रवि है।

नाग देश की यात्रा

जीवनदायिनी नदियाँ सीमा-रेखाएँ भी निर्धारित करती हैं। हिमाचल में रावी-सतलुज, व्यास ने सीमा-रेखा का काम किया है रियासती समय में। आज भी सतलुज के उस पार जिला शिमला है तो इस पार कुल्लू और मंडी। सतलुज के बाएँ किनारे बसा है सुन्नी, जो ब्रिटिश काल में शिमला हिल्ज की अट्ठाईस रियासतों में से एक भज्जी रियासत का अंग था। इसे संयुक्त रूप से सुन्नी-भज्जी भी कहा जाता है। सतलुज का यह किनारा जिला शिमला में है, दूसरी ओर जिला मंडी का भीतरी भाग। सतलुज के बाएँ किनारे हनुमान मंदिर है तो

दाएँ किनारे मंडी का तत्ता पाणी।

तत्ता पाणी से शुरू होती है मंडी के भीतर की यात्रा। मंडी, जो शहर का इम्प्रेशन देता है, जो मैदानी अधिक और पहाड़ी कम प्रतीत होता है, वास्तव में देवदार की ऊँचाई लिए हुए है। ये ऊँचाइयाँ एक ओर जिला कुल्लू से लगते बजौरा मंदिर से नीचे व्यास के किनारे नींव डालती हैं, तो दूसरी ओर करसोग की ओर। बिलासपुर की ओर से आते हुए सैलानी के लिए मंडी की समतल बल्ह घाटी और मंडी शहर जो चित्र बनाता है, वह वास्तविकता नहीं है।

तत्ता पाणी या गर्म पानी यूँ तो एक पुराना, जाना-माना और प्रतिष्ठित धार्मिक स्थल है, किंतु इसे देख निराशा होती है। गर्म पानी के चश्मों के जिस आकर्षण को लेकर यात्री जाता है, वह यहाँ निराश होता है। नदी के किनारे उबलता हुआ पानी और बर्फीला पानी एक साथ छूने पर जो रोमांच होता है, वह यहाँ नहीं है। जैसे मणिकर्ण में उफनते गर्म पानी और आग उगलते बर्फीले पानी का संगम है, ऐसा अलौकिक दृश्य यहाँ उपस्थित नहीं होता। यहाँ पाइप द्वारा दरिया से गर्म पानी खींचकर ऊपर लाया गया है। दरिया नीचे है। कुछ ईंटों की अधूरी दीवारें बनाकर खड़े किए स्नानागार एक दीन-हीन झलक देते हैं। पानी गर्म जरूर है, माहौल ठंडा है।

सड़क के किनारे लक्ष्मीनारायण का एक छोटा-सा मंदिर है। मंदिर के बाहर बाबा कैलाशानंद की प्रतिमा है, जिन्हें यहाँ का संस्थापक माना जाता है। दो कमरों की एक सराय भी है जो जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। हाँ, पास ही लोक निर्माण विभाग का आवासगृह है। बैसाखी के दिन यहाँ मेला लगता है।

इस स्थल को धार्मिक और पर्यटन, दोनों दृष्टियों से विकसित करने की बहुत संभावनाएँ हैं।

सड़क के ऊपर नृसिंह मंदिर है जिसके पुजारी शालिग्राम हैं। इस मंदिर के नाम कुछ भूमि है, जो आधी देवता के नाम है और आधी पुजारी के नाम। यही पुजारी इस मंदिर की व्यवस्था देखते हैं। लोहड़ी और बैसाखी के त्योहार यहाँ भी मनाए जाते हैं।

तत्ता पाणी ही इस ओर से जिला मंडी के लिए प्रवेश द्वार है। यहीं से शुरू होता है मंडी के भीतरी भाग का सफर, जो अनेक शिखर-घाटियों को पार करता हुआ सुकेत या सुंदरनगर पहुँचता है। तत्ता पाणी से चुराग के शिखर तक की यात्रा में सूखे पेड़ और वनस्पतिरहित पहाड़ हैं। पेड़ कट गए हों ऐसी बात नहीं है। ये पहाड़ जन्मजात नंगे हैं। चुराग की ऊँचाई दिखते ही हरियाली के दर्शन होते हैं और सुंदर खेत दिखते हैं। यहाँ ऊँचाई में आने पर देवदार और सेब शिमला की ऊँचाई व वातावरण की याद ताजा करते हैं।

मूल माहूनाग और निरंतर जलती आग

चुराग से कुछ आगे मुख्य सड़क से लगभग बाहर किलोमीटर दूर है माहूनाग का मूल स्थान यानी मूल माहू नाग मंदिर।

यूँ तो प्रदेश में अधिकांश भागों में नागपूजा प्रचलित है। मंडी, कुल्लू के काष्ठ मंदिरों

के द्वार पर नाग बेल-बूटों की तरह घड़े गए हैं। काँगड़ा, हमीरपुर, ऊना में गुग्गा जाहरपीर के साथ जुड़ी नागपूजा।

नाग माने जाने वाले साँप को कभी मारा नहीं जाता। किंतु मंडी में नाग का विशेष महत्त्व है। नागों में भी माहूनाग एक प्रतिष्ठित देव है।

माऊँ, माहू या माहूनाग मंडी तथा शिमला क्षेत्र का एक प्रभावी देवता है जिसे महाभारतकालीन कर्ण का अवतार माना जाता है। जैसा कि हर देवता के प्रादुर्भाव के साथ किंवदंतियाँ जुड़ी रहती हैं, वैसी ही इस देवता के साथ भी एक प्रचलित-सी कथा है।

कहा जाता है कि एक बार जब एक व्यक्ति खेत में हल जोत रहा था तो हल की नोक एक मूर्ति से जा टकराई। मूर्ति ने उस व्यक्ति से कहा कि वह राजा कर्ण है और अब नाग-रूप में रहेगा। मूर्ति को ब्राह्मणों के गाँव लाया गया। देवता ने वहाँ रहना नहीं माना और एक निर्जन स्थान में, जहाँ जंगल था, रहना पसंद किया। वहाँ एक मंदिर का निर्माण किया गया। उस समय वहाँ जोर की बिजली चमकी और एक पेड़ में आग लग गई। वह आग आज भी जली हुई रखी गई है।

दूसरी कथा के अनुसार, एक बार सुकेत के राजा श्यामसेन को दिल्ली में मुगल राजा ने कैद कर लिया। वहाँ माहूनाग मधुमक्खी के रूप में गया और राजा से मिला। राजा ने कैद से मुक्त होकर नाग को आधा राज्य देना स्वीकार किया। नाग ने राजा को कैद से छुटकारा दिलाया। राजा ने आधा राज्य माहू नाग को दे दिया। माहूनाग ने आधा राज्य लेने की अपेक्षा थोड़ी-सी जमीन ली, जहाँ मंदिर का निर्माण हुआ।

इस कथा का उल्लेख 'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल्ज स्टेट' में भी मिलता है। राजा श्याम सेन ने मुगल कारावास से छूटने के बाद चार सौ रुपए की जागीर माहूनाग को दे दी। इससे प्रतीत होता है कि राजा श्यामसेन (1620) के समय माहूनाग का मंदिर मौजूद था।

मुख्य द्वार के भीतर पूरा मंदिर परिसर है। वाहन योग्य कच्ची सड़क मंदिर के नीचे तक जाती है जहाँ से कुछ खेत पार कर ऊपर मंदिर का मुख्य द्वार आता है। द्वार के भीतर एक ओर मुख्य मंदिर है। बाहर की ओर द्वारपाल के रूप में 'सगरेट' या 'जड़' देवता की काष्ठ प्रतिमा है। दूसरी ओर सदा जला रहने वाला धूणा है। मंदिर की पिछली ओर लगभग पाँच बीघे भूमि है जिसमें सेबों का बागीचा लगा हुआ है।

माहूनाग तहसील करसोग का सबसे धनवान देवता है जिनका साज-बाज चाँदी का है। मंदिर की ओर से एक हाईस्कूल के लिए पच्चीस हजार रुपए की वार्षिक सहयोग की राशि दी जाती है जो कर्ण का अवतार होने की पुष्टि करता है।

मंदिर में दोनों समय पूजा-आरती होती है। कालौता गाँव के पंडित बारी से तीन-तीन महीने पूजा करते हैं। पुजारी, कारदार, गूर सभी पैतृक हैं जो एक ही वंश से सदियों से चले आ रहे हैं। गूर बनने के लिए पैतृक होते हुए भी परीक्षा से गुजरना पड़ता है। गूर बनने को आया व्यक्ति दौड़ता हुआ जाता है और निश्चित स्थान पर सतलुज में छलाँग लगाता है।

इस समय मंदिर की प्रबंध व्यवस्था के लिए तहसीलदार करसोग की अध्यक्षता में एक समिति बनी हुई है। हर वर्ष मंदिर का बजट तैयार होता है। इसी बजट से देवता के

समस्त क्रियाकलाप, मंदिर विकास-कार्य, कर्मचारियों का वेतन तथा स्कूल को अनुदान दिया जाता है। मंदिर में यात्रियों की सुविधा के लिए सराय तथा भोजन की व्यवस्था भी है। माहूनाग के अन्य गाँवों में भी स्थान हैं।

मंदिर में जेठ संक्रांति तथा दो-तीन प्रविष्टे को मेला माहूनाग मनाया जाता है। इस अवसर पर जागरण के साथ 'देऊ खेल' होती है। जिसमें गूर खेलते हैं और देवता का इतिहास सुनाते हैं। ज्येष्ठ की दूसरी तिथि को देवता की शोभायात्रा निकलती है। बागड़ाधार में पहुँचने पर बकरों की बलि दी जाती है। इस मेले में दूर-दराज के क्षेत्रों से हजारों लोग आते हैं। तीन ज्येष्ठ के बड़े मेले में करसोग से चच्योट, कुमारसेन, मंडी, रामपुर, सुन्नी, ठियोग तथा कुल्लू से आए श्रद्धालु भाग लेते हैं। बकरे की बलि के अतिरिक्त लोग देवता को भेंट चढ़ाते हैं।

अद्भुत सैरगार चिंडी

मूल माहूनाग से आगे करसोग के लिए उतराई आरंभ होने से पहले चिंडी आवासगृह एक अद्वितीय स्थान है। इस क्षेत्र में चिंडी आवासगृह एक प्रसिद्ध आवासगृह है, जहाँ दूर-दूर से पहाड़ों के शौकीन सैलानी आते हैं। इस आवासगृह से अद्भुत दृश्य नजर आता है। इस आवासगृह में ठहरना एक उपलब्धि मानी जाती है।

आवासगृह से कुछ आगे चिंडी माता या दुर्गा माता का मंदिर है। सड़क के ऊपर की ओर मंदिर का विशाल परिसर है। लोकास्था के अनुसार देवी जिस दराँती को लेकर प्रकट हुई थी, वह आज भी मंदिर में रखी हुई है। आसपास के क्षेत्र की विवाह-शादियाँ इस मंदिर में होती हैं। मंदिर में पुजारी पैतृक है, जो मंदिर की पिछली ओर रहता है। मंदिर की सुरक्षा के लिए डेढ़ सौ रुपए मासिक वेतन पर एक चौकीदार रखा हुआ है।

किन्नरी बाला ममलेषा और ममलेश्वर महादेव

करसोग प्राचीन मंदिरों और परंपराओं का गढ़ रहा है। यद्यपि आज बहुत-सी परंपराएँ छिन्न-भिन्न हो चुकी हैं तथापि इनके अवशेष आज भी सिर उठाए खड़े हैं। ममलेश्वर महादेव, कामाक्षा देवी के भव्य काष्ठ मंदिर, आसपास बिखरी ऐतिहासिक मूर्तियाँ उस पौराणिक परिवेश की आज भी याद ताजा करती हैं।

ममेल को परशुराम का स्थान माना जाता है जहाँ ऋषि ने तपस्या की। लोकास्था के अनुसार ऋषि अपने यहाँ वास के समय एक किन्नरी सुंदरी ममलेषा पर आकर्षित हुए और मोहवश उससे विवाह कर लिया। म्लेच्छ कन्या से विवाह में दोष से बचने के लिए ऋषि ने महाकाल शिव की आराधना की। अतः यहाँ शिव की स्थापना हुई।

करसोग के छोटे-से बाजार के पास है ममेल गाँव। सड़क के साथ गाँव के अंतिम छोर पर ममलेश्वर महादेव का मंदिर है। विशाल मंदिर परिसर में इस समय दो काष्ठ मंदिर हैं, जो पैगोडा शैली की मिली-जुली वास्तुकला के अद्वितीय नमूने हैं। पहले मंदिर में पूजा होती है। भीतर शिव-पार्वती की कमलासन पर मूर्ति स्थापित है। मंदिर के भीतरी भाग में धोती

पहनकर ही जाया जा सकता है। मंदिर के द्वार के एक ओर विष्णु तथा शिव की पाषाण प्रतिमाएँ रखी हुई हैं जो अन्य मंदिर की प्रतीत होती हैं। इसी तरह पृष्ठ भाग में भी कुछ पाषाण मूर्तियाँ हैं।

दूसरा मंदिर भंडार है। इस मंदिर की ऊपरी मंजिल में भुंडा उत्सव का रस्सा लटका हुआ है। मंदिर में एक पुराना और बड़े आकार का गेहूँ का दाना भी बताया जाता है। निरमंड की तरह यह भी परशुराम का स्थान है और यहाँ भी कभी भुंडा उत्सव मनाया जाता था। यहाँ भुंडा उत्सव कब हुआ होगा, यह कोई नहीं जानता। एक व्यक्ति के पास उपलब्ध हस्तलिखित पांडुलिपि में यहाँ मनाए जाने वाले एक विशाल उत्सव के विधि-विधान का उल्लेख है। तंत्र-मंत्र पर आधारित यह उत्सव कुछ-कुछ बौद्ध धर्म के तंत्रवाद से भी जुड़ता है।

वर्तमान दोनों मंदिरों के अतिरिक्त यहाँ एक शिखर शैली का पाषाण मंदिर भी था। परशुराम मंदिर के चारों ओर विष्णु-शिव की पाषाण प्रतिमाएँ उसी मंदिर की हैं। शिखर शैली के मंदिर में अवशेष जैसे भद्रमुख, स्तंभ तथा कुछ घड़े हुए पत्थर जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं। मंदिर के साथ खुदाई में एक शिवलिंग भी निकला है।

इस समय मंदिर का कोई पैतृक पुजारी नहीं रहा। प्रबंध व्यवस्था के लिए तहसीलदार करसोग की अध्यक्षता में एक समिति बनी हुई है। पुजारी वेतनभोगी है। मंदिर परिसर के अतिरिक्त अब मंदिर की कोई भूमि नहीं है। मंदिर समिति आज भी मंदिर के पाँच वजीरों की राय से कार्य करती है। कभी इस मंदिर के नाम छह सौ साठ बीघे भूमि थी।

शिवरात्रि तथा दोनों नवरात्रों के दिन यहाँ उत्सव मनाए जाते हैं। आसपास के गाँवों में पाँच मेले लगते हैं।

कामाक्षा देवी और भैंसों की बलि

कामाक्षा या काओ देवी का मंदिर ममेल से लगभग पाँच किलोमीटर नीचे काओ नामक गाँव में है। यहाँ से कच्ची सड़क जाती है ममेल को। किंवदंती के अनुसार यह मंदिर भी परशुराम द्वारा स्थापित है। मंदिर लकड़ी का बना हुआ है। कभी इस मंदिर का भी विशाल परिसर रहा होगा, ऐसा मंदिर से आगे बाजार में बने देवता के स्थान से प्रतीत होता है, किंतु इस समय यह केवल मंदिर तक ही सीमित है। मंदिर में देवी की अष्टधातु की प्रतिमा है। दूसरी ओर शिव तथा परशुराम की मूर्तियाँ हैं।

ममलेश्वर महादेव की अपेक्षा यहाँ अभी भी परंपरा कायम है। मंदिर के पुजारी, कारदार तथा बजंतरी सभी पैतृक हैं। देवी पूजा तीन परिवारों द्वारा बारी-बारी से की जाती है। पुरातन परंपरा के होते हुए भी प्रबंध व्यवस्था के लिए तहसीलदार करसोग की अध्यक्षता में एक समिति बनी हुई है।

मंदिर में वैशाख के चार प्रविष्टे को लाहुल मेला तथा आषाढ़ के दो प्रविष्टे को आषाढ़ मेला लगता है। मेले में देवी तथा नाग पुंडरी के रथ सजाए जाते हैं। नाग पुंडरी का स्थान सामने पहाड़ी पर है। दोनों की शोभायात्रा मेले में निकाली जाती है।

नवरात्रों में दुर्गा अष्टमी के दिन दुर्गा सप्तशती के पाठ के साथ अन्य धार्मिक परंपराएँ निभाई जाती हैं। मेले में देवी का गूर खेलता है। उसे कंधों पर बिठाकर गाँव का चक्कर लगाया जाता है। पूरे चक्कर के बाद देवी के रथ के सामने मंदिर में पुनः गूर अपने आपे में लौट आता है। यह प्रक्रिया भुंडा या काहिका से मिलती है। निरमंड में इसे शिखफेर कहा जाता है तो यहाँ केवल 'फेर'।

दुर्गा अष्टमी को ही दोपहर बाद देवी तथा पुंडरी नाग के रथ सजते हैं। देवताओं की शोभायात्रा भी उसी रास्ते से निकाली जाती है जिस रास्ते से 'फेर' होता है। रथों के आगे-आगे भैंसे ले जाए जाते हैं। पहाड़ के ऊपर पहुँचने पर रथ नीचे रख दिए जाते हैं और पूजा होती है। इसके बाद पुनः शोभायात्रा वापस मंदिर में आती है। अब मंदिर में भैंसे लाए जाते हैं और उन्हें बलि किया जाता है। बलि चढ़ाने वाला आदमी पुजारी के साथ उनकी पूजा करता है और पानी छिड़कता है। इसके बाद भैंसे का सिर धड़ से अलग कर दिया जाता है। ऐसा भी सुना गया कि कई बार एक बार में सिर पूरी तरह नहीं कटता तो भैंसा अधकटे सिर के साथ ही नीचे खेतों में भाग जाता है।

पाँगणा किला और महामाया मंदिर

करसोग से पुनः चिंडी होकर एक सड़क-मार्ग मंडी के भीतरी भाग से सुंदरनगर निकलता है।

पाँगणा घाटी एक सुंदर घाटी है जहाँ से ऊपर शिकारी देवी का शिखर दिखता है। ऊपर की ओर ऊँचे शिखर, नीचे पहाड़ियाँ खुलती हुईं। पाँगणा वही स्थान है जहाँ से स्वतंत्रता की क्रांति का बिगुल बजा था। यहीं से जनता सुकेत या सुंदर नगर के राजा के खिलाफ इकट्ठी हुई और सुकेत की ओर बढ़ी थी। हिमाचल के रियासती शासन के विरुद्ध फैला यह आंदोलन प्रजा मंडल आंदोलन के नाम से जाना जाता है।

दोनों पहाड़ियों में उतरती-चढ़ती सड़क से ही नजर आता है पाँगणा किला। पहाड़ी किलेबंदी का अद्भुत नमूना। लकड़ी से निर्मित ऐसे बहुमंजिले किले प्रदेश के ऊपरी भागों में पाए जाते हैं। बंजार में चैहणी कोठी, किन्नौर में मूरंग किला ऐसी ही काष्ठ वास्तुकला के उदाहरण हैं। इस बहुमंजिले किले में भी ऊपर चढ़ने के लिए भीतर ही भीतर छोटी-छोटी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। जहाँ मंजिल चढ़ने-उतरने पर नीचे बैठना पड़ता है।

किले के बाहर यहाँ भी माहूनाग का स्थान है। यहाँ साँप के काटे को ठीक किया जाता है। माहूनाग के काष्ठ मंदिर के नीचे जेल की कोठरी है। अब इस कोठरी की ऊँचाई मिट्टी निकालकर कुछ बढ़ा दी गई है। पहले समय में भीतर आदमी खड़ा नहीं हो सकता था।

प्रवेश द्वार के साथ ही है देई साहिबा की समाधि। इस समाधि के बारे में एक लोमहर्षक कथा सुनाई जाती है। यहीं राजकुमारी की समाधि बना दी गई है।

किले के साथ ही अब लोक निर्माण विभाग का आवासगृह बना हुआ है। आवास के आगे लगी दीवारों से प्रतीत होता है कि यह सारा परिसर पाँगणा किले का ही था।

इस समय किले की ऊपरी मंजिल में महामाया का मंदिर है। एक ओर दीवार पर देवी

की मूर्तियाँ तथा मोहरे रखे हुए हैं। काष्ठ स्तंभों पर नक्काशी हुई है। दीवारों पर टाकरी में कुछ लिखा हुआ है। मंदिर की खिड़की से शिकारी देवी का शिखर दिखाई पड़ता है।

किले तथा मंदिर की प्रबंध व्यवस्था के लिए एक समिति बनी हुई है। समिति द्वारा किले तथा प्रांगण की मरम्मत करवाई गई है। मंदिर की आय-व्यय का भी विधिवत् हिसाब रखा जाता है।

शरद और चैत्र नवरात्रों में यहाँ मेला लगता है। मेला लाहुल में भी मनाया जाता है। मेले-उत्सवों के समय देवता के बजंतरी ढोल, नगारे, करनाल, रणसिंगे, गुझू बजाकर देवता को आमंत्रित करते हैं। देवता आवाहन पर गूर में प्रवेश कर जाता है और गूर विभिन्न मुद्राएँ बनाकर नृत्य करते हैं। जनता को विपदाओं से छुटकारा दिलाकर गूर देऊ खेल करता है, जिसमें वह आवेश में आकर धान, जौ तथा थूहर (कैक्टस की एक किस्म) खा जाता है जिसे सामान्य व्यक्ति मुँह में भी नहीं डाल सकता।

दुर्गा अष्टमी के अवसर पर यहाँ भी भैंसे की बलि दी जाती है।

महाभारत का योद्धा : कामरू नाग

माहू नाग के बाद जिला मंडी में दूसरा समर्थ देवता कामरू नाग माना जाता है। मुख्य रूप से यह वर्षा का देवता माना जाता है।

पाँगणा से कुछ ऊँचाइयाँ पार कर रुहांडा आता है। यहाँ से मंडी लगभग सत्तर किलोमीटर रह जाती है। यहाँ वन विभाग का एक विश्रामगृह भी है। रुहांडा से लगभग पाँच किलोमीटर है कामरू नाग का मंदिर तथा झील। मंदिर छोटा-सा है क्योंकि देवता मंदिर निर्माण के पक्ष में नहीं है। लगभग नौ हजार फुट की ऊँचाई पर स्थित यह स्थान ऊँचे देवदारों से घिरा मनोहारी स्थान है जहाँ गर्मियों के मौसम में जाना ही आनंददायक है।

कामरू नाग के विषय में एक कथा प्रचलित है, जो आगे दी जा रही है।

कामरू नाग में बैसाखी व लोहड़ी को पूजा होती है। आषाढ़ की संक्रांति को मेला जुटता है जिसे सरनाहुली कहते हैं। चढ़ावे के रूप में श्रद्धालुओं द्वारा दी सामग्री झील में फेंकी जाती है। सोना, चाँदी, रुपए, रेजगारी सब झील में गिराई जाती है। न जाने सदियों से कितना सोना-चाँदी इस झील के गर्भ में छिपा पड़ा है।

माहूनाग (तरौर)

मंडी पहुँचने से पहले तरौर के माहूनाग मंदिर में जाना आवश्यक है। माहूनाग तरौर मंडी क्षेत्र में एक सशक्त देवता है। मंडी शिवरात्रि में इस देवता की विशेष मान्यता होती है। मूल माहूनाग बखारी के अलावा इस ओर यूँ तो देवता के पर्याप्त स्थान बन गए हैं, माहूनाग, तरौर का अपना महत्त्व है।

तरौर गोहर से लगभग पाँच-सात किलोमीटर है; गौहर से तरौर के लिए एक कच्ची सड़क है। माहूनाग का मूल मंदिर ऊँची पहाड़ी पर है। वर्तमान पुजारी के पिता द्वारा उस जंगल में माहूनाग के प्रकट होने पर मंदिर बनवाया गया। मंदिर अधिक पुराना नहीं है, किंतु

परंपरागत शैली में लकड़ी से निर्मित है। मंदिर की इस समय लगभग छह बीघे भूमि है। मंदिर का पुजारी पैतृक है जो सुबह-शाम मंदिर में आकर पूजा करता है। पुजारी का घर नीचे गाँव में है। मंदिर की संपत्ति पुजारी की व्यक्तिगत संपत्ति है। प्रबंध-व्यवस्था भी पुजारी द्वारा ही की जाती है। ऋषि पंचमी, आश्विन तथा भाद्र मासांत को जागरण होता है। शिवरात्रि के दौरान देवता को मंडी मेले में ले जाया जाता है।

यह देवता भी सर्पदंश के उपचार के लिए प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि साँप का काटा व्यक्ति यदि उसी समय छोटे-छोटे पत्थर जमीन से उठाकर देवता के पास जाने का संकल्प कर ले तो वह मरता नहीं। उसे मंदिर में चरणामृत पिलाकर रखा जाता है और अंततः वह सर्पदंश से मुक्त हो जाता है।

मंदिरों की नगरी : मंडी

करसोग से बरोट तक की यात्रा करनी हो तो मंडी में रुके बिना नहीं हो सकती। मंडी, जो मंदिरों की नगरी है। इसी कारण इसे काशी भी कहा जाता है। कहावत है : मंडी में कासी और कासी में अस्सी। यानी मंडी में इक्यासी मंदिर हैं और काशी में अस्सी। यह बात सत्य है।

मंडी स्थित पुराना महल कुछ वर्ष पूर्व एक खँडहर के रूप में विद्यमान था। अब यहाँ सचिवालय की बड़ी इमारत खड़ी हो गई है। दूसरा लकड़ी का महल अभी है, जिसके एक हिस्से में एक निजी संग्रहालय है। दूसरी ओर माधोराम मंदिर है। वर्तमान महल में 'होटल राजमहल' है।

खँडहर होते महल

मंडी से बरोट की वास्तविक यात्रा घटासणी से आरंभ होती है। घटासणी में एक छोटा-सा मंदिर है जहाँ से एक ओर उतराई शुरू होती है। जोगेंद्रनगर की ओर तो चढ़ाई शुरू होती है बरोट की दिशा में। फिर वही देवदार और ऊँचाइयाँ। यहाँ से लगभग तीन-चार किलोमीटर की चढ़ाई के बाद है झटींगरी। एक अद्वितीय शिखर, जहाँ मंडी के राजाओं ने महल बनाए। यह राजाओं की गर्मियों की राजधानी थी। गर्मियों में राजा यहाँ आते। यहाँ राजा साहब, टिका साहब तथा रानी साहिबा के लिए अलग-अलग कोठियाँ थीं। दूर पहाड़ से बर्फ किलटे में लादकर लाया जाता। बर्फ ढोने वाले बर्फीले पानी से पूरे नहा जाते, किंतु बर्फ पहुँचता थोड़ा-सा ही।

झटींगरी जैसे सुंदर स्थान पर महल की विशालकाय बिल्डिंग खँडहर हो रही है। पहले सड़क के किनारे ही एक छोटी बिल्डिंग है, जो टूटी-फूटी हालत में है। ऊपर जाकर विशाल बिल्डिंग है जिसके शीशे-खिड़कियाँ तार-तार हो चुके हैं। भीतर दीवारों पर अश्लील वाक्यों के अतिरिक्त सावधान भी किया गया है : 'सावधान ! यहाँ न आएँ।' 'यहाँ से दूर रहिए !' तो कहीं स्वागत के वाक्य भी हैं। बाथरूम की टायलें, संगमरमर, तख्ते-कड़ियाँ लोग उखाड़कर ले गए हैं।

कभी यह पूरा भवन आबाद होता था। यहाँ से पैदल मार्ग था कुल्लू के लिए, जो सामने भूभू जोत पाकर कुल्लू के भुट्ठी में पहुँचता था। हरकारे यहाँ से डाक ले जाते थे।

मुख्य सड़क के बहुत करीब होने के कारण यह स्थान पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान बन सकता है। खँडहर महल एक भव्य आवासगृह में बदल सकता है।

बरोट और देवता पाशा कोट

बरोट पहुँचने से पहले सड़क के किनारे देवता पाशा कोट का छोटा-सा मंदिर आता है। इस मंदिर के नीचे देवता का भंडार है और मूल मंदिर नदी के पार किनारे पर है। देवता पाशा कोट इस पूरे क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण देवता है। नदी के किनारे देवता का छोटा-सा मंदिर है। कुछ काष्ठ प्रतिमाएँ हैं। मंदिर के बाहर, आस-पास ऊँचे-ऊँचे देवदार के पेड़ हैं जो देवता के हैं। मंदिर के सामने एक जंगल में बताया गया जिसमें तरह-तरह के वृक्ष हैं। जो वृक्ष पूरे इलाके में नहीं होते, वे भी यहाँ हैं।

पाशा कोट का एक मंदिर बरोट में भी है।

बरोट एक अद्वितीय स्थान है जहाँ इस पूरे क्षेत्र का पुराना बाँध है जो उहल नदी पर बाँधा गया है। झील का पानी सुरंग से जोगेंद्रनगर के ऊपर निकाला गया है जो पाइप द्वारा नीचे गिरता है। पंजाब सरकार द्वारा निर्मित यह योजना इस क्षेत्र की पुरानी जलविद्युत् योजना है।

बरोट में एक छोटा-सा आवासगृह है जिसके साथ ट्राऊट मछलियों का फार्म है। बिजली बोर्ड का आवासगृह भी है जहाँ ब्रिटिश काल में अंग्रेज आकर ठहरते थे। आज भी यह स्थान दूरस्थ और दुर्गम होते हुए भी आकर्षण का केंद्र बना हुआ है।

बरोट से ही थोड़ा ऊपर जिला काँगड़ा आरंभ हो जाता है। उस ओर काँगड़ा का दुर्गम क्षेत्र बड़ा भंगाल और छोटा भंगाल है।

उलटा बहे सुकेती का पानी

सुकेत सदन। व्यास-सतलुज लिंक परियोजना का आवासगृह। बाहर का वातावरण ऐसा खुला कि मार्च में प्रातः छह बजे के बाद कई पक्षियों का कलरव आदमी को सोया नहीं रहने देता। एक साथ कई पक्षी गा उठते हैं।

बाहर अद्भुत दृश्य। ऊपर की ओर पहाड़ी के पीछे पहाड़ी। सबसे ऊँची पहाड़ी के पीछे से झाँकता सूरज। पहली छोटी पहाड़ी पर एक बरगद का पेड़। पेड़ के पास एक घर, नीचे गाँव। सामने धौलाधार की बर्फीली चोटियाँ। दूसरी ओर छोटी पहाड़ियों पर चमकते छोटे-छोटे सफेद घर।

इन सबके बीच सुकेत सदन, आधुनिक सुख-सुविधाओं से लैस, सर्दियों में गर्म और

गर्मियों में ठंडी हवा छोड़ता हुआ। प्रांगण में वीपिंग विलो के झुके हुए पेड़ जिनकी छाल भी छोटी-छोटी पत्तियों से ढकी हुई। बड़े-बड़े पत्थर। पत्थरों के आसपास उगाई बेलें, फूल, झाड़ियाँ। गमलों में उगे कैक्टस। निपट देहात में भी ऐसे आवासगृह एक मिनी शहर का एहसास कराते हैं।

प्रांगण की हद से बाहर एक महिला झाड़ियाँ काट रही थी। ग्रामीण महिलाएँ उम्र-भर झाड़ियाँ काटती रहती हैं। दराँती लेकर पीछे पड़ी रहती हैं झाड़ियों के। झाड़ियाँ हैं कि खत्म नहीं होतीं। फिर-फिर उगती हैं। शहर में झाड़ी उगाने की कामना की जाती है। ग्रामीण महिला अपने घर के आँगन को बिलकुल सीधा, सपाट और साफ रखना चाहती है। आँगन में घास का एक तिनका भी उगे तो उसे उखाड़ फेंका जाता है। शहर के आँगन में पत्थर, घास, झाड़ियाँ, बेलें सज्जा की सामग्री हैं। शहरी महिला की इच्छा होती है कि पहले तो एक आँगन हो, उसमें एक झाड़ी उगे, जिस पर पंछी बैठे। सीमेंट के रास्ते पर उगे एक फूल। जबकि ग्रामीण महिला चाहती है, उसकी रसोई में सीमेंट बिछे। दोनों के लिए ये चीजें अपनी-अपनी दृष्टि और परिवेश के कारण एक अजूबा हैं। अजूबा है बड़ा पत्थर शहर के लिए। अजूबा है टायल मढ़ा बाथरूम गाँव के लिए। दोनों ही इन्हें अपने घरों में सजाना चाहते हैं।

इतिहास कहता है, सुकेत के राजा विक्रम सेन (1791) ने बनेड़ को अपनी राजधानी बनाया। सुकेत को पुराना शहर कहा जाने लगा और एक नए नगर भोजपुर का उदय हुआ। सभी पहाड़ी रियासतों की भाँति उग्रसेन (1838) के समय सुकेत भी सिखों के अधीन हो गया। 1 नवंबर, 1921 को राजा लक्ष्मण सेन के काल में इसे पंजाब सरकार से भारत सरकार के अधिकार में दिया गया। पाँगणा विद्रोह तथा सुकेत सत्याग्रह के फलस्वरूप इसे 15 अप्रैल, 1948 को वर्तमान हिमाचल में मिला दिया गया।

सुकेत के राजाओं की वंशावली का सर्वप्रथम कनिंघम ने पुरातत्त्व सर्वेक्षण रिपोर्ट में उल्लेख किया।

इसके बाद काँगड़ा में हरिदयाल सिंह ने इतिहास लिखा, जो अरिमर्दन (1879) के समय में तहसीलदार था और तीन साल बाद सुपरिंटेंडेंट बना। मंडी, क्योंथल, किश्तवाड़ तथा सुकेत के राजा बंगाल के सेन वंश के राजपूत थे, जो अपने को चंद्रवंशी मानते थे। राजा वीरसेन (765) को सुकेत राज्य का संस्थापक राजा माना जाता है, जिसने अपने राज्य का विस्तार किया। मूरक्राफ्ट ने सुंदरनगर की बल्ह घाटी को एक उपजाऊ घाटी बताया है जैसी उसने हिमालय के रास्ते में कहीं नहीं देखी। घाटी के उपजाऊ होने का उल्लेख बिगने ने भी किया है जो यहाँ से 1839 में गुजरा। विलियम मूरक्राफ्ट 1820 में कुल्लू तथा लद्दाख जाते हुए यहाँ रुका। मूरक्राफ्ट के आगमन की खबर पर कुछ लोग इधर-उधर भागने लगे कि फिरंगी आकर यहाँ लूटपाट मचाएँगे। जब मूरक्राफ्ट की पार्टी ने आवश्यकता की वस्तुएँ दाम चुकाकर लीं तो लोग आश्वस्त हो गए। 'साहिब लोगों' को देखने बड़ी संख्या में आए।

बल्ह घाटी में सुकेती खड्ड उलटी दिशा में बहती है। जब हम मंडी की ओर चढ़ते हैं तो सुकेती खड्ड भी ऊँचाई की ओर बहती प्रतीत होती है। मंडी में यह व्यास में मिल जाती है।

वर्तमान सुंदरनगर में, सुंदरनगर कॉलोनी एक नया शहर है जहाँ व्यास-सतलुज लिंक के कार्यालय तथा कर्मचारी-आवास हैं, इस परियोजना ने नदी का रुख मोड़ा है। पंडोह में व्यास का पानी बाँध से रोककर सुरंग के रास्ते यहाँ लाया गया है। बग्गी से सुंदरनगर तक यह खुली नहर में बहता है। दोबारा सुरंग से निकाल इसे सलापड़ में सतलुज में मिलाया गया है।

पुराने सुंदरनगर में वर्तमान एस०डी०एम० कार्यालय, महाराजा लक्ष्मण सेन कॉलेज तथा राजा का आवास है। कॉलेज के भवन के ऊपर पहाड़ी पर महामाया मंदिर है। राजपरिवार से संबंधित इस मंदिर की अब बड़ी मान्यता है।

नीचे लिंडी खड्ड में हर वर्ष नलवाड़ मनाई जाती है, जिसमें पुराने समय से ही पशु व्यापार होता है। नलवाड़ के बाद यहाँ देवताओं का एक मेला लगता है, जिसमें आसपास के क्षेत्र के कई देवता भाग लेते हैं। नलवाड़ तथा देवताओं का मेला अब नेहरू पार्क में मनाया जाता है।

सुंदरनगर के पुराने बाजार में नरसिंह देव का प्राचीन मंदिर है। मंदिर के चारों ओर सरायनुमा आवास हैं, जहाँ पहले संस्कृत पाठशाला के छात्र रहा करते थे। मंदिर की देखरेख उपमंडलाधिकारी सुंदरनगर के अधीन गठित समिति करती है। पूजा-अर्चना के लिए एक पुजारी नियुक्त है, जिसे कभी-कभार चढ़ने वाला चढ़ावा मिलता है और सौ रुपए मासिक वेतन दिया जाता है। 26 मई को नरसिंह जयंती मनाई जाती है।

सुंदरनगर से आगे धनोटू के पास करसोग मार्ग पर शंभुनाथ महादेव का पाषाण मंदिर है। शिखर शैली में बना यह पुराना मंदिर है जिसकी प्रबंध-व्यवस्था मंदिर सेवा समिति द्वारा की जाती है। पूजा-अर्चना के लिए दो परिवार छह-छह महीने बारी-बारी से पूजा करते हैं। ये लोग रावल ब्राह्मण कहलाते हैं। पुजारियों के पास लगभग साढ़े पाँच बीघे भूमि है। मंदिर के बाहर प्रकोष्ठों में सुंदर पाषाण प्रतिमाएँ रखी गई हैं। भीतर के द्वार पर भी सुंदर नक्काशी हुई है। मंदिर में एक बहुत बड़ा ढोल है जिसे भेखल नाम की झाड़ी से बना बताया जाता है। शिवरात्रि तथा श्रावण मास में यहाँ भंडारा दिया जाता है। ज्येष्ठ के पच्चीस प्रविष्टे एक मेला लगता है।

बग्गी से आगे हदगढ़ एक ऊँची पहाड़ी पर है जहाँ हाटेश्वरी देवी का मंदिर है। यह एक ऐतिहासिक स्थान है, जिसका उल्लेख हाट नाम से हुआ है। मंदिर से कुछ पीछे सड़क के दोनों ओर एक ड्योढ़ी के अवशेष हैं, जिससे लगता है, यह काफी भव्य स्थान रहा होगा। अब पुराने मंदिर को गिराकर शीशों वाले आधुनिक मंदिर का निर्माण कर दिया गया है। प्रांगण में पीपल के नीचे शिखर शैली के मंदिर के अवशेष बिखरे पड़े हैं। खुदाई में एक महत्त्वपूर्ण मूर्ति भी मिली है जो किसी बड़ी मूर्ति का भाग है। मंदिर के पास खुली भूमि तथा जंगल है, जहाँ खुदाई में मूर्तियाँ निकलती रहती हैं।

वर्तमान मंदिर की प्रबंध-व्यवस्था के लिए एक समिति गठित की गई है। मंदिर के नाम अभी भी दो-तीन बीघे भूमि है। पुजारी पैतृक हैं। शरद तथा गीष्म नवरात्रों में यहाँ मेला लगता है।

यह मंदिर समय के परिवर्तन का गवाह है। परिवर्तन चाहे अच्छा हो या बुरा, परिवर्तन तो परिवर्तन है। मूल मूर्तियों को अलग रख दिया गया है, मंदिर के अवशेष बिखरे पड़े हैं। इनकी जगह एक भव्य मंदिर खड़ा हो गया है जिसमें विकास भी है, विघटन भी है।

नाग परंपरा

हिमाचल प्रदेश में नाग पूजा का बाहुल्य है। नाग को देवता के रूप में पूजा जाता है। सर्पों में 'नाग' एक जाति है जो विषरहित होती है। अत्यंत भोले किस्म के ये नाग हिमाचल में पाए जाते हैं, जिन्हें मारना पाप समझा जाता है। इन नागों द्वारा कटोरी में दूध पीना तथा गाय के थनों से दूध चोरी से चट कर जाने की घटनाएँ सुनाई जाती हैं। स्त्रियों द्वारा मनुष्यों की जगह नागों की उत्पत्ति के प्रसंग भी पौराणिक आख्यानों की भाँति सुनाए जाते हैं। एक स्त्री द्वारा नागों की उत्पत्ति की कथा कुल्लू में प्रसिद्ध है।

प्रदेश के निचले क्षेत्रों में नाग एक जाति भी है। नाग जाति ब्राह्मण मानी जाती है और ये लोग आज भी अपने नाम के साथ 'नाग' लगाते हैं।

शैव मत के अनुयायी और शंकर के भक्त भी यहाँ कम नहीं। मणिमहेश, कैलास, किन्नर कैलास के अतिरिक्त शिव के अनेक छोटे-बड़े मंदिर यहाँ विद्यमान हैं। शिव के गले में शोभायमान नाग का अलग से अस्तित्व भी उतना ही है जितना कि स्वयं शिव का। जहाँ प्रदेश के निचले क्षेत्र में हर घर के आँगन में नाग की प्रतिमाएँ बनी होती हैं, वहाँ ऊपरी क्षेत्रों में मंदिरों के द्वार के दोनों ओर लकड़ी के नागों का उत्कीर्ण किया जाता है। नाग पंचमी जैसा त्योहार घर-घर मनाया जाता है तो 'गुग्गा' के स्थानों में सर्पदंश को नाकाम किया जाता है। जन्माष्टमी के दिन गुग्गा के मंदिरों में लोग जादू-टोने के अतिरिक्त सर्पदंश उतारने भी आते हैं।

नाग एक ओर तो शिव के गले की शोभा बढ़ाते हैं तो दूसरी ओर शेषनाग विष्णु की शैया बने। शेषनाग ने ही पर्वत, वन, सागर, ग्राम नगरों सहित समस्त पृथ्वी को धारण किया।

पौराणिक कथा के अनुसार नागों की उत्पत्ति एक मनुष्य स्त्री से हुई। पुराणों में कद्रू और विनता की कथा कही गई है। कद्रू से सर्प पैदा हुए और विनता से पक्षीराज गरुड़।

अधिकांश सर्प अपने दुष्कर्मों के कारण लोक में प्रसिद्ध नहीं हुए। तक्षक नाग इसका उदाहरण है जिसने राजा परीक्षित को डसा था। समय-समय पर नागों ने मनुष्यों को तंग किया, जिसके फलस्वरूप मनुष्य उसका शत्रु बन गया।

मंडी में माहुँनाग, कामरूनाग, सुमुनाग, वरूनाग आदि के मंदिर हैं। कुल्लू में जमलू देव की भाँति माहुँ नाग के भी कई मंदिर हैं। मूल जमलू यदि मलाणा में है तो माहुँ नाग बखारी में।

नाग मंदिर

माहुँ नाग

कुल्लू में जमलू देवता की भाँति मंडी क्षेत्र में माहुँ नाग एक सशक्त देवता है। इस देवता के एक सौ आठ स्थान माने जाते हैं। मंडी शिवरात्रि में पधारे देवताओं में माहुँ नाग का विशिष्ट स्थान है। माहुँ नाग के रथ के पास लोगों की भीड़ लगी रहती है।

मूल माहुँ नाग

माहुँ नाग का मूल स्थान बखारी में माना जाता है या बखारी स्थित माहुँ नाग को मूल देवता मानते हैं। अतः इसे मूल माहुँ नाग कहा जाता है। वैसे भी यहाँ देवता की पुरानी परंपराएँ अभी भी कायम हैं, जैसे देवता के गूर का सतलुज में छलाँग लगाकर अपने को गूर स्थापित करना, विशिष्ट पर्व-उत्सवों तथा देवता की भारथा का आयोजन आदि।

शिमला से ततापाणी होते हुए लगभग एक सौ पाँच किलोमीटर दूर (चुराग शिखर से बारह किलोमीटर) मूल माहुँ नाग का मंदिर है। यह स्थान मंडी से एक सौ बीस किलोमीटर करसोग उपमंडल में है।

मंदिर गाँव से दूर जंगल में है। मुख्य सड़क से आगे एक किलोमीटर छोटे वाहन योग्य कच्ची सड़क है, जहाँ से कुछ खेत पैदल पार कर मंदिर का मुख्य द्वार आता है। मुख्य द्वार के भीतर पूरा मंदिर परिसर है। द्वार के भीतर एक ओर मुख्य मंदिर है तो दूसरी ओर सदा जला रहने वाला धूणा। मंदिर के बाहर द्वारपाल के रूप में 'सगरेट' या 'जड़' देवता की काष्ठ प्रतिमाएँ हैं। पीछे की ओर लगभग पाँच बीघे भूमि में सेब का बगीचा है।

मूल माहुँ नाग मंडी, शिमला और सोलन तक एक प्रभावी देवता माना जाता है। यह करसोग का सबसे धनवान देवता है।

मंदिर की प्रबंध-व्यवस्था के लिए तहसीलदार करसोग की अध्यक्षता में एक कमेटी बनी हुई है। मंदिर की ओर से मंदिर के कर्मचारियों को वेतन के साथ एक हाईस्कूल के लिए पच्चीस हजार रुपए वार्षिक सहयोग दिया जाता है। एक सराय है तथा यात्रियों के लिए भोजन-व्यवस्था भी की जाती है।

जेठ संक्रांति तथा दो-तीन प्रविष्टे को मेला होता है, जिसमें जागरण का देवखेल होता है। गूर अपने देवता की भारथा (इतिहास) सुनाते हैं। देवता की शोभायात्रा निकलती है और दो प्रविष्टे को बागड़ाधार में बकरों की बलि दी जाती है। तीसरे दिन कुमारसेन, ठियोण, रामपुर तथा कुल्लू से श्रद्धालु आते हैं।

गुग्गा मंदिर

गुग्गा जाहरपीर या गुग्गा राणा का प्रभाव मंडी में भी काँगड़ा या हमीरपुर की भाँति है। गुग्गा के अनेक स्थान हैं, किंतु छिपणू गाँव में गुग्गा माड़ी प्रसिद्ध है। इसके साथ बैहल

गाँव (सरकाघाट), सुखर नगारड़ा (बलदाड़ा) आदि में भी मंदिर हैं। रक्षाबंधन से गुग्गा नवमी तक गुग्गा मंडली गाँव-गाँव घूमती है।

सूर्य मंदिर

चितदोखड़ी (सुंदरनगर) की भिछणी धार में सूर्य मंदिर है। मंदिर में सूर्य की अष्टधातु की प्रतिमा है। कहा जाता है कि यह मंदिर राजा गुरसेन की रानी पंछमू देवी द्वारा बनवाया गया। सूर्य मंदिर के साथ-साथ राधाकृष्ण, सीताराम, श्रीगणेश मंदिर भी हैं।

बड़योगी मंदिर

ततापाणी-करसोग मार्ग पर ततापाणी से लगभग तीन किलोमीटर दूर सरौर खड्ड में एक गुफा है, जिसमें प्राकृतिक शिवलिंग स्थापित है। यहाँ छोटी-बड़ी और भी प्रतिमाएँ हैं। यहीं बड़योगी मंदिर है। बड़योगी देवता को माहुँ नाग का पुरोहित भी माना जाता है।

जटला कुंड

मंडी-कोटली मार्ग पर पपराहल गाँव से लगभग पाँच किलोमीटर एक तीर्थस्थल है, जिसका नाम जटला कुंड है। रत्ती खड्ड के उद्गम पर दो चट्टानों के बीच एक झरना है, जो नीचे कुंड बन जाता है। यहाँ निःसंतान महिलाएँ संतान की कामना करती हैं और अखरोट व अनार झरने में भेंट करती हैं।

लड-भड़ोल

बैजनाथ से बाईस किलोमीटर लड-भड़ौल को 'छोटी काशी' कहा जाता है। यहाँ महामाया का मंदिर है। नागेश्वर महादेव का स्थान है। यहीं पाँच किलोमीटर दूर सिमसा देवी का मंदिर है, जहाँ संतान की कामना लिए महिलाएँ दर्शनार्थ आती हैं।

अन्य प्रमुख मंदिर

मंडी क्षेत्र में जो माहुँ नाग मंडी शिवरात्रि में आकर्षण का केंद्र बना रहता है, वह माहुँ नाग तरौर है। तरौर गोहर में पड़ता है। गोहर के तरौर तक पाँच-छह किलोमीटर कच्ची सड़क है। ऊँची पहाड़ी पर स्थित यह मंदिर अधिक पुराना नहीं है। मंदिर की लगभग छह बीघे भूमि भी है। मंदिर तथा इसकी संपत्ति एक पैतृक पुजारी की संपत्ति है। पूरी प्रबंध-व्यवस्था पुजारी ही करता है। पुजारी मुरारीलाल शर्मा के अतिरिक्त देवता के बीस बजंतरी हैं।

जनश्रुति है कि एक बार मंडी नरेश ने सुकेत पर आक्रमण कर अपने राज्य की सीमाएँ बढ़ा लीं। अतः माहुँ नाग मंडी रियासत में आ गया। सुंदरनगर के लोग देवता की

मूर्ति आदि बखारी में ले गए और तरौर के लोग भी पूजा-अर्चना के लिए बखारी ही जाने लगे। लोगों के इतनी दूर की यात्रा के कष्ट निवारण हेतु देवता ने बताया कि तरौर में भी उसका स्थान है। अतः श्यामलाल नामक एक पुजारी ने माहुँ नाग को तरौर में स्थापित किया।

यहाँ देवता का खड़े आकार का (ऊपर से गुंबदाकार) आकर्षक रथ बनाया गया है। देवता के कुल चार मोहरे हैं, जिनमें एक अष्टधातु और तीन चाँदी के हैं। यहाँ चैत्रमास के तीसरे नवरात्रे, असूज की तीन प्रविष्टे, याहमासाना को जागरण व मेला होता है। ऋषि पंचमी को देवता का जन्मदिन मनाया जाता है।

यहाँ माहुँ नाग सर्पदंश के उपचार के लिए प्रसिद्ध है।

माहुँ नाग के अन्य मंदिर लेहड़ा (रिवालसर), सेगली तथा भगवानपुर (चच्योट), गुटकर (बल्ह), कासला (द्रंगसिरा) में स्थित हैं। सभी मंदिरों में सर्पदंश, कुत्ते के काटे का इलाज होता है। यहाँ ज्येष्ठ तथा मार्गशीर्ष में मेले लगते हैं। ये सभी माहुँ नाग मंडी शिवरात्रि में भाग लेने आते हैं। माहुँ नाग के मंदिर उपरिद्रंग तथा भ्राड़ू के कसगाँव में भी हैं।

माहुँ नाग एक स्थानीय देवता है। पौराणिक साहित्य में इस नाम का कोई नाग नहीं है।

प्रादुर्भाव संबंधी कथाएँ

माहुँ नाग को शेषनाग (महानाग), महाभारतकालीन वर्ण का अवतार माना जाता है। माहुँ को मधुमक्खी भी कहते हैं, क्योंकि इस देवता ने मधुमक्खी का रूप भी धारण किया था।

जनश्रुति है कि एक बार एक आदमी हल चला रहा था तो हल की नोक एक मूर्ति से जा टकराई। मूर्ति ने कहा कि वह राजा कर्ण है और अब नाग-रूप में रहेगा। दूसरे रूपांतर में जब उस आदमी ने मूर्ति का पत्थर उखाड़ा तो नीचे एक सोने की कलगी वाला साँप दिखा। साँप के ऊपर उस आदमी ने अपना चोगा उतार फेंका। चोगा जब हटाया गया तो नीचे एक अद्‌भुत पुरुष निकला, जिसने अपना परिचय कर्ण के रूप में दिया और कहा कि मैं नाग-योनि में प्रकट हुआ हूँ। मेरी विधिवत् उपप्रभा **स्थान** में स्थापना की जाए। यह बात शीघ्र ही दूर-दूर तक फैल गई। कई लोग इकट्ठा हो गए। तभी एक व्यक्ति के भीतर प्रवेश करने पर नाग ने उससे कहा कि मुझे बखारी में स्थापित किया जाए। अतः बखारी के जंगल में नाग की प्रतिष्ठा की गई। जब देवता प्रतिष्ठित हुआ तो जोर की बिजली चमकी और एक पेड़ में आग लग गई। कहा जाता है कि वही आग आज तक मंदिर के पास धूणे में जली हुई है।

नाग धन के रक्षक माने जाते हैं। कर्ण भी दानवीर के रूप में प्रसिद्ध रहा है। अतः माँहु नाग धन का प्रतीक देवता है जो कर्ण के रूप में प्रजा को दान भी करता है।

एक दूसरी कथा के अनुसार एक बार राजा श्यामसेन (1620-1650) को मुगल सम्राट् ने दिल्ली में कैद कर लिया। सुकेत नरेश ने अपनी रक्षा के लिए सुकेत में अपने

देवी-देवताओं का स्मरण किया तो माहुँ नाग मधुमक्खी के रूप में गया और राजा से कहा कि वह शीघ्र ही मुक्त हो जाएगा। एक दिन मुगल सम्राट् ने शतरंज खेलनी चाही तो कोई भी खिलाड़ी न मिलने पर राजा श्यामसेन को बुलाया गया। देवता की कृपा से राजा हर बाजी जीतता गया और मुगल सम्राट् को उसे मुक्त करना पड़ा। राजा ने कैद से मुक्त होने पर देवता को आधा राज्य देना स्वीकार किया। देवता ने पूरा या आधा राज्य लेने की अपेक्षा बखारी में थोड़ी-सी भूमि ली, जहाँ मंदिर का निर्माण हुआ। इस कथा का उल्लेख 'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल्स स्टेट' में है। राजा श्यामसेन ने कारावास से छूटने के बाद चार सौ रुपए की जागीर माहुँ नाग को दी। इससे स्पष्ट है कि माहुँ नाग का मंदिर राजा श्यामसेन के समय विद्यमान था।

माहुँ नाग तरौर

देवता का मूल स्थान बखारी है। देवता का मंदिर तरौर गाँव के सामने जंगल में है। मंदिर पैगोडा शैली का है। देवता को कर्ण न मानकर शिव मानते हैं। महानाग भी माना जाता है।

रथ चौकोर है जिसके चारों कोनों में चाँदी के कलश लगे हैं। रथ के ऊपर रंग-बिरंगी चादर से गुंबद ढका जाता है। चार मोहरे हैं, जिनमें एक अष्टधातु तथा तीन चाँदी के हैं। अष्टधातु का मोहरा रथ के भीतर पीतल की करंडी में सजाया जाता है। इस मोहरे के ऊपर चाँदी का छत्र लगाया जाता है।

शिवरात्रि में रियासत के समय से आता है। चैत्र में तीसरे नवरात्रे, असूज के तीन प्रविष्टे मेला लगता है। भाद्रपद की ऋषि पंचमी को देवता का जन्म दिवस मनाया जाता है।

बकरा, बकरी, भेड़े की बलि दी जाती है। जोगणी पूजा में बकरी की बलि दी जाती है। विषैले जीवों के काटने का उपचार होता है।

गूर, कारदार तथा पुजारी मुरारीलाल शर्मा है। बीस बजंतरी हैं। मंदिर की पाँच-छह बीघे भूमि है। यह संपत्ति पुजारी की पैतृक संपत्ति है। श्यामलाल नामक पुजारी ने तरौर में देवता की स्थापना की। माहुँ नाग का मंदिर एक बार मंडी राज्य की सीमा में आ जाने से सुंदरनगर के लोगों ने बखारी से तरौर देव स्थापना की।

माहुँ नाग

मूल स्थान तरौर माना जाता है। मंदिर तरौर (सेगली) में है। चौकोर रथ है, जिसके ऊपर रेशमी वस्त्र लगा रहता है। अष्टधातु के चार मोहरे हैं, जो रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं।

सन् 1986 से देवता मेले में आ रहा है। चैत्र के तीसरे नवरात्रे तथा मार्गशीर्ष प्रविष्टे एक को मेला लगता है।

देवता को महानाग माना जाता है जो शेषनाग का अवतार है। यह राजा श्यामसेन की सहायता के लिए माहुँ (मधुमक्खी) के रूप में प्रकट हुआ, यह भी मान्यता है।

विषैले जीवों के काटने का उपचार करता है।

गूर तथा पुजारी निर्मल कुमार है। कारदार दयाराम है।

माहुँ नाग, नलसर

जनश्रुति है कि नलसर गाँव में देवता माहुँ नाग साँप के रूप में प्रकट हुआ। एक लड़का खेल उठा जिसने बताया कि वह देवता माहुँ नाग है। अतः मंदिर-निर्माण हुआ।

मूल स्थान तथा मंदिर नलसर गाँव में है। ग्राम गाँव खिऊरी (बल्ह) में है।

देवता का खड़ा रथ है जिसके शीर्ष भाग में पगड़ीनुमा वस्त्र लगा रहता है। चार मोहरे हैं, जिनमें एक अष्टधातु तथा शेष चाँदी के हैं। ये रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं।

शिवरात्रि में देवता 1971 से आने लगा। चैत्र तथा आश्विन नवरात्रों में मेला लगता है।

विषैले जीवों के काटने का उपचार होता है। बकरे की बलि दी जाती है।

गूर मस्तराम थे जिनकी मृत्यु हो चुकी है। पुजारी तथा कारदार डाहलूराम है।

माहुँ नाग, गुटकर

जनश्रुति है कि एक किसान को हल चलाते हुए देवता की मूर्ति मिली। अतः स्थापना कर मंदिर-निर्माण किया गया।

मूल स्थान तथा मंदिर गुटकर (बल्ह) में है। भंडार टिक्कर में है।

देवता का रथ खड़ा है, जिसके शीर्ष भाग पर वस्त्र लगा रहता है। रथ उठाने हेतु दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। पाँच मोहरे हैं, जो पीतल के हैं। दो मोहरे रथ के अग्रभाग तथा तीन पीछे लगते हैं।

शिवरात्रि में देवता राजाओं के समय से आता है। पच्चीस चैत्र को गुटकर तथा सत्ताईस वैशाख को टिक्कर में मेला लगता है।

विषैले जीवों के काटने का उपचार होता है। बकरे या मेढ़े की बलि दी जाती है। देवता का पुजारी दीनानाथ है। सात बजंतरी हैं।

माहुँ नाग, मोहू सेरी

देवता का मूल स्थान तथा मंदिर मोहू सेरी (चच्योट) में है। मंदिर तथा भंडार गाँव में ही हैं।

देवता का रथ लंबे आकार का है जिसमें एक मूल मुख तथा चार अन्य चाँदी के मोहरे सजाए जाते हैं। दस मार्गशीर्ष को मेला लगता है। शिवरात्रि में 1996 से आने लगा है। साँप तथा कुत्ते के काटे का इलाज होता है।

कारदार तथा पुजारी रोडाराम है।

माहुँ नाग, लेहड़ा

जनश्रुति है कि एक साँप पाँच वर्ष के बच्चे से लिपट गया। उसी समय बच्चे की माँ को खेल आई और बताया गया कि वह माहुँ नाग है। अतः मंदिर-निर्माण किया गया। शेषनाग के रूप में देवता पूजा जाता है।

देवता का रथ लंबे आकार का है। मोहरों की संख्या चार है जो रथ में लगाए जाते हैं।

देवता सन् 1958 से शिवरात्रि में आता है। प्रथम ज्येष्ठ को मेला लगता है तथा सभी त्योहारों को देवता की पूजा होती है।

गूर बृकमराम, पुजारी धनीराम हैं। छह बजंतरी हैं।

साँप तथा विषैले जीवों के काटे का इलाज होता है। देवता को बलि नहीं लगती किंतु गणों को बलि दी जाती है।

कमरू नाग (प्रादुर्भाव कथा)

कमरू नाग को महाभारतकालीन रत्नयक्ष माना जाता है। रत्नयक्ष एक पराक्रमी योद्धा और महान् धनुर्धर था। महाभारत युद्ध के समय यहाँ के सभी शासक कौरव पक्ष में थे। अतः रत्नयक्ष भी युद्ध के लिए निकल पड़ा। उसकी सूचना श्रीकृष्ण को मिली। अतः वे भी उससे मिलने ब्राह्मण वेश धारण कर चल पड़े। उसे अकेले ही युद्ध में जाते देख अर्जुन ने पूछ लिया कि आपके पास सेना तो है नहीं, अकेले युद्ध कैसे लड़ोगे ? यक्षराज रत्न ने बताया कि वह पूरी सेना के बराबर है। श्रीकृष्ण ने उसकी शक्ति परीक्षा करनी चाही। रास्ते में एक पीपल का पेड़ था। श्रीकृष्ण ने चालाकी से पीपल का एक पत्ता पाँव के नीचे दबा लिया। रत्नयक्ष ने शक्ति परीक्षण के लिए तीर चलाया जिससे पीपल का एक-एक पत्ता बिंध गया। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण के पाँव के नीचे जो पत्ता था, वह भी बिंध गया। उसके पराक्रम से दंग रहकर ब्राह्मण रूपधारी श्रीकृष्ण ने इस योद्धा का सिर माँग लिया। रत्नयक्ष ने अपना सिर देने का प्रण पूरा किया और साथ ही महाभारत युद्ध देखने की इच्छा प्रकट की। श्रीकृष्ण ने लंबा बाँस गाड़कर रत्नयक्ष का सिर ऊपर टाँग दिया ताकि युद्ध देखा जा सके। युद्ध की समाप्ति पर यक्ष ने किसी एकांत स्थान में रहने की इच्छा प्रकट की। अतः पांडवों ने इसे ठाकुर मानकर यहाँ स्थापित किया।

यह गाथा देवता के संबंध में सुनाई जाती है।

एक अन्य कथा के अनुसार, एक बार एक साधु घूमता-घूमता मंडी क्षेत्र में आया। साधु के पास एक मूर्ति थी। साधु ने एक गाँव में धान कूट रही महिलाओं से कुछ चावल माँगे। महिलाओं ने चावल देने से मना किया तो मूर्ति ऊखल में गिर गई। उन दिनों गाँव में 'मुडखर' भूत या राक्षस का आतंक था। महिलाओं ने कहा कि यदि मूर्ति में इतनी शक्ति है तो यह हमें मुंडखर से बचाए। उसी समय भयंकर वर्षा हुई, बादल फटा और इस पानी में मुंडखर बहकर समुद्र में गिर गया।

गाँव वालों ने इस देवता को नाग देवता के नाम से स्वीकार किया।

माहुँ नाग के बाद कमरू नाग मंडी क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण देवता है। मंडी जिला में रुहांडा से लगभग पाँच किलोमीटर दूर जंगल में देवता का मंदिर तथा झील है। मंदिर 20'-30' आकार का पहाड़ी शैली का साधारण-सा है किंतु देवता का महत्त्व अधिक है। लगभग नौ हजार फुट की ऊँचाई पर देवता का स्थान एक मनोहारी जंगल में है।

देवता का भंडार कंढी तथा गोता गाँवों में है। देवता का कोई रथ नहीं है, केवल प्रतीक चिह्न है। देवता का राज्य भंगाहल क्षेत्र बताया जाता है।

त्योहार-उत्सव

शिवरात्रि के आरंभ से लेकर देवता की छड़ी तथा प्रतीक चिह्न मेले में लाए जाते हैं। देवता के यहाँ सरनाहुली मेला लगता है जो आषाढ़ संक्रांति को होता है। मेले के समय सैकड़ों बकरों की बलि दी जाती है। चढ़ावे के रूप में श्रद्धालुओं द्वारा झील में सोना, चाँदी, रेजगारी फेंकी जाती है।

नागणु

नागणु का मंदिर खणी (कमांद) में है। किंवदंती है कि खेत में खुदाई करते समय किसी व्यक्ति को देवता की मूर्ति मिली, जिससे मंदिर-निर्माण हुआ। 18'-18' आकार के लकड़ी से निर्मित मंदिर के अतिरिक्त देवता का भंडार तिमंजिला है।

देवता का रथ खड़ा रथ है जिसके शीर्ष पर छत्र सुशोभित है। चारों कोनों में चाँदी की घुंडियाँ लगी हुई हैं। रथ को उठाने के लिए अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। मोहरों की संख्या आठ है, जिनमें एक अष्टधातु का तथा शेष चाँदी के हैं। अग्रभाग में मोहरे के नीचे हनुमान की मूर्ति भी रखी जाती है।

इस देवता को शेषनाग भी माना जाता है।

त्योहार-उत्सव

देवता रियासती समय से शिवरात्रि में आता है। श्रावण के इक्कीस प्रविष्टे तथा मार्गशीर्ष के सत्रह प्रविष्टे मेला लगता है। बकरे की बलि दी जाती है। हर पाँचवें वर्ष भैंसे की बलि भी दी जाती है। हर पाँच वर्ष में एक बार बकरे की बलि भी दी जाती है।

देवता का गूर तापेराम, कारदार परसराम, पुजारी डागीराम हैं। चार बजंतरी हैं।

वरु नाग

किंवदंती है कि किसी व्यक्ति को खेत में खुदाई करते समय देवता का एक मोहरा मिला। अतः देवता की स्थापना की गई।

वरु नाग का मंदिर रेहड़धार में है जो मिश्रित शैली में बना हुआ है। रथ चौकोर है जिसके ऊपर गुंबद है। गुंबद का चाँदी का छत्र है। मोहरे कुल आठ हैं, जिनमें एक

अष्टधातु तथा शेष चाँदी के हैं। दो-दो मोहरे रथ के चारों ओर लगते हैं।

नाग को शिवरात्रि में सन् 1951 से लाया जाता है। साढ़नू, दियाली और माल का मेला लगाया जाता है। देवता आदि-व्याधि से मुक्ति दिलाता है।

गूर का नाम डागणू, कारदार मानसिंह, पुजारी बालकराम, कटवाल साधु है। छह बजंतरी हैं।

देवी मंदिर

पाँगणा किला और महामाया मंदिर

मंडी से एक सौ नौ किलोमीटर दूर करसोग घाटी में पाँगणा एक आकर्षक स्थान है। पाँगणा के ऊपर शिकारी देवी का शिखर नजर आता है तो नीचे खुलती हुई पहाड़ियाँ हैं। दोनों ओर पहाड़ियों से पाँगणा किला नजर आता है। काष्ठ कला का अद्‌भुत नमूना यह किला बंजार से चैहणी कोठी, किन्नौर में मूरंग किले की भाँति निर्मित है। किले में ऊपर चढ़ने के लिए छोटी-छोटी सीढ़ियाँ बनी हैं, जहाँ उतरते-चढ़ते हुए बैठना पड़ता है।

किले के प्रवेश द्वार पर देई साहिबा की समाधि है। बाहर माहुँ नाग का स्थान है, जहाँ सर्पदंश का इलाज होता है। माहुँ नाग के काष्ठ मंदिर के नीचे जेल की कोठरी है।

महामाया का मंदिर किले की ऊपरी मंजिल में है। मंदिर में एक ओर दीवार पर देवी की मूर्तियाँ तथा मोहरे रखे हुए हैं। इनमें पाँच मोहरे तथा दो पाषाण प्रतिमाएँ हैं। एक सिद्ध यंत्र है। मूर्तियों के साथ भैरों का काष्ठ स्तंभ है जिस पर आकर्षक काष्ठ कला हुई है। छह मंजिले इस किले में लगभग दो-दो फुट दरवाजे हैं, जिनमें काष्ठ कला के उत्कीर्ण हैं। प्रकाश के लिए झरोखे बने हुए हैं। मंदिर की खिड़की से शिकारी देवी का शिखर दिखाई देता है।

किले के साथ अब महामाया का मंदिर अलग से भी बना दिया गया है, जिसमें नई मूर्ति रखी गई है। धरातल मंजिल में देई साहिबा की 'हत्या' मूर्ति स्थापित है।

कथा चंद्रावती की

चंद्रमुखी या चंद्रावती की यहाँ एक लोमहर्षक कथा सुनाई जाती है। कहा जाता है, चंद्रावती यहाँ के राजा पद्‌मसेन की पुत्री थी। राजकुमारी एक बार पुरुष वेश में अपने कक्ष में घूम रही थी (या उसकी सहेली पुरुष बनी हुई थी)। राजपुरोहित ने राजकुमारी के कक्ष में एक पुरुष को घूमते देखा तो संदेह हुआ। पुरोहित ने राजा से इस बात की शिकायत की कि राजकुमारी के कक्ष में कोई पुरुष था। राजा को विश्वास नहीं हुआ किंतु जब पुरोहित ने बार-बार कहा कि उसने अपनी आँखों से देखा है तो राजा ने राजकुमारी को बुलाकर पूछताछ की। राजकुमारी के मना करने पर भी राजा ने उसे चेतावनी दी कि भविष्य

में ऐसा न होने पाए। राजकुमारी को बहुत आत्मग्लानि हुई। उसने रत्तियाँ (जहर) खाकर आत्महत्या कर ली और एक पत्र छोड़ा जिसमें लिखा था कि उसके शरीर को जलाया न जाए, बल्कि दफनाया जाए। छह महीने बाद यदि शरीर कंकाल हो गया तो मैं दोषी थी, यदि शरीर मिट्टी में वैसा ही रहे तो मैं निर्दोष थी। राजकुमारी को दफनाया गया। छह मास बाद उसे खोदकर देखा तो देह वैसी की वैसी थी, राजा तथा सभी प्रजाजनों को बहुत पश्चात्ताप हुआ। तब से राजकुमारी को 'हत्या' के रूप में पूजा जाने लगा। किले की धरातल मंजिल में हत्या की दो प्रतिमाएँ स्थापित की गई हैं। दो अष्टधातु के मोहरे रखे गए हैं, जिनमें एक देवी का और दूसरा चंद्रावती का है।

इस दुर्घटना के बाद राजा पद्मसेन पर संकट छाने लगे। राजा ने महामाया की शरण ली। महामाया ने आज्ञा दी कि राजा अपनी राजधानी अन्यत्र ले जाए, तभी सुख-शांति हो पाएगी। अतः राजधानी लुहारा में बदली गई।

महामाया और हत्या देवी की मान्यता ज्यों की त्यों बनी रही। श्रद्धालु दूर-दूर से आने लगे। दोनों की प्रतिदिन पूजा होने लगी। यद्यपि दोनों के पुजारी अलग-अलग हैं।

इस समय किले तथा मंदिर की व्यवस्था के लिए एक समिति बनी हुई है। कुछ वर्ष पूर्व (1990-91) में इसकी मरम्मत भी करवाई गई। यहीं से स्वाधीनता आंदोलन के समय सुबेत सत्याग्रह आरंभ हुआ था।

शरद और चैत्र नवरात्रों में यहाँ मेला लगता है। लाहुल मेला भी होता है। मेले-उत्सवों में देवी के ढोल, नगाड़े, करनाल, रणसिंगे, गुफू बजाकर आमंत्रित किया जाता है। देवी के आवाहन के लिए गीत भी गाए जाते हैं। देवी या देवता के गूर में प्रवेश करने पर वह आवेश में आ जाता है। गूर आवेश में आकर नृत्य करता है और धान, जौ, थूहर (कैक्टस की एक किस्म) खा जाता है। दुर्गा अष्टमी को भैंसे की बलि दी जाती है।

इस स्थल को पांडवों से भी जोड़ा जाता है जैसा कि अधिकांश स्थानों में विश्वास प्रचलित है।

काओ देवी

काओ या कामाक्षा देवी का मंदिर ममेल से लगभग पाँच किलोमीटर दूर है। ममेल से काओ तक एक कच्ची सड़क है।

काओ देवी का काष्ठ मंदिर पहाड़ी शैली में बना है। मंदिर के भीतर सिंहासनारूढ़ देवी की चतुर्भुजा अष्टधातु की प्रतिमा है। शेर पर सवार देवी को महिषासुर का वध करते दिखाया गया है। दूसरी ओर शिव, परशुराम, विष्णु, भैरव, पुंडरी नाग की मूर्तियाँ हैं। गर्भगृह के साथ भीतर छोटे-छोटे कक्ष हैं। इन कक्षों में से एक में परशुराम आराधना करते थे। एक में देवी की शय्या है। मंदिर के ऊपर दो पैगोडा हैं, जिनकी छतें सलेटों से छाई हैं। यह शैली परवर्ती प्रतिहार शैली है।

कहा जाता है देवी की मूर्ति का अग्रभाग सौम्य है जो दर्शन के लिए बनाया गया है। पृष्ठ भाग महाकाली है, जिसे धूप देने के लिए मूर्ति के ऊपर एक सूराख रखा गया है।

किंवदंती है कि माता के वध के बाद परशुराम प्रायश्चित्त हेतु तपस्या के लिए पहाड़ों में भटकने लगे। माता को पुनः जीवन मिलने पर भी उन्हें आत्मिक शांति नहीं मिल पाई। परशुराम द्वारा स्थापित पाँच स्थानों के बाद काओ छठा स्थान था। यहाँ आकर उन्हें देवी की आराधना के बाद शांति मिली।

काओ की अधिष्ठात्री देवी कामाक्षा है, यद्यपि यह भी परशुराम का स्थान माना जाता है। जैसे ममेल में अधिष्ठाता देव शिव है।

मंदिर में वैशाख के चार प्रविष्टे लाहुल मेला तथा आषाढ़ के दो प्रविष्टे मेला लगता है।

आश्विन नवरात्रों में दुर्गा सप्तशती पाठ के साथ कई परंपराएँ निभाई जाती हैं। नवमी को भी विशाल मेला लगता है। भुंडा उत्सव में शिखफेर की भाँति यहाँ भी फेर की प्रथा है। देवी का गूर खेलता है जिसे कंधे पर बिठा गाँव का चक्कर लगाया जाता है। गूर पूरी फेर के समय आवेश में रहता है। फेर समाप्त होने पर देवी के मंदिर में माथा टेकने पर वह अपने आप में लौटता है।

दुर्गा अष्टमी को दोपहर बाद देवी तथा पुंडरी नाग के रथ सजाए जाते हैं। इन देवताओं की शोभायात्रा उसी रास्ते निकाली जाती है, जहाँ से 'फेर' होता है। इस यात्रा में लोग नाचते-गाते हुए चलते हैं। लोग रथों के ऊपर अखरोट फेंकते हैं। पहाड़ तक पहुँचकर रथों को नीचे रखकर पूजा की जाती है। पूरे फेरे के बाद रथ मंदिर में वापस लौटते हैं। अब यहाँ भैंसे बलि किए जाते हैं। बलि चढ़ाने वाला पुजारी के साथ भैंसे की पूजा करता है और पानी छिड़कता है। बस, भैंसे का सिर धड़ से अलग कर दिया जाता है। ऐसा भी होता है कि भैंसे का सिर पूरा नहीं कट पाता और अधकटे सिर के साथ ही भैंसा नीचे खेतों में भाग जाता है। भैंसे की बलि महिषासुर वध की पुनरावृत्ति है।

यहाँ भी निरमंड की भाँति कभी भुंडा उत्सव होता था। किंतु यहाँ भुंडा होता किसी ने न देखा, न सुना। ममेल की भाँति यहाँ भुंडा का रस्सा भी कहीं विद्यमान नहीं है। हाँ, ममेल की भाँति भेखल का बड़ा ढोल अवश्य है।

कामाक्षा मंदिर पहाड़ी शैली में पैगोडा मंदिर है। मंदिर की निचली मंजिल आयताकार है, जिसमें ममेल की भाँति प्रदक्षिणा पथ है। प्रदक्षिणा पथ तक बरामदा सलेटों से छाया हुआ है। पहली मंजिल के ऊपर भी सलेट हैं। ऊपरी मंजिल की छत ढलानदार है, जिसके ऊपर पैगोडा है।

मंदिर के पास एक आमलक भी पड़ा हुआ है। यहाँ कभी शिखर शैली का मंदिर अवश्य रहा होगा।

शिकारी देवी

शिकारी देवी का मंदिर मंडी में एकमात्र ऐसा मंदिर है जिसकी छत नहीं है। देवी खुले आकाश के नीचे प्रतिष्ठित है। मंदिर में केवल दीवारों पर ही मूर्तियाँ स्थापित हैं। दीवारें भी पत्थर चिनकर बनाई गई हैं। देवी छत डालकर मंदिर के भीतर रहना पसंद नहीं करती। कई बार मंदिर बनवाने या छत डालने का प्रयास भी किया किंतु देवी ने आज्ञा नहीं दी।

लोकास्था है कि पांडवों ने देवी को खुले आकाश के नीचे ही प्रतिष्ठित किया था, अतः देवी वैसे ही रहना चाहती है।

शिकारी देवी के स्थान तक पहुँचने के लिए जंजैहली होकर आना पड़ता है। मंडी से लगभग सौ किलोमीटर तक बस-मार्ग है। सड़क से बारह किलोमीटर पैदल रास्ता है। दूसरा मार्ग जैहल होकर है। मंडी से लगभग चालीस किलोमीटर जैहल और आगे लगभग बीस किलोमीटर पैदल यात्रा।

देवी का स्थान चच्योट क्षेत्र में साढ़े ग्यारह हजार फुट की ऊँचाई पर है। जैसा कि ऐसी ऊँचाई पर होता है, दृश्य बहुत ही मनोहारी है। ऊपर से दूर-दूर तक का दृश्य दृष्टिगोचर होता है। शिमला, काँगड़ा, कुल्लू, लाहौल स्पिति की पर्वतमालाएँ नजर आती हैं। रास्ते का एकांत वातावरण और देवदार के जंगल मन को मोह लेते हैं। इस रमणीय स्थल में मई से सितंबर के बीच जाना ही उचित रहता है। अधिक ऊँचाई होने के कारण नवंबर से अप्रैल के आरंभ तक यह क्षेत्र बर्फ से ढका रहता है।

शिकारी देवी की प्रतिमाएँ पत्थरों के एक मचान पर स्थापित हैं। शिकारी देवी की नवदुर्गा मूर्ति, चामुंडा और कामरू नाग तथा परशुराम की मूर्तियाँ यहाँ विराजमान हैं। मंडी, कुल्लू, शिमला के क्षेत्रों से लोग यहाँ आते हैं। यात्रियों के ठहरने के लिए चार सरायें भी हैं। नवरात्रों में यहाँ विशेष मेले लगते हैं। देवी का भंडार रूशाला में है।

देवी का रथ चौकोर आकार का है, जिसका ऊपरी भाग गुंबदाकार है। गुंबद के ऊपर चाँदी का छत्र है। मोहरे आंठ हैं, जिनमें एक अष्टधातु तथा सात पीतल के हैं। ये रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं। अग्रभाग में अष्टधातु का मोहरा लगता है जिसके नीचे सिंहवाहिनी देवी की प्रतिमा लगाई जाती है।

शिकारी देवी शिवरात्रि में 1996 में पहली बार आई। देवी के यहाँ शिकारी धार पर चैत्र आश्विन में नवरात्रे तथा 22 वैशाख को कुटाहची मेला लगता है।

गूर श्रीधर तथा धरणीधर है। कारदार नरोत्तम, पुजारी नारदराम, कायथ उत्तम है। चार बजंतरी हैं।

देवी को चौंसठ योगिनियों में एक मूल योगिनी माना जाता है। वर्षा की देवी भी माना जाता है। देवी को बकरी चढ़ाई जाती है।

प्रादुर्भाव कथा

जब कौरव-पांडव द्यूत क्रीड़ा में व्यस्त थे तो एक महिला ने पांडवों को इस कपटपूर्ण खेल के विषय में सावधान किया। पांडव यद्यपि हार रहे थे तथापि उन्होंने उस महिला के बार-बार चेताने पर भी एक न सुनी। महिला ने उन्हें शाप दिया कि इस कपटपूर्ण खेल का परिणाम तुम समय आने पर भुगतोगे। तुम वनवासी होकर भटकोगे। फलतः पांडव हार गए और उन्हें तेरह वर्ष का वनवास हुआ। अपने वनगमन के समय वे शिकारी देवी के वर्तमान क्षेत्र में आ पहुँचे। इस घने वन में इन्हें एक मृग नजर आया। मृग को देख पांडव बहुत प्रसन्न हुए। अर्जुन ने धनुष पर बाण चढ़ाया किंतु देखते ही देखते मृग अदृश्य हो गया।

अर्जुन ने कुछ दूरी तक पीछा किया, मृग हाथ नहीं आया। सभी पांडव भी अर्जुन के पीछे पहुँच गए। पांडवों ने रात को वहीं विश्राम किया और उस मायावी मृग की चर्चा करने लगे। तभी आकाशवाणी हुई, "पांडवो ! मैं इस पर्वत पर वास करने वाली शक्ति हूँ। मैंने तुम्हें द्यूत क्रीड़ा के लिए सावधान किया था। तुमने मेरी बात नहीं मानी, अतः आज उसका फल भोग रहे हो।"

ऐसी आकाशवाणी सुन युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ प्रार्थना की, "हम अपने किए का फल आज भोग रहे हैं। तुम तो क्षमा देने वाली और कल्याणकारी देवी हो, हमें क्षमा करो।"

फिर आकाशवाणी हुई, "तुम जहाँ आज विश्राम कर रहे हो, उसी भूमि के नीचे मैं नवदुर्गा के रूप में विद्यमान हूँ। तुम इसी स्थान पर मेरी प्रतिष्ठा करो। तुम पुनः अपना राज्य प्राप्त करने में सफल होओगे।"

प्रातःकाल में सभी भाइयों ने स्नानादि से निवृत्त हो तथा हर प्रकार से पवित्र होकर उस स्थान को खोदा तो नवदुर्गा की सुंदर पाषाण प्रतिमा निकली। वहीं पर पत्थर चिनकर पांडवों ने देवी को स्थापित किया और पूजा-अर्चना कर आशीर्वाद के बाद आगे चल दिए।

देवी क्योंकि यहाँ मायामृग बनकर शिकार के रूप में प्रकट हुई थी, अतः देवी का नाम शिकारी देवी पड़ा।

कथा के कुछ रूपांतर भी मिलते हैं। पांडवों ने एक मचान पर देवी की प्रतिष्ठा की, ऐसा भी मत है।

अंबिका (एक)

अंबिका देवी, जिसका मूल स्थान निरमंड माना जाता है, थाटा, बालीचौकी में स्थापित है। देवी का लगभग बीस फुट ऊँचा चौकोर मंदिर तथा भंडार गाँव में स्थित है। त्योहार उत्सव के समय देवी का रथ सजाया जाता है। लंबे आकार के रथ में ऊपर छत्र विद्यमान है तथा ऊपरी भाग में रंगीन आकर्षक कपड़े से ढका रहता है। रथ में चारों ओर आठ मोहरे हैं। एक मोहरा अष्टधातु, एक चाँदी तथा छह सोने के हैं। आगे के दो मोहरों के ऊपर चाँदी का छत्र है।

त्योहार-उत्सव

देवी शिवरात्रि में आती है। वैशाख, श्रावण तथा मार्गशीर्ष में मेले लगते हैं। देवी को बकरे तथा मेढ़े की बलि दी जाती है।

देवी की व्यवस्था के लिए गूर शाहडुराम, कारदार कौलराम तैनात है। दो पुजारी शोभाराम तथा इंद्रदेव हैं। दस बजंतरी हैं।

अंबिका (दो)

मूल स्थान निरमंड से ही अंबिका एक अन्य स्थान थाटा गुशैणी में प्रकट हुई। निरमंड से देवी पहले खौली, फिर नारायण गढ़ गुशैणी और अंत में थाटा गुशैणी पहुँची। देवी का

मंदिर थाटा पटवाड़ा में तथा भंडार भी इसी गाँव में है। लकड़ी तथा पत्थर से ग्राम्य शैली में निर्मित मंदिर चौबीस फुट ऊँचा चौकोर आकार का है।

देवी का रथ त्योहार-उत्सवों के अवसर पर सजाया जाता है। रथ के ऊपर झालरयुक्त चाँदी का छत्र है। ऊपरी भाग कपड़े की चुनरी तथा झालर से ढका हुआ है। आठ मोहरे रथ के चारों ओर सजाए जाते हैं। एक मोहरा अष्टधातु का, एक चाँदी तथा छह सोने के हैं। रथ के आगे सिंहवाहिनी देवी की प्रतिमा भी रखी जाती है।

त्योहार-उत्सव

देवी के रथ को शिवरात्रि में लाया जाता है। प्रथम से तीन वैशाख तक वैशाखी, प्रथम से पाँच श्रावण तक श्रावणी तथा मार्गशीर्ष की अमावस्या को बूढ़ी दीवाली मनाई जाती है।

कहा जाता है, पुराने समय में देवी को मानव बलि दी जाती थी। कुछ समय पहले तक भैंसों तथा सूअर की बलि दी जाती रही। अब बकरे की बलि दी जाती है। दीवाली और माघ के अंतिम रविवार को बकरा बलि किया जाता है। श्रावण मास के चार प्रविष्टे तीन बकरे एक साथ बलि किए जाते हैं।

देव व्यवस्था के लिए कौलराम कारदार, इंद्रदेव पुजारी, मंघरूराम भंडारी, किशनचंद कायथ तैनात हैं। गुसाईं दत्त के देहांत के बाद अभी गूर कोई नहीं बन पाया है। बारह बजंतरी हैं।

अंबिका (तीन)

अंबिका का मूल स्थान नारायण बाग माना जाता है। देवी का मंदिर नारायण बाग वाली चौकी में है। मंदिर चौकोर आकार का लगभग पच्चीस फुट ऊँचा है। लकड़ी-पत्थर से निर्मित एकमंजिला मंदिर है। भंडार भी इसी गाँव में ही है।

देवी का रथ सीधा है जिसका शीर्ष गुंबदाकार है। शीर्ष पर कलश है। रथ के चारों ओर मोहरे स्थापित हैं। आठ मोहरों में से एक अष्टधातु, सात पीतल के हैं। रथ के आगे दो मोहरों के ऊपर चाँदी के छत्र हैं।

त्योहार-उत्सव

देवी सन् 1992 से दशहरे में आनी प्रारंभ हुई। फाल्गुन तथा वैशाख की संक्रांति को मेला लगता है। देवी की सुबह-शाम पूजा की जाती है।

देव व्यवस्था के लिए गूर बुधीराम, कारदार गणपत, पुजारी गंगाराम, भंडारी प्यारेराम है। सोलह बजंतरी हैं।

चामुंडा भगवती (एक)

जनश्रुति है कि किसी व्यक्ति को देवी ने अपने कहीं भूमि में दबे होने के विषय में बताया। उस व्यक्ति को वहाँ खोदने पर मूर्ति मिली। अतः देवी की स्थापना हुई।

देवी का लंबे आकार का रथ है जिसके शिखर पर चाँदी की टोपी तथा छत्र है। रथ के दोनों कोनों में चाँदी की घुंडियाँ लगी हुई हैं। इसे दो अर्गलाओं से उठाया जाता है। देवी का केवल एक मोहरा है, जो अष्टधातु का है और इसे रथ के अग्रभाग में लगाया जाता है। देवी को चामुंडा रूप माना जाता है।

चैत्र तथा आश्विन में नवरात्रे तथा श्रावण में जागरण होता है। वर्ष के सभी त्योहार मनाए जाते हैं। शिवरात्रि मेले में भी देवी भाग लेती है।

देवी का मंदिर छपौण (दुदर) में लगभग 40'-60' के आकार का है। देवी को बकरे तथा मेढ़े की बलि चढ़ाई जाती है। मूल स्थान मोतीपुर घाट माना जाता है।

पुजारी का नाम भूपेंद्र पाल है। मंदिर की प्रबंध समिति बनी हुई है। सात बजंतरी हैं।

चामुंडा भगवती (दो)

जनश्रुति है कि मसेरन में एक व्यक्ति को हल चलाते हुए देवी की मूर्ति मिली अतः गाँव में देवी की स्थापना की गई। मसेरन (दृंग) में देवी का मंडप शैली का मंदिर है। भंडार टोकरी गाँव में है।

देवी का रथ लंबे आकार का है जो दो अर्गलाओं द्वारा उठाया जाता है। चाँदी के दो मोहरे हैं। पहला चामुंडा देवी का मोहरा रथ के ऊपर तथा जालपा देवी का चामुंडा देवी के नीचे लगता है।

देवी के यहाँ नवरात्रे मनाए जाते हैं। राजा सिद्धसेन के समय से देवी शिवरात्रि उत्सव में आती है।

देवी अंधे, कुष्ठ रोग से पीड़ित, पागल तथा अन्य रोगियों का निदान करती है।

गूर संतराम, कारदार दिनेश कुमार, पुजारी दौलतराम है। चौदह बजंतरी हैं।

कोयला भगवती

जनश्रुति है कि राजगढ़ में प्रतिदिन एक व्यक्ति की मृत्यु हो जाती थी। सभी लोगों में आतंक फैला हुआ था। एक बार देवी ने किसी व्यक्ति को स्वप्न में बताया कि अमुक स्थान पर मेरी मूर्ति दबी पड़ी है। यदि इसे निकालकर पूजा की जाए तो इस आतंक से मुक्ति मिल सकती है। जब उक्त स्थान को खोदा गया तो देवी का मुख मिला, जिसे मंदिर में स्थापित किया गया।

देवी का मंदिर राजगढ़ (बल्ह) में है। मंदिर का आकार 10'-12' है। देवी का भंडार दो मंजिला है।

देवी का खड़ा रथ है, जिसमें दो अर्गलाएँ लगी हुई हैं। मोहरे कुल नौ हैं, जिनमें एक अष्टधातु का और शेष चाँदी के हैं। इतने ही मोहरे देवी के भंडार में भी हैं। रथ में सबसे ऊपर एक, उसके नीचे दो तथा नीचे की दो पंक्तियों में तीन-तीन मोहरे लगाए जाते हैं।

त्योहार-उत्सव

शिवरात्रि में भाग लेने के अतिरिक्त दीवाली, नवरात्रों में उत्सव मनाए जाते हैं। बकरे की बलि दी जाती है। सावन संक्रांति को गलू में मेला लगता है।

देवी का गूर जीवानंद, कारदार चमनलाल, पुजारी खेमराज तथा पोरस कुमार, कटवाल चमनलाल हैं। चालीस बजंतरी हैं। देवी की सुबह-शाम पूजा की जाती है।

कोयला माता

कोयला माता का मंदिर भिऊली में पुजारी के घर में है। देवी का रथ है, जिसमें नौ मोहरे लगाए जाते हैं। नौ मोहरों में एक अष्टधातु तथा शेष पीतल के हैं। देवी का खड़ा रथ है जिसके शिखर पर छत्र लगता है। मोहरों का क्रम ऊपर से एक-एक, दो-दो तथा तीन है। नीचे सिंहवाहिनी देवी की एक मूर्ति रखी जाती है।

त्योहार-उत्सव

सन् 1976 में देवी का शिवरात्रि में आगमन हुआ। भिऊली में वर्ष में एक मेला लगता है। नवरात्रों में देवी को बकरे की बलि दी जाती है।

देवी का गूर नाग, कारदार जयसिंह तथा पुजारी नाग है। प्रधान हिम सिंह है तथा सात-आठ बजंतरी हैं।

देवी की सुबह-सायं पूजा की जाती है।

महाकाली

महाकाली का मंदिर ग्राम बानण, पधिऊ (पच्छीहत) में है। भंडार भी बानण गाँव में है।

देवी का रथ लंबे आकार का है। शीर्ष में चाँदी की टोपी तथा छत्र हैं। अष्टधातु के दो मोहरे हैं जो रथ के अग्रभाग में एक के ऊपर एक लगते हैं।

देवी को सन् 1971 से शिवरात्रि में लाया जाता है। भाद्रपद में डायण चौदस का मेला होता है। वर्ष के सभी त्योहार भी मनाए जाते हैं। चैत्र तथा आश्विन में नवरात्रे लगते हैं, जिनमें बकरे की बलि दी जाती है।

गूर उत्तम सिंह, कारदार केसर सिंह, पुजारी उत्तम सिंह, कटवाल अमर सिंह, वजीर गुड्डु हैं। सात बजंतरी हैं।

दुर्गा माता

दुर्गा माता का मंदिर तथा भंडार पुरानी मंडी में है। देवी का रथ नीचे से चौड़ा तथा ऊपर से तंग होता गया है। ऊपर चाँदी की झालर तथा छत्र लगा हुआ है। रथ को उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयोग में लाई जाती हैं। देवी का केवल एक मोहरा है जो अष्टधातु का है। यह मोहरा रथ के अग्रभाग में लगाया जाता है, जिसके नीचे शेर तथा सिंहवाहिनी

की प्रतिमाएँ लगी हैं।

शिवरात्रि में देवी सन् 1973 से आती है। चैत्र तथा आश्विन के नवरात्रे मनाए जाते हैं। देवी को नारियल की बलि दी जाती है किंतु नवरात्रों में घरों में बुलाए जाने पर बकरे की बलि भी दी जाती है।

देवी का गूर भूप सिंह, कारदार साधराम, पुजारी तरुण कुमार है।

नैण तुंगा

जनश्रुति है कि देवी की मूर्ति खेत में किसी को काम करते हुए मिली। अतः मंदिर निर्माण किया गया। देवी का मंदिर तथा मूल स्थान फतेहनाणा (पच्छीहत) में है। भंडार गूर के घर में है। रथ तिकोना लंबे आकार का है, जिसके ऊपर छत्र लगा है। मोहरा केवल एक ही है जो अष्टधातु का है और रथ के अग्रभाग में स्थापित रहता है। देवी को काली रूप माना जाता है।

सन् 1971-72 से देवी को शिवरात्रि में लाया जाता है। चैत्र तथा आश्विन के नवरात्रों सहित सभी त्योहार मनाए जाते हैं।

गूर राजू, कारदार रमेश, पुजारी राजू है।

भद्रकाली

जनश्रुति है कि जंगल में किसी व्यक्ति को देवी की मूर्ति जमीन में दबी हुई मिली। अतः देवी की स्थापना की गई। देवी का मूल स्थान तथा मंदिर भराड़ी, बथेरी (कटौला) में है।

रथ लंबे आकार का है जिसके ऊपर चाँदी का छत्र है। मोहरे कुल सात हैं, जिनमें से चार चाँदी के तथा शेष अष्टधातु के हैं। सभी मोहरे रथ के सामने लगते हैं। सबसे ऊपर एक, उसके नीचे तीन और उसके नीचे तीन लगाए जाते हैं।

देवी की गाथा में कहा जाता है कि देवी का आगमन काँगड़ा से हुआ।

सन् 1995 से देवी शिवरात्रि में भाग लेने आती है। श्रावण में शनाहोली तथा 'नाहोली गढ़ा रे क्वाला रा मेला' मनाया जाता है।

गूर श्रीदेव, कारदार हेतराम, पुजारी छिंझु, कठियाला पस्ता, कायथ शोभेराम हैं। आठ बजंतरी हैं।

देवी मड़भाखन

मूल स्थान कश्मीर माना जाता है। देवी का तिमंजिला मंदिर देऊल (सराज) में है। भंडार भी इसी गाँव में हैं। इसे कश्मीरी देवी भी कहते हैं।

खड़ा रथ है जिसके ऊपर कलशयुक्त गुंबद है। आठ मोहरे हैं जिनमें एक अष्टधातु का और सात सोने के हैं। दो-दो मोहरे (एक के ऊपर एक) रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं।

शिवरात्रि में मेले के आरंभ से भाग लेती है। उन्नीस से इक्कीस आषाढ़, सावन के चार प्रविष्टे तथा प्रथम कार्तिक को मेले लगते हैं।

देवी भूत बाधा हरती है। आधि-व्याधि से रक्षा करती है। बकरे की बलि स्वीकार करती है।

गूर भूप सिंह, कारदार गुलाब सिंह, पुजारी भैगुराम तथा छह बजंतरी हैं।

मनसा देवी

मनसा देवी का मूल स्थान गमधौल, साइगलु (तुंगल) है। भंडार पुजारी के घर में है। देवी का रथ लंबे आकार का है, जिसके शीर्ष पर पीतल का छत्र है। आगे दो फुल्लियाँ लगी हैं। कुल सात मोहरे हैं, जिनमें से एक अष्टधातु तथा शेष पीतल के हैं। सभी मोहरे रथ के अग्रभाग में लगे हैं। नीचे सिंहवाहिनी की मूर्ति रखी जाती है।

सन् 1990 से देवी शिवरात्रि में भाग लेती है। इसे गाँव की कुलदेवी माना जाता है।

गूर लेखराज, कारदार रामसिंह, पुजारी लेखराज है। सात बजंतरी हैं।

देवी मसवाई

जनश्रुति है कि एक बार बनग्राम (मलवाणा) में महामारी फैली। उस समय एक कन्या 'खेल' पड़ी। उसने एक देवी की पिंडी का उल्लेख किया, जिसके ऊपर गाय दूध की धाराएँ गिराती थी। गाँव वालों ने वहाँ खुदाई की तो एक पिंडी निकल आई। वहाँ मंदिर निर्माण किया तो महामारी से मुक्ति मिली।

देवी का मूल स्थान तथा मंदिर बनग्राम (मलवाणा) में है। भंडार भी बल्ह के मलवाणा गाँव में है।

रथ लंबे आकार का है। नौ मोहरे हैं, जिनमें से एक अष्टधातु तथा शेष चाँदी के हैं।

देवी शिवरात्रि में सन् 1966 से आती है। स्थानीय त्योहार के साथ दीपावली मनाई जाती है। नवरात्रों तथा जागरण के अवसर पर बकरे की बलि दी जाती है।

गूर देवीराम, कारदार ताराचंद तथा परमदेव, पुजारी भीमदेव, भंडारी सल्दुराम, कोषाध्यक्ष ज्ञानचंद है। बारह बजंतरी हैं।

महाकाल नैणा उग्रतारा

मूल तथा मंदिर कठवाड़धार (तुंगल) में है। भंडार मंदिर में ही है। रथ लंबे आकार का है, जिसके शिखर पर अष्टधातु का छत्र है। चारों कोनों पर चाँदी की घुंडियाँ लगी हैं। मोहरों की संख्या तीन है। सभी मोहरे अष्टधातु के हैं तथा रथ के अग्रभाग में स्थापित किए जाते हैं।

सन् 1966 से देवी शिवरात्रि में आती है। वर्ष के सभी त्योहारों के अतिरिक्त नागपंचमी तथा ज्येष्ठ संक्रांति को मेला लगता है। देवी को बकरे की बलि दी जाती है।

गूर नेकराम, कारदार गंगाराम तथा मुरारीलाल, पुजारी नेकराम है। पाँच बजंतरी हैं।

महामाया (चामुंडा)

किंवदंती है कि देवी की मूर्ति उलक नामक पंडित को मिली। अतः मंदिर बनवाया गया। देवी का मंदिर चैल चौक (चच्योट) में है। भंडार मंदिर के पास गाँव में है।

रथ लंबे आकार का तिकोना है। मोहरों की संख्या दस है जिसमें एक अष्टधातु तथा नौ चाँदी के हैं। सभी मोहरे रथ के अग्रभाग में लगाए जाते हैं।

1967 से देवी शिवरात्रि में आती है। नौ तथा दस आषाढ़ को दीपमाला तथा चैत्र असौज में नवरात्रे मनाए जाते हैं। देवी को बकरे, मेढ़े, भैंसे, मछली, मुर्गा, केकड़ा, पेठा, नारियल, जायफल, सुपारी, बिल्व फल की बलि दी जाती है। बारह वर्ष में एक बार ग्यारह बलियाँ एक साथ दी जाती हैं।

गूर त्रिलोकनाथ, कारदार तथा कटवाल भुवनेश्वर, पुजारी रामकृष्ण हैं। बीस बजंतरी हैं।

देवी महाकाली (एक)

महाकाली का मंदिर पुरानी मंडी में है। भंडार भी पुरानी मंडी में है। देवी का रथ लंबे आकार का है, जिसके ऊपर चाँदी का छत्र लगा रहता है। केवल एक मोहरा है, जो अष्टधातु का है और रथ के अग्रभाग में लगाया जाता है।

सन् 1969 से देवी शिवरात्रि में आती है। भाद्रपद में रात्रि जागरण तथा वैशाख में मिऊली में मेला लगता है।

गूर धर्म सिंह, कारदार हेमचंद है।

देवी महाकाली (दो)

महाकाली का मंदिर पंगलिऊर, गोहर स्यांज (चच्योट) में है। रथ लंबे आकार का है। मोहरों की संख्या सात है, जिसमें से एक अष्टधातु का निर्माणाधीन है। ये सभी मोहरे रथ के अग्रभाग में लगाए जाते हैं।

सन् 1966 से देवी शिवरात्रि में आने लगी है। मंगलवार तथा शुक्रवार को पुच्छ दी जाती है।

गूर संतराम, कारदार नंदलाल, पुजारी हरिया है। कटवाल पढ़रू, चौकीदार बलदेव, भंडारी भोटलू है।

देवी महाकाली गासी

महाकाली का मूल स्थान तथा मंदिर गुदवाहणी (भुलवाणी) गलमा में है। भंडार पुजारी के घर में है।

देवी का रथ लंबे आकार का है जिसे उठाने के लिए दो अर्गलाओं का प्रयोग किया जाता है। मोहरों की संख्या सात है जिनमें एक अष्टधातु तथा शेष छह पीतल के हैं। ये सभी मोहरे रथ के अग्रभाग में लगाए जाते हैं।

1990 से देवी को शिवरात्रि में लाया जाता है। वर्ष के सभी त्योहारों को मनाने के

साथ ज्येष्ठ मास की संक्रांति को मेला लगता है। देवी को बकरे या मेढ़े की बलि दी जाती है।

गूर श्यामलाल, कारदार प्रेमलाल तथा पुजारी भी श्यामलाल है। पाँच बजंतरी हैं।

महाकाली चामुंडा

यह नई देवी है। 1992 में एक लड़की को खेल आई और देवी ने कहा कि यहाँ देवी की स्थापना की जाए। देवी का मंदिर नेर, कसारना (सदर) में है। मंदिर तथा भंडार एक ही है। देवी का लंबे आकार का छोटा रथ बनाया गया है। मोहरों की संख्या दस है, जिनमें एक अष्टधातु तथा नौ पीतल के हैं। ये रथ के अग्रभाग में लगाए जाते हैं।

1995 से देवी को शिवरात्रि में लाया जाता है। नवरात्रों में एक दिन का मेला लगता है। श्रद्धालु पुच्छ लेते हैं।

गूर रोशनलाल, पुजारी रोशनलाल तथा कारदार लालमन है। चार बजंतरी हैं।

महाकाली लंबोदरा

मूल स्थान तथा मंदिर अनेला (दुदर) में है। खड़ा रथ है, जिसके ऊपर गुंबद, चाँदनी तथा छत्र है। नीचे चारों कोनों में चार घुंडियाँ लगी हैं। मोहरों की संख्या आठ है जो रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं। नीचे शिव-पार्वती की प्रतिमा लगाई जाती है।

शिवरात्रि में 1986 से आगमन आरंभ हुआ। वर्ष के सभी त्योहार मनाए जाते हैं। नवरात्रों में बकरे की बलि दी जाती है।

गूर द्रौपदी देवी, कारदार तथा पुजारी भरतराम है।

देवी मैहण

जनश्रुति है कि देवी पराशर के निकट रहनगाँव में प्रकट हुई थी। वहाँ लोगों ने देवी को नहीं माना। अतः देवी ने गाँव का सर्वनाश कर दिया। देवी की मूर्ति को कूनगाँव के एक व्यक्ति ने उठा लिया और अपने गाँव को चल दिया। रास्ते में उसने देखा तो मूर्ति न होकर वह एक पत्थर था। उसने पत्थर उठाकर फेंक दिया, जिससे वह अंधा हो गया। वहाँ से जा रहे एक दूसरे आदमी ने उस पत्थर को ढूँढ़ा। उसने देवी की स्थापना की, उसके सात पुत्र हुए। एक बार उसने अहंकारवश देवी की पूजा करनी छोड़ दी तो उसके सातों पुत्र मर गए। तब देवी ने एक अन्य आदमी को सपने में दर्शन दिए और अपने को मैहणी गाँव में स्थापित किया।

देवी का मंदिर तथा भंडार मैहण गाँव में है। मंदिर स्थानीय शैली में चारमंजिला है।

रथ चौकोर है जिसके ऊपर गुंबद स्थापित है। ऊपर पीतल का कक्ष है। चारों कोनों में चार घुंडियाँ हैं। आठ मोहरे हैं जिनमें एक अष्टधातु और शेष सोने के हैं। ये रथ के चारों ओर दो-दो करके स्थापित हैं।

देवी गौड़ बंगाल से आई हुई बताई जाती है जो सात बहनें हैं।

शिवरात्रि मेले में आरंभ से देवी को लाया जाता है। मार्गशीर्ष तथा बीस आषाढ़ को मेला लगता है। माल का मेला भी होता है। सभी त्योहार मनाए जाते हैं। महामारी आदि फैलने पर बकरे तथा मेढ़े की बलि दी जाती है।

गूर माधोराम, कारदार पुनेराम, पुजारी शंकरदास, कटवाल कपूरू, कठियाला शेर सिंह तथा चाँदराम, वजीर चैनेराम है। बीस बजंतरी हैं।

मोवी चतुर्भुजा

किंवदंती है कि एक बार एक गूर को खेल आई और बताया कि श्मशान में देवी का मुख पड़ा हुआ है, उसकी स्थापना करें। अतः वहाँ स्थापना कर मंदिर निर्माण किया गया।

देवी का मूल स्थान भौइंसरी माना जाता है। मंदिर तरौर, रोगली (चच्योट) में है।

रथ लंबे आकार का है। मोहरों की संख्या दस है जिनमें दो अष्टधातु के तथा आठ चाँदी के हैं। ये सभी रथ के अग्रभाग में स्थापित किए जाते हैं।

शिवरात्रि में पुराने समय से देवी का आगमन होता है। कार्तिक में मौई मेला तथा श्रावण में शाउप मेला लगता है।

गूर मोहनलाल, कारदार नागेन्द्र पाल तथा पुजारी चिंतराम है। दस बजंतरी हैं।

देवी लुंगार कश्मीरी

देवी का स्थानीय शैली में निर्मित मंदिर लुंगार, मझवाड़ (सदर) में है। देवी का रथ लंबे आकार का है, जो नीचे से चौड़ा और ऊपर से तंग होता गया है। कुल सात मोहरे हैं, जिनमें चार चाँदी के तथा तीन पीतल के हैं। ये सभी रथ के अग्रभाग में तीन, दो, एक-एक के क्रम में लगते हैं। भंडार भी गाँव में ही है।

देवी शिवरात्रि में मेले के आरंभ से आ रही है।

देवी का पुजारी रामचंद्र, कारदार रणजीत सिंह है।

माता वैष्णो

माता वैष्णो का मंदिर गड़ल, सदयाणा (तुंगल) में है। मंदिर तथा भंडार गड़ल सदयाणा में ही है।

रथ लंबे आकार का है जिसके शीर्ष पर पीतल का छत्र लगा हुआ है। मोहरे कुल पाँच हैं, जिनमें एक अष्टधातु का तथा शेष पीतल के हैं। ये सभी मोहरे रथ के अग्रभाग में लगाए जाते हैं।

देवी को 1976 से शिवरात्रि में लाया जाता है। चैत्र तथा आश्विन नवरात्रों में मेले लगते हैं। नौ मार्गशीर्ष को देवी का जन्मदिन मनाया जाता है।

देवी को कुमारी कन्या माना जाता है। पशुबलि नहीं दी जाती, नारियल चढ़ाया जाता है।

गूर सेवकराम, पुजारी भी सेवकराम है। कारदार भी वही है। बारह बजंतरी हैं।

देवी शकारी जोगणी

विश्वास है कि देवी की मूर्ति सन् 1971 में एक चट्टान के नीचे से मिली। मूल स्थान धनेसरगढ़ माना जाता है। मंदिर तथा भंडार कथवाड़ी, मुहाल रठोहा (टिक्कर) में है।

रथ लंबे आकार का है जो ऊपर सँकरा होता गया है। रथ के ऊपर पीतल का छत्र है। अग्रभाग में पीतल के फूल लगे हुए हैं। मोहरों की संख्या सात है, जिनमें से एक अष्टधातु, शेष पीतल के हैं। ये सभी मोहरे रथ के अग्रभाग में लगाए जाते हैं।

1973 से देवी को शिवरात्रि में लाया जाने लगा है। चैत्र तथा आश्विन में नवरात्रे मनाए जाते हैं। अष्टमी को मेला लगता है। देवी को बकरे की बलि दी जाती है।

गूर सुखराम, कारदार प्रभु तथा कुछ बजंतरी हैं।

देवी शाकंभरी

देवी का मंदिर तथा भंडार रेहड़धार में है। रथ लंबे आकार का है जिसके शीर्ष भाग में चाँदी का बड़ा छत्र लगा रहता है। अग्रभाग में चाँदी की फुल्लियाँ लगी हुई हैं। सात मोहरे हैं, जिनमें चार सोने के तथा तीन चाँदी के हैं। सभी मोहरे रथ के अग्रभाग में स्थापित हैं। मोहरों के नीचे सिंहवाहिनी की प्रतिमा है।

देवी शिवरात्रि के आरंभ में मेले में आती है। साढनू, पराल, दीवाली, भिऊनी मेले लगते हैं।

देवी को पराशर ऋषि की पोती माना जाता है। बकरे की बलि की परंपरा है।

गूर हरिम सिंह, पुजारी लक्ष्मण, भंडारी मोतीराम है। पंद्रह बजंतरी हैं।

देवी सोना सिंहासन

देवी का मूल स्थान तथा मंदिर झंगड़, न्यूल बदार (घराण) में है। भंडार न्यूल गाँव में है। देवी का प्रादुर्भाव नदी से हुआ माना जाता है।

देवी का रथ चौकोर आकार का है जिसका शीर्ष भाग गुंबदाकार है। ऊपर चाँदी का कलश लगा है तथा चारों कोनों पर चाँदी की घुंडियाँ हैं। कुल आठ मोहरे हैं जिनमें चार सोने के, एक अष्टधातु तथा तीन चाँदी के हैं। ये सभी रथ के चारों ओर स्थापित किए जाते हैं। मोहरों के नीचे सिंहवाहिनी की प्रतिमा लगाई जाती है।

देवी को शिवरात्रि के आरंभ से ही मेले में लाया जाता है। वर्ष के सभी त्योहार मनाए जाते हैं तथा मार्गशीर्ष में मेला लगता है। बकरे तथा मेढ़े की बलि दी जाती है।

बाखली, देवी मैहण, धारनागण, निसुपड़ासरी, काँठी, घटकण तथा बूढ़ी बछोड़न देवी की बहनें मानी जाती हैं।

गूर लजेराम, कारदार सुंदर सिंह, पुजारी नीला प्रकाश, वजीर भीमसेन, कठियाला नागराम तथा किशन, कटवाल देवलुराम है। पाँच बजंतरी हैं।

उग्रतारा नैणादेवी

जनश्रुति है कि नैणादेवी गुफा के पास खुदाई करते हुए हवन कुंड निकला। इसी समय आकाशवाणी हुई कि गुदाहण में स्थान स्थापित किया जाए। अतः देवी को नैणादेवी (गुदाहण) रिवालसर में स्थापित किया गया। देवी का मंदिर निर्माणाधीन है। यह भी जनश्रुति है कि देवी की कृपा से राजा सिद्धसेन का अंधापन ठीक हो गया था।

देवी का लंबे आकार का रथ बनाया गया है। चाँदी के सात मोहरे हैं। देवी को बौद्धिक तंत्रयान की देवी उग्रतारा माना जाता है। रिवालसर का वैशाखी मेला देवी से भी संबद्ध बताया जाता है।

गूर तथा पुजारी भगीरथ है। पाँच बजंतरी हैं।

देवी कोयला भगवती

कहा जाता है कि पुराने समय में कश्मीर से कोई पंडित आए जो रीगढ़ में देवी को साथ लाए। देवी का दोमंजिला मंदिर रीगढ़, राजगढ़ (सदर) में है। भंडार भी गाँव में ही है। देवी का खड़े आकार का रथ है। मोहरों की संख्या नौ है, जो सभी अग्रभाग में लगाए जाते हैं।

देवी के यहाँ नवरात्रे मनाए जाते हैं तथा आषाढ़ में गलू का मेला लगता है।

गूर तथा पुजारी नीलकंठ, कारदार नोतीलाल है। दस बजंतरी हैं।

देवी घटासन

जनश्रुति है कि एक बार कुछ लोग नमक लाने के लिए द्रंग गए। नमक निकालते हुए किसी को देवी का मुखौटा मिला। एक व्यक्ति को खेल आई और देवी ने कहा कि मैं देवी घटासन हूँ, मेरा मंदिर विहणधार में बनाया जाए।

देवी का मूल स्थान द्रंग माना जाता है। स्थानीय शैली में लकड़ी व स्लेट से निर्मित मंदिर विहणधार में है। भंडार भी विहणधार में है।

रथ लंबे आकार का है जिसके ऊपर चाँदी का छत्र लगा हुआ है। मोहरों की संख्या छह है जिनमें दो सोने, दो चाँदी तथा दो पीतल के हैं। ये सभी रथ के अग्रभाग में लगाए जाते हैं।

शिवरात्रि में देवी मेले के आरंभ से आती है। माल, ज्येष्ठ मास की संक्रांति को बकोर त्योहार व मेले मनाए जाते हैं।

देवी को ब्राह्मणी देवी माना जाता है। बकरे व मेढ़े की बलि दी जाती है।

गूर देवी सिंह, कारदार दिलेराम, पुजारी देवीसरन, वजीर नागणुराम, कटवाल यद्र है। बीस बजंतरी हैं।

देवी घड़ासनी

मूल स्थान शिवाबदार में है। मंदिर तथा भंडार भी शिवाबदार में ही है। मंदिर स्थानीय शैली में लकड़ी तथा पत्थर से निर्मित है।

देवी का रथ लंबोतरे आकार का है जिसके ऊपर चाँदी का छत्र सुशोभित रहता है। मोहरे कुल आठ हैं, जिनमें एक अष्टधातु, दो सोने तथा पाँच चाँदी के हैं।

शिवरात्रि में देवी आरंभ से आती है। चार पौष को मेला लगता है। देवी शिवाबदार के राणा की कुलदेवी थी। अतः विवाहादि में देवी की आज्ञा ली जाती है। बकरे की बलि दी जाती है।

गूर नागणुराम, कारदार भूमेराम, पुजारी डोलेराम, कठियाला सागरूराम, कटवाल इंद्रराम, वजीर नागणुराम है। बीस बजंतरी हैं।

महाकाली

महाकाली का मंदिर भ्राड़ी, सैणी मौहर (पच्छीहत) में है। भंडार भी गाँव में ही स्थित है।

रथ नीचे से चौड़ा है जो ऊपर संकीर्ण होता गया है। शीर्ष में पीतल का छत्र लगा है। अग्रभाग में चाँदी की दो घुंडियाँ लगी रहती हैं। अष्टधातु के दो मोहरे हैं जो रथ के अग्रभाग में लगते हैं। मोहरों के ऊपर चाँदी का छत्र लगता है। नीचे सिंहवाहिनी की प्रतिमा रहती है।

देवी का शिवरात्रि में आगमन 1995 से हुआ। बैसाखी के साथ चैत्र तथा आश्विन में नवरात्रे मनाए जाते हैं। बकरे या मेढ़े की बलि दी जाती है।

गूर तेज सिंह, पुजारी रमेश, कटवाल प्रकाश सिंह तथा चार बजंतरी हैं।

हाटेश्वरी मंदिर, हटगढ़

हाटेश्वरी देवी का मंदिर बग्गी से आगे हटगढ़ में एक ऊँचे स्थान पर स्थित है। पुराना मंदिर गिराकर अब एक नया मंदिर बना दिया गया है। इसकी प्रबंध-व्यवस्था के लिए एक कमेटी गठित है, जिसके द्वारा आय-व्यय का लेखा-जोखा रखकर मंदिर का विकास-कार्य किया जाता है। मंदिर की दो-तीन बीघे भूमि है। मंदिर के पुजारी पैतृक हैं और दानपात्र के अतिरिक्त जो खुले में चढ़ावा चढ़ता है, वह पुजारी को मिलता है। शरद नवरात्रों तथा आषाढ़ में यहाँ मेला लगता है।

दुर्गामाता मंदिर, चिंडी

यह मंदिर चिंडी में सड़क के ऊपर की ओर स्थित है। मंदिर के पुजारी पैतृक पुजारी हैं, जिन्हें 16 रुपए प्रतिमाह वेतन दिया जाता है। मंदिर के चौकीदार को 150 रुपए वेतन मिलता है। मंदिर की ही एक कमेटी बनी हुई है। आसपास के क्षेत्र की विवाह-शादियाँ अधिकतर इसी मंदिर में की जाती हैं। चढ़ावा मंदिर के विकास-कार्यों पर खर्च किया जाता है। अठारह श्रावण को चकरोंट में एक तीन दिवसीय मेला लगता है।

देवता मछिंदर मछियाल़, जोगिंद्रनगर

मछियाल़ का मंदिर तथा स्थान जोगिंद्रनगर सरकाघाट सड़क पर जोगिंद्रनगर से लगभग आठ किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ पर देवता मछिंदर नाथ तथा कबीर के दो अलग-अलग मंदिर हैं। मुख्य मंदिर की व्यवस्था एक पंजीकृत समिति द्वारा की जाती है। मंदिर के नाम लगभग सवा एकड़ भूमि है, जिसके काफी भाग पर अवैध कब्जा हुआ है। पहले इस मंदिर के नाम 27 बीघे भूमि थी। मंदिर में 13 अप्रैल से एक मेला लगता है। मंदिर के साथ एक दोमंजिली धर्मशाला भी है, जो जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। मंदिर समिति के सदस्य इस मंदिर को अधिनियम के अंतर्गत लेना चाहते हैं। मंदिर के साथ मछियाल़ का आकर्षक स्थान है, जिसमें बड़ी-बड़ी मछलियों को श्रद्धालु आटा खिलाते हैं। मछियाल़ के ऊपर किसी व्यक्ति द्वारा एक क्रेशर लगाया गया है, जिससे मछलियों को हानि होने की आशंका है। भक्त कबीर के मंदिर की व्यवस्था एक अलग पंजीकृत समिति द्वारा की जाती है।

त्रिदेव

आदि ब्रह्मा

देवता का मूल मंदिर टिहरी (उत्तरांचल) में है। किंवदंती है कि खेत में काम कर रही दो औरतों को अष्टधातु का मोहरा मिला जो आदि ब्रह्मा का था। कुल्लू में खोखण का आदि ब्रह्मा इस देवता का बड़ा भाई माना जाता है। यह भी मान्यता है कि दोनों भाइयों में शत्रुता है। अतः दोनों एक-दूसरे के क्षेत्र में प्रवेश नहीं करते।

देवता का मंदिर आदि ब्रह्मा खोखण की भाँति पैगोडा शैली का तीन छतों वाला है। भंडार काला गाँव, चौहटीगढ़ सनोर तथा टिहरी में है।

देवता का रथ खड़ा रथ है जिसे उठाने के लिए अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। आठ मोहरे हैं, जिनमें एक सोने का, एक अष्टधातु का और छह चाँदी के हैं। भंडार में बारह रणसिंगे तथा करनालें, पाँच छड़ियाँ, एक सूरजपंखा, सात नगाड़े, एक नाम, एक सगड़ी, एक सजीग, दो बल्लम हैं।

त्योहार-उत्सव

देवता के यहाँ वर्ष के लगभग सभी त्योहार मनाए जाते हैं। शौईरी, बिरशु, कापू, साढ़नू, शनोहाल, पराला आदि के साथ-साथ चौबीस वर्ष बाद आश्विन में काहिका मनाया जाता है। काहिका उत्सव एक प्रमुख उत्सव है।

देवता अन्न, धन और जल का देवता माना जाता है। प्रातः-सायं पूजा-अर्चना तथा आरती की जाती है।

देव व्यवस्था के लिए कारदार शोभेराम, पुजारी डोलेराम तथा धनीराम, कठियाला पानसिंह, गाँठीदार पुरधू, कायथ संतराम है। देवता के पाँच गूर हैं—मनसू, मणकू, डोलू, लाहुलू तथा हरू। सत्रह बजंतरी तथा दस रसोइए हैं।

ब्रह्मा सतपाल

ब्रह्मा सतपाल का मूल स्थान तथा मंदिर शिवा बदार में है। देवता का चौकोर आकार का रथ है, जिसके ऊपर गुंबद तथा पीतल का छत्र लगा होता है। देवता के कुल आठ मोहरे हैं, जिनमें से एक अष्टधातु का तथा शेष चाँदी के हैं। ये मोहरे रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं।

सन् 1976 से देवता शिवरात्रि में आता है। कार्तिक और मार्गशीर्ष के संधि दिवस पर 'नेऊजु' को जाग या जागरण होता है। देवता को बकरे की बलि दी जाती है।

गूर बीरी सिंह, कारदार चाँदराम, पुजारी कीर्तराम, कठियाला अमरसिंह, कटवाल किशनचंद तथा वजीर टीकमराम है। दस बजंतरी हैं।

हुरंग नारायण

हुरंग नारायण चौहार घाटी का प्रमुख देवता है। चौहार घाटी तथा इस क्षेत्र के अन्य देवता इसके मंत्री माने जाते हैं। पाशाकोट, काठौणी नारायण, स्वाड़, सिलह, बथैरी, तरैला के गौहरी देव सभी हुरंग नारायण के मंत्री हैं तो फुंगणी, नौणी, जोगणी आदि देवियाँ बहनें।

देवता का मूल स्थान हुरंग है। इसीलिए इसे हुरंग नारायण कहते हैं। मंडी-पठानकोट मार्ग पर मंडी से तीस किलोमीटर नारला आता है। नारला में एक जलप्रपात गिरता है, जो ऊपर 'हिमरी गंगा' या 'हिमगिरी गंगा' का है। नारला के पास ही शिऊण गाँव है जहाँ से इस देवता की कथा जुड़ी हुई है।

देवता का मंदिर पहाड़ी शैली का है जिस पर सलेट की छत है। भंडार भी इसी मंदिर में है। देवता का चौकोर रथ है जिसमें चार मोहरे हैं। एक मोहरा सोने का, एक अष्टधातु का और दो चाँदी के हैं। देवता के दो गूर (भागचंद तथा नारायण सिंह) हैं। एक कारदार और एक पुजारी है। प्रतिदिन देवता की पूजा-अर्चना की जाती है।

विशेष मेले, उत्सवों के अवसर पर देवता का रथ सजाया जाता है। सायरी, मार्गशीर्ष पूर्णिमा, शिवरात्रि, बिरशू, शाढ़नू, नाहोली, माल के अवसर पर मेले लगते हैं। देवता शिवरात्रि तथा जोगिंद्रनगर मेले में जाता है।

हर पाँच वर्ष बाद यहाँ 'काहिका' उत्सव मनाया जाता है। अन्य स्थानों की भाँति यहाँ भी नौड़ या नड़ ज़ाति के व्यक्ति को काहिका में 'मारा' जाता है और पुनः जीवित किया जाता है। नौड़ को मारने की विधि कुल्लू या मंडी की भाँति है। चौहार घाटी में पंजौड़, पधर में सुराहण तथा टिहरी (आदि ब्रह्मा उत्तरांचल) में भी काहिका मनाया जाता है।

प्रादुर्भाव कथा

शिऊण गाँव में एक बार भोला-भाला, सुंदर लड़का नजर आने लगा। रास्ते में आने-जाने वाले जब भी उस लड़के से कुछ पूछते तो वह बस 'नारायण-नारायण' कहता। लोग उसे गाँव में ले गए। वहाँ उसने गाँव के ढोर-डंगर चराने का काम करना शुरू कर दिया। ग्वाला बनकर वह गाँव के पशुओं को दूर-दूर जंगल-पहाड़ों में ले जाता। उन पहाड़ों में कहीं जलस्रोत नहीं था। किंतु नारायण अपनी छड़ी से खोदकर पानी निकालता और पशुओं को पिलाता। लोग ये समझते कि वह व्यास नदी में ले जाकर पशुओं को पानी पिलाता है। लोगों के पूछने पर नारायण ने पशुओं को पानी पिलाने की विधि बताई तो वे झूठ समझे। एक बार कुछ लोगों ने चोरी-छिपे उसका पीछा किया। नारायण ने सच ही कुछ दूर जाकर छड़ी से जमीन खोदी तो वहाँ से जलधारा फूट पड़ी और पशु पानी पीने लगे। लोग इस चमत्कार को देख जैसे ही सामने आए, नारायण अंतर्धान हो गया। इस चमत्कार की प्रसिद्धि दूर-दूर तक फैली। जहाँ से नारायण ने पानी की धारा निकाली थी, वह जलस्रोत 'हिमरी गंगा' कहलाया। यह एक तीर्थ के रूप में माना जाने लगा और बीस भादों को यहाँ स्नान पर्व मनाया जाने लगा।

कुछ समय बाद शिऊण से ऊपर बूभू दर्रे पर एक वृद्ध किसान मिट्टी खोद रहा था तो उसे वहाँ एक बालक दिखा। वृद्ध किसान दंपती निःसंतान था। अतः वे बालक को देख बहुत प्रसन्न हुए। बालक को मिट्टी के ऊपर किलटे में बिठा के घर ले आए। घर आकर कुलटा नीचे रखा तो बालक गायब था। बालक ने रात को सपने में कहा—मैं नारायण हूँ, जो शिऊण में पशु चराता था, किलटे में मेरा निशान मोहरा है। मुझे नारायण के रूप में यहाँ स्थापित करना। प्रातः उन्हें मिट्टी में किलटे के नीचे मोहरा मिला, जिसे हुरंग नारायण के रूप में स्थापित किया गया।

हुरंग गाँव में पशुशाला गाँव से दूर रखी गई है। मान्यता है कि देवता पशुओं को करीब नहीं मानता। जब देवता की सवारी निकलती है, तो पशुओं को देवता की नजर से बचाकर रखा जाता है, अन्यथा पशुओं का अनिष्ट होता है। कहा जाता है कि मथुरा-वृंदावन में जब देवसभा हो रही थी तो वह बहुत देर तक चली। फलतः देवस्थान के पशुओं को चराने की समस्या आ खड़ी हुई। अंततः निश्चय किया गया कि जो देवता सबसे छोटा हो, वह पशु चराए। उस सभा में हुरंग नारायण सबसे छोटा था। अतः उसे ही पशु चराने में लगाया गया। हुरंग नारायण पशु चराने चला गया और उधर सभा में उपस्थित देवताओं ने संपत्ति का बँटवारा कर लिया। हुरंग नारायण को वे भूल गए। सभापति राजा कंस ने बाद में सभी देवताओं को समझा दिया कि वे इसका कोई न कोई उपाय ढूँढ़ लेंगे और सभा समाप्त कर दी। राजा कंस ने लोहे के ओले गिरवाकर भारी वर्षा करवाई। हुरंग नारायण एक बड़ी गुफा में अपने पशुओं को लेकर छिप गया। उसने बाहर एक गीदड़ के रंग की गाय छोड़ी और कहा कि कंस के महल के बाहर पहुँच दो खुर अंदर और दो खुर बाहर रखकर प्राण छोड़ देना। गाय ने वहाँ अपने प्राण छोड़ दिए। राजा कंस को विश्वास हो गया कि हुरंग नारायण

पशुओं सहित मर गया है। उसने ओलावृष्टि रोक दी। हुरंग नारायण अब पशुओं सहित कंस के महल में जा पहुँचा और अपनी संपत्ति का भाग माँगा। कंस के पास अब बाँटने को कुछ न था। अतः उसने आग से सुलगता उपला और पानी का लोटा उसे दे दिया।

अतः हुरंग नारायण को अग्नि और जल का देवता माना जाने लगा और इसी कारण उनसे पशु छिपाकर रखे जाने लगे।

कहा जाता है कि मंडी नरेश साहिब सेन (1534-1554) के कोई संतान नहीं हुई तो वे अपनी रानी प्रकाश देई सहित हुरंग नारायण के पास गए। हुरंग नारायण की कृपा से रानी को पुत्र-प्राप्ति हुई। राजा ने अपने पुत्र का नाम नारायण सेन रखा और मंदिर का निर्माण करवाया। रानी ने देवता को चाँदी का मोहरा भेंट किया।

हुरंग नारायण मंडी के अतिरिक्त कुल्लू के महाराजा तथा तारापुर में भी पूजे जाते हैं। हुरंग नारायण कुल्लू से नमक लाने गए। एक व्यक्ति के किलटे में बैठ जोंगा (कुल्लू) में जा पहुँचे। जोंगा के हुरंग नारायण कुल्लू दशहरे में जाते हैं। हुरंग नारायण का मंदिर दराल (कुल्लू) में भी है। ये भी कुल्लू दशहरे में जाते हैं।

नारायण बैऊड़ जंजैहली

कुल्लू, कुल्लू तथा मंडी के सराज क्षेत्र, करसोग आदि में मंदिरों में देव व्यवस्था एक-सी है। देवता को शासक माना जाता है। प्रत्येक देवता का अपना 'शाषण' या 'हारगी' होती है। अपनी हारगी में देवता सर्वशक्तिमान है। देवता के उत्सव में हारगी के लोगों को अवश्य उपस्थित होना पड़ता है। हारगी से ही देवता अपना हिस्सा वसूलता है।

देवनारायण जंजैहली और बशलीगाड़ हारों का शासक है। देवता का मंदिर बैऊड़ में है। यहाँ देवता की पाषाण प्रतिमा है तथा कुछ युद्ध उपकरण रखे हुए हैं। देवता की कोठी चख में है। इस तिमंजिली कोठी या भंडार में देवता का रथ रखा रहता है। कोठी अर्थात् भंडार में देवता का सारा सामान रखा जाता है।

देवता का गूर ब्राह्मण या राजपूत होता है। जिसमें स्वेच्छा से देवता प्रवेश कर जाए, वह गूर बन जाता है। गूर के अतिरिक्त महता, कटवाल, तहसीलदार, लंबरदार, पुजारी, बाजगी देवता के कर्मचारी हैं।

इन कर्मचारियों से अनुमान लगता है कि यह देवता कभी इस क्षेत्र का शासक रहा है। पूरे क्षेत्र का कार्य जिन कर्मचारियों को सौंपा गया है, वह पूरी व्यवस्था के प्रतीक हैं। 'महता' आदि कर्मचारी करसोग और उस पर निरमंड की व्यवस्था का स्मरण दिलाते हैं।

गूर में जब देवता प्रवेश करता है तो देवता के आयुधों से अपने को पीटता है। आवेश में आकर वह बाल खोले हिलता है। मेले-उत्सवों के समय गूर देवता की गाथा सुनाता है। कुल्लू की ओर इसे भारथा कहते हैं तो इस ओर 'लहर'। यहाँ भी गूर देवता की पूरी यात्रा, उसके राक्षसों, दैत्यों से युद्ध की चर्चा करता है। 'लहर' के बाद लोग प्रश्न पूछते हैं। अच्छी फसल, वर्ण, बीमारी आदि के विषय में जानकारी ली जाती है।

देवता के शासन के क्षेत्रों—जंजैहली तथा बशलीगाड़ में वर्ष में एक-एक मेला होता

है। देवता को मेले के लिए कपड़े, आभूषण पहनाकर तैयार किया जाता है। बाजे वाले देवता को प्रसन्न करने के लिए 'बेल' बजाते हैं। देवता को तैयार कर सबसे पहले इसकी 'जेठी' जगह धार गाँव में ले जाया जाता है, जहाँ देवता का जन्म हुआ माना जाता है। यहाँ पर देवीं कसैणी भी आती है जो देवता की पत्नी है। कुछ अन्य देवता जैसे घड़लू, गरीजनू भी इस अवसर पर उपस्थित होते हैं। अगले दिन बैहड़ में देव मंदिर के पास मेला लगता है। यह मेला श्रावण संक्रांति तथा दो संक्रांति को मनाया जाता है।

देवता का जन्मदिन भी धूमधाम से मनाया जाता है। इस उत्सव को 'हूम' कहते हैं। इस दिन देवता के शासन के लोग सायं मंदिर में इकट्ठा हो जाते हैं। बीच में आग जलाकर देवता के गूर एक पंक्ति में बैठ जाते हैं और खेलते हैं। गूर आवेश में मंदिर की परिक्रमा करते हैं। परिक्रमा के समय और मंदिर की छत पर बलि दी जाती है।

कुल्लू की भाँति यहाँ भी देवता सर्दियों में कहीं युद्ध के लिए जाते हैं। फागुन संक्रांति को देवता के लौटने पर हवन होता है और चार बलियाँ दी जाती हैं। इस अवसर पर 'मघीरी' नाम का पात्र खोला जाता है। मघीरी में देवता का लिंग रखा जाता है, जिसे केवल इसी दिन खोला जाता है। फिर मघीरी वर्ष-भर के लिए बंद रहती है। देवता का एक हरिजन गूर भी है जिसे बलि पशु का सिर दिया जाता है।

यह मंदिर मंडी करसोग मार्ग पर मंडी से 95 किलोमीटर और करसोग से 45 किलोमीटर, जंजैहली से डेढ़ किलोमीटर छतरी मार्ग पर स्थित है।

विष्णु देव

मूल स्थान तथा मंदिर चौहट, बागा चनोगी (थुनाग) में है। स्थानीय शैली में निर्मित तिमंजिला काष्ठ मंदिर है। भंडार भी गाँव में ही है।

चार मोहरे हैं जो चौकोर रथ के चारों ओर सजाए जाते हैं। देवता को विष्णु रूप माना जाता है।

रियासत के समय से देवता शिवरात्रि में आता है। चार श्रावण, प्रथम कार्तिक को मेले लगते हैं। पाँच पंचायतों में लगभग पंद्रह मेले मनाए जाते हैं। बलि देवता के साथ देवी मड़भाखन को दी जाती है।

गूर टेकु, कारदार बुधेराम, पुजारी खेमसिंह है। नौ बजंतरी हैं।

घड़ौनी नारायण

घड़ौनी नारायण का मूल स्थान हुरंग है, जहाँ हुरंग नारायण का मंदिर है। देवता का मंदिर घड़ौल (कटौला) में है। स्थानीय शैली में निर्मित मंदिर तिमंजिला है और सलेट से छाया हुआ है। भंडार मंदिर के नीचे स्थित है।

देवता का रथ चौकोर है जिसके शीर्ष भाग में गोल पगड़ी है, जिसके नीचे चार मोहरे चारों ओर लगाए जाते हैं। चार मोहरों में से दो अष्टधातु तथा दो चाँदी के हैं।

देवता की गाथा में इसे हुरंग नारायण का छोटा भाई माना गया है।

त्योहार-उत्सव

देवता शिवरात्रि के आरंभ से इसमें भाग लेता है। देवता के यहाँ दो ज्येष्ठ को कापू, पाँच से सात आषाढ़ को नाहोली, चार से पाँच श्रावण को षाढ़नू कटौला, शौईरी, बिरशु तथा मार्गशीर्ष पूर्णिमा को पुन्नू व अन्य त्योहार मनाए जाते हैं। हुरंग में पाँच साल बाद काहिका भी मनाया जाता है।

इसे फसल तथा वर्षा का देवता माना जाता है। मनौती पूरी होने पर बलि दी जाती है। हर पाँचवें वर्ष नौ बकरों व मेढ़ों की बलि दी जाती है। तीन बलियाँ प्रत्येक वर्ष चैत्र, भाद्रपद तथा आश्विन के प्रथम प्रविष्टे को दी जाती हैं।

देवता का गूर ठाकरू तथा धूड्डू, पुजारी जेठू तथा कारदार शेरसिंह है। कठियाल भाजूराम, कायथ सागर सिंह तथा दो व्यक्ति डूमच हैं।

लक्ष्मीनारायण

किंवदंती है कि परखोल मंजाव गाँव के पास जंगल में देवता की एक पत्थर की मूर्ति मिली, जिसे बाद में स्थापित कर मंदिर निर्माण किया गया। देवता का स्थानीय शैली में निर्मित एकमंजिला मंदिर परखोल पंजाब गाँव में है। गाँव में ही चारमंजिला भंडार है।

देवता का चौकोर रथ है जिसके ऊपर झालरयुक्त रेशमी वस्त्र लगा रहता है। शिखर पर चाँदी का छत्र है। रथ को उठाने के लिए दो अर्गलाओं का प्रयोग किया जाता है। आठ मोहरे हैं, जिनमें एक अष्टधातु तथा सात स्वर्ण के हैं। दो-दो मोहरं रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं। अग्रभाग में मोहरों के नीचे लक्ष्मीनारायण तथा विष्णु की दो प्रतिमाएँ लगाई जाती हैं।

शिवरात्रि के आरंभ से देवता को मेले में लाया जाता है। वर्ष के सभी त्योहारों के आयोजन के साथ प्रथम आषाढ़ को खनेटी नाहौली तथा बाईस असौज को खूहण मेला लगता है।

यह वर्षा का देवता है। संतानदाता भी है। बकरे की बलि स्वीकार करता है।

गूर जीवानंद, कारदार ढोहन सिंह, पुजारी प्रेम सिंह, हिम सिंह तथा मुनीलाल हैं। कठियाला दामोदर दास तथा बारह बजंतरी हैं।

श्रीकृष्ण ग्वाला देव

श्रीकृष्ण ग्वाला देव का मंदिर नागचला (बल्ह) में है। मंदिर का आकार 4'-4' है। भंडार गूर के घर में है।

देवता का रथ चौकोर है, जिसके ऊपर पीतल का छत्र है। रथ के चारों ओर घुंडियाँ लगी हैं। पीतल के पाँच मोहरे हैं जो रथ के चारों ओर स्थापित हैं।

देवता सन् 1995 से शिवरात्रि में भाग लेता है। अभी कोई मेला या त्योहार नहीं मनाया जाता। देवता संभवतः नया है।

गूर तथा पुजारी कमला है। चार बजंतरी हैं।

ममलेश्वर महादेव

मंडी के करसोग उपमंडल में करसोग बाजार के पास ममेल गाँव है। गाँव के अंतिम छोर पर ममलेश्वर महादेव का मंदिर स्थित है। गौरीशंकर मंदिर के इस विशाल परिसर में इस समय दो काष्ठ मंदिर हैं। दोनों मंदिर पैगोडा शैली और स्थानीय काष्ठ वास्तुकला के अद्वितीय उदाहरण हैं। पहला मंदिर, जो मुख्य द्वार के सामने है, शिव-पार्वती का मंदिर है, जिसमें पूजा-अर्चना होती है। मंदिर में गौरीशंकर की कमलासन पर विराजमान मूर्ति है। द्वार के एक ओर विष्णु तथा शिव की पाषाण प्रतिमाएँ पड़ी हैं, जो संभवतः किसी दूसरे मंदिर के अवशेष हैं। यहीं परिक्रमा पथ में भी कुछ पाषाण प्रतिमाएँ रखी हुई हैं। मंदिर के ऊपर की ओर जमीन समतल करते समय भद्रमुख, मंदिर के स्तंभ, घड़े हुए पत्थर मिले हैं। एक शिवलिंग भी खुदाई में मिला है। इन पाषाण प्रतिमाओं, भद्रमुख आदि से स्पष्ट है कि यहाँ शिखर शैली का पाषाण मंदिर भी कभी विद्यमान था।

जैसा कि कुल्लू के अधिकांश मंदिरों में है, यहाँ भी भेखल की लकड़ी का बना दो फुट लंबा ढोल है। भेखल एक झाड़ी होती है जिसकी लकड़ी का इतना बड़ा ढोल बना पाना संभव नहीं है। तथापि किंवदंती है कि भेखल का एक बड़ा पेड़ था, जिससे ऐसे पाँच ढोल बनाए गए। इन पाँचों ढोलों को परशुराम के पाँच स्थानों—ममेल, काओ, निरमंड, नीरथ और दत्तनगर में रखा गया। ममेल परशुराम के पाँच स्थानों में से एक है। यद्यपि यहाँ परशुराम का कोई मंदिर नहीं है। केवल निरमंड की भाँति भुंडा मनाने की परंपरा यहाँ रही है।

गौरीशंकर मंदिर के साथ ऊपर की ओर देवता का भंडार है। यह भंडार काष्ठवास्तु का अच्छा उदाहरण है। मंदिर की ऊपरी मंजिल में भुंडे का मोटा रस्सा आज भी लटका हुआ है। भुंडा यहाँ कब हुआ होगा, यह किसी को ज्ञात नहीं है। परशुराम मंदिर निरमंड की भाँति यहाँ भी बड़े आकार का एक गेहूँ का दाना विद्यमान बताया जाता है।

इस समय मंदिर में कोई पैतृक पुजारी नहीं है। प्रबंध व्यवस्था के लिए तहसीलदार करसोग की अध्यक्षता में एक समिति बनी हुई है। मंदिर की इस समय कोई भूमि नहीं है। चढ़ावा नाममात्र है। मंदिर की व्यवस्था समिति द्वारा मंदिर के पाँच वजीरों की राय से की जाती है। शिवरात्रि तथा नवरात्रों में यहाँ उत्सव मनाए जाते हैं। वैशाख में लाहुल मेला तथा आश्विन में दशहरा भी मनाया जाता है।

ममलेश्वर महादेव का उल्लेख द्वादश ज्योतिर्लिंगों में भी आता है।

महायान पूजा और विमल मुनि

ममेल गाँव के एक व्यक्ति ज्वालाप्रसाद के पास एक हस्तलिखित पांडुलिपि है। संस्कृत में लिखी यह पांडुलिपि कुछ पुरातन कथाओं का रहस्योद्घाटन करती है।

पांडुलिपि में इस मंदिर में मनाए जाने वाले एक उत्सव या अनुष्ठान का वर्णन है। इसे 'महायान पूजा विधान' कहा गया है। विमल मुनि द्वारा रचित इस विधान में पूरी पूजा

पद्धति दी गई है। महायान पूजा विश्व कल्याण तथा जनपद शांति के लिए की जाती थी। सर्वदुःख तथा भयविनाशक यह पूजा आदिशक्ति को समर्पित है। यह पूजा ममलेश्वर महाकाल के स्थान पर की जाती थी। पांडुलिपि में इस पूजा के विधि-विधान का विस्तार से उल्लेख किया गया है। यह पांडुलिपि देववाणी में लिखी मूल ग्रंथ की टीका है।

इस पूजा में भैंसा, मेढ़ा, बकरी, मुर्गा आदि की बलि का निषेध है। नारियल की बलि का विधान रखा गया है।

संभवतः यह विधान भैंसा आदि की बलि के विरुद्ध कोई पूजा पद्धति है। कामाक्षा देवी में कई भैंसों को आज भी बलि दिया जाता है। यह अहिंसक विधान महायान बौद्ध धर्म से संबंधित भी हो सकता है।

भृगु ऋषि और किन्नरी बाला ममलेषा

इसी पांडुलिपि में भृगु ऋषि और किन्नरी बाबा ममलेषा की कथा भी है। महर्षि भृगु यहाँ तपस्या में लीन थे। उनकी सेवा-सुश्रूषा एक किन्नरी बाला ममलेषा करती थी। यह कन्या शील गुण से संपन्न थी। इसी के नाम से यहाँ ममलेषा ताल भी बना। एक बार भृगु ऋषि किन्नरी बाला पर मोहित हो गए। ऋषि के संसर्ग से ममलेषा को गर्भ रह गया। गर्भ का समय पूरा होने पर बालक उत्पन्न हुआ जिसका नाम विमल रखा गया। विमल मुनि परादार्शनिक हुए। कुछ समय बाद इसी कन्या से भृगु ऋषि का पुनः संसर्ग हुआ। ऋषि अपनी तपस्या में विघ्न जान वह स्थान छोड़ कहीं चले गए। ममलेषा को ऋषि के चले जाने पर एक दूसरा बालक जन्मा। ऋषि के चले जाने पर इस बालक को अवैध संतान कहा गया। विमल मुनि तो कुलीन होकर स्थापित हुए, इस बालक ने अवैध संतान होने से एक म्लेच्छ कन्या से विवाह किया। इनकी संतान 'बेडा' कहलाई। बेडा जाति का प्रयोग भुंडा में नरबलि के लिए किया जाने लगा।

यह भी लोकास्था है कि राम-रावण युद्ध के समय परशुराम यहाँ तप कर रहे थे। रावण के राम द्वारा धराशायी होने पर रावण के प्राण ब्रह्मरंध्र में अटक गए। रावण को बहुत कष्ट हुआ तो पंडितों ने बताया कि परशुराम पर्वत कंदराओं में शिव आराधना कर रहे हैं। शिव चाहते हैं कि रावण यहाँ शिव की स्थापना करे, तभी वह आराम से मर सकेगा। रावण ने योग माया से यहाँ शिव की मूर्ति स्थापित की। मूर्ति स्थापित होने पर परशुराम तपस्या से जागे और उन्होंने इसकी प्रतिष्ठा की, तब रावण प्राण त्याग पाया।

पुरातात्त्विक महत्त्व

नीचे से आयताकार मंदिर के एक खंड में प्रदक्षिणा पथ है तो ऊपर दूसरे खंड में पैगोडा शैली की आकृति। पैगोडा की दोनों छतों में लकड़ी के तख्ते हैं। निचली मंजिल में स्लेट है।

ममेल का वर्तमान मंदिर दो सौ वर्ष से अधिक पुराना हो सकता है किंतु इनकी मूर्तियाँ तथा शिखर शैली के मंदिर के अवशेष बताते हैं कि यहाँ कभी शिखर शैली का भव्य

मंदिर रहा होगा। सुंदरनगर राज्य की राजधानी पाँगणा रही है, जो यहाँ से समीप है। पाँगणा से राजधानी राजा मदनसेन के समय (1240) लुहारा बदली गई। अतः पुराने मंदिर मदनसेन के समय से पहले के हो सकते हैं। ममेल में विष्णु और लक्ष्मी की भव्य प्रतिमाएँ हैं। इन मूर्तियों में उत्कीर्ण पूरी डिटेल के साथ हुआ है। इस समय ये मूर्तियाँ पूजी नहीं जातीं बल्कि मंदिर से बाहर हैं। वर्तमान में पूजित गौरीशंकर की धातु प्रतिमा में एक अभिलेख है। इस अभिलेख को पढ़ने पर कुछ तथ्य सामने आ सकते हैं।

मंदिर में विष्णु-लक्ष्मी तथा शिव-पार्वती की पाषाण प्रतिमाएँ परवर्ती प्रतिहार समय की आँकी गई हैं। मूर्तियों में गढ़वाल तथा परमार शैली का स्पष्ट प्रभाव है, जिनमें साज-सज्जा का विशेष ध्यान रखा गया है। साज-सज्जा भी बहुत बारीकी से हुई है।

महादेव (बनौली)

कहा जाता है देवता की मूर्ति गौड़ बंगाल में नदी में बहती हुई किसी व्यक्ति को मिली जो इसे यहाँ ले आया।

मूल स्थान तथा मंदिर बनौल, घराण (बदार) में है। भंडार चारमंजिला है जो गाँव में ही है।

रथ चौकोर है, जिसके ऊपर चाँदी का छत्र सुशोभित है। चार कोनों में चार घुंडियाँ लगी हैं। रथ को उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। आठ मोहरे हैं जिनमें से एक अष्टधातु का है, शेष चाँदी के हैं। ये रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं।

शिवरात्रि में मेले के आरंभ से आगमन होता है। दो जेठ को बकोर, एक आषाढ़ को नाहोली तथा मार्गशीर्ष में माल मेला लगता है। वर्ष के सभी त्योहार मनाए जाते हैं। बकरे या मेढ़े की बलि दी जाती है।

गूर नागणुराम, कारदार रोडरमल तथा पुजारी चंद्रमणि शर्मा हैं। चौदह बजंतरी हैं।

ब्रह्मदेव तुंगासी

ब्रह्मदेव तुंगासी का मंदिर गाँव निहटी (थुनाग) में है। देवता की कुथाह में 00.16 बिसवे (खसरा नं० 1076) तथा 14-1-16 बिस्वे (खसरा नं० 1557/1072) भूमि है।

देवता का मेला 22 से 30 मई तक मनाया जाता है जिसे हाल में सरकार द्वारा जिला स्तरीय मेला घोषित किया गया है। जिला स्तरीय घोषित होने परंपरागत मेला समिति ने सरकारी समिति द्वारा मेला आयोजित न किए जाने के लिए माननीय उच्च न्यायालय में याचिका दायर कर दी है।

देवता परंपरा से शिवरात्रि मेले में भाग लेने जाता है।

नगल वाणी देव

भूमि में दबा शिवलिंग प्राप्त होने से मंदिर-निर्माण हुआ। मूल स्थान गाड़ा गाँव माना जाता है, मंदिर कुठेहड़, थाना शिवा (थुनाग) में है। भंडार गाड़ा ग्राम में है।

देवता का रथ चौकोर है जिसके शीर्ष भाग में गुंबद लगा हुआ है। सोने की पट्टी वाला चाँदी का छत्र ऊपर सुशोभित रहता है। रथ दो अर्गलाओं द्वारा उठाया जाता है। आठ मोहरे हैं, जिनमें से एक अष्टधातु, दो पीतल के तथा पाँच सोने के हैं। रथ के चारों कोनों पर पीतल की घुंडियाँ लगी हैं।

शिवरात्रि के आरंभ से देवता मेले में आता है। शिवरात्रि, सायरी, श्रावण पूर्णिमा, बारह वैशाख तथा भाद्रपद के त्योहार मनाए जाते हैं।

गूर पुरुषोत्तम राम, कारदार नोक सिंह, पुजारी डोलेराम, भंडारी आलमचंद तथा कायथ लालचंद्र है।

श्री शंभुनाथ महादेव मंदिर, सुंदरनगर

श्री शंभुनाथ महादेव, सुंदरनगर का मंदिर धनोटु के पास स्थित है। शिखर शैली का बना यह एक पुराना मंदिर है जिसकी प्रबंध-व्यवस्था मंदिर सेवा समिति द्वारा की जाती है। पूजा आदि दो परिवार छह-छह महीने की बारी से करते हैं। ये लोग रावल ब्राह्मण कहलाते हैं। मंदिर में चढ़ावा नाममात्र का है और निर्माण-कार्य के लिए समिति लोगों से धन एकत्रित करती है। मंदिर के पुजारियों के पास लगभग साढ़े पाँच बीघे भूमि है। शिवरात्रि तथा श्रावण मास में भंडारा दिया जाता है और जेठ के 25 प्रविष्टे को यहाँ एक मेला लगता है। साधु-संतों के लिए रहने और भोजन की व्यवस्था है।

ऋषि परंपरा

पराशर ऋषि

पराशर ऋषि का मंदिर मंडी-बागी सड़क पर नौ हजार फुट की ऊँचाई पर स्थित है। अब जीप योग्य सड़क मंदिर तक जाती है, अन्यथा बागी से आगे पैदल चढ़ाई थी। दूसरा पैदल मार्ग पंडोह झील से सनोरबदार होकर है और तीसरा हणोगी माता से बान्हदी होकर।

देवता का मंदिर पराशर में झील के साथ है, जबकि भंडार बान्हदी गाँव में। भंडार में देवता के रथ के मोहरे रखे होते हैं। चाँदी के तीन घोड़े भी भंडार में हैं।

पराशर ऋषि को 'देऊ पड़ासर' भी कहते हैं। पराशर ऋषि पौराणिक आख्यान के अनुसार क्षमाशील वशिष्ठ के पौत्र और शक्ति मुनि के पुत्र थे। महाभारत में प्रसंग है, "उस बालक ने गर्भ में आकर परासु अर्थात् मरने की इच्छा वाले वशिष्ठ जी को पुनः जीवित रहने के लिए प्रोत्साहित किया था, इसीलिए वे लोक में पराशर के नाम से विख्यात हुए।"

मंदिर तथा झील

नौ हजार फुट की ऊँचाई पर मनोहारी झील के किनारे पराशर ऋषि का मंदिर है। हिडिंबा मंदिर मनाली, त्रिगुणी नारायण दयार, पराशर ऋषि कमांद-कुल्लू की भाँति पैगोडा शैली का यह मंदिर वास्तुकला तथा काष्ठकला के लिए प्रसिद्ध है। मंदिर का आकार-प्रकार आदि ब्रह्मा खोखण (कुल्लू) से भी मिलता-जुलता है।

मंदिर में नाग, पक्षी, घट, पत्रों के साथ देवी-देवता उकेरे गए हैं। इन कलाकृतियों में उत्कृष्ट कला के दर्शन होते हैं। ये कला उतनी ही उत्कृष्ट है जितनी कि हिडिंबा मंदिर मनाली में। मंदिर का द्वार बहुत ही अलंकृत हुआ है जो कला का अद्वितीय उदाहरण है। लगभग सोलह इंच के एक पैनल में चतुर्भुजी देवी की प्रतिमा उकेरी गई है जिसके गले में वैजयंती माला की तरह एक माला है। वह मकर पर आसीन है। संभवतः यह गंगा की प्रतिमा है। यह प्रतिमा द्वार पर न होकर दीवार के बाहर की ओर है।

पैगोडा की छतें सलेटों से छाई हुई हैं। मंदिर के भीतर ऋषि की 'पिंडी' के अतिरिक्त ऋषि की भव्य प्रतिमा और विष्णु, शिव व महिषासुरमर्दिनी की पाषाण प्रतिमाएँ हैं।

मंदिर के साथ आकर्षक झील है जिसमें रिवालसर की भाँति भूखंड तैरते हैं। वस्तुतः इसमें एक अर्द्धचंद्राकार भूखंड है। जो पहले इधर-उधर तैरता था, अब कुछ वर्षों से एक स्थान पर स्थिर है।

मेले-उत्सव

ऋषि के जन्मदिन पर भादों के शुक्ल पक्ष की पंचमी को एक मेला लगता है। आषाढ़ संक्रांति को सरानाहुली मेला लगता है। इस मेले में सनोर, बदार, उत्तरसाल, सिराज से देवता भाग लेने आते हैं।

देव पराशर

पराशर का मंदिर तूँग, नरुलोह (टेढ़धार) में है। भंडार मंदिर में ही है। यह मंदिर भी पैगोडा शैली का है और दोमंजिला है।

देवता का रथ नहीं है। केवल एक मोहरा है, जो भंडार में रहता है। सन् 1986 से देवता शिवरात्रि में भाग लेने आता है। साढ़नू, पाल तथा दीवाली मनाई जाती है। बकरे तथा मेढ़े की बलि दी जाती है।

गूर डागणू, कारदार देवी सिंह तथा पुजारी चेतराम है। पचास परिवारों में एक-एक बजंतरी आता है।

मार्कंडेय (एक)

किंवदंती है कि झमास गाँव में किसी व्यक्ति को एक पिंडी मिली। बाद में पिंडी को लुझाकी गाँव में स्थापित किया गया। स्थानीय शैली में निर्मित देवता का मंदिर तथा भंडार

लुझाकी गाँव में ही है।

लंबे आकार का रथ है जिसके शीर्ष पर झालरयुक्त वस्त्र शोभायमान रहता है तथा छत्र लगा है। आठ मोहरे हैं जिनमें एक अष्टधातु, एक चाँदी तथा छह सोने के हैं। ये रथ में चारों ओर से दो-दो लगाए जाते हैं।

शिवरात्रि के आरंभ से देवता को मेले में लाया जाता है। श्रावणी पूर्णिमा, सायरी के साथ वर्ष-भर के त्योहार मनाए जाते हैं।

यह वर्षा का देवता माना जाता है। आधि-व्याधि दूर करता है। देवता बलि स्वीकार नहीं करता। सोना-चाँदी, दूध-घी, वस्त्राभूषण चढ़ाए जाते हैं।

गूर उत्तमराव, पुजारी तथा कारदार गुमान सिंह है। भंडारी गेबराम, कठियाला लेदराम, कायथ उत्तमराम है। बारह बजंतरी हैं।

मार्कंडेय (दो)

देवता के उद्भव संबंधी गाय का दूध नाग द्वारा पीने की प्रचलित कथा है। गाय की मालकिन ने एक बार नाग को पकड़ लिया तो वह ग्वाला बन गया और उस महिला को धन-धान्य से परिपूर्ण होने का आशीर्वाद दिया। वह महिला जल्दी ही समृद्ध हो गई। लोगों को जब इस घटना का पता चला तो मार्कंडेय का मंदिर बनाया गया।

चौकोर रथ है जिसके ऊपर सोने का छत्र लगा है। चारों कोनों पर चार सोने की घुंडियाँ हैं। सात मोहरे हैं जिनमें एक अष्टधातु तथा शेष सोने के हैं।

शिवरात्रि में देवता आरंभ से आता है। भाद्रपद या आश्विन में ऋषि पंचमी मनाई जाती है। पहले देवता को बकरे की बलि दी जाती थी जो अब बंद है।

मंदिर थलौट में है। चारमंजिला भंडार भी थलौट में है। गूर झाबेराम, कारदार बुद्धेराम, पुजारी हरिराम है। कठियाला देवीशरण, कायथ लुदरमणि है।

ढकाहंड

ढकाहंड देव को शुकदेव माना जाता है। जनश्रुति है कि सुंदरनगर में तपस्या के बाद शुकदेव बड़ूंघी में आए। यहाँ जिस स्थान पर उन्होंने तपस्या की वहाँ एक घास पैदा हुई। जब एक गाय उस घास के ऊपर खड़ी होती तो उसके थनों से स्वतः दूध गिरने लगता। जब मालकिन को इस बात का पता चला तो उसने वहाँ दराती से खुदाई की, जिससे ताँबे की एक मूर्ति निकल आई।

देवता का मंदिर शाहारटी (हणोगी) में है जो स्थानीय शैली में निर्मित है। भंडार हणोगी से एक किलोमीटर दूर शार्टी में है।

देवता का चौकोर रथ है जिसके ऊपर छत्र लगा रहता है। रथ के चारों कोनों पर चाँदी की फुल्लियाँ लगी हुई हैं। मोहरों की संख्या आठ है जो रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं। एक मोहरा अष्टधातु का तथा शेष सात सोने के हैं।

त्योहार-उत्सव

देवता रियासती समय से शिवरात्रि में आता है, जहाँ उसका नाम ढकाहंड देव दर्ज है। जन्माष्टमी, नाग पंचमी, शायरी, बूढ़ी दिवाली, बोहड़ी, शिवरात्रि तथा माल के त्योहार व मेले मनाए जाते हैं।

देवता वर्षा करने वाला, संतानदाता और आदि-व्याधि हरने वाला है।

देवता के तीन गूर मदन, लदेराम, डोलेराम हैं। कारदार इंद्र तथा पुजारी मदन है। कटवाल रामरतन के अतिरिक्त तीस बजंतरी हैं।

जमलू

मूल स्थान मलाणा से आज्ञा लेकर नीरू गाँव में मूर्ति स्थापना की गई। देवता का मंदिर स्थानीय शैली में निर्मित गाँव नीरू, थाची (बाली चौकी) में स्थित है।

देवता का रथ नहीं है। अष्टधातु के बने दो मोहरे हैं।

देवता को शिवरात्रि में ले जाया जाता है। वर्ष-भर में सभी त्योहारों के अतिरिक्त तीन ज्येष्ठ को झाखड़ु मेला मनाया जाता है।

देवता पशु समस्या का समाधान करता है। भूत बाधा से मुक्ति दिलाता है। बलि प्रथा नहीं है, मात्र हलवा चढ़ाया जाता है।

गूर टोडरमल, कारदार धर्मचंद, पुजारी ठाकर तथा कठियाला धर्मचंद है।

जमलू

मूल स्थान जमलू से देवता को लाया गया। लकड़ी-स्लेट से स्थानीय शैली में एक मंजिला मंदिर नारायणगढ़ खुहण (बाली चौकी) में स्थित है। भंडार पंजाब कोठी में है।

देवता का रथ नहीं है। अष्टधातु के घोड़े तथा चिमटे हैं, जिन्हें भंडार में रखा जाता है। देवता का प्रतीक चाँदी की छड़ी है।

देवता को शिवरात्रि में ले जाया जाता है। श्रावण में मुहूर्त के अनुसार मेला आयोजित होता है तथा वर्ष के सभी त्योहार मनाए जाते हैं।

जमलू वर्षा का देवता माना जाता है। भूत बाधा भी हरता है। देवता को मिष्टान्न ही प्रसाद चढ़ता है। बलि नहीं दी जाती।

गूर ठाकरु, कारदार सोहनसिंह तथा जीवनानंद, पुजारी ठाकरु है। दस बजंतरी हैं।

थनाली देव

थनाली गाँव में देव थनाली का मूल मंदिर है। इस देवता का प्रभाव आसपास के कई गाँवों में है। अन्य देवताओं की भाँति यहाँ भी देवता ग्रामीणों की हर समस्या का हल करता है। लगभग नौ हजार फुट की ऊँचाई पर यहाँ दो मंदिर हैं। देव थमाली का पाँचमंजिला काष्ठ मंदिर है। मंदिर में अच्छी काष्ठकला हुई है। देवता पाँचवीं मंजिल में विराजमान है।

दूसरा पाँचमंजिला मंदिर भी काष्ठकला का अच्छा उदाहरण है। यहाँ शिवलिंग, बाहर नंदी तथा कुछ पाषाण प्रतिमाएँ हैं।

थनाली देव को एक पिढ़ू में रखा गया है, जिसमें काष्ठकला के उत्कृष्ट उत्कीर्ण हुए हैं। इस पर मढ़ी चाँदी में भी आकर्षक नक्काशी हुई है। मंदिर के स्तंभों पर देवी-देवताओं की मूर्तियों के साथ बेल-बूटे उकेरे गए हैं।

देवता की व्यवस्था के लिए एक समिति गठित है। समिति में 'मौहता' पैतृक होता है और 'कठियाला' तथा 'रसोइया' का चुनाव देवता स्वयं करता है। इस प्रकार तीन मौहते, एक कठियाला, एक रसोइया नियुक्त होते हैं। ग्रामीण पाँच कारदार चुनते हैं। पुजारी का पद पैतृक है। 'गूर' देवता द्वारा निश्चित किया जाता है। जिस व्यक्ति में देवता आ जाए, वह गूर बन जाता है।

मंदिर की पाँच बीघा भूमि है। सोने-चाँदी की मात्रा भी पर्याप्त है।

देवता को स्थानीय या ग्राम देवता के रूप में पूजा जाता है। किसी भी अन्य देवता के पूजन से पहले थनाली देओ की पूजा आवश्यक है। देवता की पूजा संक्रांति को की जाती है। सायंकाल पूजा नहीं होती। मंदिर रात्रि को नहीं खोला जाता। देवता के जन्मदिवस के अतिरिक्त यहाँ मार्गशीर्ष की रात्रि बूढ़ी दीवाली मनाई जाती है। बूढ़ी दीवाली के अवसर पर गूर देवता के पराक्रम की व्याख्या के साथ कई तरह के टोने-टोटके, भूत-प्रेतादि का इलाज भी करते हैं।

प्रादुर्भाव कथा

कहा जाता है, थनाली गाँव में नौ यक्ष रहते थे। उनके नाम थे, अर्घा, शर्घा, मलोचा, सनोचा, बांबा, जांबा, सींगा, फलोचा और मडीना। ये सभी एक ही क्षेत्र में रहते थे, किंतु आपस में इनकी बहुत कलह रहती थी। एक परिवार दूसरे का शत्रु था। इस शत्रुता के कारण उनमें आपस में झगड़े होते रहते थे। उनका जीवन भी मांस-मदिरा खाने-पीने में बीतता था और वे एक-दूसरे का मांस भी खा जाते थे।

एक बार जांबा यक्ष की शिरल्हे नाम की सुंदर कन्या थी। अर्घा और शर्घा ने इसे मारने की योजना बनाई। दोनों यक्षों ने एक बार मदिरा पान कर शिरल्हे को बलपूर्वक उठा लिया। उससे बलात्कार कर उसका मांस भुनवाकर खा डाला। जांबा यक्ष को जब इसकी खबर लगी तो उसने अर्घे-शर्घे पर आक्रमण कर उन्हें परिवार समेत मार दिया। अब इन सब मृत यक्षों की आत्माएँ भटककर उत्पात मचाने लगीं। इन आत्माओं की शांति के लिए देवता थनाली ने यहाँ यज्ञ किया और शिव की स्थापना की।

यहाँ नौ देवताओं का वास भी माना जाता है, जिनका वर्णन ज्वालाप्रसाद चेतन (करसोग) ने इस प्रकार दिया है–

प्रथम देवता का नाम 'गुरु' है जो श्याम वर्ण, किटकिटाते दाँतों वाला, टेढ़े-मेढ़े अंगों वाला सर्वभक्षी है। यह कालखुड्डी में रहता है। अतः इसे कालखुड्डिया कहते हैं। दूसरा शिष्य 'बभूत भक्षी' है जो अंगार और भस्म खाता है। अतः इसका नाम भस्मधूड़ी भी है। तीसरा

शिष्य योगी है जो भाँग पीता है। इसका नाम दंडभंगी है। चौथा देवता मनुष्य रूप में है तथा साधारण व्यक्ति है। पाँचवाँ पीछे की ओर चलता है। वह भूत-प्रेतों को रोकता है। उसका नाम पीठपूरा है। छठा शिष्य शव से प्रेम करता है। वह श्मशान की ओर दौड़ता है और टेढ़े-मेढ़े अंगों वाला है, अतः डैढ़ी कहलाता है। सातवाँ भस्म से लिप्त हो जलकुंड में उतरता है तथा कठोर वाणी बोलता है। इसे पन्याढी कहते हैं। आठवाँ जनंचि है, जिसे दवाहली कहते हैं। नौवाँ चंचल वृत्ति का है, इसे थनाहली कहते हैं।

उक्त व्याख्या के अनुसार अंतिम शिष्य का नाम थनाहली है।

ये सभी नौ देवता या यक्ष वितरासुर नामक यक्ष राजा के सामंत थे। वितरासुर का राज्य मायापुरी (ममलेश्वर) था। जब पांडवों ने यहाँ मंदिरों का जीर्णोद्धार किया तो वितरासुर श्मशान में शव भक्षण करता था। भीम ने मंदिरों का जीर्णोद्धार करने और वितरासुर को ऐसा कर्म छोड़ देने के लिए कहा। वितरासुर नहीं माना तो दोनों में मल्लयुद्ध हुआ। बारह दिन और बारह रात्रि के युद्ध के बाद वितरासुर मारा गया। वितरासुर धराशायी तो हुआ किंतु उसके प्राण नहीं निकले। धर्मराज युधिष्ठिर के पूछने पर उसने बताया कि मैं श्मशान का स्वामी था, आपने मुझे अकारण ही मारा। अतः धर्मराज ने उसे वर दिया कि आप देवता होकर पूजे जाएँगे, आपकी स्मृति में श्मशान सदा प्रज्चलित रहेगा और आपके इस अखंड धूणे को सभी नमन करेंगे और यह महाकाल ममलेश्वर भगवान् शिव को नमन होगा।

वितरासुर में देवत्व स्थापना के साथ अन्य नौ यक्षों में भी देवत्व स्थापना की गई। उन्हें ममलेश्वर महादेव सिद्धपीठ के अन्य कार्य सौंपे।

उक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि ये यक्ष न होकर राक्षस थे, जो मनुष्य को खा जाते थे।

नौ देवताओं का वर्णन

अथ नवम् यक्षकिलितं च देवल्य नामकरणे प्रतिष्ठापित नामं अस स्वरूपारोपण लिख्यते।।

प्रथमं गुरुनाम्ना संबोध्यते तस्य निवास क्षेत्रः कालखुड्डी कथ्यते तस्य स्वरूप श्यामवर्ण किट्टित दंतः अरू वक्रांग दृश्यते अस सर्वभक्षी स्वभाव आरोपिते तस्य नामकरणं कालखुड्डिया कथ्यते।

इन 'देओं' में से प्रथम का नाम 'गुरु' लिया जाता है। उसका निवास 'काल खुड्डी' बताया जाता है। यह श्याम वर्ण तथा कटकटाते दाँत व टेढ़े-मेढ़े (वक्रांग) अंग वाला कहा गया है। उसका स्वभाव सर्व भक्षण करने का है। उसे 'काल खुड्डिया' नाम से जाना जाता है।

द्वितीय तस्य शिष्य वभूत भक्षी कथ्यते तस्य स्वरूपं प्रकंपित शरीरं च अंगार च बभूत

भक्षण अरू अग्नि कुंडे प्रवेशं मुख्यारोपण कथ्यते तस्य नामकरणं 'भस्मधूड़ीं' कथ्यते।

दूसरे शिष्य को 'बभूतभक्षी' कहते हैं, जो काँपते शरीर वाला और अंगार और भस्म को भक्षण करने वाला है। आरोपित होने पर (उभरने पर) वह सीधा अग्निकुंड में प्रवेश करता है। उसे 'भस्मधूड़ी' नाम से संबोधित किया जाता है।

तृतीय शिष्य योगी स्वरूपे च 'भंग भक्षी' आरोपिते तस्य स्वयं मृदु अरू अल्प प्रकंपन आभिहिते तस्य नामकरण 'दंड भंगी' कथ्यते।

तीसरा शिष्य योगी स्वरूप का है, जो अंग पर भस्म धारण करता है, और आरोपित (उभरने) होने पर भाँग का भक्षण करता है। उसका स्वर (वाणी) मृदु है। आरोपित गण (गूर) को बहुत कम प्रकंपन होता है। इसका नामकरण 'दंडभंगी' किया जाता है।

चतुर्थे स्वरूपं कार्यक्रम प्रबंधके च व्यवस्थास्य आरोप्यते तस्य स्वरूपं मानव स्वभावोसमः प्रवोध्यते अरू तस्य नामकरणं बंदोवस्तिया कथ्यते।

इसका चौथा रूप है, वह कार्यक्रम के प्रबंध व व्यवस्था से संबंधित है। उसका स्वरूप मनुष्य के रूप तथा स्वभाव के अनुरूप है। अर्थात् उसे आरोपित होने पर व्यक्ति 'गूर' साधारण स्वभाव का व्यक्ति ही दीखता है। अर्थात् प्रकंपन व प्रलाप का अभाव ही रहता है। इसे 'बंदोबस्तिया' नाम से संबोधित किया जाता है।

पंचम पृष्ठ गतिगामिनों अरू विलोम कार्यरते ब गते आरोप्यते तस्य कार्य दुष्ट आवेशो च भूत-प्रेत राक्षसः निरोधे आरोप्यते तस्य नामकरणं पीठपुरा कथ्यते।

पाँचवें का स्वरूप पृष्ठगति गामी होता है। अर्थात् वह पीछे की ओर चलता है। उसका कार्य भी गति के अनुसार ही होता है। उसका कार्य (कर्तव्य) दुष्ट आवेश को रोकना, भूतों-प्रेतों राक्षसों का विरोध करना है। इसका नामकरण पीठपूरा किया गया है।

षष्ठे शिष्यः श्मशान घाटे अरू शव प्रिय अरू मृत व्यवस्थेन आरोप्यते तस्य नामकरणं डैढी कथ्यते श्मशान गमनं च वक्रांग प्रतिका दृश्यते।

छठा शिष्य श्मशान घाट और शवों से प्यार करने वाला तथा मृतक व्यवस्था से संबंधित है। वह आरोपित होते ही (उभरते ही) श्मशान घाट की ओर दौड़ता है, उसके सभी अंग उस समय टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं। इसे 'डैढी' नाम से जाना जाता है।

सप्तम् शिष्यः जल एवं भस्म आच्छन्न आरोपिते तस्य स्वरूपं गतिशीलं अरू तिक्त वचनम् श्रुत्येऽतैव तस्य नामकरण पन्याढी कथ्यते।

सातवाँ शिष्य जल में प्रवेश करके भस्म द्वारा आच्छन्न (लिप्त) हो जाता है अर्थात् जलकुंड में स्नान करने के उपरांत भस्म द्वारा विलोपित हो जाता है। तीव्र गति तथा कठोर वाणी का प्रयोग (ऊँचे चिल्लाकर वार्तालाप तथा ऊँचे सुनना) जिसका स्वभाव है। इसे 'पन्याढी' कहकर जाना जाता है।

अष्टम शिष्यः जनः पंचो अरु जन रक्षकः अरू जना महे भूत वर्तमान च भविष्यत कथ्यते अरू प्रश्न्नोत्तर संबोधतः तस्य नामकरणं दवाहली कथ्यते।

इनमें से आठवें शिष्य को जनपंच और जनरक्षक कहा जाता है, क्योंकि वह सभी श्रद्धालु लोगों के बीच में भूत, वर्तमान व भविष्य का कथन करता है तथा जनपंच का कार्य

करता है। दुखी लोगों के प्रश्नों के उत्तर देता है अतः इसे 'दवाहली' नाम से जाना जाता है।

नवमायतिमं चांचल्य भावेन अरू दिग्भ्रमित बहुभाषी कथ्यते च आरोपिते तस्य नामकरणं थनाहली कथ्यते।

नवें तथा अंतिम शिष्य को इन लक्षणों से जाना जाता है—इसका स्वभाव चंचल होगा। इसकी चाल दिग्भ्रमित, तेज गति तथा चारों ओर को रुख और बहुत-सी बातें करने वाला होगा। इसे 'थनाहली' नाम से जाना जाता है।

इति यक्षारोपित देवल्य नामकरणम्।
देवल्याऽविर्भावः श्रुति मिश्रः *(भट्ट भाखा)*

धूर जट्ट की वाणी में उपद्रव कथा

शिहरले थिओ जाम्बेओ जाये।
अर्घे शर्घे नदरे आये।।1।।
वणिआ खणियाँ फिरे ती रैची।
दूईये जिएओदें काहड़े सैची।।2।।
ऐकिये रैचिये किओ जंगैड़े।
जुकिये मुकिये पाये बहैड़े।।3।।
थंकदे चणदे पैहैंदे राड़ा।
किओ न कोहिये भाड़ा सँभाड़ा।।4।।
पुरिये रैचिये खोए इच्छैड़ा।
कोहिये किओ न ऐतो ब्याड़ा।।5।।
जिहूयें जैचिये जोके बदोके।
आधड़े रैचिये जिओआ का मोखे।।6।।
पीईआ सिहिया वणोते धुता।
जाकरे फाकरे भूजे सगुता।।7।।
भूजिया रूझिया खायेआ छेके।
हाडको मुंडको दबारे वदेके।।8।।
तेतो परांते लोड़दे लागो।
लोड़िया ठोड़िया हाड समागो।।9।।
रोंदिआ सोंदिआ इज्जो हो बापो।
झांगणिआ हाम्मे बोलो ते आपो।।10।।
ढांगरो ढाशिये पड़े चगोगे।
कुढ़ी का गाड़िये शोहरिये शोगे ।।11।।

विहरले शिरल्हे लागो ती कोपे।
बणाओ ते हतया गड़ा सगोपे।।12।।
जैठ जिढ़ड़ा किओ खोटे कटुमे।
देओ थनाड़ी वसे वजुमे।।3।।

—भार भाषणी : धूर जट्ट

खोट दूर करने का मंत्र

टिमर टांके टटेहो टीर
हास्सदे लंघो हणो वीर
कंवड़ काड़जा जोगणे माये
सभिआ परशिआ ऐतको आये
पारपतिये दोहाये
शिवजिओ जट्टो न्होआये
कोतरा देओते कोतरा वीर
डिहूंन्दे आये उच्छटे टीर
फुर्रा मंतरा गुरो गभीर
कालका आये छूडो छणीर
भेजे भजाये गैस्स आओ
डंकणी शंखणी गैस्स छाओ
भूता प्रेता मटे मशाणे
तेत गैस्स चालो ध्नाड़िये थाणे
गुरुये बाचा, काड़जो साचा
धापणा छाढ़े देओये थाचा
(पाणिये हंदराणिये भेखड़े डाड़े
धुणिये धूपे मोरच्छुये झाड़े
साता फुकरे चूड़ा झनाड़े
छाओं डंकणे भूता रागसा रबाड़े
पाटड़े भोईये नकरस भनाड़े)

—तंत्र वाचा : धूर जट्ट

गहरी देव

जनश्रुति है कि बथेरी में एक साधु रहता था। वह साधु यहाँ समाधिस्थ हो गया। अतः इस स्थान पर देहरे का निर्माण कर साठ मूर्तियाँ स्थापित की गईं। यह भी मान्यता है कि यहाँ साठ परिवार थे जो एक-एक मूर्ति की पूजा करते थे।

बथेरी गाँव से बाहर देवता का एक छोटा-सा मंदिर है जिसे देहरा कहते हैं। भंडार पुजारी के घर में ही है।

देवता का रथ चौकोर है जिसके शीर्ष भाग में पगड़ी सुशोभित है। निचले भाग में मोहरे लगाए जाते हैं। मोहरों की संख्या चार है, जिनमें दो चाँदी के और दो अष्टधातु के हैं। रथ के अग्रभाग तथा बाएँ भाग में अष्टधातु तथा पृष्ठ और दाएँ भाग में चाँदी के मोहरे सुसज्जित हैं।

त्योहार-उत्सव

शिवरात्रि के आरंभ से देवता शिवरात्रि में आता है। देवता के यहाँ दो ज्येष्ठ को कापू, सात आषाढ़ को नाहौली, दो श्रावण को शाढ़नू, दशहरे के समय माल तथा शिवरात्रि उत्सव मनाया जाता है।

देवता का पुजारी बुधेराम, गूर नागेंद्र और कारदार तेजराम है। कठियाला केशवराम तथा पौढुराम, कायथ सूरतराम, डूमच लाहलुराम हैं। पलासराम चौकीदार के अतिरिक्त पाँच बजंतरी हैं। देवता के नाम बीस बीघे भूमि थी जो अब पाँच-छह बीघे ही बची है। मनौती पूरी होने पर देवता को बलि दी जाती है।

गहरी देव

गहरी देव का मंदिर दियागड़ी (कमांद) उत्तरसाल में है। स्थानीय शैली में निर्मित मंदिर 12'-12' है। देवता का भंडार भी मंदिर में ही है।

देवता का चौकोर रथ है जिसके शीर्ष भाग पर पगड़ी सुशोभित है। चार मोहरे हैं, जिनमें एक अष्टधातु तथा शेष चाँदी के हैं।

त्योहार-उत्सव

शिवरात्रि के आगमन के साथ ही दीपावली तथा बिरभु के अवसर पर मेला आयोजित किया जाता है। हर संक्रांति पर त्योहार मनाया जाता है। विरभु तथा शनोहली (श्रावण संक्रांति) पर रात्रि जागरण होता है।

देवता संतान देने वाला तथा रोगमुक्त करने वाला है। देवता को पंच बलि (बकरा, मुर्गा, केकड़ा, मछली, सूअर) भी दी जाती है।

पुजारी गोविंद, गूर पुआधु, कारदार तेजराम हैं। कायथ दास, कठियाला देवक तथा दो बजंतरी हैं। देवता की प्रातः-सायं पूजा की जाती है।

गहरी देव

जनश्रुति के अनुसार देवता का मोहरा गाँव में मिला। इसे गोरखनाथ का प्रतीक माना जाता है।

देवता का मंदिर लाँझणू, रियागड़ी (उत्तरांचल) में है। मंदिर लगभग 20'-20' है।

देवता का दो अर्गलाओं से युक्त खड़ा रथ है जो ऊपर से गुंबदाकार है। शिखर पर कलश है। कुल आठ मोहरे हैं जिनमें चार चाँदी, चार पीतल के हैं। तीन मोहरे रथ के अग्रभाग में स्थापित रहते हैं।

त्योहार-उत्सव

देवता आरंभ से शिवरात्रि में आता है। शरद पूर्णिमा को मेला लगता है। बिरशू को जाग या जागरण होता है।

देवता को विरशू की जाग पर प्रतिवर्ष या हर पाँचवें वर्ष बकरे या मेढ़े की बलि दी जाती है। महामारी फैलने पर पाँच वर्ष बाद पंचबलि (बकरा, मुर्गा, मछली, केकड़ा, भैंसा) दी जाती है। देवता आधि-व्याधि से बचाता है, कुपित होने पर हैजा जैसे रोग करता है। देवता की कोई भूमि नहीं है।

गूर हुक्मचंद, कारदार चंदराम, पुजारी डागणूराम हैं। देवता के आठ बजंतरी हैं तथा 28 देउलू हैं। देवता की पूजा धड़छ में धूप डालकर शंख, घंटी से प्रातः-सायं की जाती है।

बालाकामेश्वर (धनेसर)

बालाकामेश्वर का मूल स्थान धनेसर गढ़ है। मंदिर बन्यूरी (चच्योट) में है। देवता का दोमंजिला भंडार बन्यूरी में है। इसे कमरूनाग का सबसे बड़ा बेटा माना जाता है।

देवता का खड़ा रथ है जिसके ऊपर रेशमी गोटेदार वस्त्र लगा रहता है। ऊपर छत्र है। चारों कोनों पर चाँदी की फुल्लियाँ लगी हुई हैं। मोहरों की संख्या चार है, जिनमें एक अष्टधातु का, शेष चाँदी के हैं। ये चारों रथ के चारों ओर लगे होते हैं।

शिवरात्रि के समय से देवता शिवरात्रि में आता है। सभी स्थानीय त्योहार मनाने के साथ बागावीर मेला, नांडी मेला, देहरसेटी मेला, रड्ड मेला, पुराटण, भंगरोह मेला, आषाढ़ में राजगढ़, मार्गशीर्ष में तांदी तथा बाखली और टंटुगलु, आषाढ़ में सैंज मेले मनाए जाते हैं।

मेले में तथा मनौती पूरी होने पर बकरे की बलि दी जाती है।

गूर चंद्रमणि, कारदार ठाकर, पुजारी नरसिंह तथा कटवाल चेतराम हैं। सोलह बजंतरी हैं।

बालाकामेश्वर (बाड़ी गयाणु)

जनश्रुति है कि किसी व्यक्ति को मोहरा मिला अतः बाड़ी गुमाणु में मंदिर-निर्माण हुआ। भंडार पुजारी के घर में है। देवता कमरूनाग के सात पुत्रों में सबसे छोटा पुत्र माना जाता है।

देवता का खड़ा रथ है जिसके ऊपर चाँदी का कलश है। चारों कोनों में चाँदी की फुल्लियाँ लगी हैं। रथ उठाने के लिए दो अर्गलाओं का प्रयोग किया जाता है। मोहरे कुल आठ हैं, जिनमें से एक अष्टधातु तथा शेष चाँदी के हैं। ये मोहरे रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं।

सन् 1971 से देवता शिवरात्रि में आता है। 26 चैत्र को देवता का जन्मदिवस मनाया जाता है।

यह वर्षा का देवता है। बकरयाले, मेले में तथा मनौती पूर्ण होने पर बलि दी जाती है। रविवार, मंगलवार प्रश्न पूछे जाते हैं।

गूर चंद्रमणि, कारदार इंद्र, पुजारी हरदेव तथा चौदह बजंतरी हैं।

बालाकामेश्वर (सिला किपड़)

देवता का मंदिर सिला किपड़ (दुधर) में है। भंडार स्थानीय शैली में निर्मित एक मंज़िला है।

खड़ा रथ है जिसका शीर्ष भाग पगड़ी वाला है। रथ को दो अर्गलाओं से उठाया जाता है। चार मोहरे हैं जिनमें एक अष्टधातु तथा तीन चाँदी के हैं। ये मोहरे रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं।

शिवरात्रि में देवता आरंभ से ही भाग लेता है। अक्तूबर में माल का मेला लगता है। आधि-व्याधि का देवता है, सुख समृद्धि लाता है।

गूर चुहड़ाराम, कारदार प्रेम सिंह, पुजारी हुकम सिंह, कटवाल प्रेम सिंह तथा कोषाध्यक्ष गोवर्धन सिंह है।

बालाकामेश्वर (टिक्कर)

जनश्रुति है कि टिक्कर बल्ह में एक मैदान था, जिसमें कशमल की झाड़ी में एक गाय पत्थर पर दूध गिराती थी। ग्वालों को पता लगा तो वहाँ एक शिवलिंग देखा गया। ग्वालों ने देवता को प्रसन्न करने के लिए बकरा काटने की सोची। कशमल की लकड़ी की तलवार से वार किया तो बकरा कट गया। यह बात बड़े-बूढ़ों तक पहुँची तो वहाँ मंदिर-निर्माण हुआ। देवता कमरूनाग का पुत्र माना जाता है।

देवता का खड़ा रथ है जिसके शीर्ष पर गोटे-किनारी वाला रेशमी वस्त्र सुसज्जित है। रथ उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयुक्त होती हैं। चार मोहरे चारों ओर लगाए जाते हैं जिनमें एक सोने का तथा तीन चाँदी के हैं।

देवता शिवरात्रि में आरंभ से आता है। सभी त्योहार के साथ बैसाखी का मेला लगता है।

यह वर्षा का देवता है। आधि-व्याधि से बचाता है। जात्तर या मन्नत पूरी होने पर बकरे की बलि दी जाती है।

पुजारी परमानंद, कारदार शिवपाल शर्मा तथा पंद्रह अन्य कर्मचारी हैं।

बालाकामेश्वर (भंगरोही)

बालाकामेश्वर का मूल स्थान भौसेरी भरयोहगढ़ है। देवता का मंदिर तथा भंडार गाँव में ही है। देवता का खड़ा रथ है, जिसके शीर्ष पर वस्त्रों से सुसज्जित छत्र लगा हुआ है।

नीचे चाँदी की चाँदनी लगी है। चारों कोनों पर चार चाँदी की फुल्लियाँ लगी हुई हैं। रथ उठाने के लिए बाँस की दो अर्गलाएँ प्रयोग में लाई जाती हैं। मोहरों की संख्या चार है, जिनमें एक अष्टधातु तथा शेष चाँदी के हैं। ये मोहरे रथ के चारों ओर स्थापित हैं।

शिवरात्रि में देवता आरंभ से भाग लेता है। आषाढ़ प्रविष्टे तीन भंगरोह मेला तथा आश्विन में माल मनाई जाती है।

बालाकामेश्वर सायरी

जनश्रुति है कि बालाकामेश्वर ढाका से आया। उसके पास तंबाकू कूटने के लिए शिवलिंग-सा पत्थर था जो एक बार फैलने लगा। तभी एक कन्या को खेल आई और कहा कि मैं तिरुपति महादेव सायरी में प्रकट हुआ हूँ। देवता कमरूनाग का दूसरा बेटा माना जाता है।

देवता का मंदिर सायरी मंझवाड़ में है। खड़ा रथ है जिसके शिखर पर गोटे से जड़ा रेशमी वस्त्र है। चारों कोनों पर चार घुंडियाँ लगी हुई हैं। रथ उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयोग में लाई जाती हैं। चार मोहरे हैं, एक सोने का तथा शेष चाँदी के। ये चारों ओर स्थापित हैं।

देवता शिवरात्रि में पुराने समय से आ रहा है। वर्ष के त्योहारों के साथ दीपावली तथा साया मेला मनाया जाता है।

यह वर्षा का देवता है। आधि-व्याधि से रक्षा करता है। मनौती माँगने पर बलि दी जाती है। मंगलवार तथा रविवार प्रश्न पूछे जाते हैं।

पुजारी मोतीराम, कारदार देवकीनंदन शर्मा है। बजंतरी तथा अन्य कार्यकर्ता पंद्रह हैं।

गणपति

देवता की उत्पत्ति खुदाई में मूर्ति मिलने की कथा से हुई। मंदिर जला (थलौट) में है। देवता का आकार 10'-10' है, जो लकड़ी से निर्मित है।

देवता का रथ चौकोर चार घुंडियों से युक्त है। ऊपर से गुंबदाकार तथा छत्रयुक्त है। छत्र सोने का है। रथ के चारों ओर आठ मोहरे लगे हैं, जिनमें एक अष्टधातु तथा सात सोने के हैं।

त्योहार-उत्सव

देवता आरंभ से ही शिवरात्रि में आता है। गणेश चतुर्थी के साथ सभी संक्रांति पर्वों पर उत्सव होता है। रतणधार में माँ जालपा के यहाँ एक मेला लगता है।

देवता का गूर लाभ सिंह, कारदार लाल सिंह और पुजारी हीरालाल है। कठियाला जयसिंह तथा कायथ मणिराम हैं। बाजा बजाने के लिए तीन घरों में एक-एक बजंतरी आता है।

खोड़ू देव

काशणा गाँव में किसी व्यक्ति को खेत में हल चलाते समय एक मोहरा मिला, जिससे देवता की स्थापना हुई मानी जाती है।

देवता का काष्ठनिर्मित मंदिर काशणा (औट) में है। देवता का रथ चौकोर है, जिसके ऊपर चाँदी का छत्र है। मोहरों की संख्या आठ है, जिनमें एक अष्टधातु का तथा शेष चाँदी के हैं। मोहरे रथ के चारों ओर सुसज्जित हैं।

देवता को पराशर ऋषि का द्वारपाल भी माना जाता है। इसे वर्षा का देवता मानते हैं। संतान के लिए पूजा जाता है। देवता ग्रामीणों को विवाह का मुहूर्त भी बताता है। देवता को बकरे, मेढ़े या नारियल की बलि दी जाती है।

त्योहार-उत्सव

शिवरात्रि में देवता सन् 1974 से आना आरंभ हुआ। सभी स्थानीय त्योहार मनाने के साथ मार्गशीर्ष में देवता का मेला लगता है।

देवता का गूर गोरखूराम, कारदार कालूराम, पुजारी लोसरूराम है। कठियाला बलीभद्र तथा भंडारी कान्हुराम है। प्रातः-सायं आरती की जाती है।

काँढी कामेश्वर

काँढी कामेश्वर का मंदिर काँढी (तारापुर) में है। लगभग 15'-20' के मंदिर में स्लैब डाल दिया गया है। देवता का भंडार भी काँढी गाँव में है।

देवता का रथ चौकोर है जिसके चारों कोनों में घुंडियाँ लगी हैं। ऊपर चाँदी का छत्र तथा कपड़े की झालर लगाई जाती है। रथ के चारों ओर चार चाँदी के मोहरे हैं। देवता का गूर धनीराम तथा पुजारी नरेंद्र कुमार है। देवता की प्रातः-सायं पूजा की जाती है।

त्योहार-उत्सव

देवता शिवरात्रि उत्सव में भाग लेता है। सायर तथा प्रथम आषाढ़ को सरनाहुली मेला मनाया जाता है। वर्षा के त्योहार मनाए जाते हैं। इस देवता को कमरू नाग का तीसरा बेटा माना जाता है। त्योहार-उत्सवों में देवता के सहायकों जोगणी, भैरों, काली को बकरे की बलि दी जाती है।

अग्नि-पाताल

अग्नि-पाताल एक ग्राम देवता है, जिसका मूल स्थान संदौआ है जो कटौला उत्तरसाल में पड़ता है। देवता का मंदिर लकड़ी से निर्मित है जो लगभग 10'-10' आकार का है। ग्राम देवता का भंडार गाँव में ही है।

देवता का चौकोर रथ है जो विभिन्न उत्सवों पर सजाया जाता है। रथ के ऊपर चाँदी

का छत्र है तथा चार कोनों पर चार चाँदी की फुल्लियाँ लगी हुई हैं। रथ में नौ मोहरे चारों ओर लगाए जाते हैं। नौ मोहरों में एक पीतल तथा आठ चाँदी के हैं।

त्योहार-उत्सव

देवता सन् 1966 से शिवरात्रि मेले में भाग लेने जाता है। भाद्रपद में ऋषि पंचमी को मेला लगता है। वर्ष में अन्य त्योहार भी मनाए जाते हैं। देवता को आधि-व्याधि को हरने वाला माना जाता है। देवता का रथ अपने क्षेत्राधिकार में घुमाया जाता है। जहाँ-जहाँ देवता जाता है, वहाँ-वहाँ देवता के लिए बकरा बलि किया जाता है। घरों में देवता को आमंत्रित कर 'कार' बाँधी जाती है। ऋषि पंचमी के मेले में देवता जलती हुई आग में कूदता है, अर्थात् देवता का गूर जलती आग में छलाँग लगाता है।

देवता की पूजा सुबह-शाम की जाती है। देव व्यवस्था के लिए गूर आत्माराम, कारदार रेवतराम तथा गोलेराम पुजारी तैनात हैं। रामदास कठियाला तथा नुरबुराम कायथ है।

कोटलू देव

कोटलू का देव मंदिर बागी खलवान, बाली चौकी में है। देवता का मंदिर स्लेट तथा लकड़ी से बना लगभग आठ फुट ऊँचा चौकोर आकार है। देवता का भंडार बागी ग्राम में है।

देवता का रथ चौकोर है जिसमें चारों ओर फुल्लियाँ लगी हुई हैं। ऊपर चाँदी का छत्र है और ऊपरी भाग रेशमी वस्त्र तथा झालर से ढका हुआ है। रथ को उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयोग में लाई जाती हैं।

आठ मोहरे चारों ओर लगाए जाते हैं। इनमें एक मोहरा सोने का, एक अष्टधातु का तथा छह चाँदी के हैं। रथ के अग्रभाग में मोहरों के नीचे एक चाँदी की प्रतिमा स्थापित है।

त्योहार-उत्सव

शिवरात्रि में देवता आरंभ से भाग लेता है। वैशाख, आषाढ़, संक्रांति, श्रावणी पूर्णिमा तथा सायरी को त्योहार तथा मेला लगता है। देवता को बकरे की बलि दी जाती है।

भूत-बाधा हरने के लिए देवता का स्मरण किया जाता है।

प्रातः-सायं देवता की आरती की जाती है। देवता का गूर तिलेराम, पुजारी हेतराम, कठियाला गिरधारी लाल, कायथ नूपराम हैं। देवता के बारह बजंतरी हैं।

चंडेहिया कामेश्वर

चंडेहिया कामेश्वर का मंदिर ग्राम मपा (पंडोह) में है। मंदिर लगभग 22'-22' है। देवता का खड़ा रथ है जिसके ऊपर चाँदी का छत्र है। चाँदी के चार मोहरे रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं। देवता शिवरात्रि में भाग लेता है। कार्तिक में दीवाली का मेला लगता है। पुजारी का नाम भुवनेश्वर, भंडारी कर्म सिंह है।

टुंडी वीर

जनश्रुति है कि पुराने समय में राक्षसों से युद्ध करते हुए एक वीर का हाथ कट गया। अतः इसका नाम टुंडी वीर पड़ा। टुंडी वीर को नाऊ की भगवती अंबिका ने अपनी शरण में रखा।

देवता का एकमंजिला लकड़ी का मंदिर नाऊ (सनोर) में है।

देवता का रथ गुंबदाकार है। नीचे चारों कोनों पर चाँदी की फुल्लियाँ लगी हुई हैं। दो अर्गलाओं द्वारा रथ को उठाया जाता है।

मोहरों की संख्या नौ है जिनमें चार चाँदी तथा पाँच पीतल के हैं। ये सभी रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं।

शिवरात्रि में देवता की छड़ी लाई जाती है। पहले रथ भी लाया जाता था। श्रावण में मेला तथा नाऊली जाच लगती है।

गूर डोलूराम, कारदार नंदलाल, पुजारी भगतराम है।

टुंडी वीर

जनश्रुति है कि किसी व्यक्ति को हल चलाते हुए देवता की मूर्ति मिली, जिससे देवता की स्थापना हुई।

टुंडी वीर का मंदिर तथा मूल स्थान शाढला, कटिंढी (टृंग) में है। देवता का मंदिर तथा भंडार साढला में है।

देवता का खड़ा रथ है जिसके शीर्ष भाग पर कलशयुक्त छत्र है। चारों कोनों पर चाँदी की घुंडियाँ लगी हुई हैं। आठ मोहरे हैं जिनमें एक पीतल का तथा शेष चाँदी के हैं। रथ के चारों ओर दो-दो मोहरे स्थापित हैं।

त्योहार-उत्सव

देवता को संतानदाता माना जाता है। आधि-व्याधि से रक्षा करता है। मनौती पूरी होने पर बकरे की बलि दी जाती है। तीसरे या पाँचवें वर्ष भैंसे की बलि भी दी जाती है। महामारी फैलने पर भी भैंसे की बलि का प्रावधान है।

देवता शिवरात्रि में भाग लेता है। प्रथम चैत्र को दीवाली, मार्गशीर्ष संक्रांति को मेला लगता है। वर्ष के त्योहार भी मनाए जाते हैं।

गूर का नाम भादाराम, पुजारी गीताराम तथा कारदार पैनुराम हैं।

धराक्ष देव

धराक्ष देव का मंदिर मौवीसेरी (चच्योट) में है। देवता का खड़ा रथ है जिसके ऊपर चाँदी की टोपी तथा कलश लगे हैं। रथ उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयोग में लाई जाती हैं। कुल आठ मोहरे हैं, जिनमें से एक अष्टधातु का तथा शेष पीतल के हैं। ये रथ के चारों ओर स्थापित हैं।

मौवी तथा कोहलु क्षेत्र के लोगों का यह प्रमुख देवता है। मंगलवार तथा रविवार को पुच्छ दी जाती है। मनौती पूरी होने पर मेढ़े की बलि दी जाती है।

सन् 1976 से देवता शिवरात्रि में भाग लेने जाता है। उन्नीस श्रावण को मेला लगता है। वर्ष के सभी त्योहार मनाए जाते हैं।

देवता का गूर नागणुराम, पुजारी कोलुराम है। छह बजंतरी हैं।

धराक्ष देव

धराक्ष देव का स्थानीय शैली में निर्मित मंदिर मौवी सेगली में है। भंडार भी यहीं है। खड़ा रथ है। जिसके ऊपरी भाग में छतरी की भाँति गोटेदार वस्त्र सुसज्जित रहता है। अग्रभाग में दोनों ओर पीतल की घुंडियाँ लगी हैं। चार मोहरे हैं जिनमें एक अष्टधातु तथा शेष पीतल के हैं। ये मोहरे रथ के चारों ओर लगे रहते हैं।

संभवतः देवता नया है। अतः 1982 से शिवरात्रि में आना आरंभ हुआ। त्योहार मनाए जाते हैं, मेला कोई नहीं लगता।

नवरात्रों में बलि दी जाती है। मंगलवार, शुक्रवार तथा रविवार प्रश्न पूछे जाते हैं। देवता संतानदाता तथा भूत बाधा हरने वाला है। इसे राक्षस परिवार का माना जाता है।

नार सिंह

बान्हदी गाँव में किसी व्यक्ति को घर के पास जमीन के नीचे एक मूर्ति मिली। उसी स्थान पर, जहाँ मूर्ति मिली, मंदिर-निर्माण किया गया। बान्हदी (ज्वालापुर) सनोर में देवता का लकड़ी से निर्मित मंदिर है।

देवता का खड़ा रथ है जिसके ऊपर गुंबद है। आठ बड़े और एक छोटा मोहरा है, जिसमें एक अष्टधातु तथा शेष पीतल के हैं।

सन् 1961 से देवता शिवरात्रि में आता है। आश्विन में माल का मेला मनाया जाता है। वर्ष-भर के सभी त्योहार भी मनाए जाते हैं।

देवता भूत बाधा हरने के साथ पागलपन दूर करता है। घर बुलाने पर बकरे की बलि भी दी जाती है।

गूर दुर्गुराम, कारदार वेदराम, पुजारी टोडर, कठियाला ओमचंद तथा चार बजंतरी हैं।

देवता को भक्त प्रह्लाद का पुत्र माना जाता है। इसे कुल्लू के राजा का पुत्र भी माना जाता है। इसने अपनी बहन का विवाह कहलूर के राजा के साथ किया और कहलूर आया। कालांतर में इसे 'वीर' के रूप में पूजा जाने लगा। यह बावन वीरों में से एक माना जाता है। इसे बसोहली के राजा का पुत्र भी मानते हैं।

नेरी थान

किंवदंती है कि मैगल (नेरी) के किसी व्यक्ति को देवता ने बताया कि वह झाड़ियों के बीच पड़ा हुआ है, उसकी स्थापना की जाए। अतः उसे ढूँढ़ा गया और स्थापना कर

मंदिर-निर्माण हुआ। देवता का मंदिर मैगल, बिजणी में है। भंडार मैगल नेरी में है।

देवता का चौकोर रथ है, जिसके ऊपर सोने का छत्र है। रथ के चारों कोनों में पीतल की घुंडियाँ लगी हुई हैं। नौ मोहरे हैं, जिनमें एक अष्टधातु तथा शेष पीतल के हैं। रथ के अग्रभाग में ऊपर दो मोहरे तथा नीचे सिंहवाहिनी देवी की चतुर्भुजी मूर्ति है।

सन् 1981 से देवता शिवरात्रि में आता है। वर्ष-भर के त्योहार मनाने के साथ दीवाली का दो दिन का मेला लगता है।

देवता संतानदाता है, भूत-बाधा निवारण करता है। नवरात्रों में, ग्रहण तथा मेले के दिन बकरे की बलि दी जाती है।

गूर नेहारखु, कारदार हरि सिंह, पुजारी भूप सिंह, कटवाल नेहारू, वजीर शेषराम, सोठीदार कड्डु, कोषाध्यक्ष हरिराम व प्रेम सिंह हैं।

लोटका वीर

किंवदंती है कि देवता की मूर्ति किसी को खुदाई में मिली, अतः मंदिर-निर्माण किया गया। देवता का मंदिर रेहड़धार, पच्छीहत में है, जो स्थानीय शैली में निर्मित है। भंडार गूर के घर में है।

देवता का रथ चौकोर आकार का है जिसका शीर्ष गुंबदाकार है। गुंबद के नीचे चाँदी का छत्र सुशोभित है। रथ के चारों कोनों में चाँदी की फुल्लियाँ लगी रहती हैं। रथ को उठाने के लिए दो अर्गलाएँ प्रयोग में लाई जाती हैं। मोहरों की संख्या आठ है जिनमें एक अष्टधातु का तथा शेष चाँदी के हैं। ये दो-दो मोहरे रथ के चारों ओर लगाए जाते हैं।

शिवरात्रि में देवता 1971 से आने लगा। साढ़नू, दियाली और माल के मेले मनाए जाते हैं। गूर पूर्णचंद्र, कारदार थोथु, पुजारी पूर्णचंद, वजीर तेजराम हैं। बीस बजंतरी हैं।

देवता को पराशर ऋषि का पोता माना जाता है। रविवार तथा मंगलवार बकरे की बलि दी जाती है।

जालपू देव

जालपू देव का मंदिर नीरूगढ़ (बुरना), थाची बाली चौकी में है। देवता का मंदिर नीरूगढ़ में है, जो स्थानीय शैली में निर्मित है। भंडार बुरना गाँव में है जो तिमंजिला है। देवता का रथ नहीं है, मात्र करडू या करंडिका है, जिसमें देवता को लाया जाता है। मोहरा केवल एक है जो अष्टधातु का है।

देवता के निशान को शिवरात्रि में लाया जाता है। तीन ज्येष्ठ झाखडु मेला लगता है।

देवता को मलाणा के जमलू का चिह्न भी माना जाता है। देवता को हलवा चढ़ाया जाता है।

गूर टोडर, कारदार धर्मचंद हैं।

माहोदी गण

माहोदी गण का मूल स्थान काँगड़ा माना जाता है। देवता का मंदिर माहोटी (कटौला, उत्तरांचल) में है। मंदिर स्थानीय शैली में निर्मित है। भंडार भी गाँव में ही है। देवता को ब्रह्मा का रूप माना जाता है।

देवता का खड़ा रथ है। रथ के चारों ओर दो-दो मोहरे लगे हुए हैं, जिनमें एक अष्टधातु तथा शेष चाँदी के हैं। रियासत के समय से देवता शिवरात्रि में आता है। भाद्रपद संक्रांति को मेला लगता है। बकरे, मेढ़े की बलि दी जाती है।

गूर रामचंद्र, कारदार मेघ सिंह, पुजारी बशाखु, कटवाल मेघ सिंह है। छह बजंतरी हैं।

छनैल

देवता का मंदिर सरोआ, टिली (चच्योट) में है। स्थानीय शैली में लकड़ी-पत्थर से निर्मित यह मंदिर 22'-22' है। भंडार सरोआ में है। मूल स्थान तांदी माना जाता है।

रथ खड़े आकार का है जिसके ऊपर लाल वस्त्र से ढका छत्र लगा रहता है। चार मोहरे हैं, जिनमें से एक अष्टधातु और तीन चाँदी के हैं। चारों ओर एक-एक मोहरा लगाया जाता है।

त्योहार-उत्सव

देवता शिवरात्रि में भाग लेने आता है। प्रथम आषाढ़ को नाहोली, बीस मार्गशीर्ष को माल का मेला लगता है। शिवरात्रि में देवता आरंभ से जाता है।

देवता को विष्णु माना जाता है जो तांदी में प्रकट होकर सरोआ, कलसु आया। इसे वर्षा का देवता माना जाता है। पशु-रोग, भूत-बाधा भी हरता है। देवता को नारियल चढ़ता है, किंतु देवता के साथ काली को बकरा।

गूर हेम सिंह, पुजारी मनीराम, कटवाल गोविंद, भंडारी परसराम है। तीस व्यक्ति बजंतरी हैं।

नरसिंह मंदिर, पुराना बाजार, सुंदरनगर

नरसिंह देव का प्राचीन मंदिर सुंदरनगर के पुराने बाजार में स्थित है। मंदिर की प्रबंध-व्यवस्था के लिए उपमंडल अधिकारी, सुंदरनगर के अधीन एक समिति बनी हुई है। मंदिर की पूजा-अर्चना के लिए एक पुजारी नियुक्त किया गया है। मंदिर का चढ़ावा पुजारी को जाता है। पुजारी को सौ रुपए प्रतिमाह वेतन दिया जाता है। मंदिर में 26 मई को नरसिंह जयंती मनाई जाती है। मंदिर में आवास और भोजन की कोई व्यवस्था नहीं है।

महादेव का क्रोध

प्रजापतियों की यज्ञ-सभा में जब दक्ष प्रजापति ने प्रवेश किया, ब्रह्मा सहित सभी देवगण, ऋषि, मुनि खड़े हो गए। बैठे रहे तो केवल महादेव। दक्ष महादेव का यह व्यवहार न सह सका। उसने महादेव जी को बुरा-भला कहा और अपनी मृगनयनी कन्या का विवाह ऐसे शिष्टाचाररहित व्यक्ति से करने पर पछतावा किया। प्रेतों की तरह श्मशान में घूमने वाले, नंग-धड़ंग, हड्डियों की माला पहनने वाले ऐसे शिव के साथ कन्या ब्याहने पर दक्ष ने सबके सामने अपने आपको कोसा और शिव को आचारहीन और असभ्य कहा। दक्ष के इस तरह बुरा-भला कहने पर भी महादेव निश्चल रहे। दक्ष उन्हें शाप देने को तैयार हो गया और सबके रोकने पर भी शाप दे दिया : "यह महादेव देवताओं में बड़ा ही अधम है। अब से इसे इंद्र-उपेंद्र आदि देवतांओं के साथ यज्ञ का भाग न मिले।"

शंकर को शाप की बात सुनकर उनके अनुयायी क्रोधित हो गए और उन्होंने भी दक्ष तथा उसका पक्ष लेने वाले ब्राह्मणों को पशु समान और मंदबुद्धि आदि होने का शाप दिया। इस घटना से खिन्न होकर महादेव अपने अनुयायियों सहित वहाँ से चले गए।

दक्ष और दामाद शंकर का यह विरोध अंदर ही अंदर चलता रहा। समय बीता। दक्ष को ब्रह्मा जी ने समस्त प्रजापतियों का अधिपति बना दिया। अब उसने एक महायज्ञ प्रारंभ किया जिसमें सभी ब्रह्मऋषि, देवऋषि, पितर, देवता अपनी-अपनी पत्नियों सहित पधारे। दक्ष ने सबका यथोचित सत्कार किया।

जब आकाशमार्ग से जाते हुए देवताओं से दक्ष कन्या सती ने अपने पिता के यहाँ यज्ञ के विषय में सुना तो उन्हें बड़ी उत्सुकता हुई। उन्होंने जब यक्ष, गंधर्वों को अपनी-अपनी पत्नियों सहित सजधजकर सुंदर विमानों में यज्ञ में जाते देखा तो उन्हें भी यज्ञ में जाने की बड़ी उत्सुकता हुई। स्त्रीस्वभाववश उन्होंने शंकर से अपने पिता के यहाँ यज्ञ का उल्लेख किया और वहाँ जाने की इच्छा प्रकट की।

नारीसुलभ इच्छा के अनुसार सती ने अपने पिता के यज्ञ में अपनी बहनों की भाँति अपने पति सहित सजधजकर जाने का अनुरोध किया। कई अनजान युगलों को वहाँ जाते हुए देखा तो सती ने अपने संबंधी होने की दुहाई देते हुए महादेव जी से प्रार्थना की।

महादेव जी को दक्ष के कहे हुए बुरे वचनों का स्मरण हो आया। उन्होंने सती को समझाया कि निकट संबंधियों के यहाँ बिना बुलाए तो जाया जा सकता है, यदि संबंध मधुर हों और किसी को अभिमान न हो। जिनका अभिमान बढ़ता जाता है, उनकी विवेक शक्ति नष्ट हो जाती है और वे विवेकशून्य हो जाते हैं। अतः ऐसे लोगों के यहाँ 'ये हमारे बांधव हैं' ऐसा समझकर भी कभी नहीं जाना चाहिए। कुटिल बुद्धि वाले संबंधी बाणों से अधिक वाणी से शरीर को छिन्न-भिन्न करते हैं।

महादेव ने सती को बिना बुलाए जाने के लिए मना किया और कहा कि तुम्हें वहाँ जाने पर मान नहीं मिलेगा क्योंकि वे लोग जलते हैं। यदि बिना बुलाए जाओगी तो निश्चित रूप से तुम्हारा अपमान होगा।

सती को समझाने के बाद शंकर मौन हो गए। सती कभी बाहर जाती, कभी अंदर जाती। प्रियजनों से मिलने की इच्छा व्याकुल किए जा रही थी। आँखों में आँसू भरकर जब बेचैनी अधिक बढ़ गई तो सती शंकर को छोड़ पिता के घर की ओर चल दी। महादेव जी ने भी हजारों सेवक और वृषराज सती के साथ भेज दिए।

सती जब दक्ष की यज्ञशाला में पहुँची तो वहाँ वेदध्वनि करने वाले ब्राह्मणों की आपस में होड़ लगी हुई थी। सभी देवता, ब्राह्मण, ऋषि वहाँ विराजमान थे। यज्ञ में माता और बहनों के सिवा किसी ने सती का स्वागत नहीं किया। अनादर के अतिरिक्त सती ने देखा, यज्ञ में शंकर के लिए कोई भाग नहीं रखा है। यह देख सती को बहुत क्रोध आया। सती ने दक्ष से भगवान् शंकर के गुणों की चर्चा की और उन्हें सभी देहधारियों की आत्मा और साधुपुरुष कहा। शंकर का समस्त गुणगान करने पर भी दक्ष पर असर नहीं हुआ। वह मौन होकर उत्तर दिशा में भूमि पर बैठ गईं और शरीर छोड़ने के लिए योगमार्ग में स्थित हो गईं। योगाग्नि से उनका शरीर जल उठा। सभी उपस्थित लोगों में हाहाकार मच गया। सभी दक्ष प्रजापति की निंदा करने लगे। सती को मरा हुआ देख शिवजी के पार्षद दक्ष को मारने के लिए उद्यत हुए किंतु भृगु ने यज्ञ कुंड से 'ऋभु' नाम के तेजस्वी देवता प्रकट किए, जिन्होंने इन्हें भगा दिया।

शंकर ने जब सुना कि सती ने प्राण त्याग दिए और उनके पार्षदों को भी भगा दिया, उन्होंने क्रोध में भरकर अपनी एक जटा उखाड़ ली। अपनी जटा को अट्टहास की पृथ्वी पर पटक दिया। उस जटा से तुरंत एक लंबा-चौड़ा पुरुष उत्पन्न हुआ जिसका शरीर बहुत विशाल था। हजार भुजाएँ थीं। विकराल दाढ़ें थीं। तीन नेत्र थे। गले में नरमुंडों की माला थी। उसने शंकर से पूछा, "मैं क्या करूँ ?" शंकर ने आज्ञा दी, "वीरभद्र ! तू मेरा अंश है। इसलिए मेरे पार्षदों का अभिनायक बनकर तुरंत ही दक्ष और उनके यज्ञ को नष्ट कर दे।"

वीरभद्र उनकी परिक्रमा करके गर्जना करता हुआ यज्ञशाला में जा धमका। लगा, जैसे आँधी आ गई है। यज्ञ में बैठे सभी भयाक्रांत हो गए। वीरभद्र और रुद्र सेवकों ने यज्ञशाला को घेर लिया। यज्ञ कुंड तबाह कर दिया। पात्र फोड़ दिए गए। वेदी गिरा दी गई। देवता प्राण बचाकर भागे। भृगु आदि ऋषियों को बाँध दिया। दक्ष को मारकर हवन कुंड के हवाले कर वीरभद्र कैलास वापस लौट आया।

दक्ष यज्ञ के विध्वंस की कथा शिवपुराण, महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि अनेक पुराणों में थोड़े-बहुत अंतर के साथ मिलती है। यह कथा इतनी व्यावहारिक और लोकाचार से भरपूर है कि समाज की भीतरी रग को सीधे छूती है। शिव का 'धूडू' रूप लोक में प्रसिद्ध है। चंबा में धूडू जब नृत्य करता है तो कैलास झूम उठता है। शिव-पार्वती को आम मनुष्यों की भाँति लोकगीत में लिया गया है। शिव-पार्वती के किस्से, उनका पहाड़ी दर पहाड़ी भागना, पार्वती का रूठना, शिव का मनाना लोकगीतों का मर्म है। कैलासों के वासी भोलेशंकर पर्वत-पर्वत घूमते हैं और गद्दियों की भेड़ों की रक्षा करते हैं।

सती की देह को उठाए उन्मत्त शिव जब इस पृथ्वी पर घूमने लगे तो विष्णु ने सती

का एक-एक अंग अपने चक्र से काट गिराना आरंभ किया। जहाँ-जहाँ सती की देह के अंग गिरे, वहाँ शांतिपीठ स्थापित हुआ। हिमाचल में वज्रेश्वरी, ज्वालाजी, श्री नैणादेवी शांतिपीठों की स्थापना इसी धारणा के अंतर्गत मानी जाती है। काँगड़ा में सती का मुँह या वक्षस्थल गिरा, ज्वालामुखी में जिह्वा गिरी, नयन श्री नैणादेवी में गिरे। इस प्रकार इक्यावन शांतिपीठ स्थापित हुए।

वैद्यनाथ धाम

मंदिर आस्था के केंद्र होने के साथ-साथ अतीत के उत्कृष्ट शिल्प के भी प्रतीक हैं। कौन होंगे वे शिल्पी जिन्होंने पत्थरों में प्राण फूँके। एक-एक पत्थर तराशा। भव्य मंदिर व सुंदर मूर्तियों का निर्माण किया। वे तो मर-मिट गए, उनकी हथौड़ी व छेनियों की झंकार अब भी गूँजती है—गुंबद में, गर्भगृह में, मंडप में।

मंदिर मात्र पुरातात्त्विक स्मारक न होकर हमारे इतिहास, हमारी संस्कृति के आधार हैं। मंदिर-निर्माण तथा इन्हें धराशायी करना, दोनों बातें इतिहास में घटती रही हैं। जिस धरती पर शिव मंदिर बैजनाथ का निर्माण हुआ, उससे मात्र तीस किलोमीटर की दूरी पर नगरकोट मंदिर भी था जिसे गजनी द्वारा लूटा गया। शिव मंदिर तक कोई आक्रमणकारी नहीं पहुँचा। फलतः आज भी यह मंदिर अपना पुरातन गौरव लिए खड़ा है। नगरकोट (काँगड़ा) का भवनावाली का पुरातन मंदिर तो ध्वस्त हो चुका है। इसके अवशेष वर्तमान मंदिर में पड़े हुए हैं। शिव मंदिर 1905 के भूकंप में भी खड़ा रहा।

हिमाच्छादित धौलाधार के आधार में नीली बिनवा नदी के किनारे समुद्र तल से लगभग एक हजार मीटर ऊँचे स्थान पर स्थित है अद्वितीय शिव मंदिर, जो उत्तर भारत में वास्तुकला का अद्‌भुत नमूना है। प्रतिहार शैली का यह मंदिर अपनी बेजोड़ कलाकृतियों के लिए प्रसिद्ध है।

पुराने समय में बैजनाथ या वैद्यनाथ केवल मंदिर का नाम था। ग्राम का नाम कीर ग्राम था। अब ग्राम और मंदिर, दोनों का नाम बैजनाथ है। कीर का अर्थ है तोता। इस क्षेत्र में तोते बहुतायत में हैं अतः संभवतः इसी कारण इसे कीर ग्राम नाम दिया गया होगा। एक मत के अनुसार यहाँ किरात शासन करते थे, जिन्हें बाद में आर्यों ने भगा दिया। किरात शासकों ने यहाँ किला भी बना रखा था। इस कारण इसे कीर ग्राम कहा जाता था।

किंवदंती है कि यहाँ लंकापति रावण ने तपस्या की और अपने दस शीश शिव को समर्पित किए। महाभारत के समय जब पांडवों को लाक्षागृह में जलाने का षड्यंत्र रचा गया तो वे सुरंग के रास्ते यहाँ आ निकले और मंदिर-निर्माण किया। इस स्थान को वास्तविक वैद्यनाथ धाम भी कहा जाता है।

भव्य मंदिर के चारों ओर किले की भाँति दीवार बनी हुई है। मुख्य द्वार पश्चिम की ओर मुँह किए है। भीतर जाने के लिए प्रवेश द्वार वर्तमान बाजार की ओर है। एक मार्ग सीढ़ियों द्वारा पीछे निकलता है। जहाँ यह तालाब है जो अब सूख गया है। मंदिर की स्थिति व दीवारों से प्रतीत होता है कि यह परिसर आगे तक फैला हुआ था। एक ओर बाजार तक तो दूसरी ओर विश्रामगृह तक। विश्रामगृह की ओर नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं। नीचे खीर गंगा बहती है जहाँ हरिद्वार न पहुँच सकने वाले लोग अस्थियाँ प्रवाहित करते हैं। अब तालाब के आगे आबादी बस गई है। विश्रामगृह, कार्यालय आदि बन गए हैं। मंदिर तथा विश्रामगृह, दोनों ओर ही धौलाधार की पृष्ठभूमि में अद्वितीय दृश्य।

मंदिर का बाहरी आकार शिव मंदिर बजौरा (कुल्लू) से भी आकर्षक है। कई मूर्तियाँ कलात्मकता की कोटि से भी मेल खाती हैं। बजौरा का शिव मंदिर अधिकांश पुरातत्त्ववेत्ताओं ने आठवीं शताब्दी का माना है। बैजनाथ शिव मंदिर के निर्माणकाल के बारे में इतिहासकार पुरातत्त्ववेत्ताओं में मतभेद है।

इतिहासकार कहते हैं, बारहवीं शताब्दी में यह स्थान राजा का गढ़ था और मंदिर के साथ वर्तमान विश्रामगृह के स्थान पर एक दुर्ग था। यह स्थान वास्तव में एक दुर्ग के लिए उपयुक्त है, स्थान और स्थिति दोनों ही दृष्टिकोणों से। इस ऊँची पहाड़ी से जहाँ एक ओर नीचे काँगड़ा घाटी फैली है दूर-दूर तक, तो ऊपर मंडी का जोगिंद्रनगर तथा भंगाहल पहाड़ी क्षेत्र है। इस संधि स्थल में यह स्थान निश्चित रूप से सामरिक महत्त्व का रहा होगा। आज भी मंदिर की दीवार तथा पूरा क्षेत्र किले का-सा आभास देता है।

मंदिर में उपलब्ध शिलालेखों के अनुसार मंदिर का निर्माण यहाँ के स्थानीय व्यापारी बंधुओं द्वारा किया गया (आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट : खंड 5)। तत्कालीन राजा का नाम लक्ष्मणचंद्र था। राजा लक्ष्मणचंद्र के पूर्वजों की आठ पीढ़ियों ने यहाँ शासन किया, जो जालंधर या त्रिगर्त के अधीन थे। शिलालेख में त्रिगर्त के राजा का नाम जयचंद दिया है, जिसे 'जालंधर का सर्वोत्तम शासक' कहा है। कनिंघम के अनुसार, त्रिगर्त नरेश जयचंद, जयपालचंद ही था जिसने नौवीं शताब्दी में राज्य किया। किंतु हचिसन व वोगन ने 'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल्ज स्ट्रेट्स' में इसे जयसिंह चंद माना है जो पृथ्वी सिंह (1330) से पूर्व तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभ (1200-20) में हुआ। अतः शिलालेखों का समय 1204 के आसपास माना गया। पृथ्वी सिंह के पूर्व के इतिहास पर वस्तुतः अधिक प्रकाश नहीं पड़ता।

एक पुरातात्त्विक स्मारक के रूप में इस मंदिर का उल्लेख फरगुसन, सर ऑरेल स्टेन, फ्लीट, कनिंघम आदि विद्वानों ने किया है। इस समय यह मंदिर केंद्रीय पुरातत्त्व विभाग के अधीन है।

सर्पदंश का देवता : गुग्गा

सर्पदंश और जादुई शक्तियों पर विजय पाने वाले देव का नाम है गुग्गा। सर्पदंश और जादू का आतंक गाँव में सिर चढ़कर बोलता है। बरसात में जब साँपों के बिलों में पानी भर जाता है तो वे घरों की शरण लेते हैं। बरसात के बाद जब धूप चमकती है तो साँप भरे-पूरे घास में लहराते हैं। साँप भी ऐसे खतरनाक कि एक ही फुंकार से आदमी को खत्म कर दें और जादू-टोने से ग्रसित, अंधकार से डगमगाए लोग कोई ऐसी बड़ी शक्ति चाहते हैं जो इससे छुटकारा दिला सके। अबोध ग्रामीणों को इस सबसे निजात दिलाने वाला पीर है गुग्गा।

गुग्गा को 'गुग्गा छत्री', 'गुग्गा जाहरपीर', 'राणा', 'नीले घोड़े का सवार', 'गुगमल' आदि नामों से संबोधित किया जाता है। हिमाचल के निचले क्षेत्रों में गुग्गा का प्रभाव है। शिमला के निचले क्षेत्र बिलासपुर, मंडी, काँगड़ा, हमीरपुर आदि में गुग्गा एक समान पूज्य देव है।

गुग्गा गाथा

इन सभी क्षेत्रों में गुग्गा गाथा प्रचलित है, जिसे 'झेड़ा' या 'बार' कहा जाता है। इस गाथा में गुरु गोरखनाथ तथा उनके नौ लाख शिष्यों, काछला और बाछला दो बहनों, गुरु गोरखनाथ की कृपा से गुग्गे का जन्म, भाइयों की ईर्ष्या, गुरु गोरखनाथ के प्रताप से गुग्गे के विवाह तथा भाइयों से युद्ध का वर्णन है।

गुग्गा के अनुयायी रक्षाबंधन से लेकर गुग्गा नवमी तक यह गाथा घर-घर जाकर सुनाते हैं। इनमें से एक आदमी बड़ा 'छत्र' लेकर चलता है। छत्र के साथ रंग-बिरंगे कपड़े के टुकड़े भी इसमें बाँध लिए जाते हैं। एक आदमी के हाथ में थाली होती है। कई जगह इकतारा या ढोलकियों का प्रयोग भी किया जाता है। विभिन्न मुद्राएँ बनाते हुए ये गुग्गा की वीरगाथा सुनाते हैं, जिसमें बीच-बीच में कथा का संक्षेप बिना गाए अपनी बोली में समझाया जाता है, फिर गायन आरंभ हो जाता है।

ग्राम देवता

जिस गाँव में गुग्गा का मंदिर होता है, उसके आसपास के सभी गाँवों के घरों में गुग्गा पूजन होता है। हर घर के आँगन में घोड़े पर सवार गुग्गा की प्रस्तर प्रतिमा रहती है। प्रायः तुलसी के बिरवे में या किसी अन्य चबूतरे में गुग्गा को स्थापित किया जाता है।

बरसात के दिनों में गुग्गा मढ़ी से प्रसाद के रूप में मिला पानी तथा मिट्टी घरों के अंदर तथा आँगन-पिछवाड़े में फेंका जाता है। इससे यह समझा जाता है कि साँप तथा भूत-प्रेत घर में नहीं आ सकेंगे।

गुग्गा नवमी

गुग्गा नवमी के दिन गुग्गा का मेला प्रारंभ होता है। इस रात रतजगा होता है। कई

स्थानों पर पुजारी 'खेलता' है। खेलता हुआ पुजारी बताता है : अब गुग्गा तैयार हो गया, अब घोड़े पर सवार हो मारू देश की ओर रवाना हो गया, अब रोपण पहुँच गया, अब स्वारघाट आ गया, अब तलाई में आ गया, अब मंदिर के द्वार पर आ गया"। गुग्गा के मंदिर में प्रवेश पर बलियाँ दी जाती हैं। कई पुरुष तथा स्त्रियाँ एक साथ 'खेलने' लगते हैं। ऐसे में जादू-टोने से ग्रसित लोगों को उल्टियाँ करवाई जाती हैं। उन्हें साँकलों से पीटा जाता है।

कई बार गुग्गा के आगमन से पूर्व पुजारियों या लोगों की गलतियों के कारण देवता आने से मना कर देता है, जिस पर लोगों तथा पुजारियों को क्षमा माँगनी पड़ती है। क्षमा के लिए कई बार बलि भी देनी पड़ सकती है। गुग्गा के आगमन के बाद ही मेला सही मायनों में आरंभ होता है। सलोह में गुग्गा का प्रसिद्ध मंदिर है, जिसकी मान्यता दूर-दूर तक है।

शिव मंदिर, मसरूर

मसरूर का शिव मंदिर पूरे उत्तर भारत में अपनी तरह का एकमात्र मंदिर है। यह मंदिर चट्टानों को काट-काटकर बनाया गया है, जिसे 'रॉक कट टेम्पल' कहा जाता है। यह मंदिर आठवीं शताब्दी का माना जाता है। सर्वप्रथम इस मंदिर को पुरातात्त्विक दृष्टि से देखने वाले एच० हारग्रीब्ज थे, जो यहाँ सन् 1913 में आए। उन्होंने इसे आठवीं सदी के बाद का बताया।

मसरूर मंदिर किसी मुख्य सड़क से जुड़ा न होने के कारण उपेक्षित रहा। जिला काँगड़ा में हरिपुर से तेरह किलोमीटर और काँगड़ा से इक्कीस किलोमीटर दूर धर्मशाला-नगरोटा सूरियाँ सड़क पर यह मंदिर स्थित है। इस सड़क पर पीर बिंदली से मसरूर के लिए रास्ता जाता है। लगभग सात सौ मीटर की ऊँचाई पर स्थित मसरूर गाँव में अब बस जाती है। मंदिर एक पहाड़ी पर अवस्थित है, जहाँ से ऊपर धौलाधार और नीचे व्यास घाटी दूर-दूर तक नजर आती है। मसरूर गाँव मंदिर से नीचे है।

मसरूर गाँव से मंदिर तक चढ़ते हुए ऐसा बिलकुल नहीं लगता कि यहाँ कोई ऐसा अनूठा मंदिर होगा। वैसे भी मंदिर का पिछला भाग ही नीचे से नजर आता है। सामने जाने पर ही इस मंदिर से उस समय की वास्तुकला और स्थापत्य के दर्शन होते हैं। एक बहुत बड़ी चट्टान को किस प्रकार मंदिर का रूप दिया गया है, यह देखते ही बनता है। सन् 1905 के काँगड़ा भूकंप में इस मंदिर को भी क्षति पहुँची। भूकंप के कारण मंदिर के खँडहर आज भी बिखरे पड़े हैं। मंदिर के निर्माण में उत्तर की नागर शैली और दक्षिण की द्रविड़ शैली का सम्मिश्रण हुआ है।

मंदिर का निर्माण किसने करवाया, यह अज्ञात है। इतनी बड़ी चट्टान को कुरेदकर मंदिर बनाने की परिकल्पना एक आश्चर्य है। इस मंदिर को बनवाने में कितना समय लगा होगा, यह भी कहना कठिन है। किंतु राजाश्रय के बिना ऐसा काम सदियों पहले के समय में कर पाना कठिन है। जिस प्रकार का मंदिर में काम हुआ है, वह एलोरा की कला का स्मरण कराता है। एलोरा दसवीं शताब्दी की कलाकृति है, यह मंदिर उससे पहले का है।

इस चट्टान में सात मंदिर सामने से नजर आते हैं। छोटे-मोटे दूसरे मंदिरों को भी मिला लें तो यह संख्या पंद्रह तक पहुँच जाती है। चट्टान के बीच का हिस्सा ऊँचा है, आसपास दो कम ऊँचे शिखर हैं। वास्तुकला और मूर्तिकला के सम्मिश्रण वाले इस मंदिर में मूर्तियाँ तथा पाषाण कला उत्कृष्ट है।

मंदिर के द्वार तथा शिखर भाग में उत्कृष्ट नक्काशी की गई है। कुछ जगह फूल-पत्तियाँ तथा मानव आकृतियाँ बनाई गई हैं। बीच के मंदिर में सीता, राम और लक्ष्मण की मूर्तियाँ हैं। गर्भगृह का प्रवेश द्वार अलंकृत है। सभा मंडप क्षतिग्रस्त हो गया है। यहाँ चार स्तंभों के अवशेष हैं। एक स्तंभ पर हनुमान की मूर्ति है।

यह माना जाता है कि यहाँ सीता, राम, लक्ष्मण की मूर्तियाँ बाद में रखी गई हैं, क्योंकि मूलतः यह शिव मंदिर है। मंदिर के शीर्षदल के बीच आज भी शिव की आकृति है।

चट्टान को काटकर ही यहाँ प्रवेश द्वार, दोनों ओर सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। सीढ़ियों के ऊपर मंदिर का शिखर है।

1905 के भूकंप से क्षतिग्रस्त तथा समय के प्रभाववश क्षति होने के प्रमाणं मंदिर परिसर में मिलते हैं। यहाँ कई अलंकृत पत्थर, स्तंभ और आमलक पड़े हुएं हैं।

मसरूर मंदिर से राज्य संग्रहालय शिमला में सूर्य, वरुण, देवमुख गणेश, शिव, दुर्गा की आठ प्रतिमाएँ लाकर रखी गई हैं।

इन मंदिरों के बारे में भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण की 1912-13 तथा 1915-16 की वार्षिक रिपोर्टों में छापा गया है। इसके बाद कुछ पुरातात्त्विकविदों ने अपनी टिप्पणियाँ दीं।

ये मंदिर किसी छोटे राजा या शासक द्वारा बनवाए प्रतीत नहीं होते, बल्कि इनके निर्माण के पीछे एक शक्तिशाली और समृद्ध साम्राज्य रहा होगा। मंदिर का निर्माण अधूरा रह गया है। संभवतः आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में निर्माण के बाद कार्य किसी कारण रुक गया।

सूने गलियारों में बोलता इतिहास

इतिहास तो छिप जाता है चंद पन्नों में, गवाह खड़े रहते हैं सदियों तक आकाश की ओर बाँहें फैलाए अपना अतीत तलाशते। महाशून्य, जहाँ सारा कोलाहल मौन हो जाता है। कोलाहल युद्ध का, जय का, पराजय का, संधि-विग्रह का और उन तमाम षड्यंत्रों का जो किले व महलों के भीतर जन्म लेते रहे।

ऐसे ही इतिहास का मौन साक्षी है काँगड़ा किला, जो अब भी भव्य और विशाल परिसर में गौरवशाली इतिहास सँजोए हुए है। सन् 1905 के भूकंप ने इसे झटका दिया है। फिर भी किले के प्राचीर, द्वार, स्तंभ अब भी उस वैभव की याद ताजा करते हैं, जिसके आकर्षण से यहाँ बार-बार आक्रमण होते रहे।

ऊँचे धौलाधार के प्रांगण में फैला यह किला पहाड़ का गौरव रहा है। आज जहाँ इस लंबे-चौड़े क्षेत्र से लोग मात्र घास लेने आते हैं, कभी आक्रमणकारी सोने-चाँदी, हीरे-जवाहरात से लदे घोड़े-खच्चरें-ऊँट हाँककर ले गए थे। इतनी लूटपाट के बाद भी यह किला खड़ा रहा और इतिहास में अपना नाम बनाए रखा।

प्रवेश द्वार का नाम है जहाँगीर दरवाजा, जहाँ से भीतर सूने गलियारों का सफर शुरू होता है। चौड़ा रास्ता धीरे-धीरे ऊपर चढ़ता हुआ, सीढ़ी दर सीढ़ी। बीच-बीच में गेटनुमा ड्योढ़ियाँ, जहाँ कभी आकर्षक पाषाण प्रतिमाएँ जड़ी हुई थीं। अब भी इनके अवशेष बाकी हैं। रास्ते के बाहर की ओर दीवार ऊँची होती हुई और जगह-जगह भीतर से बाहर देखने और आक्रमण से रक्षा के लिए गोलीबारी हेतु बने स्थान। यहीं सिपाहियों के खड़े होने के लिए भी जगह बनी है। इन सूराखों की खासियत यह है कि ये सीधे पार की पहाड़ी पर बनी चौकी पर भी चौकसी करते हैं। पार की पहाड़ी की चौकी इसी तरह अगली चौकी की पहुँच में है। युद्ध के समय यहाँ से चौकी दर चौकी खबर पहुँचाई जाती थी।

सीढ़ियों के बाद खुला रास्ता और ऊपर पहुँचकर एक और दरवाजा, जो अब गिर चुका है। यहाँ भूकंप के समय पूरी की पूरी दीवारें गिरी पड़ी हैं, जो अब भी साबुत धरती पर गिरी हैं या टेढ़ी फँसी हैं, टूटी नहीं। इसी दरवाजे से मुख्य किले व अन्य स्थानों के लिए रास्ते हैं। आगे सीढ़ियाँ चढ़कर भीतरी प्रमुख किले का द्वार है। इस द्वार के अंदर जाते ही दो मंदिर हैं—एक देवी मंदिर तथा दूसरा जैन मंदिर। महामाया मंदिर के साथ कुछ अन्य मूर्तियाँ भी दीवार में जड़ी हैं। दूसरी ओर लगातार बने एक ही पत्थर पर खुदाई किए मंदिरों के अवशेष।

जैन मंदिर में आदिनाथ की पाषाण प्रतिमा है जिसे पूजने के लिए अब दूर-दूर से जैन संप्रदाय के लोग आते हैं। किले के बाहर एक भव्य जैन मंदिर का निर्माण भी किया जा रहा है। यह मूर्ति किले में कब और कैसे आई, इस विषय में कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं है।

मंदिरों के दूसरी ओर किले के कुछ स्तंभ आधे टूटे, आधे खड़े, बिखरे पड़े हैं। कहा जाता है कि अंग्रेजों ने इस स्थान को भंडार के रूप में प्रयोग किया था। यहाँ एक कुआँ है। कुएँ में एक खरगोश मरा पड़ा था।

यहाँ से कुछ आगे है मुख्य किले का वह भाग जहाँ राजा और रानियाँ रहा करती थीं। अब यहाँ मात्र फर्श ही शेष है, दीवारें गिर चुकी हैं। यहाँ से नीचे गुप्त सीढ़ियाँ थीं, जो दूसरी ओर बाग में निकलती थीं। नीचे बिलकुल सीधी पहाड़ी है जो नीचे दरिया से शुरू होती है। जहाँ गुप्त सीढ़ियाँ बनाई गईं, उस ओर लगता है आगे तक कुछ जगह थी और रास्ता भी था, जो अब पहाड़ी के गिर जाने से बराबर हो गया है। दूसरी ओर अभी भी जंगल है, जहाँ बाग हुआ करता था।

यहाँ से दूर-दूर तक का दृश्य साफ नजर आता है। पश्चिम की ओर दरिया के पार दूसरी पहाड़ी है। कहा जाता है, मुगलों ने इसी ओर से आक्रमण किया था। यही किले पर आक्रमण के लिए अपेक्षाकृत सुगम मार्ग है।

कुछ समय पहले तक किले में कहीं-कहीं, किन्हीं प्रकोष्ठों में काँगड़ा कलम के चित्र विद्यमान थे। मूर्तियाँ तो सब की सब नीचे लाई जा चुकी हैं। किला भारतीय पुरातात्त्विक सर्वेक्षण विभाग के पास है। इन मूर्तियों के लिए नीचे स्थल-संग्रहालय का निर्माण किया जा रहा है। विभाग के कार्यालय के दूसरी ओर प्रवेश द्वार से बाहर नहाने के लिए हमाम तथा बावड़ी हैं। पास ही पानी का एक चश्मा है जिसमें आज भी बारह महीने पानी रहता है।

किले के ऊपर की पहाड़ी की चोटी पर महामाया मंदिर है। साथ ही शुरू हो जाता है पुराना काँगड़ा। पुराने काँगड़े का बाजार तथा आबादी अब उजड़ चुकी है।

क्या कहता है इतिहास !

कहा जाता है, महाभारत के समय काँगड़ा का राजा सुशर्मा था जो महाभारत युद्ध में कौरवों के पक्ष में लड़ा। इस वंश के प्रथम राजा का नाम भूमिचंद था।

इतिहासकारों में सर्वप्रथम फरिश्ता ने नगरकोट या काँगड़ा का उल्लेख किया है। फरिश्ता के अनुसार कन्नौज नरेश रामदेव ने जिन पाँच सौ पहाड़ी राजाओं को हराया, उनमें एक नगरकोट भी था। पाँचवीं शताब्दी में 'राजतरंगिणी' में नगरकोट का 'त्रिगर्त' नाम से वर्णन मिलता है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने मार्च, 635 में जालंधर का भ्रमण किया और चार मास तक राजा का मेहमान रहा। कन्नौज से वापसी पर 643 में पुनः यहाँ आया।

मुस्लिम इतिहासकार उतबी (1009), अलबरूनी के बाद अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ तक इस किले व राजाओं का नाम आता रहा। यूरोपीय यात्रियों में थॉमस कोयोट, घेवेनांट, विजने तथा फोस्टर ने अपनी यात्राएँ काँगड़ा जिले से होकर कीं। मूरक्राफ्ट काँगड़ा होकर नहीं आया।

संपूर्ण उत्तरी भारत की शक्ति के प्रतीक नगरकोट किले का वर्णन कनिंघम ने यूँ किया है–

"काँगड़ा किला बाण गंगा तथा माँझी नदियों के बीच की लंबी भूमि पर अवस्थित है। इसकी दीवारें ऊपर की ओर दो मील के घेरे में हैं। किले की शक्ति लगभग 300 फुट ऊँची दीवार में है जो बाण गंगा के ऊपर सीधी खड़ी है। केवल शहर की ओर से ही किले में घुसा जा सकता है।...सबसे ऊँचे स्थान में है महल, जिसके नीचे लक्ष्मीनारायण और अंबिका देवी

के पाषाण मंदिर हैं तथा एक जैन मंदिर है जिसमें आदिनाथ की बड़ी प्रतिमा है। मंदिर परिसर एक गेट से बंद होते हैं, जिसे दर्शनी दरवाजा कहते हैं। यहाँ से महल को जाने वाले द्वार को महलों का दरवाजा कहते हैं। प्रवेश द्वार का नाम जहाँगीरी दरवाजा है। इसका मूल नाम ज्ञात नहीं है, इसके नीचे अमीरी दरवाजा तथा लोहे का दरवाजा है।"

शाहजहाँ के समय के 'मासिर उल उमरा' में उल्लेख है–

"काँगड़ा किला एक ऊँचे पहाड़ पर स्थित है। यह अत्यंत मजबूत है। इसमें 23 छज्जे तथा 7 द्वार हैं। इसका भीतरी घेरा एक कोस 15 जरेब लंबा, एक चौथाई कोस 2 जरेब चौड़ा तथा 15 से 25 जरेब ऊँचा है। किले के भीतर दो बड़े तालाब हैं।"

'शाह फतेह ए काँगड़ा' में कहा गया है–

"...इसकी इमारत बहुत सुंदर है। यह इतना पुराना है कि कोई भी इसके निर्माणकाल के बारे में नहीं जानता। किला बहुत मजबूत है, इतना कि कोई राजा इसे जीत नहीं सका।" पुरातन राजाओं के इतिहास के जानकार लोगों का कहना है कि प्रारंभ से यह एक राजपरिवार के अधिकार में ही रहा। इसकी पुष्टि मुस्लिम राजाओं के इतिहास से होती है, जिन्होंने इस देश पर राज किया। सुलतान गयासुद्दीन के शक्ति में आने (1320) से लेकर अकबर के पूरे हिंदुस्तान के स्वामी बनने तक (1556), इस किले की 52 बार घेराबंदी की गई किंतु कोई इसे जीत नहीं सका। दिल्ली के एक शासक फिरोज ने एक बार किले की घेराबंदी की किंतु उसकी कोशिश नाकाम रही। अकबर के समय के एक अमीर हसन कुली खान ने, जो बंगाल का गवर्नर था, किले पर बड़ी फौज के साथ हमला किया, जब उसे पंजाब भेजा गया था। लंबी घेराबंदी के बाद वह इसे हासिल करने में असफल रहा।

आरंभ से लेकर 4 अप्रैल, 1905 को आए भूकंप तक इसे फौजी कैंप के रूप में प्रयोग में लाया जाता रहा। भूकंप से क्षतिग्रस्त होने के बाद यह एक सुंदर स्मारक बनकर रह गया। किले के बारे में कहावत प्रचलित थी कि जिसके पास यह किला है, उसके पास सारी पहाड़ियाँ हैं।

किले की प्रतिष्ठा तथा प्रसिद्धि के कारण महमूद इसकी ओर आकर्षित हुआ। महमूद के आक्रमण तथा लूटपाट का उल्लेख उतबी की 'तारीख ए यामिनी' तथा फरिश्ता के वर्णन में मिलता है–

"सन् 1009 में सिंध नदी पर ब्रह्मपाल तथा उसके पुत्र आनंदपाल को हराने के बाद सुलतान भीमनगर किले तक गया जो ऊँची पहाड़ी पर अगम्य नदियों के पार था। वहाँ हिंद के राजा, उस प्रांत के राजाओं तथा श्रद्धालुओं द्वारा कीमती जवाहरात मूर्तियों को चढ़ाए हुए थे। यहाँ इतना धन एकत्रित था जिसे न ऊँट उठाकर ले जा सके, न कोई पास रख सके, न इसका अंदाजा लगाया जा सके।...सुलतान ने अपनी फौजों से किले को घेर लिया। जब आसपास की पहाड़ियों को फौजों से भरा पाया और तीर किले के भीतर आने लगे तो किले के द्वार खोल दिए गए।"

फरिश्ता ने जिक्र किया है–

"सुलतान अपने धर्म-प्रचार के जोश में नगरकोट के हिंदुओं के विरुद्ध आगे बढ़ा और

मूर्तियाँ और मंदिर तोड़ डाले। किला, जिसे उस समय 'भीम किला' नाम से जाना जाता था, पहले ही लूटा जा चुका था। भीम किला से 7,00,000 सोने के दीनार, 700 मन सोना तथा चाँदी, 200 मन शुद्ध सोना, 2000 मन चाँदी तथा 20 मन हीरे-मोती-जवाहरात महमूद द्वारा लूटकर गजनी ले जाए गए।"

कनिंघम ने कहा है कि सोने-चाँदी की कीमत लगाने का तो कोई हिसाब ही नहीं है। केवल सिक्कों की कीमत 17,50,000 पौंड से ऊपर थी।

महमूद गजनी द्वारा किले में छोड़ी गई सेना संभवत: 1043 तक यहाँ रही। इसके बाद दिल्ली के तोमर वंश के शासक द्वारा हाँसी, थानेसर आदि स्थानों पर विजय पाने के बाद नगरकोट को भी मुगल शासकों से मुक्त कराया।

खँडहर बोलते हैं

सुजानपुर टीहरा। महाराजा की उपाधि से विभूषित काँगड़ा के अंतिम स्वतंत्र शासक संसारचंद की राजधानी।

राज्य जितना विशाल था, राजा जितना बड़ा, आज राजधानी उतनी ही जीर्ण-शीर्ण। हिमाचल के अधिकांश शासकों की राजधानियों की जो रूपरेखा है, वही सुजानपुर की भी है। सीमा पर एक ऊँचा द्वार। द्वार के भीतर शहर। शहर के साथ चौगान। ऊँची जगह पर महल, मंदिर। चंबा, कुल्लू, नाहन, मंडी सब जगह एक-सा है। वैसे ही द्वार, शहर, चौगान और महल। इन स्थानों में पुराने बसे शहर अभी भी बसे हुए हैं। बढ़े और फले-फूले भी हैं। सुजानपुर में ऐसा नहीं है। पहले इसे आसपास के लोग शहर कहते थे। आज आसपास शहर उग आए हैं, सुजानपुर छोटा कस्बा रह गया है। गाँव की तरह उपेक्षित। रौनक के नाम पर, विकास के नाम पर चौगान के एक ओर सैनिक स्कूल है, बस। एक पुराना सरकारी स्कूल भी है, जो सही अर्थों में पुराना है। छोटा-सा बाजार। बाजार के पीछे रहने वाले अधिकांश ब्राह्मण परिवार जिनमें राजपरिवार के पुरोहित भी रहे हैं, डोगरा कहलाते हैं। व्यापार वाणिज्य से जुड़े कुछ महाजन परिवार आज भी यहाँ दुकानदारी करते हैं।

राजधानी के मुख्य द्वार पर 'संकटमोचन द्वार' लिखा है। इसे भलेठ का दरवाजा भी कहते हैं। यह द्वार महलों से लगभग तीन किलोमीटर दूर दरिया के पास है। द्वार के आगे समतल जगह में बाग-बगीचे हैं। बाग खत्म होने पर नीचे चौगान आरंभ होता है तो ऊपर पहाड़ी पर महलात। चौगान के दूसरे सिरे पर मंदिर हैं, नौण-बावड़ियाँ हैं। पुराने घर व आबादी हैं। यहीं नर्वदेश्वर का प्रसिद्ध मंदिर है, जो काँगड़ा कलम का एक जीता-जागता उदाहरण है। दूसरी ओर व्यास नदी बहती है, जिसका अधिकांश पानी अब पंडोह में सतलुज में मिलाने के लिए रोक दिया है। पंडोह से आगे खड्ड-नाले मिलकर यहाँ व्यास

होने का वहम पैदा करते हैं।

ऊँची पहाड़ी पर स्थित महलों से नीचे चौगान और पूरा सुजानपुर दिखता है। ऊपर की जगह को टिहरा कहते हैं, इसलिए दोनों को मिलाकर पुराना नाम सुजानपुर टिहरा है। ऊपर खड़े होने पर दूर-दूर तक फैली पहाड़ियों के ऊपर धौलाधार की बर्फीली चोटियाँ नजर आती हैं। नीचे छोटी पहाड़ियाँ और समतल भूमि। उत्तर-दक्षिण-पूर्व-पश्चिम, जहाँ भी नजर जाती है, महाराजा संसारचंद का राज्य है, जो वास्तव में था भी। जैसा कि कई लोककथाओं में होता है, दाता ने कहा, देखो, तुम्हें कहाँ तक नजर आता है। कथा नायक ने बात का मर्म जानने के लिए कुछ सीमा बताई। दाता ने फिर पूछा तो नायक ने कुछ और आगे बताया। अंत में दाता ने कहा कि जाओ ! जहाँ तक तुम्हारी नजर जाती है, वहाँ तक सारी पृथ्वी तुम्हारी। कुछ ऐसा ही वरदान था राजा संसारचंद को। किंतु यह वरदान किसी दाता ने नहीं दिया, संसारचंद ने अपने बाहुबल से पाया था।

महलों के मुख्य द्वार पर दो बोर्ड लगे हैं। एक केंद्रीय पुरातत्त्व विभाग की हिदायतों की नीली पाटिका और दूसरा 'कटोच गढ़'। यह महल केंद्रीय पुरातत्त्व विभाग का संरक्षित स्मारक है। कटोच गढ़ का बोर्ड इसे चुनौती देता हुआ-सा खड़ा है।

मुख्य द्वार इतना बड़ा है कि सवार सहित हाथी आराम से निकल जाए। द्वार के दोनों ओर दोमंजिली ड्योढ़ियाँ हैं। बाईं ओर की ड्योढ़ी में अभी भी बहुत कुछ सलामत है जबकि दूसरी ओर बीच से लेंटर टूट गया है।

ड्योढ़ी के भीतर खुले दालान की एक ओर गौरीशंकर मंदिर है तो दूसरी ओर बारादरी। दालान में एक बड़ा स्नानगृह है, जिसमें महाराजा पानी में रंग मिला होली खेलते थे। आगे महलों के खँडहर। और आगे जाकर एक और मंदिर।

गौरीशंकर मंदिर अभी सलामत है। मंदिर की बाहरी दीवार पर काँगड़ा शैली में सुंदर बेलबूटे निर्मित किए गए हैं। इस मंदिर से कुछ वर्ष पूर्व मूर्ति चुराने की कोशिश की गई थी, किंतु मूर्तिकार का आधार नट-बोल्ट से कसा होने के कारण उखाड़ी नहीं जा सकी।

इन महलों में कहाँ राजा रहते थे, कहाँ रानियाँ। कहाँ दीवान, कहाँ सिपाही, यह बताने वाला आज कोई नहीं है। किंतु विशाल बारादरी का वर्णन कई जगह मिलता है, जिसमें बाईस दरवाजों से बाईस पहाड़ी राजा आते थे।

सिरमौर से लाहौर तक राज्य विस्तार का सपना देखने वाला पहाड़ी महाराजा संसारचंद इन खँडहरों में पुनः जी उठता है।

महाराजा का दरबार लगा है। बाईस पहाड़ी राजा बारादरी के बाईस दरवाजों से महाराजा को भेंट लिए प्रकट होते हैं। महाराजा रणजीत सिंह पर धावा बोलने की मंत्रणा की जाती है और लाहौर तक सीमा बढ़ाने की योजनाएँ बनती हैं।

दूसरे दृश्य में महाराजा होली खेल रहे हैं। काँगड़ा कलम के चित्रकार उन्हें होली खेलते हुए चित्रित कर रहे हैं। नहाने के बाद संसारचंद कलाकारों, शिल्पियों, कथाकारों, गुणीजनों को भेंट देते हैं। प्रजा में दीन-दुखियों को अभयदान देते हैं।

किसने बनवाए ये महल ! ये दुर्ग !

'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल्ज स्टेट्स' में उल्लेख है कि राजा अभयचंद ने 1748 में सुजानपुर में दुर्ग बनवाए। इसके बाद राजा घमंडचंद ने व्यास नदी के किनारे नगर बसाया और राजधानी बनाई। घमंडचंद एक शक्तिशाली और लोकप्रिय राजा था जिसने काँगड़ा किले को छोड़ लगभग सारा राज्य अपने अधिकार में कर लिया। उसने कई दुर्ग बनाए और कलाकारों को संरक्षण दिया।

1774 में घमंडचंद की मृत्यु के बाद पुत्र तेगचंद राजा बना, जिसने केवल एक वर्ष राज किया। इसके बाद संसारचंद 1775 में गद्दी पर बैठा। पिता की मृत्यु तथा गद्दी सँभालने के समय वह केवल दस वर्ष का था।

दस वर्ष की अल्पायु में राजा बनने पर संसारचंद ने राज्य की बागडोर कुशलता से सँभाली और उसने पूर्वजों द्वारा संरक्षित राज्य की रक्षा करते हुए 21 वर्ष की आयु में (लगभग 1787) गौरवपूर्ण पैतृक किला 'काँगड़ा किला' जीतकर पहाड़ों का सर्वशक्तिमान राजा बनने का गौरव प्राप्त कर लिया। चंबा मंडी, कुटलेहड़, कलूहर राज्यों को हटाकर अपनी सीमाएँ बढ़ाईं। 1776 में बैजनाथ मंदिर की मरम्मत करवाई।

1871 में मुरली मनोहर मंदिर, 1874 में गौरीशंकर मंदिर बनवाया। काँगड़ा कलम को संरक्षण दिया और कलाकारों, कथावाचकों, शिल्पियों को प्रोत्साहन दिया। अपने सैंतालीस वर्ष के शासन में लगभग बीस वर्ष तक निष्कंटक राज करते हुए संसारचंद ने दूसरा अकबर, हातिम और अपने समय के रुस्तम का खिताब पाया।

1803-04 में महाराजा संसारचंद ने दो बार मैदानों पर आक्रमण किया किंतु दोनों ही बार रणजीतसिंह से हारना पड़ा। वह समय रणजीतसिंह के उदय का समय था। यदि दूसरा समय होता तो संभवतः संसारचंद का लाहौर तक पहुँचने का सपना साकार हो जाता।

बार-बार हमलों के कारण तथा हार के भय से पहाड़ी राजा संसारचंद के विरुद्ध हो गए। राजा बिलासपुर ने संसारचंद के विरुद्ध गोरखों को काँगड़ा पर आक्रमण का निमंत्रण दिया। संसारचंद महल मोरिया में गोरखों से बहादुरी से लड़ा किंतु हार हुई और रणजीतसिंह से सहायता लेने को बाध्य होना पड़ा जिसका अर्थ था रणजीतसिंह की पराधीनता।

यदि राजा बिलासपुर गोरखों को आक्रमण के लिए बुलावा न देता और उधर रणजीतसिंह की शक्ति का उदय न होता, तो यह पहाड़ी शासक अपनी सीमाएँ पहाड़ों से भी आगे ले जाता।

इस हार के बाद निरंतर गोरखों द्वारा पहाड़ों को लूटा गया। समस्त पहाड़ी शासक सिक्ख शासकों के अधीन हुए। महाराजा संसारचंद को अपने अंतिम दिन कष्ट में बिताने पड़े।

विलियम मूर क्राफ्ट तथा जार्ज ट्रीबेक ने अपने संस्मरणों (जून 1820) में लिखा है–

"कुछ वर्ष पूर्व संसारचंद सतलुज से लेकर सिंधु नदी तक के क्षेत्र के सबसे बलवान राजा थे। सतलुज से कश्मीर तक के राजा उनके अधीन थे, उन्हें 'कर' देते थे। संसारचंद

की माली हालत बहुत अच्छी थी। पैंतीस लाख रुपए की उनकी वार्षिक आय थी। अब वे गरीबी के साथ दिन काट रहे हैं···।"

चार वर्षों तक गोरखों द्वारा उत्पीड़न का वर्णन उन्होंने यूँ किया है—"इन अभागे दिनों की स्मृति पहाड़ के इतिहास में एक सीमा चिह्न के समान है। देश का कुछ हिस्सा तो उनके (गोरखों के) अधिकार में था, कुछ जिसमें काँगड़ा का दुर्ग और अन्य कुछ किले शामिल थे, कटोचों के। एक दल दूसरे दल के अधिकारगत इलाके पर इसलिए लूटमार करवाता था कि यह उसके साधनों को कमजोर कर दे। जनता किंकर्तव्यविमूढ़ होकर अड़ोस-पड़ोस के राज्यों में भाग गई। कुछ चंबा में, कुछ जालंधर दोआब में। तीन वर्षों तक अराजकता की यह स्थिति बनी रही। काँगड़ा की इस उर्वर घाटी में फसल का एक पत्ता तक पैदा न हुआ। नगरों में घास जम गई थी तथा नादौन की सड़कों पर सिंहनियों के बच्चे पैदा होने लगे थे।"

सुजानपुर टिहरा के ये खँडहर आज महाराजा संसारचंद के अंतिम दिनों की भाँति दीन-हीन दशा में खड़े हैं, स्वर्णिम अतीत की याद दिलाते हुए।

श्री वज्रेश्वरी मंदिर

वर्तमान मंदिर

वज्रेश्वरी का वर्तमान मंदिर काँगड़ा शहर के मध्य में स्थित है। मंदिर का धवल शिखर दूर-दूर से देखा जा सकता है। मंदिर के सामने धौलाधार की पहाड़ी है।

मंदिर परिसर एक परकोटे से घिरा हुआ है, जिसके बाहर की ओर अब दुकानें और मंदिर में आने के लिए सीढ़ियाँ हैं। मुख्य द्वार काफी बड़ा है, जहाँ भीतर जाते ही नगारा व वाद्यवादकों के बैठने का ऊँचा स्थान बना हुआ है। ऐसा राजस्थान के मंदिरों में देखा जा सकता है, जहाँ बड़े-से मुख्य द्वार पर नगारा-शहनाई वादक बैठकर समय-समय के अनुरूप वाद्य-धुनें बजाते हैं। मुख्य द्वार, प्रवेश द्वार तक पर्याप्त स्थान है।

प्रवेश द्वार पर चाँदी मढ़ी है जिसमें विभिन्न देवी-देवता उकेरे गए हैं। प्रवेश द्वार पर ही गंगा-यमुना की प्राचीन मूर्तियाँ भी हैं। सभा मंडप में कई खंभे हैं। गर्भगृह पर कलश मंडित शिखर है। मुख्य द्वार तथा भीतरी मंदिर के गुंबद, शिखर, कलश, स्तंभ वास्तुकला का एक मिश्रित विन्यास दर्शाते हैं जो मध्यकाल में रहा है।

मुख्य पिंडी वज्रेश्वरी की है। पिंडी के समय एक अष्टधातु का त्रिशूल है। वज्रेश्वरी के साथ भद्रकाली और एकादशी की पिंडियाँ भी हैं, किंतु मुख्य पूजा वज्रेश्वरी की होती है। पूजा का लिखित विधान है। वज्रेश्वरी को दस महाविधाओं में त्रिपुर सुंदरी माना जाता है, अतः त्रिपुर सुंदरी के रूप में पूजा की जाती है।

मंदिर परिसर के पीछे कपालेश्वर महादेव का मंदिर है। इस मंदिर के दर्शन किए बिना माँ की पूजा अधूरी मानी जाती है। मंदिर के प्रांगण में कुछ प्राचीन मूर्तियाँ भी बिखरी पड़ी हैं जो पुराने मंदिर का अवशेष हैं।

मंदिर के कक्ष में जालंधर दैत्य को कुचलने की मुद्रा में एक दुर्लभ देवी-प्रतिमा भी है।

ऐतिहासिक तथा पुरातात्त्विक महत्त्व

वज्रेश्वरी मंदिर को 'नगरकोट धाम', 'कोट काँगड़े वाली माता', 'भौणा या भवना वाली' कहा जाता है। इस मंदिर को स्वर्ण मंदिर भी कहा गया है।

मंदिर क्या वर्तमान स्थान पर ही था या काँगड़ा किले के साथ था, यह ज्ञात नहीं है। किंतु कोट या किले से लेकर पुराने काँगड़ा सहित माता के मंदिर तक पूरे क्षेत्र को 'नगरकोट' कहा जाता था। मंदिर निश्चित रूप से नगरकोट का ही एक भाग था।

सर्वप्रथम नगरकोट पर सन् 1009 में महमूद गजनवी द्वारा आक्रमण किया गया, जिसने वज्रेश्वरी मंदिर को भी लूटा। उतबी के अनुसार यहाँ से इतना सोना-चाँदी, हीरे-जवाहरात प्राप्त हुए कि ले जाने के लिए घोड़े-खच्चर कम पड़ गए। गजनवी माता की सोने की प्रतिमा भी ले गया। सन् 1337 में मुहम्मद तुगलक ने आक्रमण किया और लूटा। सन् 1365 में फिरोजशाह तुगलक ने नगरकोट पर आक्रमण किया और लूटपाट की। वह ज्योतिष तथा दर्शन की तेरह सौ पुस्तकें भी फारसी में अनुवाद के लिए ले गया।

राजतरंगिणी के अनुसार कश्मीर के शहाबुद्दीन ने सन् 1383-86 के बीच आक्रमण किया। सन् 1504 में शेरशाह सूरी द्वारा लूटपाट की गई।

मंदिर के द्वार मंडप में एक अभिलेख के अनुसार मंदिर का निर्माण शाही मुहम्मद के शासनकाल में हुआ। कनिंघम का मत है कि शाही मुहम्मद, मुहम्मद शाह ही था जिसका शासनकाल 1433 से 1446 है। इस अवधि में यहाँ कटोचवंशीय राजा संसारचंद था, जिसका राज्यारोहण 1429-30 के बीच हुआ। अभिलेख में संसारचंद (प्रथम) के पिता का नाम कर्मचंद्र तथा दादा का नाम मेघचंद्र लिखा है। हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल्ज स्टेट्स में संसारचंद्र प्रथम का सिंहासनारूढ़ होना सन् 1430 में दिया है। इसके पिता तथा दादा का नाम भी वही है, जो अभिलेख में है। यह दिल्ली के मुहम्मद शाह के समकालीन था।

1540 में शेरशाह सूरी के सेनापति ने यहाँ लूटपाट की और देवी की पाषाण प्रतिमा दिल्ली ले जाकर टुकड़े-टुकड़े कर दी। देवी के छत्र को (जिस पर निर्माणकाल अंकित था) पानी पीने के लिए प्रयोग में लाया गया।

मुगल सम्राट अकबर की श्रद्धा श्री ज्वालाप्रसाद तथा वज्रेश्वरी में लोकगीतों के माध्यम से पता चलती है, ऐतिहासिक प्रमाण इसमें नहीं है। महाराजा रणजीत सिंह के काँगड़ा दुर्ग पर कब्जा करने के बाद (सन् 1809) काँगड़ा के गवर्नर देसा सिंह मजीठिया ने मंदिर में गुंबद का निर्माण कराया। महाराजा शेरसिंह की महारानी चाँद कौर ने सोने के पतरे चढ़ाए। महाराजा रणजीत सिंह ने अपनी करबद्ध मूर्ति तथा सोने का छत्र चढ़ाया, जो आज भी मंदिर में सुरक्षित है।

1905 का भूकंप

4 अप्रैल, 1905 को आए भीषण भूकंप में वज्रेश्वरी का मंदिर धराशायी हो गया। भूकंप से पूर्व यह मंदिर वर्गाकार था, जिसके ऊपर एक गुंबद था। काँगड़ा गजेटियर (1924-25) में एक प्रत्यक्षदर्शी ने इस बारे में लिखा है, "पड़ाव वाले मैदान के सामने की ओर वृक्षों से ढकी निचली पहाड़ी, जिस पर नगर तथा मंदिर स्थित था, वहाँ किसी भी भवन का कोई चिह्न नजर नहीं आ रहा था। फिर भी वृक्षों के बीच भवन अर्थात् स्वर्ण मंदिर की छत से प्रतिबिंबित पीले प्रकाश की झलक दिखाई देती है। मंदिर की ओर जाने वाले रास्ते के दोनों ओर मुझे कदम-कदम पर भूकंप द्वारा हुए विनाश के प्रमाण स्पष्ट नजर आ रहे हैं। भग्नावशेषों में से गुजरते हुए मैं मंदिर के मलबे के ऊपर की ओर निकल आया और देखा कि मोटी-मोटी दीवारों में दरारें पड़ी हुई थीं। छोटे मंदिर बुरी तरह टूटे हुए थे और इस सारे मलबे के ढेर पर तिरछा टिका हुआ था मंदिर का स्वर्ण छत्र और गुंबद।"

मंदिर के पुनर्निर्माण के लिए ब्रिटिश सरकार ने टेम्पल प्रोटेक्शन एक्ट 1860 के तहत लाहौर, अमृतसर तथा काँगड़ा के हिंदुओं की एक एसोसिएशन बनाई किंतु वंशानुगत पुजारियों के विरोध पर न्यायालय द्वारा 'काँगड़ा टेम्पल रेस्टोरेशन एंड एडमिनिस्ट्रेशन कमेटी' 10 दिसंबर, 1928 को बनाई गई। मंदिर की रूपरेखा मेयो कॉलेज, लाहौर के प्रिंसिपल सरदार बहादुर भाई राम सिंह ने तैयार की।

4 नवंबर, 1929 को पुनः भूकंप से कुछ क्षति हुई। अंततः सन् 1930 में पुनः मंदिर बनकर तैयार हो गया।

मंदिर के पुनर्निर्माण के समय मिली मूर्तियों में कुछ पुरातात्त्विक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। प्रवेश द्वार पर गंगा-यमुना की मूर्तियाँ हरमन गोट्ज के अनुसार सातवीं शताब्दी की हैं। मंदिर में जालंधर दैत्य को पैरों तले कुचलती देवी मूर्ति दसवीं शताब्दी की मानी जाती है। गणेश, द्वारपाल, संगमरमर की आयताकार शिला, अलंकृत चाँदी के पतरे आदि सामग्री खुदाई में मिली थी जो अब भी सुरक्षित है।

पौराणिक कथा

जालंधर दैत्य, जो शुक्राचार्य की संजीवनी विद्या से अजेय हो गया था, जालंधर पीठ के भूभाग में उत्पात मचाए हुए था। सभी देवताओं को उसने परास्त कर दिया। अंत में देवताओं ने छल से उसे मार दिया और पृथ्वी में खोदे एक गड्ढे में उसका सिर गाड़ दिया। जालंधर दैत्य आस्तिक था। उसकी पत्नी पतिव्रता थी। पत्नी वृंदा के भय से अब सभी देवता छिप गए किंतु विष्णु वृंदा के मोहिनी रूप से भ्रमित होकर घूमने लगे। देवता चिंतित हो जगदंबा की शरण में गए। जगदंबा ने विष्णु को बाणगंगा में स्नान कर त्रिपुर सुंदरी की आराधना करने को कहा। ब्रह्मा ने भी बाणगंगा में स्नान कर जालंधर के शरीर पर वीरासन की आराधना की। अंततः विष्णु का भ्रम दूर हुआ। जालंधर क्योंकि आस्तिक था, अतः उसके वध का स्थान भी पवित्र माना गया।

एक अन्य कथा के अनुसार जालंधर दैत्य की मृत्यु के बाद उसका पृष्ठभाग वज्र के समान कठोर हो गया, जिसे वज्रेश्वरी ने पैरों से रौंदकर अटल किया। जालंधर का शरीर अड़तालीस कोस लंबा माना जाता है।

अतः वज्रेश्वरी अर्थात् वज्र के समान कठोर शिला पर आसीन देवी नाम हुआ। जालंधर क्षेत्र अड़तालीस कोस के वृत्त में माना जाता है।

यह भी जनश्रुति है कि देवताओं की प्रार्थना पर वज्रेश्वरी ने जालंधर का वध किया और इसका सिर गड्ढे में दबा दिया। अतः 'क' (सिर) और 'गड़ित' (गाड़ना) काँगड़ा शब्द बना।

जालंधर पीठ को गुरु गोरखनाथ के गुरु जालंधर नाम से भी जोड़ा जाता है।

एक अन्य पौराणिक संदर्भ सती के पिता दक्ष के यज्ञ का है। माना जाता है कि उन्मत्त शिव सती की देह को उठाए घूम रहे थे तो यहाँ सती का मुँह या फिर वक्षस्थल गिरा।

वज्रेश्वरी मंदिर के पास वीरभद्र मंदिर, गुप्तगंगा, अच्छरा कुंड, चक्रकुंड, सूर्यकुंड, कुरुक्षेत्र कुंड आदि मंदिर व स्नान तीर्थ हैं।

श्री चामुंडा नंदिकेश्वर

श्री चामुंडा नंदिकेश्वर धाम धर्मशाला-पालमपुर सड़क मार्ग में धर्मशाला से पंद्रह किलोमीटर है। पठानकोट-बैजनाथ राजमार्ग से जाएँ तो मलाँ से धर्मशाला सड़क पर चार किलोमीटर दूर चामुंडा आता है। पठानकोट-पपरोला रेलमार्ग द्वारा मलाँ में उतरकर चामुंडा पहुँचा जा सकता है।

चामुंडा में देवी मंदिर नया है और बहुत ही कम समय में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की है। बनेर खड्ड के दाएँ किनारे स्थित चामुंडा मंदिर में मुख्य प्रवेश द्वार पुल के साथ ही आता है। यहाँ से कुछ आगे जाकर दूसरा द्वार है। चामुंडा का मंदिर गर्भगृह, गुंबद और शिखर के रूप में निर्मित है। गर्भगृह के बाहर प्रदक्षिणा पथ के साथ-साथ बैठने के लिए पर्याप्त स्थान बना है। गर्भगृह में माँ चामुंडा की पिंडी है। द्वार पर हनुमान और भैरव की मूर्तियाँ हैं।

मंदिर के साथ प्राचीन नंदिकेश्वर मंदिर है। यह प्राचीन मंदिर गुफानुमा है। एक बहुत बड़े पत्थर के साथ लगभग बैठकर नीचे उतरना होता है। नीचे शिवलिंग स्थित है।

जो व्यक्ति चामुंडा मंदिर जाए, वह नंदिकेश्वर धाम जाए बिना नहीं रह सकता। नंदिकेश्वर धाम प्राचीन मंदिर है, जहाँ प्रतिष्ठित तीर्थ और श्मशान हुआ करता था। पहले जब यहाँ शव न आए तो घास जलानी पड़ती थी।

चामुंडा मंदिर कमेटी पहली बार 1939 में बनी। इस कमेटी ने धार्मिक स्थान के

जीर्णोद्धार का काम हाथ में लिया। मंदिर-निर्माण के साथ-साथ सराय, लंगर, संस्कृत पाठशाला आदि के प्रावधान हुए। मंदिर के साथ स्नान के लिए मंजप घाट का निर्माण हुआ।

अब इस मंदिर को सरकार द्वारा अधिनियम के अंतर्गत ग्रहण किया है और जिलाधीश काँगड़ा की अध्यक्षता में प्रबंध समिति बनी हुई है। मंदिर-सराय-निर्माण आदि कार्य चले हुए हैं।

चामुंडा देवी स्थानीय अवस्थी लोगों की कुल देवी है। अवस्थी लोग यज्ञोपवीत संस्कार अब भी मंदिर में करते हैं।

चामुंडा में देवी के साथ गुफा में शिव का वास है। यहाँ से ऊपर चीड़ वन में साढ़े चार हजार फुट की ऊँचाई पर माता भयभंजनी का पुराना मंदिर है। एक पुराना किला है जिसे राजा घमंडचंद ने बनवाया।

पौराणिक कथा

आचार्य प्रह्लादनंद कृत 'जालंधर पीठ दीपिका' में काँगड़ा की व्युत्पत्ति 'क' (शिर), 'गडितः' (गाड़ा गया)—जहाँ सिर गाड़ा गया वह काँगड़ा, दी गई है। जालंधर दैत्य का सिर काँगड़ा में गाड़ा गया। जालंधर माहात्म्य में चामुंडा नंदिकेश्वर क्षेत्र का भी वर्णन है। जालंधर माहात्म्य में देवी का वर्णन इस प्रकार किया है—

"चंड-मुंड नाम के दो दैत्य शुम्भ-निशुम्भ के सेनापति थे। ये दोनों दैत्य चंडिका को पकड़ने गए। उसी समय सूखे हुए मांस वाली, जीभ लपलपाने के कारण अति भयंकर लगने वाली, नरमुंड माला से युक्त, भयंकर दाढ़ों वाली महेश्वरी प्रकट हुई। श्रीदेवी की आज्ञा से काली ने चंड-मुंड के सिरों को काटकर देवी के आगे रख दिया। देवी प्रसन्न हुई और कहा, 'तुम चंड-मुंड के सिरों को काट मेरे पास लाई हो, अतः संसार में चामुंडा के नाम से विख्यात होगी।' "

एक अन्य कथा के अनुसार कई वर्ष पूर्व देवी ने अपने अनन्य भक्त को स्वप्न में आदेश दिया कि उनकी एक प्राकृतिक शिला बाणगंगा में पड़ी है। इसे निकालकर स्थापित किया जाए। भक्त ने प्रातः वह शिला ढूँढ़ी और यहाँ स्थापित किया।

कालिका पुराण, दुर्गा सप्तशती में भी चामुंडा वर्णन जालंधर माहात्म्य की भाँति ही आया है। चामुंडा ने काली रूप धरकर चंड-मुंड को मारा और कहा कि शुम्भ-निशुम्भ को तुम स्वयं मारोगी। तब चंडिका (या अंबिका) ने चंड-मुंड के वध के कारण काली देवी को चामुंडा नाम दिया।

चामुंडा मंदिर के सामने, नदी पार दुर्गा मंदिर है। यहाँ बाबा घासीराम का स्थान भी है। सामने की पहाड़ी पर काँगड़ा के पराक्रमी राजा चंद्रभान का किला है, जिसने मुगलों से लोहा लिया। देवी का मूल स्थान इसी पहाड़ी पर माना जाता है।

श्री ज्वालामुखी मंदिर

श्री ज्वालामुखी मंदिर संपूर्ण उत्तरी भारत का एक ऐसा प्रसिद्ध मंदिर है जिसमें कोई मूर्ति नहीं है। मंदिर के गर्भगृह में सात दरारों से उठती ज्वालाएँ ही प्रत्यक्ष देव के रूप में उपस्थित हैं। जैसे सूर्य प्रत्यक्ष देव है, वैसे ही ये ज्वालाएँ प्रत्यक्ष देव के रूप में पूजी जाती हैं। देवी 'लाटाँ वाली' के नाम से भी प्रसिद्ध है। मंदिर धर्मशाला से 56 किलोमीटर काँगड़ा-हमीरपुर मार्ग पर स्थित है।

ज्वालामुखी बाजार के सिरे पर ठीक पहाड़ी के नीचे मंदिर स्थित है। प्रवेश के लिए सिंहद्वार है, जिसके भीतर मंदिर-परिसर है। गर्भगृह एक कुंड है जिसके भीतर ज्वाला निकलती है। ऐसी ज्वालाएँ प्रदक्षिणा पथ के साथ दीवारों से निकलती हैं। ये ज्वालाएँ अनादिकाल से जल रही हैं।

मुख्य मंदिर के सामने शय्या भवन, अन्य मंदिर स्थित हैं। एक मंदिर में किसी धातु का तवा पड़ा है, जो लोकास्था के अनुसार सम्राट् अकबर द्वारा ज्वाला को ढकने के लिए प्रयोग में लाया गया था।

मंदिर के ऊपर बाईं ओर सीढ़ियाँ चढ़कर गोरख डिब्बी है। यहाँ एक गढ़े में साधु धूप दिखाते हैं, जिससे आग का शोला ऊपर उठता है। गोरख डिब्बी में पानी खौलता हुआ नजर आता है, जो वास्तव में ठंडा है।

मंदिर के निर्माण संबंधी अधिकांश लोकविश्वास जुड़े हैं। इनकी ऐतिहासिक पुष्टि नहीं होती। यद्यपि राजाओं द्वारा इसके जीर्णोद्धार व रखरखाव के लिए सहायता दी जाती रही। काँगड़ा के राजाओं ने इसे प्रश्रय दिया। सन् 1809 में महाराजा रणजीत सिंह और संसारचंद्र के मध्य हुई संधि में देवी को साक्षी माना गया। महाराजा रणजीत सिंह ने सन् 1815 में मंदिर की छत को स्वर्ण मंडित करवाया। रणजीत सिंह के पुत्र खड्गसिंह ने सन् 1840-41 के बीच मुख्य द्वार को चाँदी की चादरों से मढ़वाया।

लोकास्था है कि सम्राट अकबर ने देवी की शक्ति को आजमाने के लिए ज्वाला पर लोहे का तवा रख दिया। ज्वाला माई ने तवा फाड़ दिया और बाहर निकल आई। अब सम्राट ने श्रद्धावश सोने का छत्र चढ़ाया जो लोहे का बन गया। वह तवा अब भी एक मंदिर में रखा हुआ है। इस घटना के साथ एक लोकगीत भी बना है–

नंगी नंगी पैराँ मैय्या अकबर आया
सूने दा छत्तर चढ़ाया

इस घटना की इतिहास पुष्टि नहीं करता अलबत्ता यह घटना सम्राट अकबर की धार्मिक भावना की श्रद्धा मात्र हो सकती है।

मुख्य मंदिर गोरख डिब्बी से ऊपर टेढ़ा मंदिर, अर्जुननागा मंदिर आदि स्थित हैं।

ज्वालामुखी में गैस होने के संदेह के कारण यहाँ से ऊपर पहाड़ी में बरमा लगाया गया है। गैस न निकलने पर जब खुदाई या ड्रिलिंग का काम बंद हुआ तो इससे संबंधित भी

लोकगीत बने।

मंदिर इस समय सरकार द्वारा अधिगृहीत किया गया है। मंदिर के पास लंगर भवन तथा बाजार से आगे चुंगी के पास यात्री निवास का निर्माण किया गया है। देवी की पाँच आरतियाँ होती हैं। पूजा में चावल, कपूर, पान, लौंग, इलायची का उपयोग किया जाता है।

पौराणिक कथा

शिव महापुराण, जो दक्ष प्रजापति के यज्ञ की कथा है, ज्वालामुखी के प्रादुर्भाव को भी उसी कथा से जोड़ा जाता है। जब सती द्वारा यक्ष कुंड में छलाँग लगा दी गई तो शिव सती का शव लिए पर्वतों पर व्याकुल हो विचरते रहे। विष्णु ने अपने चक्र से सती के अंग स्थान-स्थान पर गिराए। इन अंगों के गिरने से इक्यावन शक्तिपीठ बने, जिनमें से बयालीस भारत में हैं। एक पाकिस्तान में है, एक श्रीलंका में, एक तिब्बत और दो नेपाल में हैं। ज्वालामुखी में सती की जिह्वा गिरी।

लोकगीतों में पाँचों पांडवों द्वारा मैया के भवन बनाने का भी उल्लेख है।

मुख्य मंदिर के साथ गोरख डिब्बी, नागार्जुन, शिवालय, टेढ़ा मंदिर, अंबिकेश्वर, गायत्री, तारा, गणेश के मंदिर भी आसपास स्थित हैं।

महाकाल मंदिर, महाकाल बैजनाथ

श्री महाकाल का मंदिर बैजनाथ-चौबीन सड़क पर बैजनाथ से लगभग आठ किलोमीटर की दूरी पर है। इस मंदिर का संचालन स्थानीय कार्यकर्ताओं द्वारा किया जाता है। मंदिर का पुजारी पैतृक है, जिसे मंदिर का चढ़ावा मिलता है। मंदिर की भूमि मुजारा कानून के तहत चली गई है। मंदिर में शरद नवरात्रों में भंडारा तथा श्रीकृष्ण जन्माष्टमी और महाशिवरात्रि के अवसर पर जागरण होता है। मंदिर के बारे में 'जालंधर पीठ' नामक पुस्तिका में कुछ उद्धरण मिलते हैं। मंदिर शाहचंद्र कटोच ने सन् 1783 में बनवाया। यहाँ निर्जला एकादशी को मेला लगता है।

शीतला माता मंदिर, उस्तेहड़

बैजनाथ से लगभग दो किलोमीटर बैजनाथ-चौबीन सड़क पर शीतला माता का मंदिर स्थित है। शिखर शैली का यह मंदिर एक प्राचीन मंदिर है जिसमें पैतृक पुजारी पूजा करते हैं।

मंदिर का चढ़ावा, जो दानपात्रों में जाता है, वह मंदिर समिति को मिलता है और जो खुले में चढ़ावा आता है, उस पर पुजारी का अधिकार होता है। मंदिर की प्रबंध-व्यवस्था के लिए एक समिति गठित है। मंदिर में ज्येष्ठ महीने के प्रत्येक मंगलवार को मेला लगता है।

अष्टभुजा मंदिर

श्री ज्वालामुखी से लगभग डेढ़ किलोमीटर दूर बोहण नामक स्थान में अष्टभुजा देवी का शिखर शैली का मंदिर है। शिखर शैली का माता का मंदिर यद्यपि नया है, देवी का स्थान प्राचीन है। यह स्थान तांत्रिक सिद्धि के लिए प्रसिद्ध रहा है। मंदिर के भीतर अष्टभुजा देवी, सूर्य, लक्ष्मी तथा काली की प्रतिमाएँ हैं। मंदिर में कभी कुमारानंदनाथ रहा करते थे, जिनके शिष्य प्रह्लादानंद ने यहाँ दस शिवलिंगों का उल्लेख किया है। चामुंडा की भाँति यहाँ भी शिव और शक्ति का स्थान है।

मनसा देवी तथा मध्येश्वर महादेव

मनसा देवी का छोटा-सा मंदिर गाँव अरला में स्थित है। मनसा देवी यहाँ के चौधरी परिवार की कुलजा है। मंदिर में नवरात्र उत्सव मनाया जाता है। अरला के साथ सलोह में धान के खेतों के बीच मध्येश्वर महादेव का मंदिर है। मंदिर के साथ श्मशान है।

भागसू नाग मंदिर

धर्मशाला के मेकलोडगंज से लगभग दो किलोमीटर भागसू नाग का मंदिर है। मेकलोडगंज अब महापावन दलाईलामा के आवास के कारण प्रसिद्ध हुआ है। अब एक अन्य बौद्ध विहार भी बन गया है। दलाईलामा के आवास के साथ धर्मशाला के ऊपर की इस पहाड़ी पर तिब्बत की निर्वासित सरकार का सचिवालय भी है।

लगभग पाँच फुट की ऊँचाई पर स्थित भागसू नाग मंदिर एक रमणीक स्थान में है। यहाँ से आगे एक झरना है, जहाँ का पानी स्थानीय खड्ड में बदलता है। ऊपर धौलाधार तक त्र्यूंड नाम का ट्रेकिंग स्थल। नीचे दूर-दूर तक फैली काँगड़ा घाटी।

भागसू नाग में नीचे जलाशय और जलस्रोत हैं तो सराय के ठीक सामने सीढ़ियाँ चढ़कर मंदिर। मंदिर प्रांगण में दाईं ओर छोटा-सा नाग मंदिर है जिसमें कई नाग विद्यमान हैं। नागों के साथ कुछ प्रतिमाएँ भी रखी हैं। दाईं ओर सीताराम, गणेश, हनुमान, शिव की प्रतिमाएँ हैं। सामने शिव मंदिर है, जिसमें महादेव की पाषाण प्रतिमा है।

यहाँ साधुओं की समाधियाँ भी हैं। कुछ समय पहले तक यहाँ एक बाबाजी रहते थे, जो दो वर्ष पहले दिवंगत हो गए हैं। कुछ साधु-संन्यासी यहाँ सदा विद्यमान रहते हैं।

जलाशय में पानी के दो बड़े स्रोत हैं, जिनसे बहुत-सा पानी बारह महीने निकलता रहता है। नहाने के लिए एक जलाशय बना है, जहाँ श्रद्धालु स्नान करते हैं। जलाशय के सामने 'भागसू कैफे' बन गया है। आसपास भी काफी मात्रा में होटल बन गए हैं, जहाँ देशी-विदेशी पर्यटक रहते हैं।

इसे भागसू नाग गद्दी लोग कहते हैं। यहाँ गद्दियों की पर्याप्त जनसंख्या है। स्थानीय लोग भागसू नाथ कहते हैं। यहाँ पुजारी गोसाईं है।

प्रादुर्भाव कथा

एक भागसू नाम का राजा राज करता था। एक बार उसके राज्य में सूखा पड़ गया। सभी पानी की बूँद-बूँद के लिए तरसने लगे। प्रजा ने राजा से पानी की व्यवस्था करने की प्रार्थना की। भागसू पानी ढूँढ़ने निकला। वह मायावी तो था ही, अतः उसने डल झील ढूँढ़ ली (डल झील भागसू से ऊपर की ओर है)। डल झील का पानी उसने कमंडल में डाल लिया और वापस चल दिया। जिस झील में से भागसू पानी लाया था, उसमें नाग रहते थे। उन नागों का मुखिया बहुत शक्तिशाली था। जब नागों ने झील सूखी देखी तो वे क्रोधित हो उठे। भागसू रास्ते में विश्राम कर रहा था। नाग गुस्से में भरे वहाँ आ पहुँचे और युद्ध में भागसू को हरा दिया। भागसू जब युद्ध कर रहा था तो कमंडल में रखा पानी बह गया। उस पानी से जलाशय बना और धाराएँ फूटीं। हार जाने पर भागसू ने अनुनय-विनय की और नागों से अपने देश के लिए पानी माँगा। नाग प्रसन्न हुए और वर दिया कि जब भी यहाँ कोई आएगा तो पहले भागसू नाम लेगा और फिर 'नाग' का नाम आएगा।

दूसरी कथा के अनुसार राजा धर्मचंद को देवता ने स्वप्न दिया और यहाँ नाग मंदिर बनाने के लिए प्रेरित किया। अतः राजा धर्मचंद ने नाग मंदिर स्थापित किया। एक अन्य प्रसंग के अनुसार भागसू नाग को वासुकि नाग भी माना जाता है।

भागसू नाग के ऊपर डल झील भी है। जो लोग मणिकर्ण नहीं पहुँच पाते, वे डल झील में स्नान कर ही मणिमहेश स्नान हुआ मानते हैं। डल से ऊपर नदी में सुरम्य स्थान है, जहाँ धौलाधार सामने नजर आता है। भादों की दुर्गा अष्टमी को यहाँ एक दिन का मेला लगता है। नया रथ, घी, नई फसल यहाँ चढ़ाई जाती है। पहले समय में छेलू (बकरी का बच्चा) की बलि दी जाती थी।

नूरपुर का मंदिर तथा किला

नूरपुर का किला अब भग्नावशेष है। किले में स्थित मंदिर का निर्माण राजा बासदेव (1580-1623) तथा उसके पुत्र सूरजमल द्वारा करवाया गया। राजा सूरजमल द्वारा काँगड़ा किले को जीतने में मुगलों की सहायता न करने के कारण यह मंदिर शीघ्र ही उपेक्षित हो गया। मंदिर में राजपूत तथा इस्लाम शैली में नक्काशी हुई है। यह मंदिर मथुरा के मंदिरों की शैली पर निर्मित है, जो सोलहवीं शताब्दी के मध्य में रही है। राजा मानसिंह द्वारा अंबेर में निर्मित मंदिर भी इसी शैली का है।

मंदिर की बाहरी दीवारों पर, जो किले की भाँति है, कई प्रकार के बेल-बूटे, नर्तक, पशु-पक्षी उकेरे गए हैं। इनमें कृष्ण तथा गाएँ भी बनाई गई हैं।

इंद्रु नाग

काँगड़ा में यद्यपि नाग मंदिर अधिक नहीं हैं तथापि नाग पूजा प्रचलित है। घरों में नागपंचमी को नाग पूजा की जाती है और हर घर के बाहर नाग पत्थरों पर उकेरे गए हैं। गुग्गा मंदिरों के आसपास के गाँवों में भी घोड़े पर सवार गुग्गा की पाषाण प्रतिमाओं के साथ नाग अंकित हैं। कई मंदिरों में नाग बनाए गए हैं। नगरकोट ब्राह्मणों में भी एक 'नाग' जाति है।

घनियारा (धर्मशाला के पास) के राणा द्वारा स्थापित इंद्र नाग एक प्रसिद्ध नाग है। एक स्लेब पर नाग की आकृति बनाई गई है। यहाँ प्रथम जे० का मेले के अतिरिक्त फसल कटाई के समय जागरा किया जाता है। पहले यहाँ बलि भी दी जाती थी। 'ए ग्लोसरी ऑफ ट्राइब्ज एंड कास्ट्स' (1883) में उल्लेख है कि रबी की फसल के समय सोलह तथा खरीफ की फसल के समय तेरह बकरे बलि किए जाते थे। यह अनुष्ठान चेलों के निर्देश पर किया जाता है। नवरात्रों में दुर्गा पाठ भी किया जाता है।

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, इंद्र वर्षा का देवता है। अतः इंद्रु नाग को वर्षा तथा अकाल के समय स्मरण किया जाता है। देवता के रुष्ट होने पर वर्षा नहीं होती।

तांत्रिक सिद्धपीठ बगलामुखी

बगलामुखी मंदिर धर्मशाला से चालीस किलोमीटर दूर सड़क के साथ ढलानदार पहाड़ी पर स्थित है। मंदिर परिसर में कई शिखर शैली के मंदिर हैं। पहाड़ी पर फैले इस परिसर से लगता है कि कभी यहाँ एक स्थापित शक्तिपीठ रहा होगा। मंदिरों के स्तंभ शिलाएँ अवशेष के रूप में बिखरी पड़ी हैं जिन पर उत्कृष्ट नक्काशी हुई। ऐसी कुछ शिलाएँ वट वृक्ष के नीचे रखी हुई हैं।

बगलामुखी का मुख्य मंदिर ठीक बीच में स्थित है। यह मंदिर शिखर शैली में निर्मित है जिसमें मंडप और अर्धमंडप बना हुआ है। मंदिर के अग्रभाग की छत पर बगलामुखी यंत्र बना हुआ है। देवी की मूर्ति पीत परिधान में है।

बगलामुखी का नाम दस महाविद्याओं में आता है। महाकाली, तारा, षोडसी, भुवनेश्वरी, भैरवी, छिन्नमस्तका, धूमावती, मातंगी, सिद्धविद्या और बगलामुखी तांत्रिक पद्धति में दस देवियाँ हैं। देवी बगलामुखी ने बगले का रूप धारण कर जल में निवास करने वाले राक्षस का वध किया था।

तांत्रिक सिद्धि के कारण देवी का मंदिर जनबस्ती से दूर निर्जन स्थान में निर्मित हुआ है। इस स्थान को वनखंडी कहा जाता है।

विश्वास है कि श्रीराम द्वारा लंका-विजय से पूर्व यहाँ साधना की गई। रावण पुत्र मेघनाद ने भी यहाँ यज्ञ किया, किंतु उस यज्ञ को वानर सेना ने पूरा नहीं होने दिया। आज भी मंदिर में वानर रहते हैं।

मंदिर के मुख्य पुजारी मनोहरलाल शास्त्री हैं। यहाँ नवरात्र तथा बगलामुखी जयंती मनाई जाती है।

कुनाल पत्थरी

कुनाल पत्थरी का मंदिर धर्मशाला बाजार से लगभग दो किलोमीटर दूर जंगल में स्थित है। मूल स्थान 'कुनाल' की तरह है। कुनाल या कनाला स्थानीय बोली में आटा गूँथने के लिए प्रयोग में लाया जाने वाला लकड़ी का पात्र होता है। यहाँ चट्टान के बीच कुनाल की तरह पात्र बना हुआ है, जिसमें पानी भरा रहता है।

यह भी मान्यता है कि जब शक्ति के अंग स्थान-स्थान पर गिरे तो यहाँ देवी का कपाल गिरा। अतः इसे कपालेश्वरी भी कहा जाता है।

किंवदंती है कि एक ग्वाला यहाँ अपने पशु चराता था तो रोज एक सुंदर कन्या उसके साथ खेलने आती थी। जब लोगों को इस बात का पता चला तो यहाँ पूजा आरंभ हुई।

मंदिर की महत्ता बढ़ने पर यहाँ एक मंदिर कमेटी का गठन हुआ। अब नवरात्र, रामनवमी, जन्माष्टमी के उत्सव मनाए जाते हैं

तपोवन का अध्यात्म

आध्यात्मिक केंद्र और आश्रम पौराणिक काल से चिंतन-मनन के स्थल रहे हैं। पुरातन ऋषियों ने आश्रमों में रहकर ही परमार्थ चिंतन किया। परोपकार और लोककल्याण की भावना इन आश्रमों के मनन का मूल मंत्र रहा। समय के अनुसार आश्रमी व्यवस्था का ह्रास हुआ। ऋषि, महर्षि, भगवान् कहलाने वाले व्यक्तित्व शहरों की ओर भागे। शहरों में ही आधुनिक सुविधाओं से लैस आश्रमों का निर्माण हुआ।

आधुनिक सुख-सुविधाओं से लैस किंतु ग्राम्य परिवेश में स्थित है–सिद्धवाड़ी का संदीपनी तपोवन। धर्मशाला से आते हुए सिद्धवाड़ी के पास एक लिंक रोड आश्रम को जाती है। एक सुंदर पहाड़ी पर संदीपनी आश्रम बनाया गया है, जिसके चारों ओर वृक्षारोपण कर हरा-भरा स्वरूप दिया गया है।

संदीपनी तपोवन ट्रस्ट द्वारा संचालित यह तपोवन चिन्मय आंदोलन के अंतर्गत देश के विभिन्न भागों में स्थापित आश्रमों में से एक है। बंबई, बँगलौर, आंध्र, उत्तरकाशी आदि में अलग-अलग गतिविधियों के आश्रम स्थापित किए गए हैं। चिन्मय मिशन का ध्येय है– 'अधिकाधिक लोगों के लिए अधिकाधिक समय में अधिकतम खुशी प्रदान करना।' इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए धर्मार्थ ट्रस्ट खोले गए तथा गुरु श्री स्वामी तपोवन महाराज की प्रेरणा से ऐसे संस्थान बनाए गए।

धौलाधार की पृष्ठभूमि में संदीपनी तपोवन शांत और स्निग्ध वातावरण में बना है। पृष्ठभूमि के पहाड़ के रंग का अद्भुत शिवलिंग एक शक्तिपुंज-सा दिखाई देता है, जैसे पूरा पहाड़ ही लिंग हो गया है। उतनी ही भव्य है हनुमान की प्रतिमा, पहाड़ फाँदकर उड़ने को आतुर। शिवलिंग के नीचे स्वामी चिन्मय का आश्रम है। आश्रम के सामने एक बड़ा हॉल, वास्तुकला का सुंदर प्रतीक। बीच के दालान में बेल और फलों का छत्ता। इसके चारों ओर बने हैं संन्यासियों, आगंतुकों के आवास। नीचे की ओर एक सुंदर मंदिर। विभिन्न कक्षों, अनुभागों को अंजनी निलय आदि नाम दिए गए हैं।

आश्रम में इस समय संन्यासियों को वेदांत की दीक्षा दी जाती है। बाहर से आने वाले ज्ञान-पिपासु तथा ध्यान, योग, अध्यात्म के अन्वेषक भी यहाँ पूर्व अनुमति के बाद ठहर सकते हैं। आयुर्वेद में नर्सों के लिए एक ट्रेनिंग सेंटर खोला गया है, जहाँ छात्र-छात्राएँ छात्रावास में रहकर शिक्षा ग्रहण करती हैं। एक अस्पताल भी है, जिसकी अपनी एंबुलेंस है। निर्धन विद्यार्थियों के लिए एक स्कूल खोला गया है। एक पुस्तकालय तथा कैसेट लाइब्रेरी भी है।

आश्रम के वर्तमान संचालक युवा स्वामी ने इसी आश्रम में दीक्षा ग्रहण की है। वे इस आश्रम के पहले बैच के दीक्षित संन्यासी हैं।

संस्थान, आश्रम तथा मंदिर व धार्मिक स्थल के विषय में स्वामी जी की राय है—"मंदिर की पहली शर्त यह है कि मंदिर साफ-सुथरा होना चाहिए। आजकल मंदिर हमारे घरों से भी गंदे हैं। घर से मंदिर कोई इसलिए आता है कि वहाँ स्वच्छता होगी, पवित्रता होगी। हमारे मंदिरों में विशेषकर उत्तर भारत के इन मंदिरों में सफाई का अभाव है। इसी कारण वे श्रद्धालुओं को आकर्षित नहीं कर पाते। मंदिर में सफाई कर्मचारी बहुतायत में होने चाहिए, चाहे दूसरे कर्मचारी कम करने पड़ें।"

आध्यात्मिक केंद्र के शांत व अलग वातावरण के विषय में उनका मत था, "ऐसे संस्थान बाहरी संसार की आवाजाही से अलग होने चाहिए। सांसारिकता से दूर। हमारे यहाँ अस्पताल है, लेकिन हमने उसे आश्रम से बाहर अलग रखा है। यहाँ आकर भी कोई रुग्ण व्यक्ति से साक्षात्कार करे तो मन विचलित हो उठता है कि घर-संसार से शांति के लिए आए और यहाँ भी…।"

संन्यासियों को दीक्षित करने का उद्देश्य क्या है और कौन लोग संन्यासी आते हैं, इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बताया, "हम संन्यासी तैयार करते हैं। ये सभी संन्यासी स्वेच्छा से आते हैं। सभी पढ़े-लिखे हैं। कोई स्नातक है, कोई इंजीनियर है। मन में वैराग्य हुआ और आ गए। हम संन्यासी तैयार कर सभी दिशाओं में भेजेंगे। अभी तो एक जनपद में एक संन्यासी भी नहीं है। हम चाहते हैं कि एक जिले में कम से कम एक संन्यासी तो हो। संन्यासी, जो आदर्श पुरुष होगा, जागा हुआ, इनलाइटेड व्यक्ति होगा।"

आश्रम के प्रशासन के विषय में उन्होंने कहा, "मुझे इस पूरे आश्रम की व्यवस्था का भार सौंपा गया है। मैंने इसे उसी रूप में ग्रहण किया है। साधु-संन्यासी क्या प्रशासन करेगा, ऐसा नहीं है। मैं पूरा कार्य करता हूँ और काम लेता हूँ। यदि प्रशासक होना है तो वैसा ही होता है। भरतनाट्यम का वेश पहन कुचीपुड़ी नहीं किया जा सकता। उसी तरह प्रशासक बनकर ही रहना होगा।"

ऐसे आधुनिक आश्रमों में जाकर प्रश्न उठता है कि आखिर ये आश्रम, ये अध्यात्म किन लोगों के लिए है। यह अध्यात्म साधनसंपन्न, खाए-पीए व्यक्तियों के लिए है जिन्हें खाने की चिंता नहीं है। जो निश्चिंत है हर तरह से। या फिर उनके लिए जो अपने ऐश्वर्य, अपने सुख से दुखी हैं।

श्री मुरली मनोहर

श्री मुरली मनोहर का मंदिर हमीरपुर से चौबीस किलोमीटर दूर सुजानपुर में स्थित है। शिमला से इसकी दूरी 195 किलोमीटर है। इस मंदिर की प्रबंध व्यवस्था समिति करती है, जिसके प्रधान गौरीशंकर हैं।

मंदिर दो सौ वर्ष पुराना है। संपूर्ण मंदिर शिलाओं से बना है। महाराजा संसारचंद्र ने अपनी रानी सुकेतड़ी के प्रति अगाध प्रेम होने के कारण इस मंदिर को बनवाया था तथा इसमें राधाकृष्ण की प्रस्तर मूर्तियाँ स्थापित करवाई गई हैं। मंदिर का प्रांगण भी प्रस्तर शिलाओं से बना है।

मेले-उत्सव

मंदिर में जन्माष्टमी, होली तथा पंचमी के उत्सव मनाए जाते हैं।

गौरीशंकर मंदिर

गौरीशंकर का मंदिर हमीरपुर से उनतीस किलोमीटर तथा शिमला से दो सौ किलोमीटर दूर सुजानपुर टीहरा में स्थित है। पठानकोट से आने वाले यात्री पालमपुर तक रेल द्वारा तथा आगे बस द्वारा मंदिर में पहुँच सकते हैं। मंदिर की प्रबंध समिति के प्रधान श्री ब्रह्मदेव दीक्षित हैं।

वास्तुकला

यह मंदिर दो सौ वर्ष पुराना है। यह बारादरी के ठीक सामने है। इसका निर्माण महाराजा संसारचंद ने करवाया था। इसमें शिव और पार्वती की अष्टधातु की दो मूर्तियाँ हैं। गौरीशंकर की मूर्तियों का निर्माण महाराजा संसारचंद ने सरदार निक्का सिंह से करवाया था। मंदिर में मूर्तियों की स्थापना अक्षय तृतीया के दिन हुई थी।

मेले-उत्सव

मंदिर में शिवरात्रि, जन्माष्टमी, होली का उत्सव मनाया जाता है। अक्षय तृतीया के दिन मंदिर में मूर्तियों की स्थापना हुई थी, इसी कारण इस मंदिर को जन्मोत्सव के रूप में मनाया जाता है।

नर्वदेश्वर

यह मंदिर मुख्यालय से चौबीस किलोमीटर दूर सजानपुर में स्थित है। शिमला से इसकी दूरी 195 किलोमीटर है। पठानकोट से आने वाले यात्री पालमपुर तक रेल से तथा आगे बस द्वारा इस मंदिर में पहुँच सकते हैं। मंदिर की प्रबंध व्यवस्था पुरातत्त्व विभाग के अधीन है।

वास्तुकला

इस मंदिर का निर्माण महाराजा संसारचंद ने अपनी माता प्रसन्नी देवी के नाम पर करवाया था। यह दो सौ वर्ष पुराना है। प्रांगण के चारों कोनों पर उपमंदिर हैं, जिनमें सूर्य, गणपति, दुर्गा और राधाकृष्ण की मूर्तियाँ हैं। यहाँ पर पौराणिक गाथाओं पर आधारित भित्तिचित्र हैं। इसके अतिरिक्त वामपंथियों एवं गुरु नानक के भी चित्र हैं। मंदिर में जहाँ नर्वदेश्वर लिंग की स्थापना की गई है, वहाँ शिव तथा पार्वती के विवाह से संबद्ध भित्तिचित्र हैं।

मेले-उत्सव

मंदिर में शिवरात्रि, जन्माष्टमी तथा होली का उत्सव मनाया जाता है।

सिद्धश्री बाबा बालकनाथ : धर्म और परंपरा

सिद्ध और नाथ परंपरा भारत में आठवीं शताब्दी में प्रारंभ हुई। यूँ तो सिद्धों का उल्लेख संस्कृत साहित्य में भी हुआ है। साध्यगण, अश्विनी कुमार, चारण, गंधर्व, विद्याधर, अप्सरा, किन्नर और नागादि जातियों के साथ सिद्ध जाति का नाम भी आता है। यक्ष, गंधर्व और किन्नरों के साथ उनका उल्लेख उन्हें नृत्य-गायन परंपरा से जोड़ता है। रामायण, महाभारत, भागवत तथा अन्य पुराणों में सिद्धों का उल्लेख हुआ है।

संस्कृत साहित्य में जो सिद्धगण आते हैं, वे आठवीं शताब्दी की सिद्ध परंपरा से सर्वथा भिन्न हैं। यद्यपि सिद्धों को भी यक्ष, गंधर्व, किन्नरों की भाँति देवयोनि में गिना गया है।

आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक सिद्ध और नाथ संप्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। आम धारणा के अनुसार सिद्धों की संख्या चौरासी और नाथों की नौ मानी जाती है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने चौरासी सिद्ध तथा छिहत्तर नाथ माने। उन्होंने कई नाथों को भी सिद्धों में शामिल किया। पं० राहुल सांकृत्यायन ने सिद्ध परंपरा का प्रारंभ 845 ई० से माना तो पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने नवीं शताब्दी।

प्रथम शताब्दी आते-आते बौद्ध धर्म में विकृतियाँ आनी शुरू हो गईं। बौद्ध धर्म की दो शाखाएँ बनीं—महायान और हीनयान। फिर महायान शाखा दो भागों में विभक्त हुई—वज्रयान और सहजयान। वज्रयान में तंत्र-मंत्र का समावेश हुआ। बौद्ध मंत्रों द्वारा सिद्धि प्राप्त करने की व्याख्या करने लगे। मंत्र, जादू-टोने पर सिद्धि प्राप्त करने वाले ही सिद्ध कहलाए। नैरात्म्य भावना, कायायोग, सहजशून्य साधना और अनेक प्रकार की समाधियाँ सिद्धों का अभीष्ट था। सिद्धों द्वारा 'मंजुश्री' और 'मूल कल्प' जैसे ग्रंथ भी लिखे गए। सिद्धों द्वारा विपुल साहित्य भी लिखा गया, जिसमें दोहा आदि के माध्यम से कुछ सूत्र वाक्य उद्घोषित हुए।

चौरासी सिद्धों में प्रथम सरहपा को माना जाता है। ये जाति से ब्राह्मण थे। राहुल जी ने इनका समय 769 ई० माना है। इन्होंने बत्तीस ग्रंथों की रचना की, जिनमें 'दोहाकोश' प्रसिद्ध है। अपनी रचनाओं में इन्होंने पाखंड और आडंबर का विरोध किया। दूसरे सिद्ध शबरपा माने जाते हैं जो क्षत्रिय कुल में 780 ई० में जन्मे। ये शबरों की तरह जीवनयापन करते थे, अतः शबरपा कहलाए। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'चर्यापद' है। लुइपा, शबरपा के शिष्य थे। इनका जन्म कायस्थ परिवार में हुआ। सिद्धों में इनका स्थान सबसे ऊँचा है। इसके बाद डोम्भिपा, कण्हपा और कुक्कुरिपा आदि सिद्ध हुए। कुक्कुरिपा का जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ।

सिद्ध परंपरा में गुरु का महत्त्व, चमत्कार प्रदर्शन, योग साधना पर बल और पाखंड तथा आडंबर का विरोध प्रमुख विशेषताएँ रहीं। सिद्धों ने दोहा, चौपाई, चर्यागीत और उलटबाँसियों में काव्य-रचना की।

नाथ परंपरा का प्रादुर्भाव सिद्धों की वाममार्गी योगप्रधान साधना की प्रतिक्रिया में हुआ। नाथ पंथ की साधना पद्धति का नाम हठयोग है। देहशुद्धि के लिए हठयोगी कई क्रियाएँ करते थे। जिनमें धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि और कपालमाति आदि प्रमुख हैं। इसे षटकर्म कहते हैं जिनमें आसन, मुद्रा, प्राणायाम, ध्यान और समाधि का महत्त्व है। प्राणायाम में रेचक, पूरक, क्रम्यक क्रियाएँ शामिल हैं। कुंडलिनी जागरण हठयोग का मुख्य अभीष्ट रहा है। मनुष्य की कुंडलिनी प्रायः निश्चेष्ट रहती है। साधारण मनुष्यों की कुंडलिनी अधोमुख रहती है। कुंडलिनी शक्ति को ऊपर की ओर करना साधना से संभव है। अतः कई प्रकार की साधनाओं द्वारा इस शक्ति को उर्ध्वमुख करना ही नाथों की साधना रही है। इंगला, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों को गंगा, यमुना और सरस्वती माना गया है। हठयोग में बहत्तर हजार नाड़ियों में से सुषुम्ना को ही शांभवी शक्ति माना गया है।

पं० राहुल सांकृत्यायन ने नाथ पंथ को सिद्ध परंपरा का विकसित रूप माना है। तथापि नाथ पंथ अपने में एक अलग धारा है, जिसकी अपनी अलग विशिष्टताएँ हैं।

नाथ पंथ के आदिपुरुष आदिनाथ शिव माने जाते हैं। नाथ पंथ के प्रथम गुरु मत्स्येन्द्रनाथ शिव के शिष्य थे। मत्स्येन्द्रनाथ को आम भाषा में मछंदरनाथ कहा जाता है। इनके कई शिष्य हुए। इनके शिष्यों में प्रमुख गोरक्षनाथ थे, जिन्हें गोरखनाथ कहा जाता है। यह भी मानना है कि गोरक्षनाथ पहले बौद्ध हुआ करते, बाद में शैव हो गए। गोरखनाथ

ने ही योग साधना में हठयोग प्रतिष्ठित किया। बौद्ध से शैव होने पर इनका बौद्धों से विरोध भी रहा। गोरखनाथ का समय ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी रहा होगा।

गोरखनाथ के बाद गैनीनाथ, निवृत्तिनाथ और ज्ञाननाथ माने जाते हैं। ज्ञाननाथ तेरहवीं शताब्दी में हुए। 'गोरक्ष सिद्धांत संग्रह' में मत्स्येन्द्रनाथ की संतति में उदयनाथ, दंडनाथ, सत्यनाथ, संतोषनाथ, कूर्मनाथ, भवनाथ आदि नाम आते हैं। गोरक्षनाथ उनकी शिष्य परंपरा में थे। गोरखनाथ की शिष्य परंपरा में बलनाथ, हालीकपाव, सलीपाव के बाद बंगाल के राजा गोपीचंद, उनकी माता मयनामती, जालंधरनाथ, राजा भरथरी आदि आते हैं। इसके बाद चरपटीनाथ, नागार्जुन आदि छिहत्तर नाथ-सिद्धों की सूची पं० हजारीप्रसाद ने दी है। किंतु प्रमुख नाथों की संख्या नौ ही मानी जाती है।

नाथ पंथ में गुरु की महत्ता, मर्यादा एवं संयम, साधना, सहज जीवन, नैतिकता पर बल दिया गया। ब्रह्मचर्य, वाक्संयम, आंतरिक शुद्धि, शारीरिक शुद्धि, मानसिक पवित्रता और मद्य-मांस पर प्रतिबंध नाथ पंथ की प्रमुख विशिष्टताएँ रही हैं। नाथ पंथ में अद्भुत चमत्कारों की कहानियाँ भी प्रचलित रहीं। गोरक्ष से कबीरदास तक यह परंपरा चली रही। कबीरदास ने जिन मान्यताओं का निरूपण किया, वे गोरक्ष से लेकर नाथ पंथ में चली हुई थीं। कबीर शून्य और सहज की समाधि में योगियों की सहजावस्था से भिन्न भी हुए। कबीर ने इड़ा-पिंगला की भट्ठी बनाई, उसमें ब्रह्म अग्नि जलाई। सूर्य और चंद्र से दसों दरवाजे बंद किए, उल्टी गंगा बहाकर पानी की व्यवस्था की। फिर पाँचों प्राणों को साथ लेकर राम-रस चुआया, जिसका कबीर ने छककर पान किया। किंतु यह सब सद्गुरु की कृपा से माना गया। कबीरदास ने कई सीमाएँ तोड़ीं और हद से बाहर जा पहुँचे।

हिमाचल में सिद्ध-नाथ परंपरा

हिमाचल के राजवंशों पर सिद्ध-नाथों का विशेष प्रभाव रहा है। इन राज्यों में चंबा, मंडी, कुल्लू प्रमुख हैं। इनमें पहला प्रामाणिक उल्लेख चंबा राज्य में मिलता है।

चंबा के राजा साहिल वर्मन ने 920 ई० में राज्य सँभाला। उस समय चंबा की राजधानी भरमौर थी। भरमौर में आज भी 'चौरासी' मंदिर हैं। इस मंदिर परिसर को 'चौरासी' के नाम से जाना जाता है। भरमौर को पहले ब्रह्मपुर कहा जाता था। लोकास्था है कि एक बार शिवजी ने चौरासी सिद्धों सहित ब्रह्माणी देवी के मंदिर में धूनी रमा दी। जब देवी आई तो शिव सहित समस्त सिद्धों को देख क्रोधित हो उठी। देवी ने उन्हें तुरंत जाने के लिए कहा। शिवजी ने सुबह तक बैठने का आग्रह किया। देवी ने कहा कि यदि सुबह तक नहीं उठे तो पत्थर हो जाएँगे। सुबह तक कोई नहीं उठ पाया और सभी पत्थर बन गए। शिव ने इस शाप को वरदान ही समझा कि जो भी यात्री मणिमहेश यात्रा पर जाएँगे, उन्हें ब्रह्माणी सरोवर में स्नान करना होगा। भरमौर में ब्रह्माणी देवी का मंदिर कुछ दूर संचूई गाँव में है।

भरमौर में शापित चौरासी सिद्धों की गिनती अब पूरी नहीं है। कुछ ही समाधियाँ शेष हैं। तथापि चौरासी परिसर में लखना देवी, मणिमहेश मंदिर आदि ऐतिहासिक मंदिर

विराजमान हैं। लखना देवी या लक्षणा देवी का काष्ठ का मंदिर अद्‌भुत है। लखना देवी मूर्ति के आधार में एक लेख है जिसके अनुसार इसे सूर्यवंशी आदित्य वर्मदेव के प्रपौत्र श्री बलवर्म देव के पौत्र तथा श्री दिवाकर वर्मदेव के पुत्र श्री मेरूवर्मा ने पुण्य वृद्धि हेतु मूर्ति को गुग्गा मिस्त्री से बनवाया। इसी तरह गणेश मूर्ति में भी श्री मेरूवर्मा द्वारा गुग्गा मिस्त्री से बनवाए जाने का उल्लेख है। मणिमहेश के प्रांगण में नंदी पर उकेरे लेख में भी राजा मेरूवर्मा का नाम अंकित है।

भरमौर के राजा मेरूवर्मन का शासनकाल 680 ई० माना जाता है। अतः संभव है, इनके समय यहाँ कुछ सिद्ध आए हों।

राजा साहिल वर्मन ने 920 ई० में राजपाट सँभाला। इसी राजा ने भरमौर से निचले क्षेत्रों को जीतकर चंबा को राज्य की राजधानी बनाया। जोगी चरपटनाथ राजा के सलाहकार थे। नाथ-साहित्य में चरपटनाथ या चरपटीनाथ का नाम नागार्जुन से पहले आता है। चरपट और नागार्जुन को गोरखनाथ के बारह शिष्यों में प्रामाणिक माना गया है। सिद्धों में छठे सिद्ध कुक्कुरिया के गुरु भी चरपटिया थे, ऐसा माना जाता है।

नागार्जुन का मंदिर आज भी श्री ज्वाला जी से ऊपर स्थित है। श्री ज्वाला जी के साथ गोरख डिब्बी में नाथपंथियों का आधिपत्य है, जहाँ नाथपंथी गोरख डिब्बी में धूप दिखाकर आग की लपटें उठने का चमत्कार दिखाते हैं। गोरख डिब्बी का पानी यद्यपि ठंडा है, किंतु उबलता हुआ दिखाई देता है। अतः यह स्थान गुरु गोरखनाथ से संबंध रखता है। यह भी मान्यता है कि पहले इस स्थान पर नाथों का ही आधिपत्य था। नाथ साधु ही मंदिर के पुजारी थे। गोरख डिब्बी के साथ नागार्जुन मंदिर इसी तथ्य की आज भी पुष्टि करता है।

राजा साहिल वर्मन के यदि चरपटनाथ सलाहकार थे तो उनका समय दसवीं शताब्दी ठहरता है। राजा को चौरासी सिद्धों ने दस पुत्र होने का वर दिया। राजा के दस पुत्र और एक कन्या हुई। कन्या का नाम चंपावती रखा गया। चंपावती को चंबा पसंद आया, अतः राजा ने ब्रह्मपुर से बदलकर चंबा राजधानी बनाई। एक कथा है कि राजकुमारी चंपावती धार्मिक विचारों की थी। वह एक जोगी या योगी के पास नित्यप्रति धर्मचर्चा के लिए जाती थी। राजा को उस पर संदेह हो गया और वह एक दिन उसके पीछे चल दिया। राजकुमारी उसी दिन कुटिया में अदृश्य हो गई। राजा ने उसकी स्मृति में चंपावती मंदिर बनाया, जो आज भी चमेसणी मंदिर नाम से चंबा शहर में है।

चरपटनाथ तथा अन्य नाथ साधुओं का वर्चस्व चंबा के राजाओं पर बना रहा। राजा साहिल वर्मन ने योगी चरपटनाथ के सम्मान में चकली सिक्कों में फटा हुआ कान बनवाया। बाद में इस सिक्के में विष्णुपाद भी जोड़ा गया, जो चंबा में लक्ष्मीनारायण मंदिर की स्थापना पर हुआ होगा। लक्ष्मीनारायण मंदिर भी राजा साहिल वर्मन ने ही बनवाया, जो शैवों पर वैष्णव प्रभावी होने का प्रमाण है।

चंबा की भाँति कुल्लू तथा मंडी में भी नाथ संप्रदाय का प्रभाव रहा है। कुल्लू में राजा लोग मुद्राओं के दर्शन के बिना भोजन ग्रहण नहीं करते थे। कुल्लू का अखाड़ा बाजार साधुओं का अखाड़ा था। इसी प्रकार मंडी में नाथ साधु विशेष सम्मान के पात्र थे। समय

के परिवर्तन के साथ जब वैष्णव धर्म का प्रादुर्भाव हुआ, नाथपंथी उपेक्षित हो गए। कुल्लू में अवध से रघुनाथ जी के आगमन और मंडी में माधोराव के आगमन पर राजा लोग वैष्णव हुए। वे रघुनाथ जी के छड़ीबरदार बने और अपने राज्य रघुनाथ जी को सौंपे।

लोक में नाथ पंथ

राज्याश्रय के अतिरिक्त लोक में भी नाथ पंथ अपने ढंग से प्रभावी रहा। काँगड़ा, हमीरपुर, मंडी, चंबा आदि स्थानों में हर घर के आँगन में तुलसी के साथ नाग तथा बाबा के पैर रखे जाते हैं। बाबा का पूजन नाथ पंथ के गुरुओं के पूजन का द्योतक है। बड़े-बड़े मेलों में छड़ी यात्रा आज भी चलती है। मिंजर तथा कुल्लू दशहरा व मंडी शिवरात्रि में छड़ी यात्रा तथा साधुओं का विशेष महत्त्व है।

बाबा बालकनाथ, बालकरूपी, बाबा बड़ोह आदि स्थान इसी परंपरा के तहत आते हैं। शादी-ब्याह आदि मंगल कार्यों में बाबा जी की स्तुति तथा पूजा आवश्यक है। बाबा के विभिन्न स्थानों में नवविवाहितों को ले जाया जाता है। बच्चों के बाल भी ऐसे ही स्थानों में कटवाए जाते हैं।

काँगड़ा की ओर आज भी 'जोगी' नाम की जाति है। अब ये गृहस्थ हो गए हैं और मकर संक्रांति को 'सरवण गाथा' सुनाते हैं। कुछ टोने-टोटके का काम भी करते हैं। कभी ये लोग सचमुच जोगी रहे होंगे। झोली उठाकर मकर संक्रांति को घर-घर जाना और भिक्षा ग्रहण करना इनका कार्य रहा है। मृत्यु पर जोगी को जलाया नहीं जाता, अपितु समाधि में दफनाया जाता है।

चानो सिद्ध मंदिर

चानो सिद्ध का मंदिर गरली प्रागपुर के समीप डाँगड़ा गाँव में है। काँगड़ा-रानीताल मार्ग पर समैला में भी चानो सिद्ध का मंदिर है। चानो सिद्ध एक महत्त्वपूर्ण देवता है, जिसके मंदिर कई स्थानों पर हैं। सिद्ध मनोकामनाएँ पूरी करते हैं। इन्हें मुर्गे की बलि दी जाती है।

राधास्वामी

राधास्वामी मत का काँगड़ा क्षेत्र में बहुत प्रभाव है। जगह-जगह सत्संग भवन स्थापित हुए हैं, जहाँ राधास्वामी भजन-कीर्तन करते हैं। यह स्थान परौर, भवारना, नगरोटा बगवाँ, काँगड़ा, शाहपुर, नूरपुर, जसूर, ज्वाली, देहरा गोपीपुर, इन्दौरा, बैजनाथ आदि में है।

राधास्वामी हमीरपुर, ऊना, मंडी से लेकर शिमला के ऊपरी क्षेत्रों तक प्रभावी हैं। मांस, मदिरा तथा तंबाकू आदि का निषेध इनकी मुख्य विशेषता है। हमीरपुर से आगे भोटा में एक बड़ा अस्पताल भी इस संस्था द्वारा बनाया गया है।

बौद्ध मठ

जिला काँगड़ा में खनियारा तथा चैतडू में प्राचीन बौद्ध मठ स्थापित थे। चैतडू का

नाम 'चैत्य' से पड़ा है। यहाँ कुछ वर्ष पूर्व पुरातत्त्व विभाग द्वारा खुदाई भी की गई थी। अभी भी यहाँ बौद्ध प्रतिमाएँ विद्यमान हैं।

महापावन दलाईलामा के धर्मशाला (मेकलोडगंज) आगमन से यह स्थान तिब्बत की सरकार की राजधानी होने के साथ बौद्ध मठों का केंद्र भी बना। इस समय बीड़, योल, पपरोला, नगरी आदि स्थानों में बौद्ध मठ स्थापित हुए हैं।

अन्य शक्ति मंदिर

विंध्यावासिनी (पालमपुर), देवी मंदिर (भवारना), महामाई मंदिर (जयसिंहपुर), कुनाल पत्थरी (धर्मशाला), नारदा शारदा मंदिर (नगरोटा बगवाँ), बगुलामुखी (कोटला), शीतला माता (नगरोटा सूरियाँ), चामुंडा मंदिर (चामुंडा तथा कोटला), कालीमाता (देहटा), शीतला माता (बनखंडी), गायत्री मंदिर (देहरा), आशापुरी (आशापुरी चढ़ियार), संतोषी माता (घुग्घर), भयभंजीनी (पठियार), दुर्गा (डमराल), जठेरी माता (गुझर), गायत्री देवी (थुरल), त्र्यम्बिका देवी (डरोह), कालीमाता (बैजनांथ), जखनी माता (चंद्रपुर-पालमपुर) आदि।

अन्य शिव मंदिर

शिव मंदिर (भागसू नाग), सिद्धेश्वर गुफा (शाहपुर), मध्येश्वर महादेव (अरला), शिव मंदिर (जरोट), शिव मंदिर (त्रिलोकपुर), शिव (काठगढ़), प्राचीन शिव मंदिर (मसरूर गुफा), शिव मंदिर (नैहरन पुखर), शिव मंदिर (राजा का तालाब), सिद्धबाड़ी (मटोर), नंदिकेश्वर धाम (चामुंडा), शिव मंदिर (देहरा), शिव मंदिर (चौमुखा), कुंजेश्वर महादेव (लंबा गाँव), नीलकंठ मंदिर (कंडबाड़ी), नीलकंठ (जयसिंहपुर), भैरों महादेव (भवारना), शिव मंदिर (डरोह), शिव मंदिर (डाडासीवा), अंबिकेश्वर मंदिर (हरिपुर), शिव मंदिर (ज्वाली), नंदीकेश्वर (जदरांगल) आदि।

गुग्गा मंदिर

हमीरपुर में भी गुग्गा पूजन प्रचलित है। यहाँ गुग्गा राणा के कई मंदिर हैं। गुग्गा के मंदिर गलोड़, भोटा, चकओह, लदरौर आदि में स्थित हैं। गुग्गा को यहाँ इष्टदेव माना जाता है। रक्षाबंधन से गुग्गा नवमी तक मेले लगते हैं तथा मंडलियाँ घर-घर घूमती हैं।

गसोता महादेव

हमीरपुर से लगभग दस किलोमीटर दूर गसोता महादेव का मंदिर है। मंदिर में लगभग दो फुट ऊँचा शिवलिंग है, जिसके मध्य दो इंच गहरा खाली स्थान है। महादेव के प्रादुर्भाव की कथा अन्य कथाओं की भाँति है कि एक व्यक्ति खेतों में हल चला रहा था, तो हल की नोक एक पत्थर से टकराई, जहाँ से रक्त निकलने लगा। इस क्षेत्र के राणा को भी स्वप्न आया कि खेत से शिला निकाल मंदिर बनाया जाए।

अब यहाँ भव्य मंदिर बनवाया गया है।

गुरुद्वारा

जिला हमीरपुर में हमीरपुर नगर, सुजानपुर तथा नादौन आदि स्थानों में गुरुद्वारे स्थापित हैं।

शिव मंदिर

ऊना के विभिन्न स्थानों में शिव मंदिर स्थापित हैं। धर्मशाला-होशियारपुर मार्ग पर गगरेह के समीप शिवबाड़ी है। इसे द्रोण मंदिर भी कहा जाता है। ऊना के ध्यूंसर शिखर पर सदाशिव मंदिर है। यह मंदिर बंगाणा से थाना कलाँ मार्ग से एक शिखर पर स्थित है। ऊना से लगभग बारह किलोमीटर ऊना-होशियारपुर मार्ग पर शिव मंदिर है, जिसे बनखंडी मंदिर भी कहते हैं। ईसपुर गाँव में भी एक शिव मंदिर है। इसके अतिरिक्त बसदेहड़ा, पिपलू तथा बसाल में भी शिव मंदिर हैं। अम्ब, चिंतपूर्णी, धर्मशाला महंता, डंगोली, जोल, दौलतपुर चौक, संतोखगढ़, डोहगी, लठियाणी, बाथू, हरोली, टकराला, टक्का, मलांगड़, टकोली, भंजाल, चौकी मिनार, लोहारा आदि गाँवों में भी शिव को समर्पित मंदिर हैं।

शक्ति मंदिर

चिंतपूर्णी (भरवाई) के प्रसिद्ध शक्ति स्थल के अतिरिक्त ऊना में कई शक्तिपीठ हैं। शीतला मंदिर (ऊना तथा बौल), कामाख्या देवी (पोलियाँ पुरोहताँ), शीतला माता (धर्मशाला महंता), बगुला माता (लोहारा), संतोषी माता (कुठेड़ा लोहरली), दुर्गा मंदिर (मुबारकपुर), भद्रकाली (दौलतपुर चौक), दुर्गा माता (मुबारकपुर), संतोषी माता (नांगरोली), दुर्गा (बनखंडी), वैष्णो देवी (सोहारी टकोली) आदि मंदिर विभिन्न स्थानों में स्थापित हैं।

सुगंध की यादें

चंपा के सुगंधित वृक्षों से सुवासित रहा होगा कभी चंबा। आज भी लोककवि 'चंबे दा फुल्ल' का वर्णन करते हैं। 'चंबे दी कली' की सुगंध पंजाब तक फैली और गीतों के बोल बनी। क्या यही वह चंपा का फूल था जो कालांतर में चंबा बना ?...हो सकता है।

आज चंबे के फूलों की जगह यहाँ कंकरीट के फूल भरे पड़े हैं। चौगान सिमटा। महल उजड़े। मंदिर और साथ-साथ हाट-बाजार बने। रानी सूही के नीचे जो कंकरीट का जंगल उगा है, उसने चंपावती के फूलों के महकने पर रोक लगा दी है।

1839 में विगने ने चंबा की जनसंख्या चार हजार से पाँच हजार आँकी थी। वोगल ने 1911 में इसे छह हजार बताया। उस समय सबसे महत्त्वपूर्ण बिल्डिंग महल की थी, जिसका सबसे पुराना भाग अठारहवीं शताब्दी के मध्य में बना।

आज इस शहर की जनसंख्या 21,214 है। दूर से देखने पर महल आज भी भव्य दिखता है। लक्ष्मीनारायण मंदिर भी नजर आता है। किंतु ऐसा, जैसे झाड़ियों के बीच कोई पुराना ठूँठ।

छह मंदिरों का लक्ष्मीनारायण मंदिर समूह, चमेसणी मंदिर, हरिराय मंदिर आज उस ऐतिहासिक वैभव की याद दिलाते हैं जो इस राजधानी के अतीत के साथ जुड़ा हुआ है। इस समय लक्ष्मीनारायण मंदिर भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के पास है। मंदिर समूह राज्य के अधीन है। चमेसणी मंदिर प्रदेश सरकार के भाषा एवं संस्कृति विभाग के अधीन राज्य संरक्षित स्मारक है। अब इसे भारतीय पुरातत्त्व विभाग ने अपने अधीन कर लिया है।

यह स्मारक हमें दस शताब्दियाँ पीछे ले जाते हैं, जब इस सुंदर स्थली पर साहिल वर्मन की राजकुमारी चंपावती की नजर पड़ी।

ऐतिहासिक तथ्य

इतिहासकारों तथा पुरातत्त्ववेत्ताओं का मत है कि चंबा की पुरातन राजधानी राजा साहिल वर्मन द्वारा बसाई गई।

कहा जाता है कि चंबा नाम राजा साहिल वर्मन ने अपनी पुत्री चंपावती के नाम पर रखा क्योंकि उसी की इच्छा से इस राजधानी की स्थली चुनी गई थी। दूसरा मानना है कि यह नाम चंपक वृक्ष से पड़ा जो आज भी यहाँ होता है और अपनी सुगंध बिखेरता है।

वोगल ने स्वीकार किया कि चंबा की स्थापना साहिल वर्मन द्वारा ही की गई क्योंकि साहिल वर्मन के पुत्र तथा पौत्र द्वारा दो ताम्रपत्र जारी किए गए थे जो राजधानी चंबा से किए गए। इनमें चंबा को 'चंपक' लिखा गया है। चंबा की स्थापना दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में की गई होगी। वोगल ने प्रोफेसर डेविड की इस बात को नकारा है कि अंग की राजधानी चंपा का नाम रावी के किनारे बसी चंपा नगरी पर रखा गया था। अंगदेश में चंपा मध्य देश की प्राचीनतम नगरियों में से एक था, जिसका संस्कृत साहित्य में प्रचुर मात्रा में वर्णन है। किंतु रावी के किनारे चंपा का उल्लेख दसवीं शताब्दी से पहले नहीं किया गया। चंपा का सर्वप्रथम उल्लेख राजतरंगिणी में कश्मीर के राजा अनंतदेव (1028-1063) के समय आता है। अतः जब रावी के किनारे चंपा की स्थापना हुई, अंग की चंपा समाप्त हो चुकी थी या महत्त्व खो चुकी थी।

राजा साहिल वर्मन ने 920 ई० में राज्य सँभाला। चंबा गजेटियर तथा 'हिस्ट्री ऑफ पंजाब हिल स्टेट्स' में साहिल वर्मन के समय में कुल्लू के साथ लंबे युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में चंबा की सेना को 'गद्दी सेना' कहा गया है। साहिल वर्मन ने निचली रावी घाटी को जीत लिया। युद्ध में चरपटनाथ, रानी तथा राजकुमारी भी साथ थे।

साहिल वर्मन के राजगद्दी सँभालने के बाद ब्रह्मपुर में चौरासी सिद्ध आए और राजा की सेवा से प्रसन्न होकर दस पुत्र होने का वरदान दिया। जब तक वे ब्रह्मपुर में रहे, राजा के दस पुत्र और एक कन्या हुई, जिसका नाम चंपावती रखा।

चंपावती को स्थान पसंद आने पर राजा ने यहाँ राजधानी बसाने का निर्णय लिया।

यहाँ के राणा ने सारी भूमि ब्राह्मणों को दी थी जो इसे बेचना नहीं चाहते थे। आखिर राजा और ब्राह्मणों में समझौता हुआ और राजा ने नगर में प्रत्येक विवाह अवसर पर चार चकली (मुद्राएँ) देने का वचन दिया। राजा ने राजधानी बनाई और चंपा नाम रखा।

त्रासद रही चंबा की स्थापना

चंबा की स्थापना के विषय में दो त्रासद घटनाएँ भी जुड़ी हुई हैं। चंबा में आज भी चंपावती का मंदिर है, जिसे चमेसणी मंदिर कहा जाता है। राजकुमारी चंपावती बहुत धार्मिक विचारों की थी। वह एक योगी के पास नित्यप्रति धर्मचर्चा के लिए जाती थी। राजा को उस पर संदेह हो गया और एक दिन वह उसके पीछे चल दिया। राजकुमारी कुटिया में अदृश्य हो गई और राजा ने उसकी स्मृति में चंपावती मंदिर बनवाया।

दूसरी कथा और भी अधिक करुणाजनक है। नगर में पानी की कोई व्यवस्था नहीं थी। राजा के बहुत प्रयत्न करने पर भी व्यवस्था नहीं हो पाई। अंत में उसने नगर के पीछे से सरोता नहर में पानी लाया। पानी उस नहर में नहीं आया और इसे किसी दैवी शक्ति का प्रकोप माना गया। ब्राह्मणों से सलाह करने पर बताया गया कि यदि राजा रानी या पुत्र की बलि दे, तभी पानी आएगा। दूसरे मत के अनुसार, राजा को स्वप्न आया कि यदि वह अपने पुत्र की बलि दे, तभी पानी आएगा। ऐसा जानने पर रानी ने पुत्र की अपेक्षा अपने को बलि के लिए प्रस्तुत किया। रानी ने सती वेश धारण कर प्रस्थान किया और नहर के मूल स्थान में दफन होकर बलिदान दिया। कहा जाता है कि रानी के दफन होते ही पानी बहने लगा। इस हृदयग्राही प्रसंग का वर्णन आज भी लोकगीतों में किया जाता है।

रानी के बलि स्थान पर मंदिर बनाया गया और हर वर्ष मेला मनाया जाने लगा। आज भी पंद्रह चैत्र से पहली वैशाख तक मेला लगता है और इसे रानी सूही मेला कहा जाता है।

युगाकर वर्मन, साहिल वर्मन के उत्तराधिकारी पुत्र ने एक ताम्रपत्र में अपनी माता के नाम 'नीनादेवी' का उल्लेख किया है, जो संभवतः यही रानी थी। ताम्रपत्र में 'चंपक' का नाम भी आता है। 'चंपक' नगर का उल्लेख 1649 के लक्ष्मीनारायण मंदिर लेख में भी है। कुछ दूसरे दस्तावेजों में भी चंपक नाम लिखा गया है।

जिस पुत्री के नाम राजधानी बनाई, जिस रानी का वहाँ बलिदान हुआ, उस राजधानी में राजा की क्या सहानुभूति रही होगी, यह विचारणीय विषय है। किंतु गजेटियर या अन्य इतिहासकार कहते हैं कि राजा ने लक्ष्मीनारायण का मंदिर बनवाया। जिसके लिए राजा ने अपने पुत्रों को विंध्याचल में संगमरमर लाने भेजा, इन्हें वापस आते हुए लुटेरों ने मार डाला। अंत में राजा ने युगाकर वर्मन को भेजा, उस पर भी लुटेरों ने हमला किया किंतु संन्यासियों की सहायता से उसने लुटेरों को मार भगाया। युगाकर द्वारा लाए संगमरमर से विष्णु की प्रतिमा बनाई गई। साहिल वर्मन ने योगी चरपटनाथ के सम्मान में चकली सिक्के

में फटा हुआ कान बनवाया, जिसमें बाद के राजाओं ने विष्णु पाद भी जोड़ा।

साहिल वर्मन के समय का कोई ताम्रपत्र नहीं मिलता है, संभवतः इसीलिए यह लोकश्रुतियाँ अधिक मात्रा में प्रचलित हैं। साहिल वर्मन ने कीर, त्रिगर्त और कुल्लू को भी हराया और इलाके छीने।

वर्तमान

चंपा या वर्तमान चंबा वैदिक नदी रावी के किनारे एक ऊँचे स्थान पर बसा है। इस राजधानी की स्थली व बनावट बहुत कुछ वैसी ही है जैसी कुल्लू, सुजानपुर की है। मुख्य द्वार और चौगान इन राजधानियों की विशेषता है। चंबा का मुख्य द्वार अब जिस स्थान पर है, शहर के लिए प्रवेश उससे ठीक दूसरी ओर बन गया है। बस रस्सों के पुल द्वारा दूसरी ओर प्रवेश करती है। पुराने मुख्य द्वार के साथ सुंदर चौगान है जो द्वार के सामने सड़क के कारण दो भागों में बँट गया है। यह सड़क सीधी लक्ष्मीनारायण मंदिर और महलों को जाती है। चौगान, जो कभी लंबा-चौड़ा रहा होगा, सड़क के निचली ओर अभी सुरक्षित है। इसके अंतिम सिरे पर खुला मंच बना है। मंच से आगे सड़क पार कर सर्किट हाउस है। ऊपर का चौगान समाप्त-सा हो गया है। सड़क के साथ दुकानें तथा खोखे हैं। दूसरी ओर भी बाजार है जो सर्किट हाउस से होता हुआ बस स्टैंड तक जाता है। खोखों की लाइन में ही ऊपर की ओर अंतिम छोर में 14 सितंबर, 1908 को स्थापित भूरिसिंह संग्रहालय है, जिसे नए भवन में बदल दिया गया है, जो पुरानी बिल्डिंग के साथ ही है।

मुख्य द्वार के साथ बाईं ओर पहला मंदिर है हरिराय मंदिर। यह भगवान् विष्णु को समर्पित है। मंदिर में राजा सोम वर्मन द्वारा दिया गया ताम्रपत्र है। जिससे ज्ञात होता है कि मंदिर का निर्माण ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लक्ष्मण वर्मन द्वारा हुआ, जो राजपरिवार का ही सदस्य था।

चौगान के दूसरी ओर बाजार से ऊपर चमेसणी माता का मंदिर है। शिखर शैली का यह मंदिर राजा साहिल वर्मन ने अपनी पुत्री चंपावती की याद में बनवाया।

महल के उत्तर में एक पंक्ति में छह प्रस्तर मंदिर खड़े हैं जो इस समय चंबा की पहचान बने हुए हैं। इनमें तीन विष्णु को समर्पित हैं, तो तीन शिव को। सबसे पहला मंदिर लक्ष्मीनारायण का है और इसे ही मुख्य मंदिर माना जाता है। मंदिर साहिल वर्मन ने बनवाया। चंद्रगुप्त और त्रिमुख, जो शिव समर्पित हैं, साहिल वर्मन द्वारा, गौरीशंकर मंदिर युगाकर वर्मन द्वारा बनवाया माना जाता है।

रंगमहल अब नाम का महल है जिसमें सरकारी कार्यालय हैं। अखंडचंडी महल, जनाना महल इसके बाद बनाए गए, जो अपनी वास्तुकला से आज भी आकर्षित करते हैं। इस समय अखंड चंडी महल में राजकीय महाविद्यालय है। जनाना महल में अभी भी राजपरिवार के सदस्य रहते हैं।

चंबा इस समय चंबा रूमाल, चंबा चप्पल और मिंजर मेले के लिए प्रसिद्ध है। सन् 1908 में स्थापित भूरिसिंह संग्रहालय भी चंबा की शान है।

देवसेनापति कार्तिकेय

पौराणिक साहित्य में कुछ आख्यान बहुत प्रतीकात्मक हैं। यहाँ तक कि पात्र तो प्रतीक हैं ही, घटनाएँ भी प्रतीकात्मक हैं। ऐसी ही कथा है कार्तिकेय की। देवसेनापति कार्तिकेय का पुराण साहित्य में एक पराक्रमी पुरुष के रूप में स्मरण हुआ है जिसमें इंद्र सहित समस्त देवगणों को हराने की क्षमता थी। कार्तिकेय ने उस महिषासुर का वध किया जिसने ब्रह्मा के वरदान के कारण समस्त देवगणों को आतंकित कर रखा था।

कार्तिकेय का वास्तविक नाम स्कंद था। इनका जन्म गंगा में हुआ। अतः इन्हें गंगापुत्र या गांगेय भी कहा जाता है। इनके जन्म के विषय में पुराणों में अलग-अलग विलक्षण कथाएँ हैं। एक कथा के अनुसार यह छह ऋषि पत्नियों का रूप धारण किए अग्नि पत्नी स्वाहा के पुत्र थे तो दूसरी कथा के अनुसार उमा-शिव के।

एक बार देवराज इंद्र बार-बार दैत्यों से हारने के कारण बहुत दुखी हुए। दुखी होकर वे मानस पर्वत पर गए और देवसेना के लिए एक पराक्रमी सेनापति पाने के लिए विचार करने लगे। वहाँ उन्हें एक स्त्री के चिल्लाने की आवाज आई। उन्होंने देखा, केशी नाम का एक दैत्य एक कन्या को बलपूर्वक घसीटे जा रहा है। इंद्र ने उस कन्या की पुकार पर दैत्य को ललकारा और युद्ध में मार भगाया। उस कन्या ने बताया कि वह प्रजापति की पुत्री है और उसका नाम देवसेना है। उसकी बहन दैत्य सेना को भी यह दैत्य ले गया है। वह तो स्वेच्छा से जाना चाहती थी, किंतु देवसेना को वह बलपूर्वक लिए जा रहा था। कन्या ने यह भी बताया कि उसे ऐसा वर चाहिए जो देवता, दानव, यक्ष, किन्नर, नाग, राक्षस और दुष्ट दैत्यों को जीतने वाला महान् पराक्रमी और बलवान हो।

उस कन्या को लेकर इंद्र ब्रह्मा जी के पास गए और सारा वृत्तांत सुनाया। ब्रह्मा जी ने कहा कि अग्नि के द्वारा एक महान् पराक्रमी बालक होगा और वही इस कन्या का पति और तुम्हारा सेनाध्यक्ष बनेगा।

इंद्र अब उसे लेकर ब्रह्मऋषियों के पास गए। उन दिनों ये ऋषिगण यज्ञ कर रहे थे और देवता उस यज्ञ में अपना भाग ग्रहण कर रहे थे। उस यज्ञ में अग्निदेव भी आए। अग्निदेव ऋषि-पत्नियों को देखकर चंचल हो उठे। ऋषि-पत्नियाँ बड़ी पतिव्रता थीं। अतः निराश हो वे शरीर छोड़ने के लिए वन की ओर हो लिए।

अग्निपत्नी स्वाहा को जब इस बात का पता चला तो वह भी वहाँ चली गई और ऋषि-पत्नियों का रूप धारण कर अग्निदेव को रिझाने की सोची। स्वाहा ने सबसे पहले अंगिरा की पत्नी शिवा का रूप धारण किया। इस तरह छह ऋषि-पत्नियों का रूप धारण कर अग्नि से संसर्ग किया और उनका वीर्य एक स्वर्ण के पात्र में एकत्रित कर लिया। ऋषि-पत्नी अरुंधती का रूप वह धारण नहीं कर पाई। इस तरह एक बालक उत्पन्न हुआ जिसके छह सिर, बारह कान, बारह नेत्र, बारह भुजाएँ, एक ग्रीवा और एक पेट था। इस बालक का नाम 'स्कंद' हुआ।

दूसरी कथा के अनुसार हिमालय की पुत्री उमा ने शिव को पाने के लिए तपस्या की। शिव भी ध्यानस्थ थे जिनकी साधना भंग करने के लिए देवताओं ने कामदेव को भेजा। शिव ने अपने तीसरे नेत्र से उसे भस्म कर दिया। उमा ने घोर तपस्या की और अंततः शिव से विवाह हुआ। ब्रह्मा जी को वरदान के कारण महिषासुर का वध करने के लिए उमा-शिव की संतान चाहिए थी, अतः अग्नि ने रुद्र में और स्वाहा ने उमा में प्रवेश कर पुत्र उत्पन्न किया। एक अन्य में कबूतर रूपधारी अग्नि उमा-शिव का अंश प्राप्त कर सफल हुए किंतु अपनी चोंच में इसे धारण नहीं कर सके। यह गंगा में गिर गया, जहाँ कार्तिकेय का जन्म हुआ।

स्कंद ने दैत्यों का संहार करने वाला शिवजी का धनुष उठा लिया और अपनी गर्जना से समस्त प्राणियों को भयभीत करने लगा। अपने धनुष और शक्तियों से स्कंद ने बड़े-बड़े पर्वत फोड़ डाले, शिखरों को तोड़ डाला।

स्कंद का बल और पराक्रम बढ़ने पर देवताओं ने उसे मारने के लिए कहा। न चाहते हुए भी इंद्र ऐरावत पर सवार होकर स्कंद से युद्ध करने आ गए। देवताओं ने भी स्कंद पर धावा बोल दिया। युद्ध के समय जब स्कंद ने सिंह नाद किया तो देव सेना अचेत-सी हो गई। अग्निकुमार कार्तिकेय ने अपने मुँह से धधकती ज्वालाएँ छोड़ीं। जिससे देवता जलने-भुनने लगे। इंद्र देवता ने कार्तिकेय को इंद्र पद प्रस्तुत किया। उन्होंने मुनियों से इंद्र के कर्तव्यों के बारे में पूछा और इंद्र को उसके उचित मान अपने कर्तव्य की जानकारी चाही। इंद्र ने उन्हें देवसेनापति पद सौंपा और अभिषेक किया। स्वाहा द्वारा ऋषियों ने अपनी पत्नियों को त्याग दिया था। कार्तिकेय ने सभी ऋषि-पत्नियों को निर्दोष सिद्ध किया। इंद्र ने कार्तिकेय का विवाह देवसेना से करवाया।

देवताओं सहित इंद्र और शंकर का दानवों से युद्ध छिड़ गया। दानवों की मार से पीड़ित देवसेना भागने लगी। महिष नाम के दैत्य ने पहाड़ के पहाड़ उठाकर देवताओं पर दे मारे जिससे बहुत-से देवता पिस गए। क्रोधित महिषासुर शंकर के रथ के पास पहुँच गया। शंकर ने उसी समय कार्तिकेय का स्मरण किया। कार्तिकेय ने रणभूमि में उपस्थित होकर एक प्रज्वलित शक्ति से महिषासुर का सिर धड़ से अलग कर दिया।

महिषासुर वध करने वाले कार्तिकेय का कई दिव्य नामों से स्मरण किया गया है। यह पूरी की पूरी कथा प्रतीकात्मक है। मानस पर्वत अग्नि, स्वाहा, देवसेना प्रतीक हैं। कन्या देवसेना का चिल्लाना देवताओं की सेना का आर्तनाद है। छह ऋषि-पत्नियों द्वारा एक छह सिरों वाले कार्तिकेय का जन्म भी प्रतीक है। देवसेना से विवाह देवताओं की सेना के सेनापति होने का प्रतीक है।

कार्तिकेय का मंदिर चंबा के जनजातीय क्षेत्र होली के कुलेठ गाँव में है। जीर्ण-शीर्ण मंदिर में कार्तिकेय की बड़े आकार की प्रतिमा है। काले पत्थर की इस प्रतिमा में तीन सिर, छह हाथ हैं। हाथों में खड्ग, शक्ति, सर्प, कबूतर, डमरू और ध्वजा है।

मंदिर के निर्माण के बारे में लोकास्था है कि एक बार एक गड़रिया अपनी भेड़ें चराने नदी किनारे ले गया। नदी किनारे उसने अपना कुल्हाड़ा एक शिला से तेज किया। कुल्हाड़ा

तेज करते हुए शिला से खून की धारा निकल आई। उसने घबराकर शिला उलटी कर दी। नीचे कार्तिकेय की मूर्ति थी। वह मूर्ति को उठा वर्तमान मंदिर वाले स्थान में ले आया। जब दोबारा मूर्ति उठानी चाही तो कई व्यक्तियों द्वारा मिलकर भी नहीं उठाई जा सकी। अतः वहीं मंदिर का निर्माण किया गया।

चंद्रप्रभा से चमकता चंद्रशेखर मंदिर

लोक कवियों का नाम न होते हुए भी बड़ा नाम होता है। बहुत बार लोक कवि ने ऐसी बात कही जो लिखित रूप में हमारे सामने न आते हुए भी लोगों ने गा-गाकर स्मरण रखी है। आज किसी अकादमी या उससे भी बड़े पुरस्कार से पुरस्कृत कवि की सुंदर ढंग से छपी कविता कोई नहीं गुनगुनाता (छात्रों को परीक्षा के लिए अवश्य पढ़नी पड़ती है), किंतु उन अनाम कवियों ने जो कालजयी रचनाएँ रचीं, वह आज भी गुनगुनाई जाती हैं।

ऐसे ही लोकगीत हैं चंबा में, जो गायकी के लिए तो प्रसिद्ध हैं ही, अपने रचना-कौशल में भी अद्वितीय हैं। एक गीत है 'छिंबी', जो एक महिला की सुंदरता का बखान इस शिल्प से करता है कि बड़े कवियों को मात देता है। उसकी दंत पंक्ति, उसके होंठ काव्यमयी भाषा में अलंकृत किए गए हैं। आज के प्रचलित गीत 'राजा तेरेयाँ गोरखयाँ ने' के पुरातन स्वरूप की पंक्तियों में भी ऐसा अनुपम भान है। खिले हुए खटनालू (फूल) की तरह दाँत, सूरज की तरह चमकती आँखें, भाव की तरह होंठ लोकगीत में वर्णित हैं।

इसी तरह का सौंदर्य वर्णन सात्यकि ने शिला पर अपनी प्रिय पत्नी सोमप्रभा के लिए लिखवाया, यह जानकारी साहो में जाकर मिली। इस शिलालेख में संस्कृत कवि ने अपनी छंद शक्ति के माध्यम से जो नख-शिख वर्णन किया है, वह अद्भुत है। कवि का नाम हम नहीं जानते। वह अनाम कवि सोमप्रभा को आज भी हमारे सामने साक्षात् प्रस्तुत कर देता है। राजा-राणा मर मिटे। सोमप्रभा भी नहीं रही। उसका स्मरण आज प्रस्तर शिला पर मूर्तिमान हो उठता है।

चंबा शहर से पहले पुल पार कर ऊपर की ओर जाने वाली सड़क में लगभग बारह किलोमीटर पर साहो आता है। साहो परगने का साहो गाँव चंद्रशेखर मंदिर के कारण प्रसिद्ध है और प्रसिद्ध है अपने परंपरागत लोकगीत तथा नृत्य के कारण। साहो का एक सांस्कृतिक दल प्रदेश के कई महत्त्वपूर्ण मेलों व कार्यक्रमों में आता रहा है। गाँव के ऊपर एक विश्रामगृह है वन विभाग का। गाँव नीचे है।

विश्रामगृह में स्थानीय लोकगायकों से भेंट हुई, जिन्होंने चंबा के कई गीत सुनाए। चंबा का मधुर संगीत आधुनिकता की चपेट से बचा हुआ है। जबकि कुछ पुराने गीत समय की रफ्तार को पकड़ने की कोशिश में अपना वास्तविक स्वरूप खो बैठे हैं। ऐसा ही एक

बहुप्रचलित गीत है—"'अलबेलुआ हो'"। कुछ लटका लगने के कारण इस गीत की धुन बहुत बदली है। यहाँ इस गाने की असली धुन सुनने को मिली, जो लंबी लय के उतार-चढ़ाव की विशेषता लिए हुए थी। इस धुन में आज की तेजी न होकर धीमी गरिमा थी। लंबी लय और एकदम से उतार-चढ़ाव चंबा के गानों की विशेषता है।

गाँव में वह गायिका थी जिसे हम मिलना चाहते थे।"रेलो देवी एक मशहूर गायिका रही चंबा की। असली गायन सुनना हो तो उसी से सुनिए, किसी ने बताया था।

उस दिन वह बीमार थी। बुखार से पीड़ित होने पर भी उसने हमें कुछ मनभावने गीत सुनाए जिनमें न आज जैसी तेजी थी, न बनावटी लटका। एक गीत गाकर वह बिस्तर पर औंधी लेट जाती। गीतों में कुछ लोक से संबंधित थे, कुछ ऐतिहासिक।

एक गीत राजा श्रीसिंह (1844) के बीमार होने के विषय में था—'"सीरिसिंघ कसरी सुणादे हो"।' श्रीसिंह बीमार सुना जाता है। उसे ठीक करने के लिए वैद्य बुलाए जाते हैं, आदि-आदि।

"हमें राजा लोग गाने के लिए बुलाते थे," उसने बताया, "कभी कुछ मिल भी जाता था। जब राजा यहाँ आते मंदिर में, तब भी हम लोग गाने के लिए जाते।"

गाँव के एक ओर ही है चंद्रशेखर मंदिर। बाहर से साधारण स्लेट की छत वाला घर-सा। भीतर पुरातन शिवलिंग। शिवलिंग एक बड़ी सेना के भीतर है। मंदिर का मुख्य द्वार आकर्षक है। स्तंभों में घटकलश तथा फूल अंकित हैं। दोनों द्वार स्तंभों में सुंदर नक्काशी हुई है। स्तंभ के निचले भाग में शिव की खड़ी मुद्रा में 2' 3" प्रतिमा है। दाईं ओर मुद्रा क्रुद्ध रूप में तो बाईं ओर शांत। दाईं प्रतिमा के तीन मुख छह भुजाएँ हैं।

मंदिर का प्रांगण जैसे दब-सा गया है। दूसरी ओर नदी है लगभग 6' 4"। लोग कहते हैं यहाँ बाढ़ आई जिससे प्रांगण दब गया, मंदिर को भी क्षति पहुँची। मंदिर का बरामदा और छत सन् 1900 में दोबारा बनाई गई।

लोगों का विश्वास है कि मंदिर साहिल वर्मन द्वारा बनाया गया। ऐसा एक स्थान पर वोगल ने भी लिखा है। यह बात शिलालेख के होने से सही नहीं लगती। यद्यपि लिपि के आधार पर शिलालेख को दसवीं शताब्दी का माना गया है, जो साहिल वर्मन के किसी उत्तराधिकारी का समय था।

साहो के ठीक पार सराहन में छोटे-से ग्राम मंदिर का महत्त्वपूर्ण शिलालेख इस समय भूरिसिंह संग्रहालय में है।

शिलालेख से स्पष्ट है कि चंद्रशेखर मंदिर का निर्माण सात्यकि द्वारा किया गया। जिसकी रानी का नाम सोमप्रभा था। सात्यकि चंबा के राजाओं की वंशावली में नहीं आता। अतः सात्यकि स्थानीय राणा था। सात्यकि द्वारा स्थापित शिव मंदिर सराहन स्थित ग्राम मंदिर नहीं बल्कि साहो स्थित चंद्रशेखर मंदिर माना गया है।

मई, 1908 में भूरिसिंह संग्रहालय, चंबा में सुरक्षित इस शिलालेख में दोनों ओर लेख हैं। 21" चौड़ी 6' 4" ऊँची शिला में दोनों ओर बाईस पंक्तियाँ हैं, जिनमें 21" लंबी पंक्तियाँ

एक ओर 20$^{1\,2}$" लंबी नौ पंक्तियाँ दूसरी ओर हैं। अंतिम पंक्ति केवल 14$^{1\,2}$" है। अक्षरों का आकार 3/8" है। सामने का लेख पूरी तरह सुरक्षित है। पिछली ओर के दो ऊपरी कोने टूटे हुए हैं, जिसमें बारहवीं पंक्ति के पहले और अंतिम दो अक्षर नहीं हैं।

प्रारंभिक मंगलाचरण को छोड़ पूरा शिलालेख संस्कृत काव्य में है जिसमें बाईस छंद हैं। पहला और अंतिम आर्य छंद, दूसरा तथा तीसरा बसंततिलका। शेष उपजाति छंद हैं। अठारह और उन्नीस इंद्रवज्र हैं। छंदों का चुनाव काव्य के मूल कथ्य के साथ संगति के लिए किया गया है। काव्यकार छंदों के ज्ञान से भली भाँति परिचित था यद्यपि भारी विशेषणों का प्रयोग भी किया गया है।

सोमप्रभा से सुसज्जित अर्धनारीश्वर शिव का स्मरण करते हुए कवि ने सात्यकि और किष्किंधा नरेश की कन्या सोमप्रभा का वर्णन किया है। चंद्रमा-सी कांतिमान सोमप्रभा तीनों लोगों की सुंदरता लिए हुए थी। उसकी केशराशि, कपोल, लाल होंठ, हीरे-से दाँत, कमल के हाथ, किरणों-से नाखूनों का वर्णन करते हुए कवि ने सुंदर उपमाओं का प्रयोग किया है।

अंत में पर्वतपुत्री पार्वती की सोमप्रभा के साथ और सात्यकि की चंद्रशेखर शिव के साथ मैत्री की कामना करते हुए सात्यकि द्वारा निर्मित शिवालय की ख्याति पृथ्वी में फैलने और सात्यकि द्वारा संपूर्ण पृथ्वी को जीतने की मंगल इच्छा की गई है।

विष्णु प्रतिमा

चंद्रशेखर मंदिर के सामने एक छोटा मंदिर (8' 11"×8' 6") है। इस मंदिर के भीतर 1' 8$^{1\,2}$" ऊँची विष्णु की पाषाण प्रतिमा है। त्रिमुखी विष्णु मुख के दोनों ओर सिंह और शूकर हैं। अतः यह नृसिंह और वराह अवतार के प्रतीक हैं। विष्णु की मूर्ति के दो हाथ चौरी लिए सेवकों के ऊपर हैं, तीसरे हाथ में कमल है। चौथा टूट चुका है। चौरी लिए सेवकों के पीछे दो सेवक और दिखते हैं। इस मूर्ति में छोटी-छोटी अन्य मूर्तियाँ भी खुदी हुई हैं। विष्णुमुख के दोनों ओर भी छोटी मूर्तियाँ अंकित हैं। इसके साथ विष्णु के विभिन्न अवतारों की मूर्तियाँ भी दर्शाई गई हैं।

मूर्ति के आधार में चार पंक्तियों में लिखा है। अक्षरों का आकार 3/8" के लगभग है। लेख के अधिकांश अंश मिट चुके हैं। राजा या राणा का नाम भी मिट गया है।

मूल पाठ

—(परम) भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर—
1.2—(राज्य) संवत् 6—1.3 (नि) क-श्री-उकुकाणिन
उकुकाणस्वामि-प्रति- 1.4 (मा-प्रति) ष्ठिता रूद्र-सन्हिता।

अनुवाद

In the 6th year of the reign of the supreme prince, the king of the

kings, The supreme lord---(this image of Ukukana-svamin was created by---) the illustrous Ukukana near (the temple of) Rudra.

चंद्रशेखर मंदिर के गर्भगृह के प्रवेश द्वार में पूर्ण घट में नृत्य करते शिव की प्रतिमा है। यह स्तंभ के आधार में है। चतुर्भुज शिव का मुँह नृत्य करते हुए दाईं ओर मुड़ा है। नटराज शिव की यह प्रतिमा भी महत्त्वपूर्ण है।

लक्ष्मीनारायण मंदिर, चंबा

चंबा के शासक साहिल वर्मन द्वारा सन् 920 में ब्रह्मपुर या भरमौर से चंबा राजधानी लाई गई। साहिल वर्मन के समय में ब्रह्मपुर में चौरासी सिद्ध आए और राजा की सेवा से प्रसन्न होकर दस पुत्र होने का वर दिया। राजा के दस पुत्र और एक कन्या चंपावती हुई। चंपावती को चंबा पसंद होने पर राजधानी यहाँ बदली गई। मान्यता है कि 'चंबा' नाम चंपावती के नाम पर रखा गया। अन्य मान्यता के अनुसार यहाँ चंपक वृक्ष अधिक होता था, अतः इस स्थान का नाम चंपा पड़ा।

चंबा शहर में लक्ष्मीनारायण मंदिर है, जिसका निर्माण राजा साहिल वर्मन द्वारा हुआ। वास्तव में यह एक मंदिर समूह है जिसमें तीन मंदिर विष्णु के हैं, तीन शिव के। सभी मंदिर शिखर शैली में निर्मित हैं। शिखर के ऊपर छतरीनुमा छत्र है।

गजेटियर तथा इतिहास में उल्लेख है, राजा ने अपने पुत्रों (ज्येष्ठ पुत्र को छोड़) विंध्याचल में संगमरमर लाने भेजा। इन्हें वापस लौटते समय लुटेरों ने मार दिया। अंत में राजा ने ज्येष्ठ पुत्र युगाकर वर्मन को भेजा, जिस पर भी लुटेरों ने हमला किया। किंतु संन्यासियों की सहायता से उसने लुटेरों को मार भगाया। इस शिला से विष्णु की प्रतिमा बनाई गई। ऐसा भी कहा जाता है कि नौ पुत्र जो शिला लाए थे, उसमें मेढक निकल आया, अतः इस शिला से मुख्य मूर्ति (विष्णु) का निर्माण न करके अन्य प्रतिमाओं जैसे त्रिमुखी शिव, गणेश, लक्ष्मी की प्रतिमाओं का निर्माण किया गया।

इन छह मंदिरों में समय-समय पर जीर्णोद्धार तथा अन्य निर्माण होते रहे। लक्ष्मीनारायण मंदिर के पीछे तोरण में एक अभिलेख है। इस अभिलेख के अनुसार इस चाँदी के तोरण का निर्माण राजा दलेल सिंह ने संवत् 1804 (सन् 1784) में किया। तोरणों में चित्रकार, ताम्रकार, स्वर्णकार के नाम भी हैं।

श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर निर्माण यदि साहिल वर्मन ने किया तो गौरीशंकर मंदिर युगाकर वर्मन (940) ने किया। राधाकृष्ण मंदिर अजीत सिंह (1794-1808) की रानी शारदा देवी ने बनवाया। चंद्रगुप्त या शिव मंदिर भी इसी समूह में है। लक्ष्मी दामोदर मंदिर की मूर्ति राजा श्याम सिंह (1873-1903) के समय बनी। इस प्रकार इस मंदिर समूह के

निर्माण में कई राजाओं का योगदान रहा।

मंदिर समूह का मुख्य द्वार काफी बड़ा है। द्वार के भीतर ड्योढ़ीनुमा जगह है जिसके नीचे मंदिर का बड़ा प्रांगण है। प्रांगण में छह मंदिर स्थित हैं। मुख्य द्वार से सीधे प्रवेश पर सामने लक्ष्मीनारायण मंदिर है। एक हॉलनुमा मंडप के सामने मंदिर का लकड़ी का दरवाजा है। यूँ बरामदे में दूर से ही विष्णु की मूर्ति के दर्शन हो जाते हैं। मूर्ति के आगे दोनों ओर पुजारियों के बैठने के स्थान हैं। विष्णु की चतुर्भुज मूर्ति विशाल सिंहासन पर विराजमान है। चार मुखों में सामने विष्णु, दोनों ओर सिंह और वराह, पीछे नृसिंह है। मूर्ति के पीछे चाँदी का तोरण, ऊपर ताज व छत्र हैं। सिंहासन के मध्य गरुड़, दोनों ओर सिंहमुख हैं। मूर्ति के एक ओर गणेश, नीचे लक्ष्मी तथा सूर्य-चंद्र आदि दिखाए गए हैं।

दूसरा मंदिर, जो इससे छोटा है, राधाकृष्ण का है। इस मंदिर के गर्भगृह में राधाकृष्ण की संगमरमर की मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ भी एक सिंहासन के ऊपर विद्यमान हैं। मंदिर के दरवाजे में सरिये लगाए गए हैं जहाँ से दर्शन किए जा सकते हैं।

तीसरा मंदिर चंद्रगुप्त (शिव) का है। गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित है। चौथा मंदिर भी महादेव का ही है। इस मंदिर में शिव की काँस्य प्रतिमा है। चतुर्भुज मूर्ति के साथ शिवलिंग भी है। पाँचवाँ मंदिर अंबकेश्वर का है। इसमें त्रिमुखी शिव स्थापित हैं या शिवलिंग मूर्ति रूप में है। छठा मंदिर लक्ष्मीदामोदर का है। यहाँ विष्णु की चतुर्भुजी मूर्ति है।

हरिराय मंदिर

हरिराय मंदिर चंबा चौगान के प्राचीन मुख्य द्वार के साथ है। यह मुख्य द्वार सुजानपुर, कुल्लू में महलों के साथ बने मुख्य द्वारों की भाँति है, जहाँ से सीधा रास्ता महलों की ओर ही जाता है।

शिखर शैली के इस मंदिर का निर्माण ग्यारहवीं शताब्दी में राजा अष्टवर्मन के युवराज लक्ष्मण वर्मन ने करवाया। अष्टवर्मन का कार्यकाल सन् 1080 माना जाता है, जो सन् 1087 के बीच कश्मीर भी गया।

इस मंदिर की विष्णु मूर्ति तब ज्यादा प्रकाश में आई जब 6-7 मई, 1971 की रात इसकी चोरी हुई। मूर्ति की खोजबीन के बाद इसे बंबई में 25 जून, 1971 को ढूँढ़ लिया गया। चंबा के हरिराय मंदिर में इसे 8 जुलाई, 1971 को पुनः स्थापित किया गया।

लगभग 338 किलोग्राम वजनी इस मूर्ति को इस दौरान दिल्ली, पुरानी पुलिस लाइन में सबने देखा। संभवतः कलापारखियों ने इस चाँदी की चमकती हुई आँखों वाली मूर्ति को पूरी तरह पहली बार देखा।

मूर्ति, जो एक स्टैंड पर स्थित है, अपनी उत्कृष्ट कला के कारण आकृष्ट करती है। इस मूर्ति की वास्तविक सुंदरता बिना कपड़ों के देखी जा सकती है।

विष्णु चतुर्मूर्ति की यह प्रतिमा, चतुर्भुज वासुदेव की है जिसे चतुर्मूर्ति या वैकुंठ भी कहते हैं। ऐसी मूर्तियाँ हिमाचल प्रदेश के दूसरे भागों में, जम्मू-कश्मीर, राजस्थान, उत्तर प्रदेश में भी मिलती हैं। उत्तर प्रदेश में ऐसी मूर्तियाँ गुप्तकाल की भी मिली हैं। चंबा में ऐसी मूर्तियाँ मिलती हैं और ऐसी मूर्तियाँ बहुत बाद तक प्रचलित रहीं।

मूर्ति के सिर पर पूर्ण कमलरूपी मुकुट है। माथे पर तिलक, कानों में कुंडल हैं। सिर के बाल मुकुट के नीचे से कंधों पर गिरे हुए हैं। गले में हीरों का हार है। वक्षस्थल बहुत आकर्षक बनाया गया है जिसमें कमर तथा पेट की मांसपेशियाँ नजर आती हैं। गले में लंबी वैजयंती माला है जो पैरों तक पहुँचती है। गले में यज्ञोपवीत है। आँखों में चाँदी के कारण चमक है। सामने का मुख सौम्य है।

मूर्ति के दोनों पैरों के बीच भूदेवी है। जिसके दोनों हाथ वासुदेव के पैरों के नीचे घुटनों के बल बैठी हुई देवी वासुदेव को ऊपर देख रही है। जंघाओं में दोनों ओर गदा देवी और चक्रपुरुष हैं। मूर्ति का एक हाथ देवी पर और दूसरा चक्रपुरुष पर है। ये दोनों ही मूर्तियाँ पूरी तरह सुसज्जित हैं। ऊपर की दोनों भुजाओं में से एक हाथ में कमल है और दूसरे में शंख।

ये सभी पंचमहाभूतों के प्रतीक हैं। शंख आकाश को, चक्र वायु को, गदा अग्नि को, पद्म पानी को और भूदेवी पृथ्वी को दर्शाते हैं। विष्णु या वासुदेव पूरे संसार को धारण करने वाले हैं।

मूर्ति के सामने सुदर्शन और सौम्य मुख के आसपास सिंह और वराह के मुख हैं, जिन्हें मुकुट पहनाया गया है। ये दोनों नृसिंह और वराह के प्रतीक हैं। पृष्ठ मुख भयंकर या रुद्र है।

मंदिर के निर्माता लक्ष्मण वर्मन के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। हरिराय मंदिर से संबंधित एक ताम्रपत्र है जिसमें तीन मंदिरों को ग्रांट दी गई है। इनमें से एक हरिराय मंदिर है। इस ग्रांट को देने वाले शासक का नाम सोम वर्मन (1060) है।

चंपावती मंदिर

चंपावती मंदिर को चमेसणी मंदिर भी कहा जाता है। इस मंदिर का निर्माण राजा साहिल वर्मन ने अपनी पुत्री चंपावती की याद में किया।

किंवदंती है कि चंपावती एक साधु से दीक्षा लेती थी। वह रोज साधु की कुटिया में जाती। जब उसे साधु के पास जाते कई दिन हो गए तो उसके पिता को उस पर संदेह हो गया। एक बार राजा ने उसका पीछा किया। साधु की कुटिया में कोई नहीं था। वहाँ आवाज आई कि राजा ने अपनी पुत्री पर शक किया है, अतः अब वह पुत्री से वंचित हो जाएगा। राजा ने उसके स्मरण में मंदिर बनवाया।

चंपावती की देवी के रूप में पूजा की जाती है। चंपावती की यादगार में मेला भी लगता है।

शिखर शैली का यह मंदिर अब जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है।

जिन तीन मंदिरों को राजा सोम वर्मन (1060) ने ग्रांट दी, उनमें से हरिराय मंदिर के साथ चंपावती मंदिर भी एक है।

अब यह मंदिर केंद्रीय पुरातत्त्व विभाग के अधीन संरक्षित स्मारक है।

चामुंडा मंदिर

चंबा शहर से ऊपर की ओर चामुंडा मंदिर स्थित है। मंदिर एक ऊँचे स्थान पर स्थित है, जहाँ रावी नदी और चंबा का दृश्य दिखाई देता है।

आँगन में पीपल का बड़ा पेड़, प्रांगण में बिछे पत्थर के चौड़े-चौड़े चकले, स्लेटनुमा टुकड़े मंदिर को एक पुरातन परिवेश प्रदान करते हैं। प्रवेश द्वार के सामने मंदिर की ओर मुँह किए शेर की प्रतिमा है। बाहर एक बड़ा घंटा और छोटी घंटियाँ लटकी हुई हैं, जो कि चिंतामणि मंदिर में हैं। संभवतः यहाँ घंटियाँ लगाने का रिवाज है। मुख्य प्रतिमा अष्टभुजा दुर्गा है। मूर्ति अष्टधातु की प्रतीत होती है। मंदिर की छत पर आकर्षक व उत्कृष्ट नक्काशी हुई है। छत पर स्लेट हैं।

देवी मंदिर के साथ शिव मंदिर भी है। एक सराय भी है।

रानी सूही मंदिर

रानी सूही, जिसे लोक में राजा साहिल वर्मन की रानी माना जाता है, चंबा में पेयजल स्रोत निकालने के कारण बलि दी गई थी। रानी सूही का नाम सुनयना भी बताया जाता है।

एक ताम्रपत्र में साहिल वर्मन के पुत्र युगाकर वर्मन ने अपनी माता का नाम नीनादेवी लिखा है।

लोककथा है कि चंबा में जब राजधानी बनी तो वहाँ पानी का सरोवर था। राजा ने सरोहता से पानी निकालना चाहा किंतु पानी नहीं आया। ब्राह्मणों तथा ज्योतिषियों ने सलाह दी कि यदि राजा अपने पुत्र या रानी का बलिदान करे तभी पानी आ सकता है। अतः पुत्र के बजाय राजा ने रानी की बलि दी। यह भी विश्वास है कि रानी ने स्वेच्छा से अपना बलिदान देना स्वीकार किया। रानी के बलिदान पर पानी का स्रोत चंबा की ओर फूट पड़ा।

इस घटना के बाद रानी को सूही माता कहकर पूजा जाने लगा। रानी सूही का मंदिर चंबा शहर के ठीक ऊपर, चामुंडा के बाईं ओर बना है, जहाँ रानी की पत्थर की प्रतिमा है। माता सूही मंदिर में पंद्रह चैत्र से पहली वैशाख तक मेला लगता है। मेले के आरंभ में राजपरिवार का व्यक्ति पूजा करता है। मेले के अंतिम दिन को सुकरात कहते हैं। इस दिन सुकरात गाया जाता है, जिसमें रानी के बलिदान का हृदयग्राही वर्णन है।

वज्रेश्वरी मंदिर

वज्रेश्वरी मंदिर चंबा से लगभग एक किलोमीटर रामगढ़ मुहल्ले में है। उस स्थान को रामगढ़ मुहल्ला कहा जाता है, किंतु मंदिर के आसपास आबादी नहीं है। पुजारी का घर मंदिर से नीचे है।

चामुंडा मंदिर की भाँति इस मंदिर के प्रांगण में भी एक पीपल का पेड़ है। पीपल के पेड़ के साथ शिखर शैली में निर्मित मंदिर है, जिसमें वज्रेश्वरी देवी की पिंडी स्थापित है। यह काँगड़ा की वज्रेश्वरी की भाँति पिंडी रूप में है। साथ में लक्ष्मीनारायण का एक छोटे आकार का मंदिर है। एक राधाकृष्ण का मंदिर है, जो नया है।

चरपटनाथ मंदिर

चरपटनाथ की कुटिया रावी के किनारे बनी हुई है। यहीं से मणिमहेश यात्रा से पूर्व छड़ी यात्रा आरंभ होती है। यह यात्रा जन्माष्टमी से पंद्रह दिन बाद आरंभ होती है। साधु लोग छड़ी लेकर पड़ाव-पड़ाव चलते हुए मणिमहेश पहुँचते हैं। यात्रा की छड़ी भरमौर में शिव मंदिर तथा चौरासी सिद्धों के प्रांगण में एक देवता के बीच रखी जाती है, जहाँ चरपटनाथ ने तपस्या की थी। कहा जाता है कि मेरु वर्मन के समय चरपटनाथ ने मणिमहेश झील ढूँढ़ी और वहाँ शिव की स्थापना की, तभी से मणिमहेश यात्रा प्रारंभ हुई।

चंबा में नाग परंपरा

चंबा में नाग परंपरा अति प्राचीन है। नागों का वास सरोवरों के किनारे माना गया है। कुल्लू में भी अधिकांश नागों की उत्पत्ति तथा आवास सरोवरों या जलस्रोतों के किनारे ही माना जाता है। जे० हचिसन ने भी इन्हें जल देवता माना है। उन्होंने चंबा में नाग तथा शक्ति परंपरा को सबसे प्राचीन माना है।

चंबा क्षेत्र में नाग मंदिर बहुतायत में हैं। इन मंदिरों में कहीं मनुष्य रूप तो कहीं नाग रूप में मूर्तियाँ विद्यमान हैं। मंदिरों के ऊपर, जैसा कि यहाँ के सभी मंदिरों की विशेषता है, त्रिशूल अवश्य हैं। नागों के मंदिर या स्थान प्रायः पानी के स्रोतों के साथ हैं। बहुत-से नागों के नियंत्रण में वर्षा है। इसका उदाहरण काँगड़ा इंद्रु नाग है। घनियारा (धर्मशाला के पास) में इंद्रुनाग का मूल स्थान है। चंबा में भी इंद्रु नाग के कई मंदिर हैं। इंद्र वर्षा का देवता है। अतः इंद्रुनाग भी वर्षा का देवता माना जाता है। वर्षा न होने पर नागों के यहाँ जागरा किया जाता है। जागरे में एक बकरे या भेड़े की बलि दी जाती है। बकरे का सिर पुजारी लेता है, टाँग का भाग चेला।

नाग मंदिर स्थानीय शैली में निर्मित है। कुछ मंदिर घने जंगलों में हैं, कुछ पहाड़ की चोटी पर, कुछ पानी के स्रोत के किनारे। सभी मंदिरों में बलि दी जाती है। घंटी तथा बाजे-गाजे के साथ नाग देवता को प्रसन्न किया जाता है। इन मंदिरों में विशेष अवसरों पर मेले लगते हैं। आषाढ़-श्रावण-भादों में जागरे के अतिरिक्त नाग पंचमी को विशेष आयोजन होते हैं। मेले में नाच-गाना, बलि एक सामान्य कार्य है। अकाल या अनावृष्टि के समय ऐसे जागरे अधिक किए जाते हैं।

इन मंदिरों में जातरा भी की जाती है। जातरा प्रायः मनौती माँगने या पूरी होने पर होती है। यह एक परिवार या समूह की भी हो सकती है। नाग मंदिरों में दूध-घी चढ़ाने की भी परंपरा है। पाँगी की ओर श्रावण मास में नाग मंदिरों में दूध-घी चढ़ाया जाता है। कुछ पुराने संदर्भों में इन मंदिरों में मानव बलि का भी उल्लेख किया गया है।

कहा जाता है कि वे मंदिर राजा मूषक वर्मन (820-840) के समय में बने। इन मंदिरों के पुजारी राठी हैं और चेले हाली। कहीं-कहीं पुजारी हाली भी हैं। कहीं पुजारी पाधे (ब्राह्मण) हैं।

नागों का आगमन

कहा जाता है कि वासुकि नाग को भद्रवाह से लगभग 1783 में लाया गया, जब यहाँ पशुओं की बीमारी फैली। बासत नाग तथा नागणी भी भद्रवाह से उसी समय लाए गए। इंद्रु नाग सुकेत से घनियारा (धर्मशाला) आया और वहाँ से चंबा के विभिन्न स्थानों में लाया गया। कालीहट नाग, जिसे केलंग भी कहा जाता है, लाहुल से लाया गया, जब कुगती में पशुओं की बीमारी फैली। कहा जाता है कि केलंग नाग के रूप में लाहुल आया और डुग्घी में रुका। डुग्घी में तीन पीढ़ियाँ वास करने के बाद वह पानी के स्रोत की तलाश में दूण

चला गया, अतः वहाँ नया मंदिर बना।

किलाड़ के नाग के विषय में भी कथा है कि वह मूलतः लाहुल में रहता था। लाहुल में उसे नरबलि दी जाती थी। जब एक विधवा के अंतिम पुत्र की बलि होनी थी और वह रो रही थी तो वहाँ से एक गद्दी गुजरा। गद्दी ने उसके पुत्र की जगह अपने आप को प्रस्तुत किया। गद्दी ने यह शर्त रखी कि उसे पूरा का पूरा एकदम खा जाए, यह नहीं कि एक-एक अंग खाए। नाग ऐसा नहीं कर पाया तो गद्दी को गुस्सा आ गया और उसने नाग को चंद्रभागा नदी में फेंक दिया। नाग चंद्रभागा नदी से किलाड़ में निकला और वर्तमान मंदिर में स्थापित किया गया। इस प्रकार नागों के साथ विभिन्न कथाएँ जुड़ी हुई हैं।

खज्जी नाग

खजियार में खज्जी नाग का मंदिर है, जो चंबा के राजा पृथ्वी सिंह (1641) की धाय बाटलू ने बनवाया। नाग का काष्ठ मंदिर झील के ऊपर स्थित है। मंदिर में प्रवेश द्वार के भीतर एक बड़ा मंडप है। मंडप के चारों ओर बरामदानुमा स्थान है, जहाँ दो ओर बैठने के लिए जगह बनी हुई है। इस बैठने के स्थान के दोनों कोनों में चार प्रहरी स्थापित हैं। ये प्रहरी आदमकद से भी बड़े आकार के काष्ठ से निर्मित हैं। चार मूर्तियों में से इस समय तीन शेष हैं। एक गायब है। मंडप में हवनकुंड या धूणा है। गर्भगृह में छोटा प्रवेश द्वार है, जिस पर काष्ठ प्रतिमाएँ बनी हुई हैं। यहाँ भी दोनों ओर दीवारों के साथ प्रहरी खड़े हैं। ये प्रहरी भी लकड़ी से बनाए गए हैं और लगभग उतने ही हैं जितने कि मंडप की दीवारों में। गर्भगृह में मुख्य काष्ठ प्रतिमा के साथ विष्णु प्रतिमा है। मुख्य प्रतिमा एक तोरण के बीच में है, जिसमें काष्ठ मूर्तियों का उत्कीर्ण हुआ है।

खज्जी नाग के मंदिर के ठीक सामने एक छोटा-सा मंदिर है जो हिडिंबा का है। पूर्व की ओर एक शिव मंदिर है, जो अब दोनों ओर से कंकरीट से निर्मित होटलों से घिर गया है।

इस तरह नाग मंदिर स्थानीय शैली में निर्मित हैं। कहीं अकेले नाग मंदिर हैं, कहीं इनके साथ दूसरे मंदिर भी स्थापित हैं। बहुत-से नाग ऐसे हैं जिनका पुराणों में नाम नहीं आता।

चुराह तथा सदर वजारत के उत्तरी क्षेत्र के नाग

नाम	ग्राम	परगना	नाम	ग्राम	परगना
बलोदर	नबी बणी	तीसा	भुजगर	जंगल भुंजरेरू	तीसा
मलूण	अलवास	तीसा	केलंग	जंगल कलकुंडी	तीसा
सुतोही	बकुंड	तीसा	माहल	बणी	तीसा
दखला	छंपा	तीसा	जमन	बणी	तीसा
कालू	सरनगरी	तीसा	जमोरी	बणी	तीसा
कालू, कलुठ	धार	तीसा	छलसर	बणी	तीसा
ग्रेटर	गुफा	तीसा	उन्सर	बणी	तीसा
माहल	जंगल भुंजरेरू	तीसा	खंडवाल	बणी	तीसा

नाम	ग्राम	परगना	नाम	ग्राम	परगना
थैनंग	दिरोग	लोहटिकरी	परधान	कुंडयारा	जसौर
कालंग	मंगलाणा	लोहटिकरी	थैनंग	बहूनोटा	जसौर
माहल	सारू	लोहटिकरी	थैनंग	घरी	सई
सरवाल	मंदूल	लोहटिकरी	थैनंग	गुरवाँ	सई
तरेवाँ	लुंख	लोहटिकरी	सुंगल	गुलेला	डिऊर
हिम	मोहवा	लोहटिकरी	महल	खंडी	डिऊर
हिमनाग	भराड़वीं	लोहटिकरी	कलाँ	बणी का लौडल	जूँड
कालू	बराहड़ा	लोहटिकरी	सगता	सगवारी	जूँड
भंडारी	बटरुंडी	लोहटिकरी	सर	सरसरा	जूँड
श्री बुधु	लम्होटा	हिमगरी	सर	बणी सरोई	जूँड
बुआतिर	भीवाँ	हिमगरी	सुरमेर	जस्सू	भाँदल
बलोदर	गाम्हीर	हिमगरी	महल	भवादण	भाँदल
लरहसाँ	शलाई	हिमगरी	करवार	चोटेड	भाँदल
छलसर	साहू	हिमगरी	मराड़	चरेतर	भाँदल
कालाँ	चिल्ली	हिमगरी	स्वाणा	भरोग	किहार
मंदोल	चंद्रोला	हिमगरी	महल	चखुत्तर	किहार
स्थूल नाग	खाँगू	हिमगरी	खुल	बणी भुताँ	मंजीर
परभूत	अंडवास	हिमगरी	परहु	संगकी बणी	मंजीर
स्थूलजी	सुडला	हिमगरी	चरस	टिकरी	मंजीर
देओताँ	देओताँ	हिमगरी	चरस	सिरू	मंजीर
महूर	मँगलाणा	हिमगरीं	गुलधाँ	मंजीर	मंजीर
कालू	भराड़ा	लोहटिकरी	गुलधाँ	बही सलोन	मंजीर
मनोवर	भराड़ा	लोहटिकरी	हिम	तलहाना	जसौर
माहल	बहूनोटा	लोहटिकरी	मँडोलू	सिरहा	जसौर
नंडयासर	पधरा	लोहटिकरी	पेजू	बजोंठ	कोहाल
बुजीर	जुंठ	सेई	बलोदर	जंगल बणी	कोहाल
थिंग	सतून	सेई	माहल	जंगल बणी	कोहाल
थैनंग	गंग्यास	सेई	सिंधू	सुंधार	तरियोद
माहल	भोरास	सेई	टोनो	पुखरी	तरियोद
माहल	बैरू	बैरा	बजोग	सिढ़	राजनगर
थैनंग	देगराँ	बैरा	बलोदर	बलदरूपी	खरोंठ
मुथल	गुलेर	जसौर	माहल	तलाई	धुंद
कालू	बरालू	जसौर	बराड़	बरूनी	धुंद
थैनंग	खरोंठ	जसौर	करंगर	सिनूर	गुढ़ियाल

नाम	ग्राम	परगना	नाम	ग्राम	परगना
सुधूँ	सूई	गढ़ियाल	खल्लर	खलरू	पंजला
भेदू	घाट	भलेई	दित्तू	खद्दर	पंजला
भेदू	गंड	भलेई	सुरजू	गुद्दा	पंजला
माहल	जमचार	बंडबगोर	राह	राह	पंजला
थैनंग	चखरा	भाँदल	जम्मू	भला	साहू
टुंडी	उथलुग	बधई	दरोबी	चलाई	साहू
जम्मू	जमुहार	पंजला	दुरबड़ू	भीधार	साहू
जम्मू	बड़ी	पंजला	बुधू	लंगेश	भाँदल
मलुंड	मलुंड	पंजला			

भरमौर तथा सदर वजारत दक्षिणी क्षेत्र के नाग

नाम	ग्राम	परगना	मेले की तिथि	पुजारी/चेला	शासक
बडयाल नाग	औराह	भरमौर	सावन 5	कुड़ेते गद्दी	लक्ष्मी वर्मन
बासक नाग	धार या बासकहेर	सामरा	वैसाख 4-5	सुलाही सारस्वत	राजसिंह
बासकी नाग	सेर	लिल्ह	वैसाख 4-5	शिषनेते ब्राह्मण हाली	मूष वर्मन
बासन नाग	धार या बासकहेर	सामरा	एक वैशाख को जागरा मेला 4-5 वैशाख	सारस्वत, हाली	मूष वर्मन
बिजकू नाग	मैहला	मैहला	दलजात्रा		मूष वर्मन
बिजूरू नाग	त्रेह्टा	त्रेह्टा		स्वाही ब्राह्मण	साहिल वर्मन
दिघनपाल नाग	बेंघला	मैहला	10 श्रावण को जागरण	फ्रंगते गद्दी	मूष वर्मन
धनोहू नाग	ग्रेहड़	भरमौर		रणेतु गद्दी	साहिल वर्मन
दिग्घू नाग	बड़ग्राँ	भरमौर	आषाढ़-सावन को नागपंचमी	पराहँ गद्दी	उमेद सिंह
गुलधार नाग	पूलणी	भरमौर		कालेतु गद्दी	साहिल वर्मन
इंद्रू नाग	सामड़ा	कोठी रण्हू	भाद्रपद	भोगेलु ब्राह्मण राठी	मूष वर्मन
इंद्रू नाग	उरेई	कोठी रण्हू		तिलारु, ब्राह्मण	मूष वर्मन
इंद्रू नाग	सनाओ	छनोटा	एक भादों तथा आश्विन	भट्ट, ब्राह्मण	मूष वर्मन
इंद्रू नाग	लामू	छनोटा	एक भादों	लूण तेलु ब्राह्मण	मूष वर्मन

नाम	ग्राम	परगना	मेले की तिथि	पुजारी/चेला	शासक
इंद्रू नाग	क्वाँरसी	छनोटा	एक भादों तथा एक असौज	प्रंघालु गद्दी, हाली	
इंद्रू नाग	थोंकला	कोठी रण्हू	एक भादों तथा एक असौज	जेसू ब्राह्मण	
इंद्रू नाग	सुलाखर	भरमौर	एक असौज	खरौहतू ब्राह्मण	युगाकर वर्मन
कलिहार या केलंग नाग	कुगति	भरमौर	एक असौज	सस्सी (दत्तात्रेय गोत्र) ब्राह्मण	युगाकर वर्मन
कुठेढु नाग	चोभिया	भरमौर	एक असौज	संग्रांतु ब्राह्मण	साहिल वर्मन
केलंग नाग	कुगति	भरमौर	2 असौज	सस्सी ब्राह्मण	साहिल वर्मन
केलंग नाग	कलाह	त्रेह्टा	2 असौज	कलाही गद्दी	साहिल वर्मन
कुठेढु नाग	पालणी	भरमौर	मार्गशीर्ष को जात्रा	पालनेल गद्दी	साहिल वर्मन
लाटू नाग	पंजसई	भरमौर	एक भादों	औरेन गद्दी	साहिल वर्मन
मेहल नाग	राचणा	लिल्ह	आषाढ़ व आश्विन की नागपंचमी	भरेसाँ गद्दी	
मेहल नाग	भानियाह	मैहला	एक वैशाख	भरेसाँ गद्दी	मूर्ष वर्मन
मेहल नाग	कुलियाड़ा	बकाण	10-13 आषाढ़	राठी	मूर्ष वर्मन
प्रौहल नाग	भामल	लिल्ह	10-13 आषाढ़	जलाणू ब्राह्मण	मूर्ष वर्मन
पुन्नू या इंद्रू नाग	सुतकर	त्रेह्टा	2 आश्विन	पदलू ब्राह्मण	मूर्ष वर्मन
संधोला नाग	गौरी	भरमौर	2 आश्विन	बराँ गद्दी	युगाकर वर्मन
हमासी नाग	भगड़ा	मैहला	15 भादों को जागरा	खाटेलू गद्दी	मूर्ष वर्मन
सेहरा नाग	सिनेर	सामरी	3 आषाढ़	राणा गद्दी	मूर्ष वर्मन
सतूहर नाग	तुड़	बस्सू	15-16 वैशाख	छिंगवाणा गद्दी	मूर्ष वर्मन
खुगेहर नाग	कुंडी	बस्सू	9 वैशाख	मुकवानू ब्राह्मण	मूर्ष वर्मन
सतूहर नाग	शिकरोणा	लिल्ह	एक भादों	चते गद्दी	मूर्ष वर्मन
सतूहर नाग	बंदला	लिल्ह	एक भादों	घुकण गद्दी	मूर्ष वर्मन
उमन	कालेन्द्रे दी बणी	कालंदर	भादों और असौज में दल जात्रा	फागस ब्राह्मण राठी	मूर्ष वर्मन

पाँगी के नाग

नाम	ग्राम	परगना	नाम	ग्राम	परगना
दंती नाग	दरवास	धरवास	प्रोढ़ नाग	साच	साच
कसीर नाग	दरवास	धरवास	माल नाग	हलोड़	साच
बेसिर नाग	दरवास	धरवास	जरियुं नाग	कुटल	साच
बनैक देओ	सुराल	धरवास	दिगल पनिहार नाग	गिसल	सांच
देत नाग	किलाड़	किलाड़			
जगेसर नाग	साच	साच	कुटासन नाग	साल्ही	साच

नाम	ग्राम	परगना	नाम	ग्राम	परगना
बीरू नाग	साल्ही	साच	कालका देवी	तिंदी	लाहुल
जटरूँ नाग	साल्ही	साच	सीतला देवी	तिंदी	लाहुल
दोसर नाग	मचिम	साच	मेहल नाग	तिंदी	लाहुल
कुर्न नाग	हेलु	साच	अरवास नाग	तिंदी	लाहुल
कंतु नाग	रे	साच	निलेटू नाग	तिंदी	लाहुल
चनिर	परमौर	साच	माहल नाग	भजूण	लाहुल
बंबा नाग	शोर	साच	भणी नाग	सिलगारिऊँ	लाहुल
किदारू नाग	शोर	साच	भरसी नाग	सिलगारिऊँ	लाहुल
मिंधल नाग	मिंधल	साच	राशेड़ नाग	मारग्राओं	लाहुल
मृकुला देवी	तिंदी	लाहुल	निसर नाग	तुंदे	लाहुल

संदर्भ : A Glossary of the Tribes & Casts of Punjab & North West Frontier Province.Vol. Language Department, Punjab, 1883

शिरगुल

महासू देव की भाँति शिमला तथा सिरमौर में शिरगुल देवता एक महत्त्वपूर्ण देवता है। शिरगुल का मंदिर चूड़धार के ऊपर है। चूड़धार शिमला के सामने ऊँची पहाड़ी है, जिसमें अप्रैल-मई तक बर्फ देखी जा सकती है।

शिरगुल का मंदिर एकमंजिला है। सामने बरामदा है। छत पर पीतल का कलश है। यह मंदिर बहुत साधारण-सा है किंतु इसकी महत्ता उतनी ही अधिक है। चोटी पर एक बड़ी शिला भी है जो पूर्व जुब्बल तथा सिरमौर की सीमा निर्धारित करती है। इस शिला पर थूहड़ू के परिवार की मूर्तियाँ भी अंकित हैं।

प्रादुर्भाव कथा

शिरगुल और चंद्रशेखर जुड़वाँ भाई थे। उनके पिता का नाम भुकड़ू था जो राजपूत था। माता ब्राह्मण कन्या थी। दोनों के जन्म के बाद माता-पिता चल बसे। दोनों भाई ननिहाल में रहने लगे। शिरगुल भेड़ें चराता और चंद्रशेखर गायें। ननिहाल में उनकी मामी उनसे ईर्ष्या करके सत्तू में मक्खियाँ आदि मिलाने लगी। शिरगुल ने सत्तू में कीट-पतंगे देख सत्तू फेंक दिया और चूड़धार को भागा। सत्तू का लड्डू मिंड ततैया में बदल गया और मामी को काट खाया, जिससे वह मर गई।

चूड़धार पहुँचकर शिरगुल को सामने दिल्ली नजर आई। वह दिल्ली जाने की इच्छा से अपने घर की देखभाल एक राजपूत को सौंप वहाँ से रवाना हो गया। शिरगुल तथा

उसके साथियों को दिल्ली के व्यापारियों ने ठगना चाहा। यह देख शिरगुल ने रेशमी धागा बेचना चाहा। धागे का भार इतना हो गया कि धागे के भार के सामने सारी दुकान हलकी लगने लगी। व्यापारी ने मुस्लिम सम्राट से फरियाद की।

जब शिरगुल दाल पकाने जा रहा था, सम्राट के सिपाही उसे पकड़ने आ गए। आपसी छीनाझपटी में शिरगुल की दाल का बर्तन गिर गया, जिससे दिल्ली का आधा नगर बहने लगा। सम्राट ने शिरगुल को कच्चे चमड़े की बेड़ियाँ लगा अपवित्र करके बंदी बनाया। शिरगुल को जेल में डाल सम्राट ने उसकी शक्ति खत्म करने के लिए उसे गाय की खाल में डाल दिया। शिरगुल ने गुग्गा जाहरपीर से सहायता माँगी। गुग्गा ने दिल्ली पर हमला बोलकर शिरगुल को छुड़ाया। वह चूड़धार वापस लौटा।

शिरगुल जब दिल्ली में था तो दानू असुर ने शिरगुल के सेवक चूहड़ू को मारकर आधा क्षेत्र हथिया लिया था। शिरगुल ने चूहड़ू को शाप दिया। वह शिला हो गया। शिरगुल जब दानू को हरा नहीं पाया तो इंद्र से सहायता माँगी। शिरगुल ने वज्र से दानू को मारा जो तौंस में डूब गया। शिरगुल ने अब अपना राज्य स्थापित किया।

बिजट महादेव

चूड़धार की ढलान में सराहन गाँव है जो अपने नैसर्गिक सौंदर्य के लिए आकर्षण का केंद्र है। सराहन में बिजट या वज्रेश्वर महादेव का पहाड़ी शैली का भव्य मंदिर है।

भीमाकाली मंदिर सराहन की भाँति इस सराहन गाँव का यह मंदिर दो ऊँची अट्टालिकाओं से भव्य दृश्य उपस्थित करता है। अट्टालिकाओं के साथ दोमंजिले भवन अवस्थित हैं। इस तरह इस मंदिर का विस्तृत प्रांगण बन जाता है। एक अट्टालिका में बिजट देवता तथा अन्य देवी-देवताओं के मोहरे तथा प्रतिमाएँ स्थापित हैं।

बिजट महादेव के मंदिर सराहन, जोड़ना तथा देवना में हैं, किंतु सराहन स्थित मंदिर की मान्यता अधिक है। श्रीगुल राजा के मंत्री ने राज्य को इन तीन भागों में बाँटा था, जहाँ मंदिर स्थापित हुए।

यह भी मान्यता है कि जब आज्ञासुर ने चूड़धार के श्रीगुल मंदिर पर हमला किया तो देवता क्रोधित हो उठे। देवताओं का यह क्रोध उलटा बनकर असुरों पर गिरा और उसी उल्का के साथ बिजट की प्रतिमा सराहन में गिरी। उसी प्रतिमा की स्थापना पर यहाँ मंदिर बना। सराहन से प्रतिमा देवना में ले जाई गई।

बिजट देवता नौ वर्ष में एक बार अपने राज्य में घूमते हैं। इसे धुआवटा पूजा कहा जाता है। इनका दंड या छड़ी प्रतिवर्ष घुमाई जाती है। जहाँ यह दंड जाता है, वहाँ इसका भरपूर स्वागत किया जाता है।

मंदिर में बिशु का मेला लगता है, जिसमें ठोडा का खेल खेला जाता है।

सराहन मंदिर में शिमला से चौपाल होकर पहुँचा जा सकता है। यह वन विभाग का आवासगृह और छोटा-सा बाजार है। चौपाल से सराहन के बीच एक जंगल है जहाँ शिखर शैली में मंदिर के अवशेष मिलते हैं।

सिरमौर के मंदिर

जगन्नाथ मंदिर, नाहन

नाहन सिरमौर के राजवंश की राजधानी रहा। कालसी से नाहन राजधानी राजा कर्मप्रकाश (1616-1630) द्वारा लाई गई। लोकास्था है कि राजा कर्मप्रकाश सन् 1621 में नाहन की पहाड़ियों में शिकार खेलने आया। जंगल में उसकी भेंट एक साधु से हुई। साधु से प्रभावित होकर राजा ने नाहन में ही अपनी राजधानी बनाई और आठ वर्ष तक यहाँ राज किया।

कहा जाता है राजा ने उस साधु को अपना गुरु माना और साधु के लिए ही जगन्नाथ मंदिर का निर्माण किया।

हवेलीनुमा इस मंदिर के भीतर जगन्नाथ की मूर्ति है। मंदिर की दीवारें भित्तिचित्रों से सुसज्जित हैं।

काली मंदिर

नाहन फाउंड्री के पास काली का मंदिर है। इसे काली स्थान भी कहा जाता है। राजा विजय प्रकाश का विवाह कुमाऊँ के राजा कल्याणचंद की पुत्री से हुआ था। कहा जाता है कि यह रानी अपने साथ काली की प्रतिमा लाई थी, जिसकी यहाँ स्थापना की गई और मंदिर बनवाया गया। मंदिर का निर्माण राजा भूप प्रकाश (1712) के बाद विजय प्रकाश के समय हुआ।

राजा विजय प्रकाश और उसकी रानी ने नाहन में कई तालाब, बावड़ियाँ और अन्य मंदिर भी बनवाए।

देई साहिबा मंदिर, पाँवटा

पाँवटा साहिब में यमुना नदी के किनारे देई साहिबा का मंदिर है। देई साहिबा मंदिर का निर्माण राजा रघुवीर प्रकाश (1907-1913) के समय हुआ। इस मंदिर को रघुवीर प्रकाश की पुत्री ने बनवाया। अतः उसकी स्मृति में देई साहिबा मंदिर कहते हैं। वास्तव में यह राम मंदिर है। राम मंदिर के साथ कृष्ण मंदिर भी स्थित है।

पाँवटा साहिब का ऐतिहासिक गुरुद्वारा यमुना के किनारे पाँवटा में है। कहा जाता है यहाँ सिक्खों के दसवें गुरु गोविंद सिंह रहे। गुरुद्वारे के पीछे यमुना मंदिर है। मंदिर में कई मूर्तियाँ रखी हुई हैं।

नागनौणा मंदिर

पाँवटा से लगभग दस किलोमीटर दूर नागनौणा एक पुरातात्त्विक स्थल है जहाँ कई प्राचीन मूर्तियों तथा मंदिरों के अवशेष बिखरे हैं।

नागनौणा के संबंध में कई कथाएँ भी प्रचलित हैं। सिरमौर रियासत पानी में बह गई और सारा राजपाट नष्ट हो गया। राजपुरोहित राजस्थान गया और वहाँ एक राजा और रानी को लाया। रानी गर्भवती थी, जिसने समय पूरा होने पर नागनौणा में एक पुत्र और एक साँप को जन्म दिया। साँप जन्म लेते ही मर गया। रानी का पुत्र सिरमौर का शासक बना और नाग के लिए वहाँ मंदिर बनाया गया।

अतः नाग देवता को राजवंश का रक्षक माना जाने लगा। मंदिर में नाग की काष्ठ प्रतिमा है।

सूर्य प्रतिमा

यमुना घाटी से एक सूर्य प्रतिमा मिली जो नौवीं-दसवीं शताब्दी की मानी जाती है। यह भूरिसिंह संग्रहालय चंबा में है। छत्तीस सेंटीमीटर ऊँची यह प्रतिमा सेंडस्टोन से निर्मित है। सूर्य दोनों हाथों में कंधों तक कमल के फूल उठाए हुए हैं। प्रतिमा के नीचे दोनों ओर दंडी और पिंगला हैं। मूर्ति के साथ पैनल में उड़ते हुए गंधर्व दिखाए गए हैं।

श्रीगुल के अन्य मंदिर

तहसील रेणुका में श्रीगुल का तिमंजिला मंदिर है। सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद तीसरी मंजिल में श्रीगुल की मूर्ति है। श्रीगुल की काँस्य प्रतिमा के साथ अन्य बारह प्रतिमाएँ भी स्थापित हैं।

मंदिर की स्थापना के विषय में कथा है कि श्रीगुल ने स्वयं अपनी प्रतिमा बनाकर खड्ड में एक चौड़े पात्र में रखकर छोड़ दी। पानी में तैरता पात्र जब गाँव में पहुँचा तो एक राजपूत ने भूत-प्रेत समझ पुतले को चुनौती दे दी। देवता के पुतले ने बताया कि वह श्रीगुल है और उसका मंदिर बनाया जाए। उस राजपूत ने गाँव में मंदिर बनवाया और देवता को स्थापित कर दिया।

श्रीगुल, देवठी मँझगाँव

राजगढ़ तहसील के देवठी मँझगाँव में भी श्रीगुल का मंदिर है। मंदिर में श्रीगुल की सोने की प्रतिमा है। बैसाखी को गाँव में मेला लगता है। श्रीगुल के मंदिर टिक्कर, डंडाघाट, पालू, लेऊनाला में भी हैं।

कटासन देवी

कटासन देवी का मंदिर नाहन से उन्नीस किलोमीटर एक जंगल में है। पटियाला और सिरमौर की मैत्री के समय गुलाम कादिर रोहिला ने सिरमौर पर आक्रमण किया। कटासन में घोर युद्ध हुआ और कादिर रोहिला मारा गया। इस युद्ध में सिरमौर की विजय हुई और राजा ने मंदिर बनवाया।

सिरमौर में देव परंपरा

देवता महासू का सिरमौर के शिमला से लगते क्षेत्रों में प्रभाव है। महासू देवता के मंदिर सिरमौर के कई गाँवों में हैं। देवता के कई पर्व मनाए जाते हैं, जिनमें 'पोचोर्ट' प्रमुख है। यह भादों की अमावस्या के बाद तीज को होती है, जिसमें महासू की 'काँकरी' गाई जाती है। गूर या औतारिक चमत्कारपूर्ण कृत्य करते रहते हैं और भविष्यवाणियाँ करते हैं।

दूसरा प्रमुख देव शिरगुल है। बीजट जिसे वज्र या बिजली से रक्षा करने वाला माना जाता है, शिरगुल का सहायक है।

शिरगुल के दो अन्य सहायक देव हैं—गौण या गण तथा सिरमौरी। मंदिरों में शिरगुल की मुख्य प्रतिमा के साथ गौण और सिरमौरी की प्रतिमाएँ भी अवश्य होती हैं।

बीजट देवता की दो बहनें मानी जाती हैं—घटरायली देवी और विजय देवी। घटरायली देवी का मंदिर पंजाहाँ गाँव में है। यह देवी धन-धान्य की वृद्धि करती है। दूसरी बहन विजय देवी का मंदिर बटरोल गाँव में है।

भयागण देवी शिरगुल की पत्नी है। इस देवी का मंदिर मूँग के पास थारगाँव में है। कहा जाता है, इसे शिरगुल दिल्ली से भगाकर लाया। यह कन्या सवर्ण नहीं थी। भगाकर लाने के कारण इसका नाम 'भयागण' हुआ। इससे एक पुत्र चूहड़ु हुआ, जो अपने पिता शिरगुल के साथ रहता है, माता के पास नहीं आता। दो गाँवों या दलों में झगड़ा होने पर सत्य को जानने के लिए इसे पूछते हैं।

अन्य देवियाँ

देवी रेणुका ऋषि जमदग्नि की पत्नी मानी जाती है। इसे लगभग सभी सिरमौरवासी पूजते हैं। भारती देवी का मंदिर शिवनाना गाँव में है। यह बद्रीनाथ-केदारनाथ से लाकर स्थापित की गई है। लाय देवी का मंदिर नाहन के निकट लाय पहाड़ी पर है। त्रिभुवनी देवी का मंदिर कौलाँ वाले भूड़ के पास जंगल में है। यहाँ आषाढ़ के तीसरे रविवार को मेला लगता है। नौई देवी का मंदिर गागल शिवोहर गाँव में है। ये दोनों देवियाँ जंगली जानवरों से रक्षा हेतु पूजी जाती हैं।

भगवती बाला सुंदरी प्रमुख देवियों में से एक है। देवी का मंदिर त्रिलोकपुर ग्राम में है। दोनों नवरात्रों में यहाँ मेला जुटता है और दूर-दूर के लोग आते हैं। यहाँ भैंसे की बलि दी जाती थी।

इनके अतिरिक्त ला देवी टोका नगला गाँव के समीप, कवाग की देवी भूरसिंह के निकट है। दूधम गाँव में कुदिन देवी है जो किसी अंधे राजा की पुत्री मानी जाती है।

काँगड़ा क्षेत्र की भाँति यहाँ नैना देवी, ज्वालामुखी, नगरकोटी देवी के मंदिर भी हैं। नैना देवी का निवास पुजारी के घर बायला गाँव में है। नैना टिक्कर में इसका मंदिर भी है। ज्वालामुखी का मंदिर रावना गाँव में है। ज्वालामुखी यहाँ ठौड़ के एक साधु त्वारनाथ से भेंट करने आई थी। अतः लोगों ने यहाँ मंदिर बना दिया। नगरकोटी देवी के मंदिर शाया शड़ौली (पझौता) तथा दलाँहाँ गाँव में है।

अन्य देवता

गुग्गा जाहर पीर की मान्यता भी यहाँ है। शिलार्ट तथा नाहन में गुग्गा के मंदिर हैं। गुग्गा की भाँति या गुग्गा के ही दूसरे रूप 'कोयलो' को भी पूजा जाता है। कोयलो के चबूतरे बने हैं। मान्यता है कि किसी भी विषैले जीव-जंतु के काटने पर चबूतरे पर लिटाने से जहर का असर नहीं रहता।

नाथपंथियों में गरीबनाथ का मंदिर पाँवटा में है। कथाओं में नाथों के चमत्कारों से राजाओं की जीत बताई है। नाथ सिद्धों के मठ भी यहाँ थे।

जहाँ रेणुका झील बनी

हिमाचल की वादी में जहाँ पर्वत पुत्री पार्वती नदी होकर बहती है वहाँ दूसरे छोर पर सिरमौर में देवी रेणुका को झील के रूप में पूजा जाता है। किसी झील को पूजा जाना अचंभा नहीं है, उसे साक्षात् देवी मान लेना जनमानस की अद्‌भुत आस्था का प्रतीक है।

परशुराम का प्रचंड पौराणिक व्यक्तित्व एक ओर कुल्लू के निरमंड में प्रकट हुआ है, जहाँ उनके पाँच 'स्थान' और आठ 'ठहरियाँ' हैं, दूसरी ओर वे हर वर्ष अपनी माँ रेणुका से मिलने रेणुका झील में आते हैं। इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से विहीन करने वाले परशुराम का स्थान पौराणिक साहित्य में महेंद्र पर्वत पर माना गया है, जहाँ अनेक ऋषि वास करते हैं। महाभारत में वर्णन है कि जब भाइयों सहित युधिष्ठिर उनके दर्शनों के लिए गए तो वहाँ उपस्थित ऋषियों ने बताया कि उनका दर्शन चतुर्दशी और अष्टमी को होता है। युधिष्ठिर ने वहाँ प्रतीक्षा कर निश्चित तिथि को उनके दर्शन प्राप्त किए। पुराणों में परशुराम के क्षात्रतेज और प्रचंड व्यक्तित्व का वर्णन मिलता है।

अनूप देश के राजा कार्तवीर्य अर्जुन ने एक बार ऋषि जमदग्नि द्वारा आदर-सत्कार किए जाने कि बावजूद आश्रम की गाय का बछड़ा हर लिया। परशुराम ने आश्रम आने पर कार्तवीर्य अर्जुन की हजारों बाँहें काटकर उसे मार डाला। इस पर अर्जुन के पुत्रों ने ऋषि जमदग्नि का वध कर दिया। पिता की हत्या पर परशुराम अग्नि के समान प्रज्वलित हो उठे। उन्होंने क्षत्रिय वध की प्रतिज्ञा की। कार्तवीर्य अर्जुन के पुत्रों को मारकर उन्होंने उन सब

क्षत्रियों को भी मार डाला, जिन्होंने उनका पक्ष लिया। इस प्रकार इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियविहीन करके समंतपंचक क्षेत्र में रक्त के पाँच सरोवर भर दिए। ऋषि ऋचिक द्वारा इस दुष्कर कर्म से रोके जाने पर परशुराम पृथ्वी ब्राह्मणों को दान कर महेंद्र पर्वत पर चले गए।

परशुराम के विषय में एक अनोखा किस्सा भी महाभारत आदि ग्रंथों में मिलता है। रेणुका राजा प्रसेनजित की पुत्री थी। महाप्रतापी जमदग्नि ने वेदाध्ययन के बाद राजा प्रसेनजित के पास जाकर उनकी पुत्री की याचना की, जिसे राजा ने स्वीकार कर लिया। रेणुका के ऋषि से पाँच पुत्र हुए। परशुराम सबसे छोटे थे। कहा जाता है कि एक बार रेणुका स्नान करने गई। वहाँ उसने दैवयोग से संपत्तिशाली राजा चित्ररथ को देखा। रेणुका का चित्त चलायमान हो गया। ऋषि जमदग्नि ने रेणुका की वापसी पर बात भाँप ली और क्रुद्ध होकर अपने बेटों से माता का वध करने को कहा। ऋषि के चारों पुत्र रुक्मवान, सुषेण, वसु और विद्यावसु यह सुन सहम गए। परशुराम ने पिता की आज्ञा से फरसा लेकर उसी क्षण माता का सिर धड़ से अलग कर दिया। पिता ने प्रसन्न हो पुत्र को वर माँगने को कहा। परशुराम ने अपनी माँ के जीवित होने की कामना की। अपने इस पाप के नाश होने तथा माँ द्वारा इस घटना के विस्मृत होने की इच्छा की। ऋषि जमदग्नि ने सभी कामनाएँ पूर्ण कर दीं।

मनोहारी झील रेणुका शिमला से 135 किलोमीटर और नाहन से 37 किलोमीटर है। झील के चारों ओर घुमावदार सड़क बनी है। सड़क के एक ओर झील है। झील के ऊपर अभयारण्य। बीस हेक्टेयर में फैली इस झील की गहराई पाँच से तेरह मीटर है। दूर से किसी नारी की आकृति की यह झील प्रदेश की झीलों में एक बड़े आकार की झील है—वन, पशु-पक्षियों से घिरी। झील के किनारे माँ रेणुका, परशुराम के मंदिर हैं तथा साथ कुछ संन्यासियों के आश्रम। झील के चारों ओर वन्य पशु विचरण करते हैं।

कुछ वर्षों से झील की ग्रहण शक्ति समाप्त हो रही है। भूस्खलन से मलबा गिरता रहता है। मछलियाँ तथा श्रद्धालुओं द्वारा फेंकी गई सामग्री से प्रदूषण बढ़ रहा है। अब तक लगभग पाँच हेक्टेयर भाग सूख गया है।

कुछ नौकाएँ भी झील में डाली गई हैं, किंतु नौकाविहार कम ही होता है। हाँ, मछलियों को आटा या चारा अवश्य खिलाया जा सकता है। साथ में कुछ जानवर तथा छोटे जीव-जंतु भी पिंजरों में बंद कर रखे हुए हैं। सबसे आनंददायक है झील की परिक्रमा करना, जहाँ शेर और जीव-जंतु भी फुदकते नजर आ जाते हैं।

यहाँ रेणुका का प्रसिद्ध मेला मनाया जाता है। दीपावली के पश्चात् दशमी के दिन परशुराम जी की शोभायात्रा निकाली जाती है। कहा जाता है कि परशुराम प्रत्येक वर्ष दशमी के दिन डेढ़ दिन के लिए अपनी माँ रेणुका से मिलने आते हैं। परशुराम जी की शोभायात्रा में लोकनाट्य, लोकनर्तक तथा श्रद्धालुओं की भीड़ जुटती है। एकादशी के दिन झील में पवित्र स्नान होता है। मेले में उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान और पंजाब से श्रद्धालु भाग लेते हैं।

कुछ वर्षों से मेले में रात्रि को सांस्कृतिक कार्यक्रम जैसे आधुनिक तत्त्व भी जुड़ गए हैं। सरकार द्वारा इस मेले को राज्य स्तरीय उत्सव का दर्जा दिया गया है। रेणुका झील के विकास के लिए रेणुका विकास बोर्ड गठित किया गया है। जिलाधीश, सिरमौर की अध्यक्षता में यह बोर्ड रेणुका झील, परिसर के विकास के साथ मेले का प्रबंध भी करता है।

माँ रेणुका का मंदिर

यह मंदिर माँ रेणुका के नाम से प्रसिद्ध है। नाहन से पूर्व की ओर चालीस किलोमीटर की दूरी पर रेणुका नामक स्थान पर परशुराम ताल के किनारे यह मंदिर स्थापित है। मंदिर की दूसरी ओर विशाल रेणुका झील है। शिमला से इस स्थान की दूरी 169 किलोमीटर है। बाहर से आने वाले यात्रियों के लिए चंडीगढ़ तथा अंबाला तक रेल सुविधा उपलब्ध है। बस द्वारा भी नाहन पहुँचकर रेणुका के लिए वाहन सुविधा प्राप्त कर इस स्थान तक पहुँचा जा सकता है।

वास्तुकला

माँ रेणुका के मंदिर को मठ के रूप में गुंबदाकार शैली को अपनाकर निर्मित किया गया है। मंदिर की ऊँचाई 18 फुट है। भीतर संगमरमर से निर्मित माँ रेणुका की मूर्ति स्थापित है। समीप ही गणेश की पाषाण मूर्ति स्थापित है। दोनों मूर्तियों की पूजा की जाती है।

जनश्रुति

रेणुका भगवान् परशुराम की माता तथा ऋषि जमदग्नि की भार्या थी। उनकी छोटी बहन सहस्रबाहु राजा को ब्याही हुई थी। ऋषि जमदग्नि अपनी पत्नी रेणुका सहित इस क्षेत्र में तपस्या करते और माँ रेणुका उनके भोजन की व्यवस्था में लीन रहती। एक बार माँ रेणुका जब पानी लाने नदी तट पर गई तब उसकी भेंट सहस्रबाहु से हुई। वह उस समय गिरी नदी के आसपास शिकार खेलने आया था। रेणुका को पहचानकर उसे वह अपने डेरे पर ले गया, जहाँ वह अपनी बहन से मिलकर बहुत प्रसन्न हुई। रेणुका ने भी अपनी बहन को अपने आश्रम में आने का निमंत्रण दिया। ऋषि जमदग्नि सहस्रबाहु के स्वभाव को जानते थे। वे इंद्र से जाकर कामधेनु तथा कल्पवृक्ष ले आए थे, जिनके प्रभाव से ऋषि और रेणुका ने उनके आदर-सत्कार में कोई कसर नहीं रखी। जब सहस्रबाहु जाने को तैयार हुआ तो उसने ऋषि से प्रश्न किया कि आप तो तपस्वी हो, इतना वैभव कैसे जुटा पाए ? तब ऋषि ने उसे सच्चाई बतलाई कि यह सब कामधेनु कल्प वृक्ष का प्रभाव है। सहस्रबाहु ने कहा कि तुम मुझे ये दोनों वस्तुएँ उपहारस्वरूप दे दो। पराई अमानत को न देने के लिए जब ऋषि ने असमर्थता प्रकट की तो वह नाराज होकर उनकी ओर लपका। ऋषि की आज्ञा से कामधेनु और कल्प वृक्ष स्वर्ग में चले गए। इससे सहस्रबाहु का क्रोध और भी बढ़ गया। उसने ऋषि पर मुष्टिका और गदा के अनेक प्रहार कर उन्हें मूर्च्छित कर दिया। तत्पश्चात्

वह रेणुका के सतीत्व को भंग करने के लिए उसकी ओर आया। माँ रेणुका ने पृथ्वी से प्रार्थना की कि वह उसे अपने भीतर समा ले। जिससे देखते ही देखते रेणुका धरती में समा गई और ऊपर जल ही जल हो गया, जो वर्तमान रेणुका झील के नाम से प्रसिद्ध है।

भूगर्भ में छिपी माँ रेणुका ने अपने पुत्र परशुराम को याद किया। वे तत्काल वहाँ पहुँचे। सभी समाचार पाकर उन्होंने सहस्रबाहु का वध किया तथा क्षत्रियों को पृथ्वी से समूल नष्ट करने की प्रतिज्ञा की। माता की प्रार्थना पर परशुराम जी प्रतिवर्ष कार्तिक शुक्ला द्वादशी से पूर्णिमा तक अपनी माँ के पास आकर रहते हैं। इसी घटना को चिरस्थायी बनाए रखने हेतु स्थानीय लोगों द्वारा कार्तिक शुक्ला दशमी से पूर्णिमा तक पाँच दिन विशाल मेले का आयोजन किया जाता है।

उत्सव

नवंबर मास में कार्तिक शुक्ला दशमी से पूर्णिमा तक मेला लगता है। स्थानीय लोग बैसाखी तथा लोहड़ी के अवसर पर इस पवित्र झील में स्नान करते हैं।

गुरुद्वारा पाँवटा साहिब

नाहन से 45 कि०मी० की दूरी पर पूर्व की ओर यमुना नदी के तट पर पाँवटा नामक स्थान पर गुरुद्वारा पाँवटा साहिब स्थित है। शिमला से पाँवटा 180 कि०मी० है। समीपस्थ रेलवे स्टेशन यमुनानगर है। प्रदेश के सभी भागों से यहाँ के लिए बस सेवा उपलब्ध है।

वास्तुकला

गुरुद्वारा गुंबदाकार शैली में बनाया गया है।

जनश्रुति व इतिहास

जनश्रुति के अनुसार यहाँ पर सिखों के दसवें गुरु गोविंद सिंह के पाँव का गहना गिरा था, जिससे इस स्थान का नाम पाँवटा साहिब पड़ा। गुरुद्वारा लगभग सौ वर्ष पुराना है। पहले यह स्थान निर्जन था। गुरु गोविंद सिंह जी ने इस स्थान पर साढ़े चार वर्ष तक तपस्या की और बाद में कुछ समय तक यहाँ ठहरे थे, इसलिए यह स्थान सिख धर्म के अनुयायियों का तीर्थ स्थान है।

उत्सव

बैसाखी तथा गुरुपर्वों पर हजारों की संख्या में श्रद्धालु गुरुद्वारे में आते हैं। दूर-दूर से आए रागी सबद-कीर्तन तथा गुरुवाणी का पाठ करते हैं। इन दिनों लंगर का प्रबंध होता है।

जामा मस्जिद

जामा मस्जिद नाहन नगर में स्थित है। शिमला से इस स्थान की दूरी 135 कि०मी० है। नाहन पहुँचने के लिए अंबाला तथा चंडीगढ़ तक रेल तथा उससे आगे बस सेवा उपलब्ध है। मस्जिद का प्रबंध मौलवी के हाथ में है।

वास्तुकला

मस्जिद गुंबदाकार शैली में बनी है तथा मस्जिद में साईं मुहम्मद शाह की मजार है।

जनश्रुति

मस्जिद से संबंधित कोई जनश्रुति नहीं।

उत्सव

प्रत्येक शुक्रवार को नगर के मुसलमान यहाँ नमाज पढ़ने आते हैं। ईद, मुहर्रम आदि उत्सव में बड़ा समारोह होता है।

श्री जगन्नाथ मंदिर, नाहन

यह मंदिर नाहन के एक बड़े चौक के समीप स्थित है। मुख्य मार्ग दिल्ली गेट से लगभग एक फर्लांग तथा शिमला से 135 कि०मी० दूर है। नाहन पहुँचने के लिए चंडीगढ़ तथा अंबाला तक रेल सेवा तथा आगे चलकर बस सेवा उपलब्ध है। मंदिर का प्रबंध समिति के हाथ में है।

वास्तुकला

जगन्नाथ मंदिर नाहन के प्राचीनतम मंदिरों में से एक है। इस मंदिर का निर्माण 1928 विक्रमी अर्थात् 1871 ई० में सिरमौर के राजा महिप्रकाश द्वारा हुआ था। उन्हीं के हाथों वर्तमान मूर्ति स्थापित की गई थी। मंदिर शिखर शैली का है जो राजस्थानी पुट लिए हुए एकमंजिला है। मंदिर में अनेक भित्तिचित्र हैं जो काल के प्रभाव से धूमिल पड़ चुके हैं, जिन पर प्रबंध समिति दोबारा रंग करवा रही है। ये भित्तिचित्र काँगड़ा शैली पर आधारित हैं। चित्रकारी में विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे, फूल-फल, राजा-रानी, नर-नारी तथा सर्प आदि के रूप हैं। मंदिर की प्रमुख मूर्ति भगवान् जगन्नाथ की है। दो भगवान् श्रीकृष्ण की, दो पीतल की लड्डू गोपाल की, श्रीराम, लक्ष्मण, सीता (जिनमें श्रीराम की मूर्ति काले संगमरमर की है) की संगमरमर की तथा भगवान् जगन्नाथ, बलभद्र व सुभद्रा की काष्ठ मूर्तियाँ हैं। राधा की मूर्ति संगमरमर की है तथा पीतल की अनेक छोटी मूर्तियाँ हैं। मंदिर में श्याम पत्थर की शालिग्राम शिलाएँ भी हैं। मंदिर के प्रवेश द्वार पर एक ओर हनुमान तथा दूसरी ओर गरुड़ की दो पाषाण मूर्तियाँ खड़ी की गई हैं।

जनश्रुति

कहा जाता है कि एक बार राजा महिपाल को स्वप्न में आकाशवाणी द्वारा आदेश मिला कि पुरानी राजधानी सिरमौरी ताल में पीपल के पेड़ के नीचे प्राचीन मूर्ति दबी पड़ी है। तुम उसे उठाकर उचित स्थान पर स्थापित कर दो। प्रातः होते ही राजा निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा और उसने मूर्ति को पेड़ के नीचे से खोदकर निकाला और वर्तमान मंदिर के समीप स्थापित किया। जब जगन्नाथ जी के मंदिर का निर्माण हो गया तो उस शालिग्राम की मूर्ति को विधिवत् वेदोक्त विधि से मंदिर में चाँदी के सिंहासन पर आसीन किया।

उत्सव

मंदिर शहर के मध्य है, जिससे संक्रांति, एकादशी, अमावस्या तथा पूर्णिमा को बहुत चहल-पहल रहती है। परंतु मुख्य रूप से रामनवमी, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी तथा वामन द्वादशी को बहुत बड़ा उत्सव होता है। वामन द्वादशी को बड़े उत्साह से मनाते हैं। यह पर्व सितंबर मास में भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को होता है। बहुत दूर-दूर से बुलाए गए विद्वान् अपने भजन-कीर्तन तथा उपदेश से भक्तों में भगवान् के प्रति श्रद्धा जागृत करते हैं।

भगवती बाला सुंदरी

भगवती बाला सुंदरी का मंदिर नाहन से 24 किलोमीटर की दूरी पर नाहन-त्रिलोकपुर सड़क (वाया काला अम्ब) के किनारे ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। यह स्थान शिमला से 159 कि०मी० है। बाहर से आने वाले यात्रियों के लिए चंडीगढ़ अथवा अंबाला तक रेल सुविधा तथा उससे आगे बस सेवा उपलब्ध है। मंदिर की एक समिति है जो मंदिर की देखरेख तथा मेले आदि का प्रबंध करती है, जिसके अध्यक्ष जिलाधीश सिरमौर हैं। यह मंदिर सरकार द्वारा संचालित मंदिर अधिनियम के अधीन है।

वास्तुकला

मंदिर गुंबदाकार शैली में निर्मित है। इसका निर्माण महाराजा प्रदीप ने 1630 विक्रमी में करवाया था। कालांतर में महाराजा फतेह प्रकाश ने मंदिर का विस्तार किया। मंदिर के ठीक मध्य भगवती बाला सुंदरी की प्राचीन पिंडी स्थापित है तथा साथ ही भगवती दुर्गा की संगमरमर की तीन फुट ऊँची तथा 2 फुट चौड़ी मूर्ति विराजमान है। मंदिर में महिषासुरमर्दिनी व देवी के विविध रूपों की अठारह मूर्तियाँ हैं, जो धातु से बनी छोटे आकार की हैं। मंदिर दक्षिणाभिमुख है। पूर्व दिशा में मनसा माँ की पाषाण मूर्ति है। मंदिर के द्वार के सामने एक हवन कुंड, माँ का वाहन सिंह, संतोषी माता, भैरव, अष्टभुजी दुर्गा, हनुमान तथा शिवजी की मूर्तियाँ हैं।

जनश्रुति एवं इतिहास

लोकास्था है कि त्रिलोकपुर नामक स्थान पर एक महाजन रहा करता था। वह नमक का व्यापार करता था। एक बार वह उत्तर प्रदेश से नमक लाया और उसे बेचने लगा। नमक को वह प्रतिदिन बेचता परंतु नमक की बोरी पहले की भाँति भरी ही रहती। वह इस चमत्कार से बहुत प्रभावित हुआ और मन में विचार करने लगा। एक दिन माँ ने एक छोटी लड़की के रूप में उसे दर्शन दिए और कहा किं मैं तुम्हारे घर पर बरकत बनकर रह रही हूँ। दुकानदार ने नमक में ही बरकत देखी थी। उसने बोरी उँड़ेल डाली। उसे नमक में एक छोटी-सी पिंडी मिली जिसे उसने एक पीपल के पेड़ के नीचे स्थापित कर दिया और उसकी पूजा करने लगा। देवी ने महाराजा प्रदीप प्रकाश को अपना मंदिर बनाने हेतु स्वप्न में आदेश दिया। जिसका पालन करते हुए तत्कालीन नरेश प्रदीप प्रकाश ने 1630 विक्रमी में इस मंदिर का निर्माण कराया। भगवती ने अपने दोनों भक्तों को सुंदर बालिका के रूप में दर्शन दिए, जिससे यह माँ बाला सुंदरी के नाम से विख्यात हुई।

उत्सव

प्रतिवर्ष चैत्र तथा आश्विन नवरात्रों में देवी के मंदिर में मेले लगते हैं, जिनमें लाखों श्रद्धालु आते हैं।

मार्कंडेय ऋषि और सरस्वती नदी

नाहन से सत्रह किलोमीटर नाहन-पाँवटा मार्ग पर बोहलियो नामक स्थान में मार्कंडेय का स्थान है। कहा जाता है कि जब मार्कंडेय को यमदूत लेने आए तो उन्होंने शिवलिंग को अपनी बाँहों में भर लिया और शिव से अमर होने का वरदान पाया। यहाँ गुल्लर वृक्ष के नीचे मार्कंडेय का उद्‌गम हुआ। मार्कंडेय ऋषि नदी होकर बहते हैं। यहीं से मार्कंडेय पौड़ीवाला शिव मंदिर में गए।

इसी स्थान पर सरस्वती नदी का उद्‌गम भी माना जाता है, जो कहीं प्रकट रूप में तो कहीं अदृश्य रूप में हरियाणा में प्रवेश करती है। यहाँ प्रतिमास के शुक्ल पक्ष तथा संक्रांति, अमावस्या, पूर्णिमा को स्नान होता है।

देवी कटासर्न

नाहन-पाँवटा मार्ग पर नाहन से लगभग अठारह किलोमीटर की दूरी पर सड़क के किनारे देवी कटासन का मंदिर है। देवी को कात्यायनी माना जाता है। महर्षि कात्यायन ने इनकी पूजा-अर्चना की थी। यहाँ नवरात्रों में मेला लगता है। मंदिर के आसपास साल का जंगल है। यहाँ से आगे शिव मंदिर पौड़ी वाला है।

भागेश्वरी देवी

नाहन-शिमला मार्ग पर सरोगा में भागेश्वरी देवी का मंदिर है। कहा जाता है, जब मुगलकाल में कुछ राजस्थानी परिवार हरियाणा की ओर आए तो रायपुर रानी में भी मुगलों के उत्पीड़न से तंग होकर हिमाचल में आ गए। इनके साथ एक ब्राह्मण कन्या थी, जिसे ये पालकी में ला रहे थे। रात जब यहाँ विश्राम किया तो प्रातः न पालकी थी, न ब्राह्मण कन्या। खोजने पर आवाज आई कि तुम सब यहीं बस जाओ, यह स्थान सुरक्षित है। अतः सभी वहीं बस गए और देवी के मंदिर का निर्माण हुआ।

भंगयाणी देवी

भंगयाणी देवी का मंदिर हरिपुरधार में स्थित है। कथा है कि देवी दिल्ली में भंगिन का काम करती थी। जब सिरमौर का देवता श्रीगुल दिल्ली गया तो दिल्ली के सुलतान ने उसे कैद कर लिया और हाथ-पैर चमड़े की बेड़ियों से बाँध दिए। श्रीगुल का एक मित्र गुग्गा जाहरपीर था, जो श्रीगुल को कैद से मुक्त कराने दिल्ली पहुँचा। गुग्गा ने दिल्ली के सुलतान को हरा दिया और श्रीगुल को ढूँढ़ा, किंतु श्रीगुल कहीं नहीं मिला। अंततः गुग्गा की मुलाकात भंगिन से हुई, जिसने वह कोठरी दिखाई जहाँ श्रीगुल कैद था। गुग्गा ने श्रीगुल को कैद से छुड़ाया। यह भी मान्यता है कि भंगिन ने ही श्रीगुल को छुड़ाया। श्रीगुल ने उसे अपनी धर्मबहन बनाया। इसीलिए देवी का नाम 'भंगयाणी देवी' पड़ा।

यहाँ वैशाख संक्रांति को मेला लगता है, जिसमें पहले दिन दंगल होता है।

इसके अतिरिक्त सराहां (शिमला मार्ग) में भूरेश्वर महादेव, अंबवाला (नाहन) में गुग्गा माड़ी, लखदाता पीर, बाबा बढ़ोलिया (रेणुका), बालासुंदरी जमटा, पातालेश्वर महादेव (पातलियाँ पाँवटा), देदू साहिबा (पौंटा) आदि मंदिर हैं।

गुरुद्वारा

प्रसिद्ध गुरुद्वारा पौंटा साहिब के अतिरिक्त बड़ू साहिब, गुरुद्वारा नाहन, भंगाणी साहिब, तीरगढ़ी साहिब, शेरशाह साहिब निहालगढ़ आदि गुरुद्वारे हैं।

बिलासपुर के मंदिर

बिलासपुर में सतलुज के किनारे व्यास गुफा है। कहा जाता है, यह गुफा इतनी लंबी है कि मार्कंडेय में जा पहुँची है। जुखाला के पास मार्कंडेय में भी व्यास गुफा है। कहा जाता है कि सतलुज के किनारे ऋषि अपने भ्रमण के समय यहाँ भी रहे।

बस स्टैंड के पास लक्ष्मीनारायण मंदिर है। मंदिर परिसर काफी बड़ा है। मंदिर में

मुख्य मूर्तियाँ लक्ष्मीनारायण की हैं। झील में डूबे मंदिरों की प्राचीन मूर्तियाँ भी यहाँ स्थापित की गई हैं।

घुमारवीं तहसील के लदरौर में संतोषी माता का एक नया मंदिर बना है। यहाँ शुक्रवार को बहुत-सी महिलाएँ संतोषी माता की भक्ति करने आती हैं।

घुमारवीं के पास लेहटी सरेल में भराडी-हमीरपुर सड़क पर एक ऊँची पहाड़ी में हरिदेवी का मंदिर है। कहा जाता है बिलासपुर के राजा की राजकुमारी ने पुत्र-प्राप्ति के लिए देवी से प्रार्थना की। एक वर्ष के भीतर ही उसे पुत्र प्राप्त हो गया, जिसका नाम हरिचंद रखा। देवी का नाम हरिदेवी रखकर यहाँ मंदिर बनवाया गया।

बिलासपुर-जुखाला मार्ग पर भलवाड़ में झंडा सरदार का मंदिर है। इस मंदिर में झंडा सरदार की प्रतिमा रखी गई है।

बिलासपुर या कलहूर रियासत के प्रबंध के लिए पाँच पंच नियुक्त किए गए थे। ये पंच या सरदार पंचायतें लगाकर प्रबंध व्यवस्था चलाते थे। इन पंचों का मुखिया झंडा था। जब भी बाहरी आक्रमण होते, झंडा सरदार अन्य सरदारों के साथ आक्रमण को निष्फल कर देता। कहा जाता है चंदेल वंश के राजा ने कलहूर को अपने कब्जे में करने के लिए कथलू गुज्जर को अपनी तरफ कर लिया जो पंचों में भी विश्वसनीय था। कथलू भी पंच था और उसे यहाँ का सरदार लगाने का झाँसा दिया। कथलू ने चुपचाप सभी शस्त्र बेकार कर दिए। जब आक्रमण हुआ तो सभी शस्त्र बेकार पाए गए। झंडे सरदार ने कथलू की चालाकी समझकर उसे मार दिया किंतु खुद भी युद्ध में घायल हो गया। मरने से पूर्व उसने गाँव में आकर मरने की इच्छा जाहिर की। उसे गाँव लाया गया। यहाँ उसकी मृत्यु पर मंदिर निर्माण किया गया। झंडा सरदार की स्मृति में आषाढ़ में मेला लगता है।

गुरु का लाहौर (गुरुद्वारा)

यह गुरुद्वारा आनंदपुर साहिब से दस किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। बिलासपुर से इसकी दूरी नब्बे किलोमीटर है। इस गुरुद्वारे का नाम पहले खेड़ी मानसिंह था जो तत्कालीन बिलासपुर के राजा का आखेट स्थान था। बाद में इस स्थान का नाम गुरु का लाहौर पड़ा।

इसका निर्माण आषाढ़ 23, संवत् 1730 से ही माना जाता है। उस समय इसका आकार छोटा था। सन् 1950-51 में महंत शिरोमणि ने इसका प्रभार सँभाला। कारसेवा शुरू की गई, जिसके अनुज संत बाबा सेवा सिंह थे। उसी के प्रयत्नों से इस गुरुद्वारे के भवन का निर्माण 1966-67 में हुआ। इसकी शैली गुंबदाकार है।

जनश्रुति

सिखों के नवें गुरु तेगबहादुर जब हिंदू धर्म की रक्षा के लिए दिल्ली में शहीद हुए तो उनके शोक के लिए विभिन्न स्थानों से संगत आनंदपुर साहिब में श्री गुरु गोविंद सिंह के पास आई। लाहौर से भी संगत आई तथा उस संगत में श्री हरजस क्षत्रिय भी अपने परिवार सहित आया। इस दौरान उस क्षत्रिय ने स्वयं चाहा कि उसकी नौजवान बेटी जीतो की शादी

गुरु गोविंद सिंह के साथ हो जाए। क्षत्रिय का प्रस्ताव गुरु गोविंद सिंह ने स्वीकार कर लिया। क्षत्रिय की माँग यह थी कि उसकी लड़की जीतो की शादी के लिए बारात आनंदपुर साहिब से लाहौर के लिए जाए, परंतु यह माँग गुरु गोविंद सिंह ने ठुकरा दी, क्योंकि उस समय मुसलमान हिंदू धर्म का नाश कर रहे थे। मुसलमानों द्वारा उस समय आनंदपुर साहिब का गुरुद्वारा भी जबरदस्ती खाली करवाया जा रहा था। गुरु गोविंद सिंह जी लाहौर नहीं गए। उन्होंने यह ठान लिया कि लाहौर की तरह एक और लाहौर यहीं कहीं आनंदपुर साहिब के समीप बनाया जाए। गुरु जी इस जगह शिकार खेलने आते थे। उन्होंने सोचा कि इस जगह को ही लाहौर बनाया जाए। वह स्थान उसी प्रकार सजा दिया गया जैसा लाहौर था। संवत् 1730, 23 आषाढ़ 'वसंत पंचमी' के दिन गुरु जी की शादी 'आनंद कारज' तय हुआ। निर्धारित तिथि को बारात ने आनंदपुर साहिब से प्रस्थान किया। गुरु के लाहौर से एक किलोमीटर पीछे बस्ती नामक स्थान पर गुरु जी को सेहरा बाँधा गया। जहाँ सेहरा बाँधा, उसका नाम सेहरा साहिब रखा गया। वहाँ पर गुरुद्वारे का निर्माण किया तथा एक बारातघर भी बनाया गया। बारात वर्तमान 'गुरु के लाहौर' पहुँच गई परंतु वहाँ पर पानी नहीं था। यह देखकर गुरु जी ने अपना किरपान (बरछा) तीन बार वहाँ चट्टान पर मारा और वहाँ से गंगा, जमुना और सरस्वती की धारें फूट पड़ीं, जिसे त्रिवेणी का नाम दिया गया। अभी भी वे निशान पानी के बीच में वैसे ही दिखाई देते हैं। एक अन्य जनश्रुति है कि गुरुद्वारे के परिसर में खोर जल की बावड़ी है जिससे ऐसा विश्वास किया जाता है कि गुरु गोविंद सिंह के घोड़े नील ने अपने खुर (पाँव) से मारकर पानी निकाला था। लोगों में विश्वास है कि खोर जल व किरपान द्वारा निकाला हुआ जल बहुत पवित्र है और उसे लोग गंगाजल की तरह पवित्र समझकर ले जाते हैं।

मेले-उत्सव

इस स्थान पर ऐतिहासिक मेला हर वर्ष 'वसंत पंचमी' के दिन लगता है जो कि तीन दिनों तक चलता है। आनंदपुर साहिब में जो होली-होला का मेला लगता है उसमें श्रद्धालु 'गुरु के लाहौर' में जाकर माथा टेकते हैं।

रंगनाथ मंदिर, बिलासपुर

बिलासपुर की गोबिंद सागर झील में बहुत-से पुरातात्त्विक महत्ता के स्मारक नष्ट हो गए। झील का पानी उतरने पर अभी भी कुछ मंदिर सिर उठाए खड़े हो जाते हैं। इन मंदिरों में शिखर शैली का रंगनाथ मंदिर एक महत्त्वपूर्ण मंदिर था, जो आठवीं-नौवीं शताब्दी में निर्मित माना जाता है। हरमन गोट्ज ने इस मंदिर के प्रांगण में एक अन्य कृति को विलक्षण माना है।

गोविंद सागर में डूबने से पूर्व इस मंदिर से शिवलिंग तथा नंदी की प्रतिमाएँ शहर में बने नए रंगनाथ मंदिर में स्थापित कर दी गई हैं। पुराने मंदिर का बाह्य गवाक्ष राज्य संग्रहालय शिमला में ले जाया गया है। इसमें हिग्वाल की प्रतिमा अंकित है।

शशिवंश विनोद में वर्णन है :

अहै खनेसर निकट ही श्री शंकर आला
रंगनाथ जिह नाम है भुज चार विशाला
ठाड़े पार्वती लिए सिर पाग सुहावै
मुच्छ समक्षु सुख छवि लख पाप पलावे।

खनेण मंदिर के निकट एक शिव मंदिर है, जिसे रंगनाथ मंदिर के नाम से जाना जाता है। रंगनाथ की चार भुजाएँ हैं। गोद में पार्वती हैं। सिर पर पगड़ी है। मूँछों से युक्त इस छवि को देखकर सभी पाप भाग जाते हैं।

शशिवंश विनोद के अनुसार राजा ऐलदेव ने शिव-पार्वती को अपनी तथा अपनी पत्नी की छवि में बनवाया।

रंगनाथ मंदिर के कुछ अवशेष वर्ष 1973 में राज्य संग्रहालय, शिमला में लाए गए हैं। छह अवशेषों में से दो को संरक्षित किया गया है। एक अवशेष में दिक्पाल दिखाए गए हैं, जो गवाक्ष के दो स्तंभों में उकेरे गए हैं। दिक्पाल आराम की मुद्रा में खड़े हैं। सिर पर जटामुकुट है। हार तथा यज्ञोपवीत पहने हैं। अधोवस्त्र पहने हुए वे बाएँ हाथ में त्रिशूल लिए हैं। नीचे वाहन (संभवतः बैल) बैण है।

श्री नैणा देवी

श्री नैणा देवी मंदिर बिलासपुर से सत्तावन किलोमीटर दूर 1177 मीटर की ऊँचाई पर नैणादेवी धार पर स्थित है। यह पहाड़ी एक ओर गोविंद सागर से घिरी है तो सामने आनंदपुर साहिब है। आनंदपुर साहिब यहाँ से कुल नौ किलोमीटर दूर है, जो पंजाब में है। अब मंदिर से नीचे लोक निर्माण विभाग के आवास गृह तक बस सेवा उपलब्ध है।

सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद मंदिर के मुख्य द्वार के भीतर मंदिर प्रांगण है। प्रांगण में श्रीराम के मंदिर के अतिरिक्त पीछे की ओर भी मंदिर हैं। मुख्य द्वार के साथ भैरव की मूर्ति है। मंदिर के गर्भगृह में दुर्गा की प्रतिमा है।

कहा जाता है कि श्री नैणा देवी मंदिर का निर्माण कोट कलहूर के संस्थापक राजा बीरचंद्र ने करवाया। सात धारों में से एक में राजा ने मंदिर का निर्माण करवाया। एक अन्य मत के अनुसार राजा बीरचंद के समय एक गूजर ने एक गाय को प्रतिदिन एक पत्थर के ऊपर दूध गिराते देखा। वह पत्थर पीपल के सूखे पत्तों से ढका था। उस पत्थर में नयन बने हुए थे। गूजर को देवी ने सपने में आदेश दिया और उसने वहाँ मंदिर बनवाया। उस गूजर का नाम नैणा था, अतः मंदिर का नाम नैणा देवी पड़ा। इस क्षेत्र में अभी भी गूजर रहते हैं जो अपने को नैणा का वंशज बताते हैं। दूसरे रूपांतर में नैणा गूजर ने राजा को बताया, जिसने वहाँ मंदिर बनवाया।

एक मान्यता शिवप्रिया पार्वती से संबंधित है। दक्ष प्रजापति के यज्ञ में सती द्वारा आत्मदाह के बाद जब उन्मत्त शिव सती की देह को उठाए भाग रहे थे तो विष्णु के चक्र

से कटने पर सती की आँखें यहाँ गिरीं। अतः यह शक्तिपीठ श्री नैणा देवी कहलाया।

कलहूर राज्य की बंदोबस्त रिपोर्ट में उल्लेख है : यह सबसे बड़ा और मशहूर मंदिर है जो धार नैणा देवी की सबसे बुलंद चोटी पर 3565 फुट की बुलंदी पर बनाया गया। इस मंदिर को राजा बीरचंद साहिब ने आठवीं सदी विक्रमी में तामीर किया। इस जगह हर साल सावन अष्टमी (माह अगस्त) को एक बड़ा मेला होता है, जिसमें मुल्क-मैदान के चालीस-पचास हजार यात्री इकट्ठे होते हैं और दो नवरात्रों के मौके पर भी एक मामूली मेला होता है। गुरु गोविंद सिंह, सिक्खों के दसवें गुरु ने इस मंदिर में संवत् 1756 में तपस्या की। तवारीखी वाकयात में यह जगह बड़ी मशहूर है।

चैत्र तथा आश्विन के नवरात्रों के अतिरिक्त श्रावण अष्टमी के लगने वाले मेलों में आज भी बहुत भीड़ होती है। अब श्रद्धालुओं की संख्या लाखों तक पहुँच जाती है। यहाँ पंजाब, दिल्ली, राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश से लाखों श्रद्धालु देवी के दर्शनों के लिए आते हैं।

अपनी मनौतियों के लिए लोग इच्छानुसार सोना-चाँदी तथा कई वस्तुएँ चढ़ाते हैं। माता का लंगर हमेशा लगा रहता है। आवास के लिए सराय के अतिरिक्त विश्रामगृह है।

कई श्रद्धालु नीचे से लेकर ऊपर तक दंडवत् करते हुए जाते हैं। कभी यहाँ बकरे की बलि दी जाती थी, जो अब बंद हो चुकी है।

नारसिंह मंदिर

बिलासपुर में लेकव्यू कैफे के नीचे धौलरा में नारसिंह का मंदिर है। नारसिंह मंदिर में प्रतिदिन आने वालों की संख्या भी पर्याप्त है। मेले, त्योहारों, मंगलवार के दिन तो बहुत लोग आते हैं। मंदिर में देवता की पादुकाएँ रखी हैं। श्रद्धालु भी मंदिर में पादुकाएँ तथा झंडे चढ़ाते हैं।

नारसिंह देवता एक स्थानीय देवता है जो नृसिंह से भिन्न है। नारसिंह को 'बझिया' या मालिक कहा जाता है। नारसिंह प्रायः स्त्रियों को 'लग' जाता है। जिस घर में सास नारसिंह को पूजती हो, वहाँ बहू को भी यह पूजना पड़ता है। इसी प्रकार कई बार लड़की के ससुराल जाने पर नारसिंह भी साथ जाता है।

नारसिंह औरतों में प्रवेश कर अपनी बात कहता है। देवता के चेले इसे आवाहन कर बुलाते हैं और यह किसी महिला में प्रवेश कर बोल उठता है।

नारसिंह के मंदिर बिलासपुर में कई स्थानों पर हैं।

गुग्गा मंदिर

जिला काँगड़ा, हमीरपुर की भाँति बिलासपुर में गुग्गा पूजा का विशेष महत्त्व है। गुग्गा गाथा स्थान-स्थान पर गाई जाती है। मरुभूमि से आए हुए गुग्गा छत्री का यहाँ बहुत महत्त्व है। राजस्थान के राजा की काछल, बाछल रानियों, गुरु गोरखनाथ, नीले घोड़े के सवार गुग्गा की कथा मंडलियों द्वारा गाई जाती है। गुग्गा नवमी के दिन प्रत्येक गुग्गा के स्थान में विशेष

मेले लगते हैं।

बिलासपुर से बीस किलोमीटर दूर भटेड़ में गुग्गा का मंदिर स्थित है। इस प्राचीन मंदिर में गुग्गा के निशान रखे गए हैं। गुग्गा नवमी के दिन यहाँ मेला लगता है। गुग्गा के निशान उठाए लोग गाथाएँ सुनाते हैं। मंदिर में साँप के काटे का इलाज किया जाता है।

लोकास्था है कि इस मंदिर का निर्माण दो भाइयों द्वारा किया गया। एक भाई साधुओं के साथ मरुभूमि गया, जहाँ से मिट्टी लाकर उसने गाँव में एक स्थान पर रखी जहाँ मंदिर बनाया गया।

गुग्गा का दूसरा प्रसिद्ध मंदिर गेहड़वीं में है। बिलासपुर से तीस किलोमीटर दूर यह भगेड़-समोह सड़क पर है। अब इस मंदिर में गोविंद सागर से किश्ती द्वारा भी पहुँचा जा सकता है।

गेहड़वीं में गुग्गा मंदिर एक पहाड़ी पर स्थित है। मुख्य द्वार के भीतर मंदिर है, जिसमें गुग्गा के साथ गणेश आदि की मूर्तियाँ भी रखी हैं।

इस मंदिर में भी गुग्गा नवमी को उत्सव होता है। इस मंदिर में भी एक व्यक्ति द्वारा किसी दूर देश से मिट्टी लाने का उल्लेख है। जहाँ मिट्टी रखी गई, वहाँ मंदिर बनाया गया।

गुग्गा मंदिरों में प्रसाद रूप में मिट्टी तथा पानी दिया जाता है। जिस घर में यह मिट्टी हो और पानी का छिड़काव किया जाए, वहाँ साँप नहीं आते, ऐसा विश्वास है।

शिव मंदिर, बछरेटू

बछरेटू का किला राजा हीराचंद के समय बना। यहाँ का शिव मंदिर भी लोककथाओं में इसी राजा से जुड़ा हुआ है।

राजा हीराचंद (1857-1883) एक सक्षम राजा था, जिसे डिप्टी कमिश्नर, शिमला ने राज्य सौंपा। इस राजा ने पानी के स्रोत बनवाए और धर्म-यात्रियों को सुविधाएँ प्रदान कीं। इसी के कार्यकाल में बछरेटू तक सीमा को वापस लिया गया।

बछरेटू किले और मंदिर के साथ जलस्रोत हैं जहाँ स्नान करना गंगा की तरह पवित्र माना जाता है।

लोकविश्वास है कि राजा हीराचंद के संतान नहीं थी। वह शिवभक्त था। शिवजी ने उसे स्वप्न में मंदिर बनाने की प्रेरणा दी। राजा ने बछरेटू में शिव मंदिर बनवाया और उसे पुत्र-प्राप्ति हुई।

यह भी कहा जाता है कि शिव यहाँ तपस्या करते थे। एक बार बाबा बालकनाथ उनसे वरदान माँगने आए। शिवजी ने कहा कि शाहतलाई में एक बुढ़िया का कर्ज चुकाकर आओ, तभी तपस्या पूरी होगी और वर मिलेगा।

यहाँ के जलस्रोत को गंगा ही माना जाता है। कहा जाता है कि किसी समय यहाँ पानी बिलकुल नहीं मिलता था। एक बार एक साधु यहाँ आया। उसे प्यास लगी तो एक बुढ़िया से उसने पानी माँगा। बुढ़िया ने साधु को पानी पिलाया। साधु ने जब और पानी माँगा तो बुढ़िया ने कहा अब तो पानी नहीं मिलेगा। साधु ने बार-बार पानी माँगा तो बुढ़िया

खीज गई। साधु वहाँ से हरिद्वार गया और गंगा मैया को साथ ले आया। साधु ने जमीन में अपना चिमटा गाड़ पानी की धार निकाल दी। अब इस पानी को गंगाजल की भाँति प्रयोग में लाया जाता है।

इस स्थान पर बैसाखी को मेला लगता है और पवित्र स्नान होता है। बाबा बालकनाथ की ओर जाने वाले पंजाब के लोग भी यहाँ से होकर जाते हैं। शिव दर्शन और गंगा स्नान दोनों का यहाँ महत्त्व है।

गुग्गा मंदिर

बिलासपुर में गुग्गा का विशेष प्रभाव है। यहाँ काँगड़ा तथा मंडी की भाँति गुग्गा गाथा गाई जाती है। गुग्गा नवमी को मेले लगते हैं, जगराता होता है। गेहड़वीं क्षेत्र को 'गुग्गे का परगना' कहा जाता है, जहाँ गुग्गा मंदिर है। इसके साथ बरठीं, कोटधार, धाड़, भटेड़, डमैहर, लद्दा, पंतेहड़ा, बरमाणी, मलहोट आदि स्थानों में भी गुग्गा मंदिर हैं।

बाबा बालकनाथ

शाह तलाई में बाबा बालकनाथ का प्रसिद्ध मंदिर है। मुख्य मंदिर दियोटसिद्ध में है, जो जिला हमीरपुर में पड़ता है, किंतु नीचे वट वृक्ष तथा गरना झाड़ी है, जो बाबाजी का प्रथम स्थान माना जाता है। यह स्थान भी मंदिर अधिनियम के अंतर्गत सरकार द्वारा लिया गया है। बाबा बालकनाथ के अन्य मंदिर बिलासपुर, औहर, गेहड़वीं, चाँदपुर, जुखाला आदि में हैं।

शगीरठी देवी

शगीरठी देवी बिलासपुर राजवंश की कुलदेवी मानी जाती है। देवी का मंदिर बिलासपुर-शिमला मार्ग पर बिलासपुर से लगभग तेरह किलोमीटर है। सगीरठी गाँव में देवी का मंदिर तथा बावड़ी है।

हरिदेवी

बिलासपुर-भोटा सड़क पर डंगार गाँव के पास एक ऊँची पहाड़ी पर हरिदेवी का मंदिर है। मंदिर के साथ हरितल्यांगर गाँव है। इस स्थान पर प्राचीन फॉसिल मिले हैं। यह इस क्षेत्र की कुलदेवी है। यहाँ प्राकृतिक तेल की खुदाई भी की गई है। यह एक प्राचीन स्थान है।

अन्य मंदिर

बिलासपुर की पुरातन राजधानी सुन्हाणी में शीतला माता, चंझियार धार पर सोहणी देवी, बरोहा में नेरस देवी, धनथट में बड़ोल देवी के मंदिर हैं। लदरौड, औहर, पंजमाई, घुमारवीं तथा नम्होल में भी देवी मंदिर हैं।

त्रिकालदर्शी ऋषि मार्कंडेय

पुराण उपनिषदों में मार्कंडेय जी को अजर-अमर कहा गया है। रूप और उदारता आदि गुणों से युक्त वे हैं तो सबसे वृद्ध किंतु देखने में ऐसे जान पड़ते हैं, जैसे कोई पच्चीस वर्ष का युवक हो। समस्त संसार नष्ट होने पर भी मार्कंडेय नहीं मरते। उन्होंने सहस्र-सहस्र युगी जलप्लावन देखे हैं।

ऐसे मार्कंडेय का मंदिर है बिलासपुर के पास जुखाला सड़क पर। घागस-ब्रह्मपुखर सड़क मार्ग में ब्रह्मपुखर से कुछ पीछे एक लिंक रोड पर ऋषि मार्कंडेय का मंदिर तथा एक छोटा सरोवर है। मंदिर के साथ ही पुरातन व्यास गुफा है, जहाँ ऋषि व्यास ने तपस्या की थी।

श्री गणेश की भाँति मार्कंडेय का पूजन हर पर्व, हर शुभ कार्य के समय किया जाता है। जन्म दिवस आदि के उपलक्ष्य में मिट्टी का मार्कंडेय घड़कर स्थापित किया जाता है, जिसका पूजन आवश्यक है। लोकगीतों में मारकंड या मार्कंडेय को एक उच्च स्थान प्राप्त है।

महाभारत जैसे पौराणिक ग्रंथ में मार्कंडेय ऋषि विभिन्न अवसरों पर प्रकट हुए हैं, जिससे उनके अजर-अमर चरित्र का पता चलता है। पांडवों के वनवास के समय द्वैत वन में मार्कंडेय पांडवों के पास आते हैं। मार्कंडेय जी वनवासी पांडवों को देखकर मुस्कराए। तब धर्मराज युधिष्ठिर ने पूछा—"मान्यवर ! अन्य सभी तपस्वी मुझे इस दशा में देखकर संकोच के मारे कुछ बोल नहीं पाते और आप मेरी ओर देखकर मुस्करा रहे हैं। इसका क्या अभिप्राय है ?"

मार्कंडेय जी ने कहा, "मैं तुम्हें इस दशा में देखकर प्रसन्नता से नहीं मुस्करा रहा हूँ। मुझे किसी बात का घमंड नहीं है। तुम लोगों को इस दशा में देखकर मुझे सत्यनिष्ठ दशरथ नंदन भगवान् रामचंद्र की स्मृति हो आई है…।"

ऋषि मार्कंडेय युधिष्ठिर को धर्मपालन की शिक्षा देकर राजा नाभाग, भगीरथ आदि का उदाहरण देते हुए सांत्वना देते रहे। इसके बाद वे पुरोहित धौम्य और पांडवों से अनुमति लेकर उत्तर दिशा की ओर चले गए।

मार्कंडेय का उत्तर दिशा की ओर जाना इस बात का संकेत करता है कि वे प्रायः उत्तर दिशा में आकर वास करते थे।

इस प्रसंग के बाद वनवास के अंतिम दिनों में जब पांडव काम्यक वन में थे, उन्होंने हजारों वर्षों की आयु वाले मार्कंडेय जी के दर्शन किए। यहाँ युधिष्ठिर ने मार्कंडेय जी को इस प्रकार संबोधित किया—

"मुने ! आप सबसे प्राचीन हैं। देवता, दैत्य, ऋषि, महात्मा और राजर्षि—सबका चरित्र आपको विदित है। इसलिए मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। धर्म का पालन करने पर भी जब मैं अपने को सुखों से वंचित पाता हूँ और सदा दुराचार में ही लगे रहने वाले

दुर्योधन आदि को सर्वथा ऐश्वर्यशाली होते देखता हूँ, तो मेरे मन में प्रायः यह प्रश्न उठता है कि पुरुष जिन शुभ अथवा अशुभ कर्मों का आचरण करता है, उनका फल किस तरह भोगता है ?"

युधिष्ठिर का यह प्रश्न बहुत क्लिष्ट और पेचीदा था, जिसका उत्तर केवल मार्कंडेय जैसे तपस्वी मुनि ही दे सकते थे, जिन्होंने स्थान-स्थान का भ्रमण कर ज्ञान अर्जित किया था।

मार्कंडेय ने प्रजापति ब्रह्मा की उत्पत्ति, उनसे चराचर जगत् की उत्पत्ति, मनुष्यों का पतन तथा स्वाध्याय, तपस्या में फलों आदि का वर्णन किया।

इसके पश्चात् उन्होंने उत्तम ब्राह्मणों का महत्त्व, तार्क्ष्य सरस्वती संवाद, वैवस्वत मनु का चरित्र, श्रीकृष्ण की महिमा, महाप्रलय का दर्शन, कलि धर्म और कल्कि अवतार के माध्यम से शिक्षा देकर अनेक प्रकार के धर्मोपदेश दिए।

इस प्रसंग में मार्कंडेय द्वारा इंद्र और बकमुनि संवाद, सुहौत्र शिवि, ययाति प्रसंग, शिव चरित्र, दान महिमा, पवित्रता, तप और मोक्ष पर विचार, धुंधुमार कथा, उत्तंग मुनि कथा, पतिव्रता स्त्री महत्ता आदि आख्यानों के माध्यम से युधिष्ठिर को कई प्रकार से उपदेश दिए। इससे मार्कंडेय की अद्वितीय बुद्धि, विवेक और स्वाध्याय का पता चलता है।

सहस्र वर्षों बाद जलप्लावन के समय पृथ्वी के जलमय हो जाने और सृष्टि का नाश होने पर एक मार्कंडेय जीवित रहते हैं। मार्कंडेय एक बीज समान हैं, जो परंपरा की रक्षा करते हैं, संस्कृति की धरोहर को सुरक्षित रखते हैं।

एक बार जब पृथ्वी जल में समाई थी तो तैरते-तैरते उन्होंने जलराशि के बीच वट वृक्ष पर एक सुंदर बालक देखा। भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालों के ज्ञाता मार्कंडेय उस बालक को जान नहीं पाए। बालक ने उन्हें विश्राम के लिए वट वृक्ष का वह निवास देना चाहा तो मार्कंडेय को अपने दीर्घ जीवन और मनुष्य शरीर पर बहुत खेद हुआ। इतने में बालक के मुँह फैलाने पर उन्होंने उसके मुँह में प्रवेश किया और भीतर अलौकिक नगरों सहित अद्भुत संसार देखा।

मार्कंडेय और उस बालक का संवाद गीता के समान है जिसमें समस्त लोकों को भगवान् के भीतर बताया गया है।

बालक ने कहा था, "पूर्वकाल में मैंने ही जल का 'नारा' नाम रखा था। वह नारा मेरा अयन (वासस्थान) है। इसलिए मैं नारायण नाम से विख्यात हूँ।" बालकरूपी नारायण ने समस्त जगत् की उत्पत्ति अपने से होने और सबमें अपने व्याप्त होने की बात गीतोपदेश की भाँति मार्कंडेय को सुनाई।

अर्की के मंदिर

बाघल रियासत की राजधानी होने के कारण अर्की तथा इसके आसपास मंदिरों का निर्माण हुआ। अर्की में महल बनाए गए, जो आज भी विद्यमान हैं।

बाघल ठकुराई गंभर घाटी में स्थित है, जिसकी स्थापना धारा नगरी के परमार अजयदेव ने तेरहवीं शताब्दी के अंत में की। कहा जाता है, अजयदेव और मदनदेव बद्रीनाथ और ज्वालामुखी की तीर्थयात्रा पर आए हुए थे। अजयदेव ने बाघल और मदनदेव ने बघाट पर अधिकार कर लिया।

राजा भोज के वंशज इन शासकों ने डमरास, धुंधन के बाद अर्की को राजधानी बनाया। शोभाचंद (1640-1670) ने सन् 1643 में अर्की को राजधानी बनाया और महलों का निर्माण किया।

नारसिंह

नारसिंह देवता की पूजा घरों में की जाती है। जो महिलाएँ इसकी पूजा करती हैं उनके पूरे वंश के साथ इस देवता का नाम रहता है। यदि ससुराल में नारसिंह हो तो उसे पूजना पड़ता है, यदि मायके में हो तो उसे ससुराल ले जाना पड़ता है।

अर्की के राजमहल में नारसिंह की स्थापना है। मुख्य द्वार के पास एक विशाल वट वृक्ष है। इसी वट वृक्ष के नीचे नारसिंह का स्थान माना जाता है। महलों के भीतर नारसिंह की अष्टधातु की प्रतिमा है। नारसिंह की स्थापना महलों के निर्माण के साथ हुई बताई जाती है।

यहाँ नारसिंह से संबंधित एक दूसरी कथा भी प्रचलित है। कहा जाता है, धारा नगरी का राजा युद्ध में हार गया। इस हार से खिन्न होकर उसने अपना राजपाट सेनापति नारसिंह को सौंप दिया और स्वयं वन में चला गया। नारसिंह ने हारा हुआ राज्य पुनः जीता और राज्य परिवार के ही व्यक्ति को सौंप वहीं वन में चला गया जहाँ राजा गया था। इन दोनों का वन में ही तपस्या करते हुए देहावसान हो गया। अर्की के प्रथम शासक ने इन दोनों की मूर्तियाँ लगवाईं, क्योंकि ये दोनों देवता के रूप में पूजे जाने लगे थे। नई फसल इस देवता को चढ़ाई जाती है। इसे युद्ध या विजय का प्रतीक भी माना जाता है। युद्ध के समय नारसिंह की प्रतिमा साथ रखी जाती थी।

बणिया देवी

यह देवी राज्यपरिवार की कुल देवी है। अर्की से लगभग छह किलोमीटर बणिया गाँव में बणिया देवी का मंदिर है। उज्जैन से आने पर रियासती समय में इस देवी की स्थापना की गई। देवी की अष्टभुजाधारी प्रतिमा है। नवरात्रों में यहाँ मेला लगता है। नई फसल चढ़ाई जाती है।

गुफा मंदिर

सोलन क्षेत्र में कुछ गुफा मंदिर प्रसिद्ध हैं। ये प्राकृतिक गुफाएँ कालांतर में मंदिरों में परिवर्तित हुईं और रहस्य-रोमांच का केंद्रबिंदु रहीं।

करोल गुफा

सोलन की करोल गुफा करोल पर्वत में स्थित है। इस गुफा के विषय में कई किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है यह करोल पर्वत कई संजीवनी बूटियों से भरा हुआ है। जब हनुमान संजीवनी बूटी ले जा रहे थे तो पर्वत का एक टुकड़ा यहाँ गिर गया, जिससे यहाँ भी जीवनदायिनी बूटियाँ पैदा हुईं। यह भी कथा है कि एक महिला जब चारा काट रही थी तो उसकी उँगली कट गई। उसने चारे का गट्ठा उठाया और चोट लगी उँगली के साथ घर की ओर चल दी। उस हाथ से उसने चारा सँभाल रखा था। जब घर जाकर देखा तो उँगली से चोट का निशान गायब था।

दूरी कथा पांडवों से संबंधित है कि लाक्षागृह जलाने के बाद पांडव इसी गुफा से बाहर आए और करोल पर्वत में पहुँचे। यद्यपि महाभारत में वर्णित स्थान तथा वातावरण के अनुसार यह वह स्थान नहीं हो सकता। पांडव यमुना नदी के किनारे पहुँचे थे।

दूसरी गुफाओं की भाँति इस गुफा के बारे में भी विश्वास है कि यह यहाँ से पिंजौर जाकर निकलती है। पिंजौर गार्डन में रंगमहल के पास जो पानी का चश्मा है, गुफा वहाँ निकली हुई मानी जाती है। इस गुफा की लंबाई बीस किलोमीटर बताई जाती है।

कुछ लोगों ने गुफा के भीतर आगे तक जाने का प्रयास भी किया किंतु भय के कारण या अवरोधों के कारण जा नहीं पाए। कहा जाता है, सन् 1976 में दो तांत्रिक गुफा के भीतर गए तो कुछ समय बाद वे गुफा के बाहर बेहोश पाए गए। एक दल जब भीतर गया तो एक सदस्य का शरीर नीला हो गया। सन् 1983 में कुछ लोग भीतर गए तो उनकी टॉर्चें बेकार हो गईं आदि-आदि।

गुफा के भीतर जहरीले साँप, बिच्छू, चमगादड़ आदि हैं, जिससे भीतर जाने में कठिनाई आती है।

करोल पर्वत की परिक्रमा को तीर्थयात्रा की भाँति माना जाता है। सोलन शहर से पूर्व की ओर करोल पर्वत पर ठाकुरद्वारा है। यहाँ राधाकृष्ण की मूर्तियाँ हैं। जून में यहाँ मेला लगता है।

करोल पर्वत पर चंबाघाट से लगभग छह किलोमीटर पैदल चलकर डेढ़ घराट, सलोगड़ा, कंडाघाट से भी करोल पर्वत पर जाया जा सकता है।

शिव गुफा लुटरू

अर्की से लगभग डेढ़ किलोमीटर चढ़ाई के बाद एक जंगल में लुटरू महादेव की गुफा है। इस गुफा में पाँच सौ व्यक्ति एक साथ बैठ सकते हैं। गुफा में शिवलिंग बने हैं, जिनके

ऊपर टिप-टिप पानी गिरता रहता है।

यहाँ साधु लोग रहते हैं और हमेशा धूणा जला रहता है। कुछ समय पहले यहाँ शीलनाथ बाबा रहते थे। शीलनाथ बाबा यहाँ भंडारा करते थे। इनके बाद एक दूसरे महात्मा यहाँ रहते हैं।

शिवरात्रि के अवसर पर यहाँ जागरण, भंडारा आदि होता है।

शिव गुफा, डयार

कुनिहार-नालागढ़ सड़क मार्ग पर कुनिहार से लगभग डेढ़ सौ किलोमीटर दूर एक प्राचीन गुफा है। कहा जाता है, यह गुफा सपाटू तक लंबी होती थी।

यहाँ भी प्राकृतिक लिंगों पर पानी की धाराएँ गिरती रहती हैं। शिवरात्रि के साथ जागरण आदि उत्सव यहाँ मनाए जाते हैं।

शिवद्वाला गुफा

कंडाघाट में गंभर नामक स्थान पर एक गुफा है, जिसके द्वार पर एक पिंडी स्थापित है। इस पिंडी पर भी ऊपर से निरंतर पानी की धारा गिरती रहती है।

यहाँ भी शिवरात्रि को श्रद्धालु आते हैं और शिव को दूध, बिल्वपत्र आदि चढ़ाते हैं। जब कभी वर्षा न हो तो पिंडी पर सवा लाख लोटा पानी दूध मिलाकर चढ़ाया जाता है।

सोलन के मंदिर

आज के सोलन का क्षेत्र पुरानी रियासत बघाट में आता है, जिसकी स्थापना धारानगरी से आए दो राजपुत्रों अजयदेव और विजयदेव में से विजयदेव ने की।

बारह 'घाट' होने से इस रियासत का नाम बघाट पड़ा। ये बारह घाट हैं—घई घाट, देमूँ घाट, लावी घाट, ओच्छ घाट, काला घाट, चंबा घाट, कंडा घाट, क्यारी घाट, वाकना घाट, कैथली घाट, शाला घाट, गुग्गा घाट। यद्यपि बहुतेरे घाट बाघल में भी आते हैं, यथा शाला घाट, दानो घाट, भराड़ी घाट आदि।

शूलिनी देवी

शहर के पूर्व में शूलिनी देवी का मंदिर स्थित है। देवी बघाट राजवंश की कुलदेवी है। कहा जाता है, जब बघाट नरेश ने यहाँ राजधानी बनाई तो अपनी बढ़ोतरी के लिए यहाँ अपनी कुजला शूलिनी देवी का मंदिर बनवाया।

आषाढ़ मास में द्वितीय रविवार को यहाँ शूलिनी मेला मनाया जाता है। अब यह मेला सरकार (जिला प्रशासन) की ओर से मनाया जाता है। मेले में माता को पालकी में बिठा

सवारी निकाली जाती है। यह शोभा यात्रा पूरे बाजार से निकलती है।

अब गंज बाजार में भी एक मंदिर बन गया है जहाँ भगवती पिंडी रूप में प्रकट हुई।

लोकविश्वास है कि शूलिनी देवी पेट के शूल को दूर करती है। भगवती को शिव द्वारा शूल (त्रिशूल) प्रदान करने के कारण देवी को शूलिनी कहा जाता है। गायत्री के एक हजार आठ नामों में भी शूलिनी नाम आता है।

शूलिनी का मंदिर कोटकूघर में भी है। यहाँ देवी के आगमन की अलग कथा है। कहा जाता है आज से तीन-चार सौ वर्ष पूर्व काँगड़ा से कुछ लोग आए थे। ये लोग कुछ समय बाद दो दलों में बँट गए। एक सोलन में बसा और दूसरा कोट, बनोटा, टिक्कर, चूड़ सलाणी आदि में। दोनों दलों ने अलग-अलग सोलन तथा कोट में देवी स्थापित की। यहाँ भी देवी की जून-जुलाई में यात्रा निकाली जाती है।

श्री हरि मंदिर सोलन

सोलन स्थित श्री हरि मंदिर वल्लभाचार्य की चौरासी पीठों में से एक है। मंदिर की स्थापना पचास के दशक में श्री हरि (मौनी बाबा) ने की। श्री हरि इससे पूर्व गिरिपुर के निकट एक गुफा में रहते थे।

श्री हरि मंदिर में 23 मई से 30 मई तक श्रीमद्भागवत सप्ताह मनाया जाता है। रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, शिवरात्रि भी यहाँ मनाई जाती है। मौनी महाराज इस मंदिर को उत्तर वृंदावन और गोलोक धाम कहा करते थे।

श्री दुर्गा देवी मंदिर

सपरून में श्री रामतीर्थ अग्रवाल ट्रस्ट द्वारा दुर्गादेवी का मंदिर बना है। यह नए बस अड्डे से सपरून डाकघर मार्ग पर है। दुर्गा मंदिर के साथ हनुमान तथा शिव के मंदिर भी बने हैं।

यहाँ जन्माष्टमी, शिवरात्रि को भंडारे का आयोजन होता है।

आंजी मंदिर

सोलर समलेच मार्ग पर अंजी गाँव में शिव मंदिर तथा काली मंदिर है। शिव मंदिर के पास गीता भवन नाम से कुटिया भी बनी है जो जंगम सभा द्वारा बनाई गई है। यहाँ जंगम लोग रहते हैं। इनके एक रसोई भी है।

काली मंदिर पहाड़ी पर स्थित है। वृक्षों से घिरे इस मंदिर में देवी की स्थापना एक पाषाण के रूप में है।

काली के दो छोटे मंदिर राजगढ़ मार्ग पर शामती में भी हैं।

नृसिंह मंदिर

नृसिंह बघाट राजवंश का इष्टदेव रहा है। बघाट नरेश राजा दुर्गासिंह ने नृसिंह मंदिर

का निर्माण किया। यह मंदिर शहर में पुराने कचहरी मार्ग से टैंक रोड पर है। शोधी वाले बाबा ने मंदिर बनाने की प्रेरणा प्रदान की। शोधी वाले बाबा के निर्देशानुसार मुख्य द्वार पर विशाल शिवलिंग बनाया गया। शिव मंदिर के साथ दूसरे मंदिर में दुर्गा, राधाकृष्ण, सीताराम, हनुमान की मूर्तियाँ स्थापित हैं।

एक छोटे मंदिर के साथ श्रद्धालुओं के बैठने के लिए खुला स्थान है। यहीं प्रांगण में नृसिंह की विशाल प्रतिमा है।

सनातन धर्म मंदिर

सोलन के लोअर बाजार में सनातन धर्म मंदिर है। मंदिर में निर्माताओं के लेख लिखे गए हैं। बघाट नरेश ने जीवन हॉल संवत् 1885 में बनवाया। लाला जीवनलाल स्वर्णकार ने संवत् 1990 में अपना सर्वस्व दान दिया। मंदिर की मूर्तियाँ संवत् 2006 में शिवदित्तुमल ने बनवाईं।

मुख्य मंदिर में राम, लक्ष्मण, सीता की मूर्तियाँ हैं। मंदिर का नाम रामेश्वर मंदिर है। एक चौकी में कई देवता स्थापित हैं।

मंदिर में जन्माष्टमी, श्रीमद्‌भागवत, भंडारे आदि का आयोजन होता है।

अन्य मंदिर

धारावाला देव

धारावाला देव, धारानगरी से आए राजा भोज के वंशज वीर जगदेव परमार को माना जाता है। इस 'वीर' के खुले चौक अर्की के लगभग सभी गाँवों में स्थापित हैं। देवता की यात्रा का वर्णन देवता के चेलों द्वारा किया जाता है, जिसमें इसे जाड़, कुनिहार, अर्की का आया हुआ बताया जाता है। मूल स्थान 'सेरी घाट' माना जाता है। धारानगरी से परमार वंश के तीन भाई यहाँ आए। इनमें से अजयदेव अर्की में, विजयदेव बघाट में और मदनदेव सिरमौर के किसी क्षेत्र में राजा बने। इन्हीं का वंशज जगदेव परमार माना जाता है।

बाड़ा देव

बाड़ा देव का मंदिर अर्की से लगभग पंद्रह किलोमीटर बाड़ी धार पर स्थित है। बाड़ी धार के आसपास पाँच पांडवों के स्थान हैं। कोयला स्नोग में युधिष्ठिर, सरयोज में भीमसेन, अंदरौली में अर्जुन, भेलगाँव में नकुल और देवस्थल में सहदेव के स्थान हैं। ये सभी अपनी पालकियों में आषाढ़ संक्रांति को बाड़ादेव के पास आते हैं और मेला जुटता है। रात को जागरण होता है। पांडव यात्रा को 'बाड़ी जात्रा' कहा जाता है।

बाड़ी धार में शिव बाड़ी भी रही है। इसे ही बाड़ा देव कहा जाता है। यह भी कथा है कि पांडवों ने यहाँ शिव की स्थापना की और इसके साथ-साथ असुरराज बर्बरीक की स्थापना भी की, जो घटोत्कच का पुत्र था। जब बर्बरीक महाभारत युद्ध के लिए चला तो श्रीकृष्ण ने उसकी परीक्षा लेने के लिए पीपल के सभी पत्ते एक बाण से भेदने के लिए कहा। बर्बरीक ने सभी पत्ते बाण से बींध दिए, यहाँ तक कि श्रीकृष्ण के पैर तले छिपाया पत्ता भी छिद गया। श्रीकृष्ण ने उसका सिर चक्र से अलग कर दिया और उसकी इच्छानुसार सिर लंबे बाँस से ऊपर बाँध दिया, ताकि वह महाभारत युद्ध देख सके। जब उससे पूछा गया कि क्या देखा तो उसका उत्तर था—महाभारत युद्ध में न कोई हारा, न कोई जीता। मैंने देखा कि युद्ध में आगे श्रीकृष्ण का चक्र था और पीछे द्रौपदी का लहू से भरा खप्पर।

यह कथा मंडी के कामरू नाग से मिलती-जुलती है।

बर्बरीक का स्थान जिला शिमला के शौली गाँव में भी है। यहाँ भुंडा उत्सव मनाया जाता है। बर्बरीक का मुख लंबी ध्वजा के ऊपर स्थित रहता है।

दानो देव

शिमला-बिलासपुर मार्ग पर शिमला से पच्चीस किलोमीटर दानोघाट स्थित है। इस स्थान पर ज्येष्ठ की पंद्रह तिथि को मेला लगता है, जिसमें दानो देव के साथ मंढोड़ देव के रथ सजते हैं।

दानो देव को सहस्त्रबाहु भी माना जाता है।

सोलन क्षेत्र में दरबाणी (द्वारपाल), नारसिंह, यक्षिणी को भी पूजा जाता है। इस क्षेत्र में गोरखों के अत्याचार के समय एक 'अच्छू देव' का स्मरण भी किया जाता है, जिसने प्रजा को गोरखा अत्याचारों से छुटकारा दिलाया। अच्छू की डाबर (जलाशय) दाड़लाघाट से छह किलोमीटर दूर है।

नालागढ़ के मंदिर

शिव मंदिर

नालागढ़ के पुराने राजमहल के नीचे शिव मंदिर है। मंदिर के पास नाला बहता है। नाले को चोया कहते हैं। अतः इसे चोये वाला शिव मंदिर कहा जाता है।

मंदिर में शिवलिंग स्थापित है। शिवलिंग के सामने नंदी है। मंदिर के साथ एक सराय भी है। नाले के साथ एक प्राचीन मंदिर के खँडहर भी हैं। अब मंदिर के पीछे दो नए मंदिरों का निर्माण भी हो गया है।

लोकविश्वास है कि यहाँ कोई भी साधु एक पखवाड़े से अधिक नहीं टिक सकता।

दुर्गा मंदिर

नालागढ़ के पूर्व में राजमहलों के पीछे दुर्गा भगवती का मंदिर है। भगवती पहले यहाँ पिंडी के रूप में स्थापित थी। अब मंदिर का निर्माण कर दिया गया है। मंदिर एकांत जंगल में है।

पीरथान

शहर के सामने नाले के पार पीर का स्थान है। पीर का स्थान वृक्षों के मध्य एकांत में है। यहाँ विवाह के दिन लोग आते हैं और जंतर-मंतर करवाते हैं। भंडारा तथा मेला भी होता है। पीर स्थान में पीरों की प्रतिमाएँ रखी हुई हैं। छड़ियाँ और देवाजाएँ हैं। एक पीरथान मजार नालागढ़-कालका राजमार्ग पर भी है। यहाँ भी पीर के संगल, छणे, ढोल और ध्वज रखे हैं। लोग मन्नतें माँगने आते हैं।

रामेश्वर मंदिर

नालागढ़-रोपड़ मार्ग पर भट्ठीवाला में रामेश्वर मंदिर है। कहा जाता है यहाँ रामेश्वर से शिवलिंग लाया गया था, अतः इस मंदिर का नाम भी रामेश्वर मंदिर पड़ा। यहाँ एक नवीन मंदिर का निर्माण किया गया है, जहाँ नवरात्रों तथा शिवरात्रि को उत्सव होता है। नया मंदिर बनाने पर पुराने मंदिरों के अवशेष यहाँ मिलते हैं, जिन्हें प्रांगण में रखा गया है।

शिव मंदिर तालाब, कुनिहार

कुनिहार-शिमला मार्ग पर कुनिहार के पास एक तालाब है। इस तालाब में कमल खिले रहते हैं। तालाब के साथ शिव मंदिर है। मंदिर में शिव के साथ शीतला माता, दुर्गा माता, हनुमान, बाबा बालकनाथ आदि की प्रतिमाएँ भी स्थापित हैं। इस मंदिर को तालाब वाला मंदिर भी कहते हैं। साधु के निवास के लिए कमरे भी मंदिर के साथ बने हैं।

प्रतिवर्ष वैशाखी के अवसर पर यहाँ मेला लगता है। मंदिर परिसर में ब्याह के अवसर पर पाणी पन्यहार कँगना खोलने की रस्में यहाँ पूरी रात करते हैं।

मान्यता है कि सूखा पड़ने पर शिवलिंग से ऊपर तक पानी भर दिया जाए तो वर्षा हो जाती है। बच्चों को बीमारी से दूर रखने के लिए यहाँ शीतला माता का पूजन भी किया जाता है।

कुरगण देव, कोटला

दाड़ला घाट तथा सयार के दक्षिण की ओर कोटला गाँव है, जिसमें पज्यारा कोटला में कुरगण देवता का मंदिर है। पज्यारा अर्थात् पुजारी के नाम से पज्यारा कोटला गाँव है।

कुरगण देवता की अष्टधातु की लगभग दो दर्जन प्राचीन मूर्तियाँ थीं, जो कुछ वर्ष पूर्व चोरी हो गईं। अब कुलजा देवी की प्रतिमा बची है। देवता का अब दोमंजिला भवन बना दिया गया है।

कुरगण देवता को 'कौरव' भी माना जाता है। कुछ लोगों के मतानुसार यह चंद्रवंशी राजाओं का कुल देवता है। यह भी विश्वास है कि जो भी पंडित इसकी पूजा करेगा, वह मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा। अतः राजा को पुजारी नहीं मिल रहा था। एक बार एक ब्राह्मण ने राजा के समक्ष पुजारी बनने की पेशकश की। राजा ने देवता को बाघल से बाहर ले जाने का परामर्श दिया। ब्राह्मण देवता को बिलासपुर ले जाने लगा। डाड़लाघाट और सयार के मध्य ब्राह्मण देवता को नीचे रख लघुशंका करने गया। जब वापस आया तो देवता उठाया नहीं गया। ब्राह्मण राजा अर्की के पास पहुँचा। राजा ने उसे डाँटा कि देवता को बाघल से बाहर ले जाने को कहा था, अब बीच में छोड़ दिया है तो मैं तुम्हें चार-पाँच गाँव देता हूँ। तुम देवता के पुजारी बने रहो। अतः देवता पज्यारा कोटला में स्थापित हुआ।

माँ चिंतपूर्णी

माता चिंतपूर्णी दस महाशक्तियों में से एक भगवती छिन्नमस्तिका मानी जाती हैं। पौराणिक आख्यान है कि एक बार माँ भगवती अपनी दो सहचरियों सहित मंदाकिनी नदी में स्नान करने गई। वहाँ सहचरियों को बहुत भूख लगी। उन द्वारा अधिक भूख जताने पर माँ भवानी ने खड़ग से अपना सिर काट डाला। कटे सिर से निकली लहू की दो धाराएँ दोनों सहचरियों के मुख में गिरीं। मध्य धारा भवानी ने बाएँ हाथ में पकड़ी और स्वयं पान किया। तभी से माँ भवानी छिन्नमस्तिका कहलाईं और विभिन्न स्थानों में स्थापित हुईं।

एक लोकास्था के अनुसार माईदास नामक एक व्यक्ति शक्ति-भक्त था, जिसे ससुराल जाते समय चिंतपूर्णी के पास घने जंगल में एक विशाल वट के नीचे माँ ने एक दिव्य बाला के रूप में दर्शन दिए। दिव्य बाला ने माईदास को अपनी सेवा के आदेश दिए। ससुराल से वापसी पर भी उसी वट वृक्ष के नीचे ध्यान लगाने पर माँ ने दर्शन दिए। माईदास ने देवी द्वारा बताए स्थान से पत्थर हटाया तो वहाँ जल की धारा फूट निकली और देवी पिंडीस्वरूप प्रतिष्ठित हुई। माईदास वहीं रहने लगा। देवी के पुजारी आज भी अपने को माईदास के वंशज मानते हैं।

वर्तमान मंदिर

माता चिंतपूर्णी का वर्तमान मंदिर जिला ऊना के मुख्यालय से 67 किलोमीटर दूर है। राजमार्ग पर भरवाईं से मंदिर तीन किलोमीटर ऊपर है। माँ की पिंडी फूलों से लदी रहती है। पिंडी के ऊपर छत्र है और गुंबदाकार मंदिर। गुंबद के ऊपर स्वर्णमंडित चादर जालंधर निवासी कुछ श्रद्धालुओं द्वारा 1988 में ही चढ़ाई गई। अग्र भाग में प्रवेश द्वार भी गुंबदाकार है, जहाँ हनुमान और भैरव की मूर्तियाँ हैं। वट वृक्ष के नीचे हनुमान, भैरव, गणपति की पाषाण मूर्तियाँ हैं।

मंदिर प्रातः साढ़े पाँच बजे खुलता है और रात्रि नौ बजे बंद होता है। प्रातः-सायं विधिवत् पूजा-अर्चना की जाती है। माता के स्थान के लिए उसी कुंड से पानी निकाला जाता है जहाँ पहले कभी धारा फूटी थी।

चिंतपूर्णी मंदिर में चैत्र तथा आश्विन नवरात्रों में मेले लगते हैं। इन मेलों में पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा प्रदेश के भीतर से लाखों श्रद्धालु दर्शनार्थ आते हैं।

महासू परंपरा

महासू देवता उत्तर प्रदेश के जौनसार बाबर, जिला शिमला तथा सिरमौर के ऊपरी भाग का एक प्रमुख देवता है। इसी देवता के नाम पर जिला शिमला का पुराना नाम महासू था। महासू को सूर्यवंशी माना जाता है, जिसका आगमन कश्मीर या कुल्लू-कश्मीर से हुआ। महासू को महाशिव भी माना जाता है। जैसा कि हिमाचल प्रदेश के अधिकांश भागों में यह एक सामान्य तथ्य है कि यहाँ शासन करने वाले राजा लोग ही कालांतर में देवता बने, महासू तथा उसके भाइयों के विषय में भी यह कहा जा सकता है। कामरू में बुशहर के राजा कल्याणसिंह का बाकायदा रथ बना हुआ है जो बद्रीनारायण के साथ रखा जाता है। जिन राजाओं ने प्रजा को राक्षसों के चंगुल से छुड़ाया, कल्याण कार्य किए, वे बाद में देवता बने। महासू की कथा भी कुछ ऐसी ही है। देवता के कर्मचारियों में बड़ा वजीर, वजीर का होना भी इसका संकेत देता है।

महासू के कहीं पाँच तो कहीं सात भाई माने जाते हैं। बौठा, चालदा, बाशी या बाशिक, पबासी या पबारी, शेड़कुलिया या शेड़कुलियाऊ या शिड़गुल, बनाड़ और गुड़ारू। शेड़कुलिया को मंत्री भी मानते हैं। बौठा महासू, जैसा कि नाम से स्पष्ट है, बैठकर राज करता है जबकि चालदा इधर-उधर गाँवों में चला रहता है।

तमसा नदी

7 जुलाई, 1993 की भयानक रात थी, जब तमसा नदी का तामसिक रूप देखा था। आसपास ऊँचे पहाड़ और जंगलों के बीच बहती तमसा (स्थानीय तौंस) एक डरावना वातावरण पैदा करती है। उस रात नदी का पानी सारे तटबंधों को तोड़ता दहाड़ रहा था। जब शाम लगभग पाँच बजे त्यूणी पहुँचे तो धीमी-धीमी बारिश हो रही थी। हमारे वहाँ पहुँचते ही ऐसी मूसलाधार बारिश हुई कि आधे घंटे में ही देखते-देखते सारे बाजार में पानी भर गया। सड़क दरिया हो गई। उस दिन किसी की मृत्यु के कारण बाजार बंद था। अतः पानी के बचाव के लिए दुकानों के फट्टे तोड़ने पड़े। लगभग पैंतीस मिनट की उस धारदार बारिश ने सब तहस-नहस कर दिया। सारी रात बाजार के होटल में ठीक से नींद नहीं आई और तमसा का पानी उफनता रहा।

यह तो सवेरे पता चला कि पहाड़ पर बादल फटा था, जिससे त्यूणी के दोनों ओर की सड़क टूट गई। कितने खेत, झोंपड़ियाँ बह गईं। होटल के पीछे मलबा आ गिरा। वापसी पर हमें टूटी हुई सड़क पार कर लगभग बारह किलोमीटर पैदल जाने पर बस मिल पाई। जो गाड़ी हम साथ ले गए थे, वह दस दिन बाद उत्तर प्रदेश की सीमा से होती हुई सिरमौर से वापस पहुँची।

तमसा नदी हिमाचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश की एक तरह से सीमा निर्धारित करती है, यद्यपि नदी और इधर का बहुत-सा क्षेत्र उत्तर प्रदेश में है। त्यूणी तथा उससे आगे जाने वाली सड़क उत्तर प्रदेश में आती है जो घूमकर सिरमौर तथा शिमला के चौपाल में पहुँचती है।

यह पूरा क्षेत्र सांस्कृतिक रूप से एक इकाई है। जौनसार बाबर, शिमला (हाटकोटी, रोहड़, जुब्बल, चौपाल), सिरमौर के लगते क्षेत्र एक सांस्कृतिक इकाई है, जिनमें कभी महासू तथा उसके दो भाई राज करते थे। जंगलों, नदी-नालों से भरा यह क्षेत्र कभी राक्षसों द्वारा आतंकित रहा होगा, ऐसा भी यहाँ की भौगोलिक स्थिति को देखकर लगता है।

प्रमुख मंदिर

बौठा महासू का मंदिर तमसा नदी के बाएँ किनारे त्यूणी से लगभग चौदह किलोमीटर हनोल गाँव में है। हनोल उत्तरांचल के जौनसार बाबर में जिला देहरादून में है। मंदिर भारतीय पुरातत्त्व के अधीन है।

मंदिर के मुख्य द्वार के भीतर खुला प्रांगण है। प्रांगण में पत्थर के दो गोले पड़े हैं। इन गोलों को श्रद्धालु उठाने का प्रयास करते हैं। देखने में यह गोले छोटे आकार के गोल पत्थर लगते हैं, किंतु इन्हें उठा पाना इतना सुगम नहीं है। उठाने पर जैसे ये धरती पर चिपक जाते हैं। ये इतने वजनी हैं कि इन्हें कोई ताकतवर व्यक्ति ही उठा सकता है। यह पत्थर के न होकर किसी धातु के हैं।

भीतर देवता की मूर्तियाँ हैं। यह मूर्तियाँ न होकर मोहरे या मास्क हैं। मंदिर के गर्भगृह में शिखर शैली के छोटे पाषाण मंदिर भी हैं। मंदिर की बनावट देखकर लगता है इसका निर्माण और फिर पुनर्निर्माण भी हुआ होगा। यहाँ छोटा वीर, लांकड़ा वीर, वीर भाँखर के मंदिर हैं। देवता मंदिर के भीतर बिजली की रोशनी नहीं मानता। अतः लकड़ी की मशालें जलाकर मंदिर के भीतर मूर्तियों के दर्शन करवाए गए। पहले इस मंदिर के भीतर पुजारी तथा कारदार ही जा सकते थे। अब पुजारी की आज्ञा से भीतर जाना हो सकता है।

मंदिर के पुजारी का नाम दौलतराम, वजीर सीताराम, बड़ा वजीर जयपाल सिंह, ठाणी चतर सिंह, भंडार बीर सिंह और तीन माली (गूर) कवर सिंह, हरिचंद और जगता हैं।

मंदिर के भीतर बिजली की रोशनी की मनाही के कारण ही संभवतः मंदिर द्वार को 'न्हैरी खोली' या 'काली प्रोल' कहते हैं। मंदिर के साथ ही हरिजन लोग रहते हैं, जिन्हें 'ढेल' कहते हैं। ये देवता की जमीन बोते हैं, कुछ वाद्य बजाते हैं। इन्हें महासू के भंडार से भोजन मिलता है।

मलाणा के जमलू की भाँति देवता का प्रताप दिल्ली तक फैलने संबंधी महासू देवता

के नकद रुपए मढ़े पत्थे का यमुना में गिरकर दिल्ली के राजाओं तक पहुँचने की कथा भी प्रचलित है।

देवता का दंड

मंदिर के मुख्य द्वार में अंदर जूते न ले जाने की हिदायत लिखी है। हम जूते तो बाहर उतार गए। हमारे एक मित्र ने चमड़े की बेल्ट पहन रखी थी। इधर के मंदिर में बेल्ट भी उतारनी पड़ती है। मंदिर देखने तक किसी का बेल्ट की ओर ध्यान नहीं गया। बाहर आने पर मंदिर के एक कर्मचारी ने बेल्ट देख ली। बस फिर क्या था ! सभी कर्मचारी अकड़ गए कि अब तो देवता का दोष लग गया, दंड देना पड़ेगा। मित्र धर्मसंकट में फँस गए। मेरे पास कैमरा था जिसका कवर चमड़े का था। मैंने कह दिया कि यह चमड़ा नहीं है, फोम या रैक्सीन है। अतः बच निकला। वे सभी हमें पास की सराय में ले गए। हम उन्हें समझाते-बुझाते रहे, वे नहीं माने कि अब बकरा देना होगा दंड रूप में। मुर्गे से काम बनने वाला नहीं था। बहुत अनुनय-विनय के बाद बात अढ़ाई सौ रुपए में तय हुई। अढ़ाई सौ रुपए देकर जान छुड़ाई कि छोटा छेलू या बकरी का बच्चा आप इसका ले लें। पता नहीं उन्होंने इन रुपयों का बाद में क्या किया ?

मुख्य उत्सव-त्योहार

देवता का मुख्य त्योहार जातरा है जो भादों की चौथ (पत्थर चौथ) को मनाया जाता है। यह उत्सव दो दिन चलता है। इस अवसर पर महासू देवता का चाँदी का निशान बाहर निकाला जाता है। दूसरे दिन इसे स्नान के लिए ले जाया जाता है। सभी ग्रामवासी और आसपास के लोग इकट्ठा होते हैं। देवता की सवारी निकलती है। लोग मशालें लेकर निकलते हैं और लोकगीत गाते हैं। देवता से प्रश्न भी पूछे जाते हैं।

दूसरा त्योहार भड़ैच है, जो चैत्र मास तथा वैशाख मास की संक्रांति को मनाया जाता है। इसमें मुखौटे लगाकर नृत्य किया जाता है और स्वांग निकाले जाते हैं। लोकनृत्य भी होता है। इस अवसर पर ठोडे का खेल भी खेला जाता है।

महासू देवता का नृत्य प्रसिद्ध है। देवता की पालकी नचा-नचाकर देवता अपने माली के माध्यम से नृत्य करता है। महासू देवता जिस मेले-उत्सव में उपस्थित हो, वहाँ सबसे पहले इसी का नृत्य होता है। माली देवता के रथ के पास ध्यान करता है। इस ध्यान के बीच देवता उसमें प्रवेश कर जाता है और वह काँप उठता है। उसे ऐसे समय में 'औतारी' कहते हैं। इस कंपन के साथ वह अपने कपड़े उतारकर कमर में बाँध लेता है। नृत्य के समय मृगछाला पहने, माथे पर भस्म लगाए वह साक्षात् शिव बन जाता है। नृत्य के समय विशेष बाजा बजता है। माली भाँग पीने का आग्रह करता है और तांडव नृत्य करता है।

सिरमौर में भादों की अमावस्या के बाद तीज को 'पाँचे' मनाई जाती है, जिसमें महासू के मंदिरों में 'महासू की काँकरी' गाते हैं। 'औतारी' अंगारों पर चलते-बैठते हैं। देवता भविष्यवाणियाँ करते हैं, प्रश्नों के उत्तर देते हैं।

प्रादुर्भाव की कथाएँ

महासू देवता के कश्मीर या कुल्लू-कश्मीर से आगमन के विषय में लोककथाएँ भिन्नता लिए हुए प्रचलित हैं। इन कथाओं में इस क्षेत्र में 'किरमीर' राक्षस का अंत और हूणा भाट या पंडित द्वारा किरमीर से रक्षा के लिए देवता को आमंत्रण मूल कथ्य है।

महासू नृत्य के अवसर पर तूरी लोगों द्वारा देवता की स्तुति की जाती है, जिसमें देवता की कथा बखानी जाती है। जैसे कुल्लू आदि में इसे भारथा कहते हैं, यहाँ बरमाया कहा जाता है। बरमाया पद्य और गद्य दोनों में है। यह इस प्रकार है–

हे काश्मीरिया महाराज ! किरण घाटी में किरमीर दानव ने मनुष्यों को खाना आरंभ किया। उसने गाँव के गाँव उजाड़ दिए। उणा (या हूणा) भाट के सात पुत्र भी मारकर खा लिए। पुत्रों की मृत्यु से मात्र उणा भाट ने कुल्लू-कश्मीर जाकर महासू देवता के पास फरियाद की। देवता ने उणा भाट को फूलों की टोकरी और ताँबे का पात्र दिया। इसे उसने महेंद्रथ बाग में दबा दिया। इससे सात महासू जन्मे–बौठा, चालदा, पवासी, बासिक, शेड कुलियाऊ, बनाड़, गुड़ारू। इनके वजीर कईलू ने किरमीर दानव को मारा। इन देवताओं ने जुब्बल, रोहड़ू, हनोल आंदि में अपने राज्य स्थापित किए।

दूसरे रूपांतर में हूणा पंडित और उसकी पत्नी कृतिका ने सिरमौर राक्षस से बचने के लिए शिव से प्रार्थना की। शिव ने वर दिया कि महासू देवता प्रकट होगा और तुम्हारी रक्षा करेगा। महासू देवताओं ने प्रकट होकर किरमीर राक्षस को मार गिराया। इस युद्ध में बड़े भाई के घुटने में चोट लग गई। अतः चलने-फिरने के योग्य न रहने के कारण वह हनोल में बैठकर राज करने लगा। इस कारण बौठा (बैठा हुआ) महासू कहलाया। बाशिक की आँखों में लगी। वह दूर-दूर तक चलने-फिरने योग्य नहीं रहा। फिर भी हनोल, लाखा मंडल, उत्तर काशी आदि स्थानों में घूमता रहता है। पवासी के कान में चोट लगी। केवल चालदा ही चलने-फिरने योग्य रहा, अतः चालदा गाँव-गाँव घूमता रहता है।

इसी कथा के दूसरे रूपांतर में जब हूणा पंडित ने हल चलाया तो पहली खाई में बाशिक पैदा हुआ, जिसकी जाँघ में हल से निशान हो गया। पवासी के कान में हल से चोट लगी, बौठा महासू की आँखों में चोट लगी। चालदा बिना चोट खाए पैदा हुए। बाशिक और पवारी गढ़वाल चले गए। बौठा और चालदा जौनसार बाबर में रहे। हूणा पंडित ने अपने सबसे छोटे पुत्र को पूजा सौंपी। दूसरे लड़के को घंटी बजाने का काम, जो राजपूत बना, तीसरा बाजंगी बना। महासू भाइयों के साथ चार मंत्री शिड़गुल, कवीला, कौलू, काहंस भी पैदा हुए।

तीसरे रूपांतर में भी महेंद्रथ में राक्षसों के आतंक का उल्लेख है। लोगों ने राक्षसों से तंग आकर हूणा पंडित को सलाह दी कि वह कश्मीर जाकर महासू देवताओं से प्रार्थना करे तो छुटकारा मिल सकता है। हूणा पंडित कश्मीर पहुँचा तो सभी भाई खेल में व्यस्त थे। उन्हें हूणा की 'माणस गंध' आई तो अपने सेवक कौलू को देखने के लिए बाहर भेजा। हूणा ने कौलू से बड़ी प्रार्थना की। कौलू उस वर्जित स्थान में मानव के प्रवेश पर बहुत नाराज

हुआ। हूणा ने उपहार दिए और प्रार्थना की तो कौलू ने छुड़ाने का आश्वासन दिया। कौलू ने भीतर जाकर भाइयों से कहा कि बाहर कोई मानव नहीं है। भाइयों ने अब शेड़कुलिया को बाहर भेजा। वह बाहर आया तो उसे कोई मानव नहीं दिखा।

परंपरा के अनुसार जब पाँचों भाई भाद्र मास की चौथ को पूजन के लिए अपने-अपने रथों पर सवार होकर बाहर आए तो उन्हें फिर मानव गंध आई। मुख्य द्वार से उनके रथ पीछे को हटने लगे। कौलू को अब संदेह हुआ। उसने अपनी लोहे की छड़ी से राख हिलाई तो हूणा पंडित राख से बिलखता हुआ बाहर निकला। वह रक्षा के लिए प्रार्थना करने लगा। सभी भाइयों ने कहा कि तुम जाकर हल जोतना, हम प्रकट हो जाएँगे। हूणा पंडित ने जाकर हल जोता तो सभी भाई महेंद्रथ पर्वत पर प्रकट हो गए। उन्होंने राक्षसों का संहार किया। राक्षसों के संहार के बाद पाँचों भाइयों ने अपने-अपने क्षेत्र बाँट लिए।

इस कथा में हनोल के राजा को महासू देवता द्वारा संतान का वर देने की बात है। हनोल के राजा की दो रानियाँ थीं—पहली स्थानीय, दूसरी गढ़वाल से। राजा के संतान न होने पर राजा मंत्री सहित कश्मीर गया और महासू देवता से प्रार्थना की। राजा ने यह भी कहा कि यदि संतान हो गई तो वह अपनी रियासत में देवता को स्थान देगा। राजा ने महासू की परीक्षा के लिए वहाँ लगे वट वृक्ष की सूखी शाखाओं पर अंकुर फूटने की कामना की तो वैसा ही हुआ। राजा अपने साथ उस वट वृक्ष की जड़ भी ले आया, जिसे हनोल में लगाया गया। देवता की कृपा से राजा के चार पुत्र हुए। राजा की मृत्यु हो गई। बड़ा बेटा राजा बना। उस समय दूसरे राजाओं से युद्ध हो गया और हनोल राज्य संकट में आ गया। तब किसी बुजुर्ग ने पहले राजा की प्रतिज्ञा याद दिलाई। अतः हनोल में महासू का मंदिर बनाया गया। महासू के साथ छोटा बीर, लांकड़ा बीर को भी स्थापित किया गया।

महासू भाइयों द्वारा क्षेत्र-बाँट की कहावत इस प्रकार है—'राजा सभी देवता के इशा बाँदा राजधानी पवासी धीना, देवन रा ढाँडा बोशिक का बाबा धीनो पोटा बिलो बोली साथी कौलू कोटला धीनो आ काहलू बनार चालदू महांत रा होआ सारो पहाड़ा।'

इन कथाओं में एक ब्राह्मण किरमीर राक्षस और पाँच देवताओं का उल्लेख हमें पाँच पांडवों का स्मरण भी करवाता है, जिन्होंने लाक्षागृह से भागने के बाद वनों में राक्षसों का वध किया था।

वारणावत में लाक्षागृह से सुरंग के रास्ते भागने पर कुंती सहित पाँचों पांडव गंगा तट पर पहुँचे थे। गंगा को नाव से पार कर वे दक्षिण दिशा की ओर बढ़े। बहुत चलने और थकने पर वे एक घने जंगल में ठहरे थे। जहाँ भीम का हिडिंबा से साक्षात्कार हुआ। हिडिंब के वध और हिडिंबा से भीम के विवाह के बाद एकचक्रा नगरी में एक राक्षस बकासुर का वध भी भीम द्वारा हुआ। बकासुर रोज एक मनुष्य को खाता था। जब उस घर के प्राणी की बारी आई, जिसमें पांडव रहते थे तो कुंती ने भीम को इस दुःखद घटना की जानकारी दी। भीम ने बकासुर का वध किया। बकासुर भी वन में रहता था। इसके बाद वन पर्व में जब द्रौपदी सहित पांडव जुए में हारने के बाद वन को गए, काम्यक वन के प्रवेश द्वार पर किरमीर राक्षस ने उनका रास्ता रोका। वह आधी रात का समय था और किरमीर ने हाथ

में जलती हुई लूक ले रखी थी। किरमीर ने अपने को हिडिंब का मित्र और बकासुर का भाई बताया। अपने भाई और मित्र की मृत्यु का बदला लेने के लिए उसने पांडवों का रास्ता रोका। भीम ने किरमीर का वध कर दिया। इस घटना को धृतराष्ट्र ने विदुर से आग्रह कर सुना। पांडव वनवास के लिए गंगा तट तक आए थे। वहाँ से वे काम्यक वन में आए। काम्यक वन में युधिष्ठिर मृगछाला ओढ़े बैठे थे, जब संजय उन्हें देखने आए।

पाँच पांडव, उनके द्वारा ब्राह्मणों की राक्षसों से रक्षा, राक्षस वध, किरमीर राक्षस वध, किरमीर का हाथ में मशाल लिए लड़ना, युधिष्ठिर का मृगछाला पहने संवाद, युद्ध के बाद बड़े भाई युधिष्ठिर का बैठकर राज करना आदि। पाँच महासू भाई, किरमीर राक्षस का हूणा ब्राह्मण के अनुरोध पर वध, मशालें लिए महासू के उत्सव में नृत्य, माली का मृगछाला पहने नृत्य, बौठा महासू द्वारा बैठकर राज करना से मेल खाती है।

महासू देवता के प्रमुख मंदिर गजेड़ी (ठियोग), पोड़िया (चौपाल) तथा बनाड़ (जुब्बल) आदि में हैं।

बनाड़

बनाड़ महासू देवता के भाइयों में एक है। राक्षसों के संहार के बाद जब पाँचों भाइयों (बौठा, चालदा, कौलू, शेड़कुनिया, बनाड़) ने जब क्षेत्र आपस में बाँटे तो बनाड़ को 'खूनीगाड' क्षेत्र आया, जो वीरान था। खूनीगाड के बाद वह कोटलाह की ओर गया।

जनश्रुति है कि जिस स्थान पर बनाड़ प्रकट हुआ वहाँ भाँखा नाम के आदमी का खेत था। भाँखा जब दिन में खेत की घास काटता, दूसरे दिन उतनी ही घास उगी हुई पाता। अंत में हारकर जब उसने वहाँ हल जोता तो हल से सोने की प्रतिमा टकराई। उस सुंदर प्रतिमा को वह घर ले आया और पूजा करने लगा।

बनाड़ जुब्बल क्षेत्र का प्रमुख देवता है। बनाड़ का मुख्य स्थान भाँखे के नाम पर भँखोट कहलाया। यहाँ से कुछ दूरी पर कोटी में एक राणा था जिसके वाद्ययंत्र नित्य बजते थे। देवता ने अपने प्रताप से शीतला का प्रकोप कर राणा का राज्य समाप्त कर दिया और वाद्ययंत्रों सहित संपत्ति अपने अधिकार में कर ली। कोटी के बाद घयान तथा रावी पर अधिकार पूरे क्षेत्र में बनाड़ ने अपना आधिपत्य कर लिया।

परंपरा के अनुसार देवता अपने गाँवों में बारी-बारी से एक वर्ष के लिए जाता है। देवता का एक पुजारी, रसोइया, वादक सदा साथ रहते हैं, जो नित्यप्रति पूजा-अर्चना करते हैं। जिस गाँव में देवता जाता है, वहाँ सारा व्यय ग्रामीण करते हैं और रात-भर चार व्यक्ति पहरा देते हैं।

बनाड़ देवता का रथ सोने से मढ़ा है। छत्र भी सोने के हैं। रथ उत्सवों के समय

सजाया जाता है। देवता के भंडार में अन्न-धन जमा रहता है जो लोगों को आवश्यकता पड़ने पर दिया जाता है। देवता की व्यवस्था के लिए कारदार, भंडारी, वजीर नियुक्त हैं।

देवता के यहाँ बीशू, जातर, जागरा के साथ शांत, वसंत पंचमी, बूढ़ी दीवाली के उत्सव व त्योहार मनाए जाते हैं।

देव-नृत्य के समय तूरी लोगों द्वारा महासू देवता का स्तुतिगान (बरमाया) नीचे दिया जा रहा है, जिसमें देवता की कथा बखानी गई है :

1. जेस बगते राजा काश्मीरिया महाराज।
   किरनी रीनाल दी किरमीर दानो पैदा हुआ था
   राजा काश्मीरिया महाराज।
   आदमी खाई-खाई ओ बञ्जे की एरे थे
   राजा काश्मीरिया महाराज।
   सात बमणेटु उणे भाटा रे खाय
   राजा काश्मीरिया महाराज।
   तेस कारणे राजा काश्मीरिया महाराज।
   उणो भाट कुल्लू काशमीर पहुँचो
   राजा काश्मीरिया महाराज।
   चार भाई महासू री फूलारी कंडी चाम्बेरो पातर अणो
   राजा काश्मीरिया महाराज।
   नीलो पाणी टपो, राजा काशमीरिया महाराज
   तेस बगता री छाल बाजू ले
   राजा काश्मीरिया महाराज।

2. नीलो पाणी टपो, राजा काश्मीरिया महाराज।
   चार भाई महासू री फूला री कंडी चाम्बे से
   पातर महेन्द्रथ बागा दी दबाओ आ
   राजा काश्मीरिया महाराज।
   तेस बगते महाराज !
   दुधोकुरू हली कियेइ
   दुधोकरू बाधु कियेई राजा काश्मीरिया महाराज।
   सुने रूपे रो साज कियो राजा काश्मीरिया महाराज।
   महेंद्रथ बाग उल्टो सुल्टो बाई ऐरो राजा काश्मीरिया महाराज।
   सात भाई महासू रो उपान हुओ राजा काश्मीरिया महाराज।
   तेस बगतारी छाल बाजुलो राजा काश्मीरिया महाराज।

3. महेंद्रथ बाग उल्टो-सुल्टो वाओ राजा काश्मीरिया महाराज ! सात भाई महासू रो उपान हुआ राजा काश्मीरिया महाराज ! तेस बगते खंडाई जानी माथे आसी मणारे मुंगरे कौरी कईलू बजीरे किर्मीर दानो मारो राजा काश्मीरिया महाराज ! तेस बगता री किरमीराउट बाजु ले महाराज !

4. किरमीर दानो मारो राजा काश्मीरिया महाराज ! सात भाई महासू रे भाग फोगल हुए ई राजा काश्मीरिया महाराज। चालदे ले चालदो राज मिलो, बोठे उनोल खाई, बाशिके बाउरारो देश खाओ शेड़कुलियाये दुणी विथरी खाई, बनाड़े त्राई कोटी क्यालुरो भंडार खाओ गुडारु ए राँवी खल्टी बरशीला जाउँ शीली दुलाई खाई जाखे काली दुंडोशल खाई पवासी ले काञ्छे भाई ले मुलुक नहीं थो तिणिये देव बणडांडो जीतो राजा काश्मीरिया महाराज ! तेस बगता री छाल बाजुले महाराज !

सात भाई महासू रे भाग फोगल हुए ई राजा काश्मीरिया महाराज ! छह लाख किरन नौ लाख जंउसार खाई महाराज दिल्ली बाशाई जीती महाराज ! गुंगो बईराट मारो सिंबरी प्रकाश मारो। राजा नकुशला रे सुने रे रूपणी पेठ खाओ ! तेस घड़दे दुणी विथरी कु सुतु सुनार आणो, तिणिये खोटी छिणी मारीआ तेसले सिंहा री रूप कियो, राजा काश्मीरिया महाराज !

डोम देवता

डोम या डोमेश्वर देवता का मंदिर गूठाण (ठियोग) में है। पांच मंजिला यह मंदिर स्थानीय वास्तुकला का सुंदर नमूना है।

डोमेश्वर का पहला मंदिर हिमरी में बनाया गया था। दूसरा गूठाण में बना। कहा जाता है, सर्वप्रथम देवता के प्रभाव में घूण के हेटे वंश के लोग आए। फिर कई भक्त बने। मंदिर में वैशाख में बिशु मेला होता है। मेले में हजारों लोग आते हैं। श्रावण पूर्णिमा को शड़लों अर्थात् रक्षाबंधन मनाया जाता है। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, विजयादशमी, दीवाली, माघ संक्रांति, नवरात्रि तथा होली को भी उत्सव होते हैं।

मंदिर की मरम्मत के समय शांत मनाई जाती है। शांत में दूर-दूर से ग्रामीण इकट्ठे होते हैं।

प्रादुर्भाव कथा

डोम देवता की कथा भी एक व्यक्ति की कथा है जो सीधा-सादा आदमी था। यद्यपि वह भी शासक वर्ग से संबंधित था। दरकोटी के राजवंश में धअन और कअन नाम के दो

भाई थे। उन्होंने समरकोट के ठाकुर को मार डाला। दरकोटी के शासक ने दोनों भाइयों को देशनिकाला दे दिया। दोनों भाई अपने घर डोमहर से निकलकर रतेश रियासत में आकर शरैआँ गाँव में रहने लगे। शरैआँ के बाद ये हिमरी (कोटखाई) में आ गए।

धअन के एक पुत्र हुआ जिसका नाम शूरा रखा गया। एक दूसरा पुत्र हुआ जिसका नाम पागौ रखा गया। शूरा और पागौ दोनों बहादुर थे। धअन की मृत्यु हो गई। रतेश के शासक ने दोनों भाइयों की शूरवीरता से डरकर उन्हें रियासत से बाहर कर दिया। दोनों भाई चल निकले। पागौ बनलोग में रहने लगा, शूरा हिमरी पहुँचा।

शूरा के बहुत समय तक संतान नहीं हुई। वह हाटकोटी मंदिर गया और सात दिन तक तपस्या की। भगवती तपस्या से प्रसन्न हुई और महान् शूरवीर पुत्र होने का वर दिया। समय आने पर हिमरी में शूरा के घर पुत्र उत्पन्न हुआ। इसका नाम डोम रखा गया।

डोम बड़ा होने पर अपने मूल स्थान दरकोटी गया और वहाँ राजा के यहाँ बकरियाँ चराने लगा। एक बार बकरियाँ जंगल में खो गईं तो डोम रोने लगा। शिव-पार्वती ने डोम को रोते सुना तो रोने का कारण पूछा। पार्वती ने बकरियों का पता देने के साथ-साथ डोम को वर दिया कि तुम जो कहोगे वह बात सिद्ध होगी।

वर मिलने पर डोम बकरियों को सुबह ही जंगल में ले जाकर जड़ंत कहते और बकरियाँ जड़ हो जातीं। शाम को खुलंत कहते तो हिल जातीं। इससे भूखी रहकर बकरियाँ मरने लगीं। एक बार जंगल से वापस आने पर डोम ने रोटी माँगी तो ठाकुर ने व्यंग्य किया कि रोटी तो ऐसे माँग रहे है जैसे टाहू के रहने वाले नंदू को मारकर आए हो। यह ताना सुन डोम टाहू के लिए रवाना हो गया। नंदू बुशहर की ओर लोहा खरीदने गया था। डोम भी वहाँ चल दिया। डोम ने नंदू को ढूँढ़ लिया और तंबाकू पीते हुए उसका वध कर दिया। ठाकुर को इस बात का पता चला तो वह डर गया और डोम को वहाँ से निकाल दिया। वहाँ से निकलकर डोम वनलोग में आ गया जहाँ चाचा ने उसे छह बीघे जमीन दी। यह आज भी डोम के नाम है।

कहा जाता है कि संवत् 1150 में डोम दिल्ली भी गया जहाँ एक प्रतियोगिता में महासू तथा श्रीगुल जैसे योद्धा कैद थे। डोम ने सात तवे भेद धनुष चलाने में विजय पाई और महासू तथा श्रीगुल को भी कैद से छुड़ाया। दिल्ली से डोम गूठाव आए और यहीं रहने लगे।

यहाँ कुमारसैण तथा रजाना के ठाकुरों के बीच युद्ध में डोम ने राजा का साथ दिया, फलतः कुमारसैण के राणा हार गए।

डोम की मृत्यु के बाद बघेरी में अंतिम संस्कार किया गया। देहावसान के बाद डोम ने स्वप्न में मंदिर निर्माण के लिए कहा। अतः सूनू और सन्यकी दो राहगीरों ने मूर्तियाँ बनाईं और हिमटी में पहला मंदिर बना। दूसरा मंदिर गूठान में बना।

राजा क्योंथल की इस देवता में पूरी आस्था है। जब क्योंथल में राज्याभिषेक किया जाता है या पुत्र-उत्पत्ति होती है तो डोम की जातर आयोजित की जाती है।

देवता की जातर

देवता की जातर के पीछे एक कथा सुनाई जाती है। एक बार आईचा नाम का एक ब्राह्मण राजा क्योंथल का मुख्यमंत्री था। वह राज्य का पूरा कारोबार स्वयं चलाने लगा। प्रजा भी उसकी खूब सुनती थी। वह अब राजा की भी परवाह नहीं करता था। राजा उससे नाराज रहने लगा। एक बार वह यात्रा पर जा रहा था तो राजा के कर्मचारियों ने उसकी पालकी एक बड़ी ठोक से नीचे गिरा दी, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। राजा को ब्रह्महत्या लग गई, जिससे राजा को संतान नहीं हुई। ब्रह्महत्या से छूटने के कई उपाय किए गए, किंतु कुछ लाभ न हुआ। अंत में देवता डोमेश्वर से उपाय पूछा गया। देवता ने भलावग में चौरासी हाथ तालाब बनवाने को कहा। राजा ने तालाब बनवाया और अश्विनी खड्ड के पानी से भरवाया। वहाँ चौरासी ब्राह्मण तथा चौरासी कन्याओं को भोजन खिलाकर चौरासी गौएँ दान की गईं। आईचा मंत्री की चाँदी की दो मूर्तियाँ बनाकर एक की स्थापना वहाँ की गई। यह तालाब डोमेश्वर तालाब के नाम से जाना जाने लगा। राजा क्योंथल को संतान की प्राप्ति हुई, जिसकी खुशी में डोमेश्वर की जातर का प्रारंभ हुआ।

डोमेश्वर की जातर के लिए डोमेश्वर के रथ को राजा क्योंथल द्वारा रेशमी वस्त्र तथा पगड़ी तथा आज्ञापात्र दिया जाता है। कोटकाली को भेंट चढ़ाकर रथ में महामाया की ध्वजा लगाई जाती है। देवता की तीन जातरें गूठाण में, पूरे क्योंथल, छूँड, कुमारसेन, बुशहर, कोटखाई कोटगढ़, कंडाघाट, सुबाथू, कुठाड़ में होती हैं। जातरा पूरी होने के बाद देवता जब वापस मंदिर में आता है तो राजा क्योंथल, ठियोग, घूँड, दरकोटी तथा करांगला के ठाकुर भी आते हैं और एक बड़ा उत्सव मनाया जाता है। फिर देवता तीर्थयात्रा पर जाता है, जहाँ से वापसी पर भोज के साथ सत्यनारायण की कथा की जाती है।

श्री डोमेश्वर देवता गूठाण के मंदिरों की सूची

क्रमांक	स्थान का नाम	परगना/तहसील	मंदिर अथवा चौंरा
1.	गूठाण	शिल्ली (ठियोग)	मुख्य मंदिर
2.	धार	शिल्ली (ठियोग)	मंदिर
3.	मनलोग	शिल्ली (ठियोग)	देवरा
4.	महौरी	शिल्ली (ठियोग)	मंदिर
5.	बिशुड़ी	शिल्ली (ठियोग)	चौंरा
6.	मौंच	शिल्ली (ठियोग)	चौंरा
7.	साम्बर	ठियोग रियासत	मंदिर
8.	कलार	ठियोग रियासत	मंदिर
9.	मातली	ठियोग रियासत	मंदिर
10.	बसमोल	ठियोग रियासत	मंदिर

क्रमांक	स्थान का नाम	परगना/तहसील	मंदिर अथवा चौंरा
11.	नैहरा	ठियोग रियासत	मंदिर
12.	मलेना	ठियोग रियासत	मंदिर
13.	दवैयाँ	रितेश (ठियोग)	मंदिर
14.	चरैन	घूण्ड (ठियोग)	मंदिर
15.	नमाणा	घूण्ड (ठियोग)	मंदिर
16.	गढेड़ी	घूण्ड (ठियोग)	मंदिर
17.	बैवण	चजौली (कोट-खाई)	मंदिर
18.	कढ़ैल	चगाँव (कोट-खाई)	मंदिर
19.	हिमरी	चगाँव (कोट-खाई)	मूल मंदिर
20.	जनौल	चगाँव (कोट-खाई)	मंदिर
21.	जंगरौली	चगाँव (कोट-खाई)	मंदिर
22.	कुंथिल	सिरमौर (राजगढ़)	मंदिर
23.	हलाइला	बलसन (कोट-खाई)	मंदिर
24.	ढंगवी	बलसन (कोट-खाई)	चौंरा
25.	मंदरौली	कोट-खाई	मंदिर
26.	जढोली	कोट-खाई	मंदिर
27.	दरकोटी	कोट-खाई	चौंरा
28.	नेहरा	कोट-खाई	मंदिर
29.	पुड़गा	कोट-खाई	मंदिर
30.	चड़ैणा	कोट-खाई	मंदिर
31.	कमाली	कदरन	मंदिर
32.	ढैला	कोट-खाई	मंदिर
33.	हिमरी	भज्जी सुन्नी	मंदिर
34.	पमलाही	कोटगढ़	मंदिर
35.	दरकोटी	बुशैहर कोट-खाई	मंदिर
36.	सैई	सिंहल ठियोग	मंदिर
37.	कुमाहरवी	बुशहर	चौंरा
38.	शरैयाँ	रितेश	मंदिर
39.	गिरब	कैमली शिमला	मंदिर
40.	फागला	कलजून शिमला	मंदिर
41.	दाड़वा	कुठार कसौली	मंदिर
42.	शिवा	कुठार कसौली	मंदिर
43.	बमढोल	जुब्बल	मंदिर

जलदेवता सरपारा

रामपुर के पास पंद्राबीश क्षेत्र में सरपारा गाँव में जलदेवता का स्थान है। जलदेवता के इस क्षेत्र में कई मंदिर हैं। इस देवता के अधीन सरपारा, कस्तेन, शिलबावी, डखरैली, कानधार, सुधा, सिकासेरी, मलोआ, टिकरीधार, गेट, दारपा आदि गाँव हैं। देवता के मंदिर, जिन्हें इस क्षेत्र में 'देवठी' कहा जाता है, पहाड़ी शैली के हैं।

प्रादुर्भाव तथा मंदिर

देवता के मंदिर के पास एक दलदल है। इस स्थान को सौर कहा जाता है। संभवतः यहाँ कभी सरोवर रहा होगा। सरपारा के लोगों ने इस स्थान पर मंदिर बनाने की सोची और उपयुक्त स्थान की तलाश में देवता की पालकी लेकर चल दिए। सौर में पहुँचने पर देवता की पालकी एक स्थान पर झुकने लगी। यहाँ एक पानी का स्रोत था जहाँ से पानी सरपारा गाँव की ओर जाता था। जब देवता वहाँ झुका तो लोगों का ध्यान उस ओर गया। उस स्रोत से कुछ ही देर में एक काला नाग निकला और दलदल में एक पत्थर के नीचे छिप गया। जब वह पत्थर हटाया गया तो उसके नीचे एक गहरा कुआँ निकला। वही नाग का मूल स्थान था। उसी स्थान पर मंदिर बनाया गया।

दूसरे मंदिर में देवता की पालकी रखी जाती है। यहाँ दुर्गापाठ भी किया जाता है। तीसरा मंदिर 'महासू की कोठी' के नाम से जाना जाता है। यह कोठी तिमंजिली है। यह कोठी देवदार की लकड़ी के बीच सूखी चिनाई कर स्थानीय वास्तुशैली में बनाई गई है। सबसे ऊपरी मंजिल में देवता स्थित है। दो मंजिलों में बरामदे हैं। छत्रों में लकड़ी की घंटियाँ लगाई गई हैं।

महासू की कोठी के पास मंदिर को 'देवरा' कहते हैं। इस हॉलनुमा देवरा के चार स्तंभों में चार देवता स्थापित माने जाते हैं—चौस, बड़ा देवता, नया देवता और महावीर। इसी के साथ हरिजनों के बैठने के लिए अलग स्थान बना हुआ है।

एक मंदिर दक्षिण में है जिसे 'ठौड़' कहते हैं। यहाँ दुर्गा का वास माना जाता है। इस मंदिर में बलि भी दी जाती है। फाल्गुन संक्रांति को यहाँ यज्ञ किया जाता है। मंदिर में अष्टधातु की मूर्ति है। जल देवता अपना कार्य दुर्गा की अनुमति से करता है। इस मंदिर का महत्त्व जल देवता से भी अधिक है। गाँव में किसी विवाद के समय यहाँ झूठ और सच का फैसला होता है। मंदिर के सामने मिट्टी उठाकर अपनी सच्चाई का सबूत देना पड़ता है, अन्यथा अनिष्ट होता है।

सरपारा से लगभग चार किलोमीटर 'धारला' में एक अन्य छोटा-सा पहाड़ी शैली में निर्मित मंदिर है। इस मंदिर को कुछ लोग सरपारा का मूल मंदिर मानते हैं।

सरपारा के जल देवता के छह मोहरे हैं, जो रथ में लगाए जाते हैं। मोहरे चाँदी तथा पीतल के हैं। मुख्य मोहरा जल देवता का है। मुख्य मोहरे के नीचे नाग का मोहरा लगता

है। तीसरा मोहरा देवी का है। दो मोहरे चाँदी के हैं। एक अन्य मोहरा गरशाई देवता का है जो चाँदी का है।

एक अन्य मोहरा बारह-तेरह श्रावण को मेले के अवसर पर लगाया जाता है, जो चाँदी का है और जिसके माथे पर सोने का टीका लगा है।

देवता की पूजा के लिए देवता किन्हीं दो क्षेत्रों से एक वर्ष की अवधि के लिए दो व्यक्तियों को पूजा के लिए नियुक्त करता है। प्रातःकालीन पूजा नहा-धोकर की जाती है। मोहरों पर पानी छिड़ककर धड़छ में धूप जलाया जाता है। पूजा के समय देवता का बाजा भी बजाया जाता है।

मँढोड़ी देव

मँढोड़ घाट (सुन्नी) में देव मँढोड़ी का मंदिर है। मँढोड़ी को 'कुरगण' भी कहा जाता है।

देवता का दोमंजिला मंदिर बझोल गाँव में है। पत्थरों से निर्मित मंदिर साधारण है किंतु देवता की मान्यता बड़ी है। मंदिर को 'कोठी' कहते हैं। मंदिर की निचली मंजिल में देवता का बाजा रखा रहता है। ऊपर देवता स्थापित है। मंदिर में प्रवेश द्वार बहुत छोटा और सँकरा है, जिसके गर्भगृह में देवता की मूर्ति स्थापित है। अष्टधातु की इस मूर्ति के सिर पर मुकुट है। कानों में कुंडल और गले में साँप है। चेहरे पर बड़ी-बड़ी मूँछें हैं। मुख्य मूर्ति के साथ चतुर्भुजी देवी की प्रतिमा है, जिसे मनसानी (मनसर) देवी कहते हैं। देवी के हाथों में शंख, चक्र, गदा और त्रिशूल है। यह मूर्ति अष्टधातु की है। बताया जाता है कि यह मूर्ति बझोल गाँव से ऊपर बशोल से लाई गई है। इन मूर्तियों के अतिरिक्त उन्नीस मूर्तियाँ और हैं जिनमें कुरगण के सैनिक आदि माने जाते हैं। दो लोहे के घोड़े भी यहाँ हैं। गर्भगृह में हवनकुंड भी स्थापित है।

प्रादुर्भाव

कहा जाता है कि यहाँ देवता को बझोल गाँव का एक पूर्वज, जो राजपूत था, अपने साथ लाया था। यह देवता राजपूतों का इष्टदेव है। मंदिर के साथ आज भी राजपूतों के घर हैं। एक मान्यता के अनुसार 'कुरुगण' को कौरव वंश का भी मानते हैं।

पूजा-अर्चना

देवता की पूजा धूप-दीप-नैवेद्य के साथ की जाती है। पूजा के समय ढोल, नगाड़े, घंटी व शंख बजाए जाते हैं। यदि पुजारी कारणवश पूजा न कर पाए तो गाँव से कोई अन्य व्यक्ति पूजा करता है। देवता के मंदिर का प्रवेश द्वार केवल पूजा के समय ही खोला जाता है।

देवता तथा देवी के प्रकट होने के समय दो व्यक्तियों को खेल आती है। एक व्यक्ति में देवी खेलती है तो दूसरे में देवता। इस खेल को दिवाँ या घरीता कहते हैं। देवता की व्यवस्था के लिए एक पुजारी, चार पंच, एक भंडारी नियुक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त बाजे वाले होते हैं। देवता का गूर देवता द्वारा स्वयं चुना जाता है।

गाँव के बीच एक चौंरा या चोगल है। इस चोगल या चौपाल में देवता एकत्रित होते हैं। देवताओं में कुरुगण का स्थान पहला है और धाँधी का दूसरा स्थान। इसी क्रम में उन्हें बैठना होता है।

देवता की मंदिर में स्थापित मूर्तियाँ मंदिर में ही रखी रहती हैं। इन्हें रथ में नहीं सजाया जाता। हर संक्रांति, वैशाखी या बिशु, हरियाली (श्रावण), मालपुन्या (असूज) में देवता के त्योहार मनाए जाते हैं। इन उत्सवों के अवसर पर देवता का द्वार खुला रहता है। मंदिर के आसपास के घरों के लोग चारपाइयों पर नहीं सोते। गाँव के मुंडन संस्कार, विवाहादि के अवसर पर यहाँ पूजन के साथ बलि दी जाती है। नई फसल चढ़ाई जाती है। वर्ष में तीन बार जागरा किया जाता है।

यहाँ हर पाँचवें वर्ष पर्वत पूजा की जाती है। इसे पंचबला कहते हैं। गाँव बझोल से ऊपर गाश धार है। गाश की धार में देवता के सभी कर्मचारी जाते हैं, जहाँ पाँच बलियाँ दी जाती हैं—बकरा, मुर्गा, मछली या मेढक या शाकड़ा, भैंसा तथा सूअर। इन बलियों को कोई व्यक्ति नहीं खा सकता, बल्कि गिद्ध या चील-कौए इन्हें खाते हैं।

हाटकोटी मंदिर समूह

पब्बर नदी के किनारे शिमला से लगभग सौ किलोमीटर दूर 1370 मीटर की ऊँचाई पर हाटकोटी मंदिर समूह एक पुरातात्त्विक स्थल के रूप में उभरकर सामने आया है। हाटकोटी मंदिर के आसपास पाँच किलोमीटर के घेरे में विभिन्न मंदिरों के अवशेष यहाँ एक समृद्ध मंदिर संस्कृति की ओर इंगित करते हैं।

हाटकोटी मंदिर समूह में मुख्य द्वार के भीतर हाटकोटी मंदिर के साथ शिव मंदिर और छह से बारह मीटर की ऊँचाई के छोटे-छोटे मंदिर हैं। ये मंदिर सातवीं-आठवीं शताब्दी की परवर्ती शैली के हैं। छोटे-छोटे ये मंदिर एक प्रयोग या मॉडल के तौर पर बने हुए भी हो सकते हैं। इन मंदिरों में से एक का भद्रमुख शिमला के राज्य संग्रहालय में लाया गया है। एक दूसरे मंदिर का भद्रमुख भी शिमला संग्रहालय में है, जो अब मौजूद नहीं है।

हाटकोटी मंदिर

हाटकोटी दुर्गा मंदिर कभी शिखर शैली का रहा होगा। आसपास मंदिर समूह भी

शिखर शैली के हैं। अतः मुख्य मंदिर भी शिखर शैली का ही रहा होगा। मंदिर के शिखर पर जो पाषाण आमलक था, वह मंदिर के पास पड़ा है। मंदिर के जीर्ण-शीर्ण होने पर इसकी मरम्मत होती रही। जुब्बल के राणा पद्मचंद्र ने सन् 1885 में इस मंदिर का पुनर्निर्माण करवाया, जिससे अब यह मंदिर दो छत्र वाले पैगोडा-सा दिखता है। मंदिर की दीवारों में उत्कीर्ण किए पत्थर जड़े हैं। गर्भगृह में पैगोडानुमा छत्र है। चारों ओर मंडप है।

मंदिर में मुख्य मूर्ति महिषासुरमर्दिनी की है। यह काँस्य मूर्ति तोरण सहित है। तोरण सहित यह लगभग दो मीटर है, जिसमें 1.22 मीटर ऊँची मूर्ति सुसज्जित है। तोरण में एक अभिलेख है। इस अभिलेख के अनुसार मूर्ति आठवीं या नवीं शताब्दी की है।

मंदिर में एक ताम्र पात्र है, जिसके गले में जंजीर बँधी है। लोकास्था है कि एक बार भादों में बहुत वर्षा हुई तो पुजारी को स्वप्न आया कि पब्बर नदी में दो बड़े-बड़े कलश बह रहे हैं। पुजारी ने नदी में जाकर ग्रामीणों की सहायता से कलशों को पकड़ लिया और मंदिर के द्वार के दोनों ओर रख दिया। कुछ समय बाद जब वैसी ही वर्षा हुई तो ताम्रकलश नीचे गिरकर बहने लगे। पुजारी ने एक कलश पकड़ लिया, दूसरा पानी में बह गया।

जब शिमला की पहाड़ी रियासतें गोरखों के अधीन रहीं, उस समय (1805-1815) गोरखों द्वारा मूर्ति में जड़े बहुमूल्य रत्न निकाल लिए, ऐसा विश्वास है। इस मूर्ति को उखाड़ने का भी प्रयास किया गया, किंतु सफल नहीं हो पाए।

महिषासुरमर्दिनी कथा

महिषासुर का पिता रम्भ रम्भीगढ़ में रहता था। उसने अग्निदेव को प्रसन्न कर ऐसा पुत्र माँगा जिसे सुर-असुर या मानव जाति पराजित न कर सकें। रम्भ को ऐसा पुत्र मिला। महिषासुर ने रम्भीगढ़ को एक किले में परिवर्तित किया और शिव की आराधना कर बल प्राप्त किया। अपने बल-पराक्रम से उसने इंद्रादि देवताओं को पराजित कर दिया। अब उसने महिषारान को अपना वास बनाया। महिषारान या महिषासुर स्थान वर्तमान मशराँह को मानते हैं। मशराँह में आज भी शिव या महेश्वर की पूजा की जाती है। देवताओं को दुर्गम घाटियों में छिपना पड़ा। उन्होंने देवी का आवाहन किया। देवी प्रकट हुई। देवताओं ने देवी को अपने शस्त्र दिए। देवी ने महिषासुर का वध किया।

पुराने समय से ही जुब्बल, बुशहर, रावीं, ढाठी, थरोच तथा सिरमौर के राजा हाटकोटी के भक्त रहे हैं।

शिव मंदिर

हाटकोटी या हाटेश्वरी के मंदिर के साथ शिव मंदिर है। यह मंदिर शिखर शैली का है। मंदिर का द्वार नटराज शिव से अलंकृत है। द्वार को कलात्मक पत्थरों से सुसज्जित किया गया है। छत्र लकड़ी से निर्मित है, जिस पर देवी-देवताओं की अनुकृतियाँ बनाई गई हैं। मंदिर के गर्भगृह में विष्णु, लक्ष्मी-विष्णु, दुर्गा, गणेश आदि की प्रतिमाएँ हैं। गर्भगृह में बड़े आकार का शिवलिंग स्थापित है।

अन्य मंदिर

हाटकोटी से लगभग एक किलोमीटर दूर पब्बर और विशकुलटी खड्ड में संगम पर हाट नामक स्थान में बहुत-से मंदिरों के अवशेष हैं। तीन मंदिर यहाँ अभी भी सलामत हैं। विशकुलटी खड्ड के बाईं ओर एक शिवालय है, जिसके गर्भगृह में शिवलिंग है। दुर्गा की एक आकर्षक प्रतिमा भी है। बाहर के प्रकोष्ठों में गणेश, देवी और दुर्गा की प्रतिमाएँ हैं। ये मंदिर यद्यपि जीर्ण-शीर्ण अवस्था में हैं तथापि महत्त्वपूर्ण हैं। पब्बर नदी के तट पर एक अन्य शिवलिंग भी हाल ही में मिला है।

हाटकोटी मंदिर समूह के हाट तथा ब्राट स्थित मंदिरों को पहली बार प्रकाशित करने का श्रेय हिमाचल राज्य संग्रहालय द्वारा प्रकाशित 'आर्ट्स ऑफ हिमाचल' (संपादक : विश्वचंद्र ओहरी, 1975) द्वारा लिया गया है, जिसमें कुछ चित्र (पृ० 131-134) प्रकाशित किए हैं। इनमें शिव मंदिर ब्राट, भद्रमुख, पार्वती, लक्ष्मी, विष्णु प्रमुख हैं।

सूर्य मंदिर, नीरथ

शिमला-रामपुर सड़क पर रामपुर बुशहर से लगभग अठारह किलोमीटर पीछे नीरथ आता है। सतलुज के बाएँ किनारे सड़क के साथ सूर्य मंदिर स्थित है, जो संभवतः उत्तर भारत का एकमात्र सूर्यमंदिर है।

वर्तमान मंदिर की कलात्मकता तथा नक्काशी उतनी उत्कृष्ट नहीं, तथापि कुछ मूर्तियाँ यहाँ एक प्राचीन मंदिर होने की ओर संकेत करती हैं।

मंदिर के बाहर एक प्रकोष्ठ में चतुर्मुख ब्रह्मा की मूर्ति है। दूसरी गणेश की है, जिसकी आठ भुजाएँ हैं। तीसरी चतुर्मुख ब्रह्मा की है। ये मूर्तियाँ शिल्प की दृष्टि से आकर्षक हैं। दूसरी ओर के प्रकोष्ठों में लक्ष्मीनारायण, शिव-पार्वती, महिषासुरमर्दिनी की आकर्षक मूर्तियाँ हैं।

सभा मंडप में सूर्य प्रतिमा है। साथ में विष्णु तथा लक्ष्मी नारायण की मूर्तियाँ हैं।

गर्भगृह में मुख्य मूर्ति सूर्य की है। लगभग 1.15 मीटर ऊँची सूर्य मूर्ति के साथ सभा मंडप की मूर्तियाँ भी उत्कृष्ट हैं, यद्यपि सभा मंडप बाद में जोड़ा गया है।

शिखर शैली के इस मंदिर के ऊपर आमलक है, जिसके ऊपर कलश रखा गया है। मंदिर के बाहर भी सूर्य की मूर्तियाँ बनाई गई हैं। सामने एकमुखी सूर्य है।

सूर्य मंदिर का सर्वप्रथम उल्लेख सन् 1908 में मार्शल ने किया। मार्शल ने मंदिर के पास एक गुफा में शिलालेख होने का भी उल्लेख किया था, जो ए०एच० फ्रैंक को नहीं मिल पाए। डॉ० स्तीन ने सूर्य की प्रतीक एक चक्करी का उल्लेख किया है जो अब नहीं है। सूर्य की प्रतिमा का उल्लेख राहुल सांकृत्यायन ने भी किया है।

दत्तात्रेय मंदिर, दत्तनगर

शिमला-रामपुर सड़क मार्ग पर रामपुर से बारह किलोमीटर पीछे सूर्यमंदिर नीरथ के पास दत्तात्रेय का मंदिर है।

यह मंदिर पहाड़ी शैली में निर्मित है। आयताकार मंदिर को स्लेटों से छाया गया है। मंदिर के मुख्य प्रवेश द्वार के भीतर पूरा मंदिर परिसर अवस्थित है। मंदिर लकड़ी-पत्थर से बनाया गया है, किंतु बीच-बीच में घड़ी हुई पाषाण शिलाएँ भी हैं जो संभवतः किसी शिखर शैली के मंदिर की रही होंगी। बेल-बूटों तथा देवी-देवताओं से उत्कीर्ण इन शिलाओं को यहाँ शिखर शैली के मंदिर भी सिद्ध करते हैं। इसी प्रकार प्रवेश द्वार में कई मूर्तियाँ बीच में लगाई गई हैं। इन मूर्तियों में महिषासुरमर्दिनी देवी की मूर्तियाँ प्रमुख हैं। देवी का महिषासुरमर्दिनी रूप अधिक दिखाया गया है।

मुख्य मंदिर के साथ देवता का भंडार है। यह एक तिमंजिली इमारत है जो जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। छत में स्लेट लगे हैं। लकड़ी में कुछ जगह अच्छी नक्काशी देखने को मिलती है।

मंदिर के गर्भगृह में दत्तात्रेय, अनसूया तथा अत्रि ऋषि की तीन मूर्तियाँ हैं। तीनों मूर्तियाँ (मास्क) ताँबे की हैं और एक मीटर ऊँची हैं। लोकविश्वास है कि ये मूर्तियाँ सोने की थीं जिन्हें गोरखे हमले के बाद ले गए। भीतरी कक्ष में एक बुद्ध प्रतिमा भी है।

मंदिर के बाहर शिखर शैली के मंदिर के कलात्मक पाषाण, प्रस्तर प्रतिमाएँ बिखरी पड़ी हैं। किंवदंती है कि यहाँ पहले दत्तात्रेय की त्रिमुखी प्रतिमा होती थी, जिसके मध्य विष्णु, दाएँ शिव और बाएँ ब्रह्मा की मुखाकृतियाँ होती थीं। ऐसी ही एक त्रिमुखी मूर्ति भुंडे के अवसर पर परशुराम मंदिर से भी निकली थी।

दत्तात्रेय भगवान् परशुराम के गुरु थे। दत्तात्रेय भगीरथ की भाँति पृथ्वी पर एक नदी का अवतरण करना चाहते थे। जब शतद्रु प्रकट हुई तो उसने अपने प्रवाह से दत्तनगर को बहा दिया। दत्तनगर में अभी कुछ ईंटें और शिवलिंग मिला है। कहा जाता है, दत्तात्रेय का मंदिर परशुराम ने बनवाया।

मंदिर के पास चार सौ बीघा भूमि थी, जिसमें चार सौ मन कच्चे चावल पैदा होते थे। यहाँ साधु-संत वर्ष-भर रहते थे। मंदिर की ओर से उन्हें भोजन दिया जाता था और आवास का प्रबंध भी किया जाता था। यह हाटी बस्ती ब्राह्मणों की थी, जो देवी के उपासक थे। पुराने समय में यहाँ नियमित रूप से पूजा होती थी। देवी तथा ऋषि के नाम से अनेक उत्सव मनाए जाते थे, जिनमें नवरात्रे, दीवाली, दत्तात्रेय जयंती प्रमुख थे। इनके साथ चौदह अन्य पर्व मनाए जाते थे।

मंदिर में महिषासुरमर्दिनी की मूर्ति यहाँ देवी मंदिर होने की भी पुष्टि करती है।

शिव मंदिर, बलग

शिमला से लगभग साठ किलोमीटर दूर ठियोग से सीधी उतराई उतरकर नीचे की ओर बलग गाँव स्थित है। यह गाँव गिरी के बाएँ किनारे स्थित है। हाटकोटी की भाँति यहाँ भी एक मंदिर समूह हुआ करता था जो समय के अंतराल में नष्ट हो गया।

शिखर शैली का मुख्य शिव मंदिर अब शिखर के साथ मिश्रित पहाड़ी शैली का बना हुआ है। इसकी समय-समय पर मरम्मत हुई होगी, यह निश्चित है। मंदिर के एक ओर एक दरार साफ नजर आती है, जो मंदिर के क्षतिग्रस्त होने के प्रति सचेत करती है।

शिखर शैली के मंदिर के साथ ढलवाँ छत्र का एक हिस्सा जोड़ा गया है। स्लेटों से छाया यह भाग सभा मंडप का काम देता है। इस मंडप में काष्ठ उत्कीर्ण के उत्कृष्ट उदाहरण देखने को मिलते हैं। गंधर्व, किन्नर, देवता इस भाग में लकड़ी पर उकेरे गए हैं। फूल-पत्तियों के साथ राक्षस, ड्रेगन आदि भी बनाए गए हैं।

मंदिर के गर्भगृह में शिवलिंग प्रतिष्ठित है। यहीं पर ग्यारह अन्य मूर्तियाँ हैं। इन प्रतिमाओं में महिषासुरमर्दिनी, विष्णु (सूर्य रूप) आदि की मूर्तियाँ हैं, जो कला की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं।

मंदिर के ऊपर वर्षा से बचाव हेतु लकड़ी का छत्र बना है।

मुख्य मंदिर के साथ हाटकोटी की भाँति एक छोटा शिखर शैली का मंदिर है। उसकी दीवारों में नक्काशी की हुई है।

यह मंदिर एक मॉडल के तौर पर बनाया गया होगा। कहा जाता है, यहाँ ऐसे ही पाँच छोटे मंदिर थे, जो नष्ट हो गए।

यहाँ एक सातमंजिला ऊँची इमारत भी है जो किले की तरह लगती है। इसे परशुराम मंदिर माना जाता है।

लोकास्था है कि बलग महाराजा बलि की राजधानी रहा है। राजा बलि बलसन क्षेत्र का स्वामी था। राजा बलि ने आसपास के सभी राजाओं को कैद कर लिया और तमसा तक अपना राज्य बढ़ाया। देवताओं को छुड़ाने के लिए विष्णु ने वामन रूप धरकर पृथ्वी छुड़ाई। राजा बलि शिव भक्त था। तभी विष्णुरूपी परशुराम यहाँ आते हैं और जिस स्थान पर पृथ्वी का दान लिया था, वहाँ शिवलिंग के पास पधारते हैं। इसी उपलक्ष्य में यहाँ एक मेला लगता है।

भीमाकाली, सराहन

प्रादुर्भाव संबंधी कथाएँ

हिमालय क्षेत्र में महिषासुर, चंड-मुंड, रक्तबीज, शुंभ-निशुंभ आदि राक्षसों ने उपद्रव मचाया तो देवता इंद्र भी इन राक्षसों से आतंकित हो गए। निरंतर युद्ध करने पर भी वे इन्हें हरा नहीं पाए। इंद्र राक्षसों के संहार के लिए सहायता हेतु भगवान् शंकर के पास गए। शंकर ने ही तो राक्षसों को वरदान दिए थे, अतः उन्होंने ब्रह्मा जी के पास जाने का परामर्श दिया। ब्रह्मा द्वारा असमर्थता प्रकट करने पर इंद्रादि सभी देवता विष्णु के पास पहुँचे। राक्षसों के कुकृत्यों की बात सुन भगवान् विष्णु क्रोधित हो उठे। उनके मुँह से लंबी साँस के साथ धुएँ की लपटें निकलने लगीं। इसी धुएँ से एक कन्या उत्पन्न हुई। यह कन्या आदिशक्ति थी। देवताओं ने जय-जयकार की। हिमाचल राजा ने देवी को सफेद रंग का शेर भेंट किया। वरुण ने जल, समुद्र ने मालाएँ, कुबेर ने मुकुट दिया। सभी देवताओं ने अपनी शक्ति का अंश भी देवी को दिया।

राक्षसों के संहार के लिए देवी को विशाल रूप धारण करना पड़ा, अतः भीमाकाली कहलाई।

दूसरी कथा में सती के पिता दक्ष प्रजापति के महायज्ञ का वर्णन है। दक्ष ने सती को अपने महायज्ञ में आमंत्रित नहीं किया तो सती ने हवन कुंड में अपने प्राण त्याग दिए। सती के अंग विभिन्न स्थानों में गिरे। उनके कान शोणितपुर अर्थात् सराहन में गिरे, अतः सराहन में देवी स्थापित हुई।

बुशहर रियासत के पुराने अभिलेख में सराहन में दो देवियों का उल्लेख मिलता है। एक देवी विवाहित है, एक कन्या। कहा जाता है, यहाँ एक साधु आया जो शोणितपुर में तपस्या करने लगा। उसके पास एक लाठी थी, जिसमें उसने देवी की प्रतिष्ठा की हुई थी। तपस्या के बाद जब साधु जाने लगा तो उसकी लाठी इतनी भारी हो गई कि उठाई न जा सकी। अतः साधु ने लाठी की स्थापना यहाँ कर दी, जिसमें देवी प्रतिष्ठित थी। उस साधु का नाम भीमगिरि था, अतः देवी का नाम भीमाकाली हुआ।

देवी को कोलकाता, सुरपुरी दिल्ली या हाटू शिखर से आया हुआ भी माना जाता है।

मंदिर वास्तुकला

शिमला से 184 किलोमीटर भीमाकाली सराहन वास्तुकला की दृष्टि से अद्भुत शिल्प का उदाहरण है। वास्तुशिल्प, काष्ठकला, धातुकला सभी के उत्कृष्ट नमूने यहाँ मिलते हैं। ए०एच० फ्रैंक ने इस स्मारक को पहाड़ी वास्तुकला का सर्वोत्तम नमूना माना है।

सराहन को शोणितपुर माने जाने की किंवदंती के अनुसार इसे बाणासुर से जोड़ा जाता है। बाणासुर की राजधानी कामरू भी मानी जाती है। बाणासुर के विषय में कई कथाएँ प्रचलित हैं, किंतु उन लोककथाओं पर न जाकर यहाँ भीमाकाली के प्रत्यक्ष रूप का

वर्णन महत्त्वपूर्ण है।

बाजार के बाईं ओर कुछ सीढ़ियाँ चढ़ने पर भीमाकाली का पहला द्वार है। द्वार के भीतर खुली जगह है जिसके साथ गोल चबूतरा है। बाईं ओर अब मंदिर की ओर से रेस्ट हाउस बना है, जिसके अंतिम छोर पर शिखर शैली का विष्णु मंदिर है। नृसिंह अवतार को समर्पित इस मंदिर के पास पुराने मंदिर के अवशेष भी पड़े हैं।

सामने दूसरा द्वार है जिस पर चाँदी मढ़ी है। चाँदी में कलात्मक नक्काशी हुई है। पिछली बार जब आया था तो दौलतराम नाम का एक कलाकार चाँदी में नक्काशी कर रहा था। सराहन के आसपास चाँदी तथा लकड़ी में सुंदर नक्काशी करने वाले कलाकार आज भी मौजूद हैं। दौलतराम को इस शिल्प के संरक्षण के लिए गुरु-शिष्य परंपरा के अंतर्गत इसी वर्ष (1995) से हिमाचल अकादमी द्वारा पेंशन लगी है।

दरवाजे के दोनों ओर शेर बने हुए हैं। चाँदी में समाधिस्थ शिव, गणेश, दुर्गा, राम, हनुमान, राधा-कृष्ण की प्रतिमाएँ अंकित हैं। दोनों दरवाजों पर सिंहमुख में गोल हैंडल लटक रहे हैं। यह द्वार महाराजा पद्मसिंह (1914-1947) के समय बनवाया गया था। दरवाजे पर तीनों द्वार महाराज पद्मसिंह द्वारा 1927 में बनवाए जाने का उल्लेख है।

दरवाजे के भीतर एक गलियारा है। ऊपर तीन छतें हैं। ऊपर रघुनाथ जी का मंदिर है, यहाँ राधा-कृष्ण के साथ अन्य छोटी-छोटी किंतु बहुमूल्य मूर्तियाँ हैं। सोने, चाँदी, अष्टधातु से निर्मित ये छोटी मूर्तियाँ पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। छोटे-से चाँदी के मंदिर में रखी मूर्तियाँ, अलमारी में रखे राधा-कृष्ण, शिव बालगोपाल ध्यान आकर्षित करते हैं।

इस द्वार के आगे एक और परिसर है, जहाँ से सीढ़ियों के ऊपर दो मुख्य भवन दिखाई देते हैं। एक नया, एक पुराना। यहाँ भीतर जाने के लिए टोपी पहननी होती है। नीचे से देखने पर ही इन भवनों की वास्तुकला, छोटे बरामदों के बाहर सुंदर काष्ठकला सामने आ जाती है।

पुराना भवन अब बंद है। यह टेढ़ा हो गया है। संभवतः 1905 के भूकंप में। अब देवी की मूर्ति नए भवन में है।

नए भवन में छोटे दरवाजे से प्रवेश होता है। ऊपर की मंजिलों पर चढ़ने के लिए दिशा-निर्देश बने हुए हैं। छोटे दरवाजे में भी चाँदी लगी है, जिसमें छोटे आकार में नक्काशी हुई है। इसमें भी हैंडल तथा देवी-देवताओं के चित्र बने हुए हैं।

दोनों भवनों में की गई काष्ठकला हिडिंबा देवी मंदिर मनाली, दक्षिणेश्वर महादेव तथा परशुराम निरमंड, पराशर मंदिर कुल्लू व मंडी की याद दिलाती है। देवी-देवता, फूल-पत्ते, आकर्षक डिजाइन इस काष्ठकला के नमूने हैं।

तीसरी मंजिल में भीमाकाली का मंदिर है जिसका छोटा दरवाजा नक्काशी से परिपूर्ण है। यहाँ देवी की साढ़े तीन फुट के लगभग चाँदी की सुंदर प्रतिमा है। देवी को आकर्षक आभूषणों से अलंकृत किया गया है। देवी की प्रतिमा चाँदी के प्लेटफॉर्म पर है जिसमें चार स्तंभ लगे हैं।

मुख्य प्रतिमा के साथ अन्य कई छोटी प्रतिमाएँ हैं। इनमें एक मोहरा (मास्क) और बुद्ध की प्रतिमा अलग नजर आती है।

चौथी मंजिल में चाँदी के एक और द्वार के भीतर दुर्गा रूप में भीमाकाली की लगभग साढ़े चार फुट ऊँची मूर्ति है। इस प्रतिमा को भी आभूषणों से सजाया गया है। यहाँ भी मोहरा सहित कुछ अन्य मूर्तियाँ रखी हैं। इनमें शिव, पार्वती और बुद्ध की प्रतिमाएँ हैं।

मंदिर परिसर में ही अब एक संग्रहालय बना दिया गया है जिसमें मूर्तियाँ, पुराने आयुद्ध तथा अन्य सामग्री रखी गई हैं। मंदिर हिमाचल सरकार द्वारा मंदिर अधिनियम के अंतर्गत लिया गया है और व्यवस्था अनुरक्षण की दृष्टि से सर्वोत्तम है।

तंत्रवाद

भीमाकाली में लाँकड़ा वीर प्रतिमा के साथ एक गहरा रास्ता है जो पता नहीं कहाँ निकलता है। यह रास्ता कहाँ जाता है, किसी को नहीं मालूम। शायद यह स्थान नरबलि के लिए प्रयुक्त होता हो—ऐसी आशंका रोनाल्ड एम० बर्नियर ने 'हिमालयन टावर्ज़' में व्यक्त की है। ए०एच० फ्रैंक, जिसे इस परिसर में दाखिल नहीं होने दिया था, ने लिखा है—"पुरातन काली मंदिर में एक गहरा गढ़ा बताया जाता है। यह अफवाह है कि प्रत्येक दसवें वर्ष यहाँ नरबलि दी जाती थी और यह अब भी गुप्त रूप से जारी है।" 1821 में लायड-गेरार्ड ने नरबलि का उल्लेख किया है, जो ब्रिटिश राज में बंद कराई गई।

नरबलि की पुष्टि नहीं होती यद्यपि बलि प्रथा पहाड़ के सभी देवी मंदिरों में थी। वैसे भी रामपुर-रोहड़ू के कई क्षेत्रों में 'भुंडा उत्सव' बनाया जाता है, जिसमें बेडा जाति का मनुष्य लकड़ी की घोड़ी पर सवार लंबे रस्से पर झूलता है। यह नरबलि का ही रूप है, जिसमें कभी-कभार घोड़ी से गिरकर बेडा की मृत्यु हो जाया करती थी। रामपुर के पार निरमंड में यह उत्सव प्रत्येक बारह वर्ष के बाद होता था। इस भुंडा में एक तांत्रिक पोथी 'प्रौढ़' को पढ़ा जाता था। ऐसी ही एक तांत्रिक पोथी सराहन के पास रावी गाँव में है। निरमंड में रावी के ब्राह्मणों को आमंत्रित किया जाता है।

भीमाकाली परिसर में अन्य मंदिर

रघुनाथ मंदिर

भीमाकाली परिसर में कुछ दूसरे महत्त्वपूर्ण मंदिर भी हैं। इन मंदिरों की प्रबंध व्यवस्था भीमाकाली मंदिर न्यास द्वारा ही होती है।

रघुनाथ मंदिर राजा बुशहर तथा राजा कुल्लू के मध्य हुए युद्ध के फलस्वरूप बना। बुशहर के राजा विजय सिंह और राजा कुल्लू के बीच युद्ध हुआ, जिसमें राजा कुल्लू मारा

गया। राजा कुल्लू अपने साथ रघुनाथ जी की छोटी मूर्ति रखता था। राजा विजय सिंह इस मूर्ति को ले आया और भीमाकाली परिसर में मूर्ति की स्थापना की। रघुनाथ जी की मूर्ति स्थापना के साथ यहाँ कुल्लू की भाँति दशहरा मनाया जाने लगा। दशहरे का समारोह यहाँ तीन दिन मनाया जाता है। यह मेला आश्विन में शुक्ल पक्ष दशमी से त्रयोदशी तक चलता है।

बुशहर के राजाओं की किसी भी वंशावली में विजय सिंह नाम का कोई राजा नहीं है, अतः यह मंदिर कब बना, यह कहना कठिन है।

नृसिंह मंदिर

नृसिंह की मूर्ति का राजमहल में विशेष महत्त्व होता है। राजा कुल्लू के यहाँ भी दशहरा में नृसिंह की पालकी अलग निकलती है। जहाँ भी राजधानी बनाई जाए, नृसिंह की स्थापना की जाती है।

नृसिंह की चतुर्भुजी मूर्ति भी यहाँ राजधानी बनने के साथ लाई गई। नृसिंह को न्याय का देवता माना जाता है।

लांकड़ा वीर

भैरव का एक रूप लांकड़ा वीर भी है जो देवी का गण भी माना जाता है। लांकड़ा वीर का मंदिर इसीलिए भीमाकाली मंदिर के साथ है। लकड़ी के साथ बाँधी ध्वजाएँ लांकड़ा वीर की प्रतीक हैं।

लांकड़ा मंदिर के साथ ही एक कुआँ-सा है। पुराने समय में यहाँ मनुष्य की बलि दी जाती थी। लांकड़ा वीर को पाताल भैरव भी कहा जाता है।

दुर्गा मंदिर, शराई कोटी

शराई कोटी में दुर्गा मंदिर तीन हजार मीटर की ऊँचा. .र स्थित है। शराई कोटी पुराने हिंदुस्तान-तिब्बत मार्ग पर नोगली से पैंतालीस किलोमीटर दूर है।

कहा जाता है, देवी की स्थापना लगभग चार सौ वर्ष पूर्व हुई। लोकास्था है कि देवठी में एक ब्राह्मण को देवी ने दर्शन दिए। देवी ने आगामी भारी संकट के निवारण के लिए यज्ञ करने का परामर्श दिया। अतः पहला यज्ञ देवठी में किया गया और दूसरा शराई कोटी में। शराई कोटी में यज्ञ के समय वहाँ देवी प्रकट हुई और देवी का मंदिर बनाया गया।

वर्तमान मंदिर पुराना नहीं है। इसका निर्माण संवत् 1983 में गोपीचंद बिष्ट की देखरेख में हुआ। मंदिर में अब सात मूर्तियाँ हैं। मुख्य मूर्ति चतुर्भुजी महिषासुरमर्दिनी की है। देवी को शुद्ध देशी घी से स्नान करवाया जाता है।

शराई कोटी में चट्टानों को काटकर छह कुएँ बनाए गए हैं। इन कुओं को कसो, बसारा, दुर्गा, किलवालु, देवठी देवताओं के नाम से जाना जाता है।

देवी का मंदिर कुहल गाँव में भी है। देवी का कलश अपने क्षेत्र का दौरा करता है। देवठी के देवता का गूर ही देवी का गूर है।

रामपुर बुशहर के मंदिर

रामपुर बुशहर में राजधानी होने के कारण मंदिरों का निर्माण हुआ। राजमहल के आसपास मंदिर बने। मंदिरों के साथ गोम्पा की परंपरा भी रामपुर से ही आरंभ होती है, जो पूरे किन्नौर में है। रामपुर में एक दर्जन से अधिक मंदिर हैं।

अयोध्यानाथ मंदिर

अयोध्यानाथ मंदिर पहले राजा शमशेर सिंह के बड़े भाई फतेह सिंह का निवास था। यह मंदिर शिखर शैली का है। मंदिर के साथ सराय भी है। मंदिर के चारों ओर शिव-पार्वती तथा गणों की मूर्तियाँ स्थापित हैं। मंदिर डेढ़-दो सौ वर्ष से अधिक पुराना नहीं है।

मंदिर रघुनाथ जी को समर्पित है। मंदिर में लगभग पच्चीस मूर्तियाँ हैं। कृष्ण तथा मीना की मूर्तियाँ भी यहाँ रखी हुई हैं। रियासत के समय इस मंदिर का प्रबंध राजा द्वारा होता था। अब प्रबंध एक समिति द्वारा किया जाता है।

रघुनाथ मंदिर

एक दूसरा रघुनाथ मंदिर वैरागियों के बड़े अखाड़े के नाम से भी जाना जाता है। इसे लंबूखाड़ा भी कहते हैं। मंदिर एक महंत द्वारा बनवाया गया। यह दो सौ वर्ष से पुराना नहीं है। मंदिर में रघुनाथ जी की मूर्ति के साथ ब्रह्मा, विष्णु, महेश की मूर्तियाँ भी स्थापित हैं। मंदिर प्रांगण में हनुमान जी की एक बड़ी और तीन छोटी मूर्तियाँ हैं। इसकी प्रबंध-व्यवस्था पहले महंत करते थे, अब मंदिर समिति करती है।

नृसिंह मंदिर

सराहन की भाँति बुशहर में भी नृसिंह मंदिर है। राजा बुशहर की सुकेती रानी नृसिंह की प्रतिमा सुकेत (सुंदरनगर) से लाई और मंदिर बनवाया। मंदिर का निर्माण संवत् 1802 में हुआ।

शिखर शैली के इस मंदिर में नृसिंह की अष्टधातु की मूर्ति के साथ देवी, राधा-कृष्ण और शालिग्राम की मूर्तियाँ हैं। मंदिर की व्यवस्था न्यास द्वारा होती है।

गुफा

रामपुर में गुफा मंदिर का निर्माण लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व महंतों ने किया। यह मंदिर जानकीमाई की गुफा के नाम से जाना जाता है। मंदिर शिखर शैली का है, किंतु इसके साथ ही एक गुफा है, जिसे जानकीमाई गुफा कहते हैं। मंदिर में राम-सीता-लक्ष्मण सहित ग्यारह मूर्तियाँ हैं। मंदिर की रामपुर तथा रोहड़ू में अपनी संपत्ति भी है।

बौद्ध मंदिर

रामपुर बस अड्डे के साथ प्राचीन बौद्ध मंदिर है, जिसे 'दुमगिर' कहा जाता है। दुमगिर संख्यावाचक शब्द है, जिसका अभिप्राय असंख्य बौद्ध मंत्रों से है। दुमगिर इस क्षेत्र का सबसे बड़ा बौद्ध मंदिर माना जाता है, जिसमें बौद्ध ग्रंथ काग्यूर तांग्यूर का भंडार है।

मंदिर का निर्माण टीका रघुनाथ (1865-1898) ने किया। यहाँ बुद्ध की तीन गजी प्रतिमाओं के अतिरिक्त सत्रह अन्य मूर्तियाँ हैं। दीवारों पर महात्मा बुद्ध का जीवन-चरित अंकित है। मंदिर में एक चमकीला पत्थर है। कहा जाता है, यह पत्थर बौद्ध गया से लाया गया।

इस बौद्ध मंदिर में एक सौ आठ दीपक जलाकर पूजा की जाती है।

हाल ही में इस मंदिर को पुनः बनाया गया है।

कोटेश्वर महादेव

कोटेश्वर महादेव का मंदिर मँढोली गाँव में है। देवता का मूल स्थान मँढोली के निकट कोटी में है। कोटेश्वर महादेव कुमारसेन तथा इसके आसपास का देवता है। यह मंदिर पैगोडा शैली का एक उत्कृष्ट मंदिर है।

प्रादुर्भाव कथा

लोकास्था है कि कन्नौज के राजा कीर्ति सिंह और उनके तीन भाई कुमारसेन क्षेत्र में पहुँचे। यहाँ उन्होंने भंभूराय का वध किया। उन चार भाइयों ने कोटखाई, खनेरी, कारगला और कुमारसेन में राज्य स्थापित किए। कुमारसेन का मूल शासक तथा अधिष्ठाता कोटेश्वर बना।

दूसरी मान्यता के अनुसार कोटेश्वर का यहाँ प्रादुर्भाव हाटकोटी में हुआ। कहा जाता है, कोटेश्वर का मूल स्थान कोटखाई के पास सराटा गाँव था। एक समय वहाँ बहुत बारिश हुई और मंदिर बह गया। अतः कोटेश्वर शिवलिंग के रूप में हाटकोटी पहुँच गया। कोटेश्वर ने गोरखों के आक्रमण के समय हाटकोटी की रक्षा की। एक बार औबदू और शोबदू नाम के दो विद्वान् कोटेश्वर को तूँबे में बंद कर इस ओर लाए। कोटेश्वर की रक्षा के लिए उनकी तीन बहनें भी साथ चल पड़ीं। इन तीनों बहनों के मंदिर खेखसू, कचेड़ी और कोटी में बने। औबदू-शोबदू से रास्ते में तूँबा छूटकर गिर गया और कोटेश्वर की आत्मा विलीन होकर छिपकली के रूप में धनीराम नामक व्यक्ति के घर पहुँची। कोटेश्वर ने धनीराम को एक मिट्टी के बर्तन में अपने होने की बात बताई। ब्राह्मण धनीराम को बर्तन में त्रिमुखी धातु की प्रतिमा मिली।

उस समय कुमारसेन क्षेत्र में भंभूराय का आतंक था। कोटेश्वर ने भंभू को परास्त किया और अपना राज्य स्थापित किया।

जेशर, ईशर तथा चतुर्मुख देवता

जेशर, ईशर तथा चतुर्मुख देवताओं का मूल स्थान खड़ाहण गाँव माना जाता है। इस गाँव में पहाड़ी शैली का एक भव्य मंदिर है। चतुर्मुख देवता का मंदिर बाद में कोटगढ़ के मेलन गाँव में बना। चतुर्मुख देवता के कोटगढ़ जाने के पीछे एक कथा कही जाती है–

कोटगढ़ में एक युवक सभी लोगों की सहायता के लिए सदा प्रस्तुत रहता था। उसने ग्रामीणों की रक्षा के लिए कई बार भूत-प्रेतों, राक्षसों से मुठभेड़ की। इसी मुठभेड़ में एक बार उसकी एक आँख जाती रही। अब वह 'काणा देवता' के नाम से पूजा जाने लगा।

कुछ समय बाद 'काणा' मनुष्यों को खाने लगा। उसके लिए संक्रांति को एक मानव बलि दी जाने लगी। एक बार गाँव की एक वृद्धा की छह बेटियों को काणा खा गया। जब सातवीं बेटी के बदले वृद्धा स्वयं प्रस्तुत हुई तो काणे ने इनकार कर दिया। वृद्धा घबराकर तीन देव बंधुओं–जेशर, ईशर और चतुर्मुख के पास गई। तीनों देव बंधुओं ने उसे आश्वासन देकर गाँव भेज दिया।

वृद्धा ने जब सातवीं बेटी बलि के लिए नहीं भेजी तो काणा चिल्लाने लगा। लोग डर के मारे बुढ़िया की पुत्री को लेने आ गए और उसे ले जाने लगे। बुढ़िया ने अब तीनों देवताओं का स्मरण किया। उन्होंने आकर काणा का मंदिर काणे सहित ध्वस्त कर दिया।

बुढ़िया के उस त्रिदेव के चमत्कार की बात सुन सभी ने उन्हें अपना देवता माना। लोगों ने अपने कोटगढ़ क्षेत्र में भी तीनों में से एक देवता का वास होने की इच्छा जाहिर की। लोग तीनों देवताओं का आवाहन करने लगे। तभी खड़ाहण में दूधवली का मेला लगा, जिसमें तीनों देवता अपने रथों में आए। मेले में कोटगढ़ के लोगों ने प्रार्थना की कि जो देवता हमारे क्षेत्र में आना चाहता है, वह फूल की तरह हलका हो जाए। इस प्रार्थना से चतुर्मुखी देवता का रथ बहुत हलका हो गया और उसे लोग उठाकर लाए। मेलट गाँव में चतुर्मुखी देवता का मंदिर बनाया गया।

डूम देवता, शरमला

शिलारू से चौदह किलोमीटर दूर शरमला गाँव में डूम देवता का मंदिर है। डूम देवता के मंदिर का निर्माण सन् 1909 में कुमारसेन के वजीर सुखचैन सिंह ने करवाया, यह मंदिर पर लगी चाँदी की चादर के आलेख से पता चलता है।

मंदिर पहाड़ी शैली में निर्मित है और तिमंजिला है। शिखर में धातु के कलश लगे हैं। किनारों पर लकड़ी की छोटी घंटियाँ लगी हैं, जैसा कि ऊपरि शिमला के सभी मंदिरों में हैं। मंदिर की दूसरी मंजिल तक पहुँचने के लिए सीढ़ी लगाई गई है। तीसरी मंजिल के लिए भी एक सीढ़ी दूसरी मंजिल में लगी है। कमरे में और कुछ नहीं है। तीसरी मंजिल में ही देवता का स्थान है। यहीं पर देवता की छह अष्टधातु की प्रतिमाएँ रखी हैं। इन प्रतिमाओं के साथ लगभग पचास प्रतिमाएँ और हैं। सबसे ऊपर की मंजिल में चारों ओर बरामदा है।

लोकास्था है कि डूम तथा उसके भाई ने महासू तथा शिरगुल की सहायता उन्हें दिल्ली

सम्राट् से छुड़ाने में की थी। स्थानीय लोगों पर अत्याचार के कारण डूम तथा उसके भाई कोण को रजाना गाँव के ठाकुर ने मार दिया। वे दोनों मरने के बाद पुनः प्रकट होकर लोगों को तंग करने लगे। अतः उनके लिए शरमला गाँव में तथा गठाण गाँव में मंदिर बनाए गए।

शिकड़ू देवता

हाटकोटी से आगे रोहड़ू में शिकड़ू देवता का मंदिर है। देवता का उद्भव चांशल शिखर पर चंद्रव्हाण सरोवर से शिकड़ी नदी के मार्ग से हुआ। अतः इसका नाम शिकड़ू हुआ।

शिकड़ू देवता यहाँ के पाँच गाँवों में समान रूप से पूजा जाता है। ये गाँव तंदाली, जखड़, दशालणी, गंगटोली और रोहड़ू हैं। इसलिए इस देवता को 'पंजवासा' कहा जाता है।

प्रादुर्भाव कथा

एक बार पंजवासा क्षेत्र में भीषण अकाल पड़ा। इस अकाल से प्रभावित थैलू नाम के युवक को अपनी नवविवाहिता पत्नी को छोड़ घर से बाहर जाना पड़ा। वह अपनी भेड़ों को लेकर चांशल (पहाड़ की चोटी) पहुँच गया। यहाँ पर एक चंद्रव्हाण नाम की झील थी, जिसमें अभी भी पानी था। वह अपनी भेड़-बकरियों के साथ वहीं रहने लगा। पत्नी के वियोग में वह बाँसुरी बजाता रहता। बाँसुरी की मधुर धुन से चंद्रव्हाण या चंद्रवाहन झील के देवता प्रकट हुए और उससे वर माँगने को कहा। देवता ने कहा, यदि वह सात भेड़ें देवता को रोज दे दे तो उसका गाँव हरा-भरा हो जाएगा। थैलू ने कहा, यदि उसकी बाँसुरी और कमल का फूल देवता उसकी पत्नी तक पहुँचा दे तो वह भी सात भेड़ें दे देगा। देवता ने यह शर्त स्वीकार कर ली।

थैलू ने झील से एक कमल का फूल तोड़ा और बाँसुरी के साथ पानी में बहा दिया। यह झील पब्बर नदी का उद्गम स्रोत है। बाँसुरी और फूल पब्बर की धारा में बहकर रोहड़ू पहुँचे। वहाँ से शिकड़ी नदी द्वारा उलटी दिशा में जाकर गाँव के किनारे पहुँच गए, जहाँ उसकी पत्नी पानी भरने आई थी। बाँसुरी और फूल उसके घड़े में आए तो वह डर गई। उतने में थैलू भी भेड़ों के साथ गाँव आ पहुँचा। घर पहुँचकर थैलू झील के देवता की बात पत्नी को सुनाना भूल गया।

कुछ समय बीता। पंजवासा क्षेत्र में महामारी फैल गई। अब थैलू को देवता के साथ हुए वादे की याद आई। वह भेड़ों सहित चंद्रवाहन झील तक गया और बाँसुरी बजाई। देवता उसके आवाहन से नहीं आए, क्योंकि वे रुष्ट हो गए थे। थैलू ने प्राण त्यागने के उद्देश्य से झील में छलाँग लगा दी, किंतु पानी ने उसे बाहर फेंक दिया। बाहर गिरने के बाद आँखें खोलीं तो जल देवता सामने खड़े थे। देवता ने उसके अपराध को क्षमा किया और भेड़ों की भेंट भी नहीं ली। देवता ने उसे घास से भरा किलटा दिया और कहा कि कहीं भी इसे धरती पर न रखे। किलटा बहुत भारी था, अतः उसने घास फेंक दी। जब घर पहुँचकर किलटा देखा तो उसमें सोने के तिनके पाए। वह वापस गया, जहाँ घास फेंकी थी। घास

की जगह यहाँ सोने के मोहरे थे। वह मोहरे ले आया तो देवता ने सपना दिया कि वह मोहरे के रूप में गाँव में पहुँचा है। ग्रामवासियों ने धूमधाम से मोहरों को मंदिर में स्थापित कर दिया।

बाँदरा देवता

बाँदरा देवता का मंदिर रोहड़ू तहसील में बंच्छूछ गाँव में है। यह पहाड़ी शैली में निर्मित पैगोडानुमा मंदिर है। काष्ठकला का उत्कृष्ट प्रयोग इस मंदिर की विशेषता है।

बंच्छूछ गाँव में भी बाँदरा देवता के यहाँ हर बारह वर्ष बाद भुंडा यज्ञ होता था, जिसमें अन्य स्थानों की भाँति नरबलि दी जाती थी। अब भुंडा में मनुष्य द्वारा मौत के खेल खेलने पर रोक लगा दी गई।

मंदिर एक घने जंगल में हुआ करता था। मंदिर परिसर में आज भी एक देवदार का पेड़ है जो मंदिर की छत तक ऊँचा है। इसी पेड़ पर मंदिर का कलश रखा गया है। मुख्य मंदिर के साथ कुछ छोटे-छोटे मंदिर भी हैं। शिव-पार्वती, गणेश, महिषासुरमर्दिनी, विष्णु आदि के इन मंदिरों में लगभग चालीस पाषाण प्रतिमाएँ हैं।

प्रादुर्भाव कथा

बुशहर का राजा किसी समय यहाँ शिकार खेलने आया। शिकार खेलते हुए राजा या उसके सेवकों से यहाँ का छोटा-सा मंदिर क्षतिग्रस्त या नष्ट हो गया। जब राजा वापस लौटा तो राजमहल में उसके पेट में दर्द उठा। बहुत इलाज करने पर भी जब दर्द ठीक न हुआ तो एक तांत्रिक लामा ने बताया कि राजा ने मंदिर को क्षति पहुँचाई है। लामा ने वहाँ पुनः मंदिर बनवाने की सलाह दी। राजा ने मंडी से कारीगर मँगवाए और सराहन से हरा पत्थर मँगवाकर मंदिर बनवाया। जब मंदिर बन गया तो उसके कारीगर को मारने की कोशिश की गई, ताकि ऐसा मंदिर दूसरी जगह न बन पाए। कारीगर ने भागते हुए मंदिर की छत से छलाँग लगा दी।

भीमाकाली, शाली

शिमला से लगभग पचास किलोमीटर दूर शाली नाम की चोटी पर भीमाकाली मंदिर शाली स्थित है। शाली की चोटी की ऊँचाई समुद्रतल से 9500 फुट है। इस ऊँची चोटी से चूड़धार, कैलास, नैणादेवी तथा पंजाब व हरियाणा के क्षेत्र नजर आते हैं।

भीमाकाली का मूल स्थान सराहन है। किंवदंती है कि लगभग चार सौ वर्ष पूर्व बदरा नाम का एक ब्राह्मण सराहन के निकट पहुँचा। जब वह सराहन के पास एक घर में ठहरा तो आश्चर्यचकित हो गया। घर की स्वामिनी अपने एकमात्र पुत्र को अच्छे-अच्छे पकवान खिला रही थी और साथ में रो भी रही थी। ब्राह्मण ने पूछा तो पता चला कि आज उसके एकमात्र पुत्र की बलि काली देवी को दी जाएगी। उन दिनों सराहन मंदिर में प्रतिदिन नरबलि दी जाती थी। बदरा पंडित ने उस महिला को कहा कि रोने-धोने की आवश्यकता

नहीं, वही उसके पुत्र के स्थान पर अपने को बलि के लिए प्रस्तुत करेगा।

बदरा पंडित भीमाकाली के मंदिर जा पहुँचा। पूजा-अर्चना के बाद वह देवी की स्तुति करने लगा। बदरा पंडित को देवी ने डराना चाहा। किंतु वह आराधना में लीन रहा। देवी ने उसकी आराधना को देखते हुए वर माँगने को कहा। बदरा पंडित ने नरबलि समाप्त करने का वर माँगा। इसके बाद पंडित ने कालीघाट, सुन्नी, दलाना और शाली में भीमाकाली की स्थापना की।

शाली में भीमाकाली का पहाड़ी शैली का ढलवाँ छत्र वाला मंदिर है।

शिमला : डायरी के पन्नों से

शिमला : 31 दिसंबर, 1989

माल के मुहाने पर नई उम्र के अनब्याहे छोकरे नाच रहे हैं। 'तूतक-तूतक-तूतक-तूतिया...' के बोल पुरजोर आवाज पर बज रहे हैं। पंजाबी शान से न नाचकर हर कोई अपनी-अपनी तान में नाच रहा है। ऊपर खड़ा एक लड़का म्यूजिक डायरेक्टर की तरह तेजी से बाँहें हिलाता हुआ जैसे नाच करवा रहा है। नाचते-नाचते कोई गिर जाता है तो सड़क पर लोटने लगता है। माल की रेलिंग पर सैलानियों का समूह नीचे झाँक रहा है।

थोड़ी देर में टलने की कोशिश करते सिपाही दूर खड़े हो जाते हैं। इनके हाथों में लगभग सवा-सवा फुट के डंडे हैं। आखिर एक सिपाही जो शायद ओहदे में दूसरों से भारी था, आगे बढ़ता है। दूसरे पीछे-पीछे सरकते हैं, टाँगें टेढ़ी-मेढ़ी कर घिसटते हुए। सिपाही दुकान में घुसने में कामयाब हो जाता है और एकदम बाजा बंद करवा देता है। लड़के जहाँ के तहाँ फ्रीज हो जाते हैं। फिर जैसे होश आने पर एकाएक चिल्लाते हैं : 'ओए ! ओए !' झटके से सब अपनी जैकेट पहनने लगते हैं जो उन्होंने सड़क के कूड़े के ढेर की मानिंद खोलकर फेंक रखी थी।

पता नहीं कब पनपी यह 31 दिसंबरी संस्कृति। किंतु 25 और 31 दिसंबर के हुड़दंग ने यह गत तीन-चार वर्षों से ही जन्म लिया है।

इस जश्न को देखने के बाद अंग्रेज हाकिमों और उनके अनुचरों की तस्वीर उभरती है। बड़े दिन को गिरजाघरों में सलीके से सजे-सँवरे, नपे-तुले कदम बढ़ाते अंग्रेज और सफेद दाढ़ी वाले शांताक्लोज का अवतरण ! अंग्रेज हाकिम...बढ़िया शराब की बोतलें गटककर भी तने हुए। कुछ वर्षों बाद उनके अनुचर वही शालीनता ओढ़े हुए...और अब उनके काले साये !

अंग्रेजों के साये आज भी उन पुरानी और बुलंद इमारतों में घूमते हैं। ऊँची-ऊँची इमारतें। मजबूत दीवारें अतीत को बोलती हुईं।

30 अगस्त, 1817

स्कॉच अधिकारी 30 अगस्त, 1817 को अपनी डायरी में लिखते हैं—"शिमला एक मझोला-सा गाँव, जहाँ राहगीरों को पानी पिलाने के लिए एक फकीर रहता है...हम जाखू की ओर ठहरे और वहाँ से बहुत मनोरम और सुंदर दृश्य देखा।" मि० ए० विलसन का मत है कि शिमला की खोज उन स्कॉच अधिकारियों ने की जो सतलुज घाटी के सर्वे के लिए आए थे। दूसरा मत यह भी है कि 1816 में गोरखा सेना को कोटगढ़ ले जाते समय एक अंग्रेज अफसर द्वारा यह गाँव खोजा गया जो घने जंगल और जानवरों से भरा था।

'बड़ी सरकार' के लिए समर-कैपिटल की खोज चाहे किसी ने भी की हो, उसके पहले यह एक छोटा-सा पहाड़ी गाँव था—वर्तमान रिपन अस्पताल से ऊपर और रोमन-कैथोलिक चर्च के नीचे।

1815 में इस गाँव को जींदराणा से लेकर राजा पटियाला को नेपाल की लड़ाई में अंग्रेजों का साथ देने के लिए दिया गया। आज के शिमला को पुरानी श्यामला देवी के नाम से भी जोड़ा जाता है, जो जाखू में रहने वाले एक साधु द्वारा पूजी जाती थी।

भावी शिमला कहलाने वाला भू-भाग राजा पटियाला और राजा क्योंथल के अधिकार में था। 1824 से ही यूरोपीय इन राजाओं से अनुमति लेकर रहने लगे। 1830 में हिल स्टेट्स के पहले पॉलिटिकल एजेंट मेजर केनेडी (जो सुबाथू में) ने राजा क्योंथल, राणा संसार सेन से 13 गाँवों की एक पहाड़ी ली। यहाँ केनेडी हाउस का निर्माण हुआ, जो शिमला में बनने वाला पहला भवन था।

यूँ तो शिमला में पुरानी वास्तुकला की इमारतों की भरमार है, जो आज भी शिमला को एक अलग पहचान देती हैं। केनेडी हाउस के अतिरिक्त ऑकलैंड हाउस, चेप्सली, बेटिंग कैसल, बुडविल, गोर्टन कैसल, रोथनी कैसल, वाकर अस्पताल तथा पश्चिमी कमाल की भव्य इमारतें खड़ी हैं, आज भी अपने-अपने इतिहास का बोझ लिए। विश्व काटन स्कूल, ऑकलैंड हाउस स्कूल, सेंट एडवर्ड जैसी विशिष्ट संस्थाएँ आज भी चली हुई हैं। रिज का चर्च और कैथोलिक चर्च की घंटियाँ आज भी बजती हैं।

23 जुलाई, 1888

लेडी डफरिन ने अपनी डायरी में लिखा है—"हम नए वायस रीगल लॉज में रहने के लिए वस्तुतः आज (23 जुलाई, 1888) गए...।"

इन्होंने अपनी डायरी में भवन-निर्माण के समय लॉर्ड डफरिन के साथ कार्य के निरीक्षण के लिए बार-बार जाने का उल्लेख किया है। लॉर्ड डफरिन हर सुबह-शाम कार्य की प्रगति देखते थे। भवन की ड्राइंग उन्होंने स्वयं संशोधित की।

भवन का वास्तुकार मि० हेनरी था और मि० हैबर्ट तथा मि० क्लेअर सहयोगी अभियंता थे। इस भव्य भवन के मुख्य ब्लॉक में तीन मंजिलें हैं। किचनविंग पंचमंजिला है, जिनमें तीन मंजिलें भूमिगत हैं। भवन के ऊपर एक छोटा-सा टावर है जहाँ वायसराय की

उपस्थिति का सूचक झंडा लहराता था।

एलिजाबेथन शिल्प में बने इस भवन में एक-सा पत्थर इस्तेमाल हुआ है। पत्थरों में नक्काशी न होते हुए भी यह गरिमामय लगता है। दीवारों पर पत्थर खच्चरों पर कालका के निकट पहाड़ियों से लाया गया था। भवन के निर्माण पर उस समय लगभग सोलह लाख रुपए व्यय हुए थे।

भवन के भीतर काष्ठकला अद्वितीय है। टीक तथा देवदार की सीढ़ियाँ, अखरोट की छत और उसमें की गई नक्काशी मनमोहक है। बालरूम तथा ड्राइंगरूम में रेशम के भारी पर्दे लहराते थे। डाइनिंग रूम की सज्जा किसी भी आगंतुक को आकर्षित करती थी जो राजकीय भोज के समय देखते ही बनती थी। भवन की भीतरी साज-सज्जा मैसर्ज मेपल एंड कं० द्वारा की गई थी।

यद्यपि ब्रिटिश युग के बने सभी भवन सिचुएशन के लिहाज से बहुत ही उत्कृष्ट स्थानों में बने हैं, तथापि यह भवन शिमला में बहुत गरिमामय और प्रभावशाली स्थान रखता है। एक ओर बर्फ से ढकी पहाड़ियाँ और दूसरी ओर मैदानी भाग। भवन के आसपास फूलों-भरे लॉन।

आजकल इस भवन में 'भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान' है। संस्थान द्वारा वायसराय तथा लेडी वायसराय के कमरों को एक संग्रहालय के रूम में सुरक्षित रखा है, जिसमें बिस्तर, चारपाई, फर्नीचर तथा कालीन वही हैं, जो उस समय थे।

जून, 1838

मिस एडन ने 9 जून, 1938 को शिमला में एक नाटक देखा। वे लिखती हैं—"पिछली रात हम नाटक देखने गए। शिमला में एक छोटा-सा थियेटर है, छोटा और गर्म, कुछ-कुछ गंदा किंतु फिर भी ठीक था।"

शिमला देश का सबसे पुराना रंगमंच है संभवतः। शिमला का एमेच्योर ड्रामेटिक क्लब भारत में रंगकर्म का सबसे पहला संस्थान है। पहले नाटक लोअर बाजार में भी होते रहे। शिमला कम्युनिटी द्वारा असेंबली रूम्ज में एक और थियेटर बना हुआ था। 1852 में एक मंचन के समय छत गिर गई, किंतु कोई हादसा नहीं हुआ।

इसके बाद थियेटर को 'एवेविल' नाम के घर में बदल दिया गया। 1869 में यहाँ सुंदर स्टेज भी बनाया गया।

इसके बाद बहुत-से मंचन अंग्रेज अधिकारियों के बँगलों में भी होते रहे।

एमेच्योर ड्रामेटिक क्लब या ए०डी०सी० का गठन 1888 में कर्नल हैंडर्सन के आवास में हुआ, जहाँ अठारह व्यक्ति उपस्थित थे। ए०डी०सी० की पहली बैठक 21 मई, 1888 को हुई। उसी वर्ष क्लब को 1860 के अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत करवाया गया। उस समय क्लब में 20 सदस्य थे जो 1904 तक 350 हो गए। मंचन की आय से समय-समय पर थियेटर की मरम्मत की जाती रही। 1896 तक कैरोसीन के तेल के लैंपों से रोशनी की जाती थी। एक बार पर्दा गिरने पर लैंप भी गिर गए और आग लग गई। यद्यपि आग बुझा

दी गई तथा अब बिजली की फिटिंग की आवश्यकता महसूस की गई। बिजली की व्यवस्था में लगभग पंद्रह हजार रुपए का व्यय हुआ और यह बिजली मेसोनिक लॉज तथा टाउन हॉल के बालरूम में भी प्रयोग में लाई जाने लगी।

ऑडिटोरियम में समय-समय पर बदलकर सुधार किया जाता रहा।

1904 के आसपास ए०डी०सी० म्युनिसिपैलिटी को तीन हजार रुपए प्रतिवर्ष थियेटर के प्रयोग के लिए देता था। नया थियेटर जून, 1887 में बना और मई, 1889 में आग की भेंट चढ़ गया। उस आग में मुख्य बाजार का पूर्वी भाग भी जल गया।

ऐतिहासिक गेयटी थियेटर में प्रथम 'टाइम विल टैल' 9 जून, 1887 को खेला गया। इस नाटक के किरदार थे कर्नल स्टीवर्ट, कर्नल हैंडर्सन, कैप्टन संडाल, डेविस, मिस कार्टर और मिसेज फ्लेचर।

इस समय भी गेयटी थियेटर शहर के लिए एकमात्र थियेटर है, यद्यपि अब इसमें पूरे दर्शक समा नहीं पाते। गेयटी थियेटर का मंच तथा ग्रीन रूम इस समय भी ए०डी०सी० के पास लीज पर है।

आजकल गेयटी थियेटर का जीर्णोद्धार भाषा-संस्कृति विभाग द्वारा करवाया जा रहा है। यह कार्य 2006-07 तक पूरा होने की संभावना है।

शिमला के मंदिर

तारा देवी

शिमला से आठ किलोमीटर, शिमला शहर के ठीक सामने तारा देवी पहाड़ी पर तारा का मंदिर है। एक ऊँचे स्थान पर होने के कारण यहाँ से शिमला तथा नीचे का क्षेत्र दूर-दूर तक देखा जा सकता है। मंदिर के आसपास बहुत रमणीक स्थान है। तारा देवी का मंदिर तथा पहाड़ी भी दूर-दूर से दृष्टिगोचर होती है।

मंदिर एकमंजिला है, जिसके चारों ओर प्रदक्षिणा पथ के रूप में खुला बरामदा है। पूर्व की ओर द्वार मंडप है। मंदिर आधुनिक है अतः किसी विशेष शैली में निर्मित नहीं है।

गर्भगृह में तारा देवी की लगभग आधा मीटर ऊँची अष्टधातु की प्रतिमा है, जिसकी अठारह भुजाएँ हैं। मुख्य मूर्ति के साथ सीता, पार्वती तथा अनसूया की प्रतिमाएँ भी हैं। शेर पर सवार देवी की हर भुजा में शस्त्र है।

मंदिर तक अब सड़क मार्ग बन गया है, जिसमें छोटे वाहन जा सकते हैं। पहले लोग मुख्य सड़क से पैदल जाया करते थे। मंदिर की प्रबंध-व्यवस्था न्यास के अधीन है।

नए मंदिर के साथ एक पुराना मंदिर भी है। यहाँ दुर्गा अष्टमी को मेला लगता है। पहले यहाँ दो भैंसों (झोटों) की बलि दी जाती थी।

जुणगा राजाओं का तारा देवी से विशेष संबंध रहा है। वे आज भी नवरात्रों में तारा देवी की विशेष पूजा करते हैं। कहा जाता है, जुणगा का राजा भूपेंद्र सिंह जुग्गर नामक स्थान पर शिकार खेलने गया। तारा ने राजा को आदेश दिया कि यहाँ मंदिर निर्माण किया जाए, माँ उसके राज्य की रक्षा करेगी। राजा ने मंदिर बनवाया और पाँच सौ बीघा भूमि माता के नाम कर दी। कुछ समय बाद एक महात्मा वहाँ आए। उन्होंने तत्कालीन राजा बलवीर सेन से देवी की अष्टधातु की प्रतिमा बनाकर प्रतिष्ठित की।

राजा क्योंथल की कुलदेवी के विषय में यह भी कहा जाता है कि देवी राजा के साथ ही इन पहाड़ों में आई।

शिमला गजेटियर में उल्लेख है कि योगी तारानाथ एक बार इस स्थान पर आया और जंगल में धूणा लगा दिया। जब वर्षा हुई तो योगी के आसन पर एक बूँद न गिरी। इस चमत्कारी योगी के पास राजा स्वयं गया। योगी ने राजा को तारा माता का मंदिर बनाने के लिए कहा। राजा ने मंदिर बनवाया जिसमें योगी तारानाथ ने तारा माता की मूर्ति स्थापित की। योगी की सेवा में रहने वाले ब्राह्मण को पुजारी बनाया गया।

एक अन्य कथा के अनुसार राजा बहादुर सेन ने एक मूर्तिकार (लोहार) गुसाऊँ से देवी की मूर्ति बनवाकर मंदिर में रखवाई। राजा बहादुर सेन को पंडित भवानीदत्त ने बताया कि यह स्थान एक पवित्र स्थान है और मंदिर बनवाया जाए। हिंदू पद्धति के अनुरूप मूर्ति स्थापित की जाए तो मूर्ति चमत्कारी हो सकती है। राजा ने गुसाऊँ को मूर्ति बनाने के लिए कहा। गुसाऊँ ने मिट्टी की मूर्ति बनाई, जैसा कि पंडित ने बताया था। किंतु पंडित ने बताया था कि जब मूर्ति बन रही हो तो पाँच बलियाँ दी जानी होंगी। राजा ने बलियाँ नहीं दीं और मूर्ति बनवा दी। जैसे ही मूर्ति तैयार हुई, मूर्तिकार पर डाकुओं ने हमला कर दिया। डाकुओं ने मूर्तिकार, उसके दो साथियों और एक कुत्ते और एक बिल्ली को मार दिया। अतः पाँच बलियाँ पूरी हुईं। राजा को पंडित के वचनों पर विश्वास हो गया और उसके निर्देशानुसार ही कार्य किया। राजा ने बलियाँ भी दीं और मूर्ति स्थापना की। हवनादि सभी क्रियाएँ पूर्ण की गईं।

पुराने समय में अष्टमी के दिन प्रातः ही राजा तथा रानी मंदिर में पहुँचते थे। राजा द्वारा एक सोने की मोहर दी जाती थी और बकरा बलि किया जाता था। राजपरिवार के सभी सदस्य इसे ही करते। राजा तथा राजपरिवार के बाद साधारण लोग श्रद्धालुओं को चढ़ावा चढ़ाते। गजेटियर में बकरे की बलि के साथ कई भैंसों की बलि का उल्लेख भी दिया है। भैंसों को निर्दयतापूर्वक मारा जाता था।

तारा दस महाविद्याओं में एक है। बौद्ध धर्म में भी तारा एक प्रतिष्ठित देवी है। तंत्र विद्या में देवी तारा का विशेष महत्त्व है।

संकटमोचन

शिमला-कालका मार्ग पर शिमला से छह किलोमीटर सड़क के नीचे की ओर संकट-मोचन महावीर का मंदिर है। यह मंदिर भी आधुनिक मंदिर है। सिंदूरी रंग का मंदिर दूर

से ही महावीर मंदिर होने का संकेत देता है। उत्तर दिशा की ओर प्रवेश द्वार से मंदिर के हॉलनुमा कमरे में प्रवेश होता है। मंदिर के भीतर तीन अलग-अलग छोटे-मोटे मंदिर हैं। भगवान् शंकर, सीताराम और महावीर की प्रतिमाएँ इसमें रखी गई हैं।

मंदिर का निर्माण-कार्य 1962 में आरंभ हुआ और 21 जून, 1966 को मूर्तियों की स्थापना हो गई। इसका निर्माण बाबा नीम करौरी ने करवाया। नैनीताल के वासी नीम करौरी बाबा एक पहुँचे हुए संत थे। उन्होंने भारत में एक सौ आठ मंदिर बनवाए। अपनी अंतःप्रेरणा से उन्होंने यहाँ मंदिर निर्माण करवाया।

रामनवमी के अवसर पर यहाँ मेला लगता है। प्रत्येक रविवार भंडारा होता है। मंदिर में भंडारा, सराय तथा अन्य मंदिरों का निर्माण जोरों पर है। बहुत कम समय में ही मंदिर ने व्यापक प्रतिष्ठा तथा प्रसिद्धि पाई है।

हनुमान मंदिर, जाखू

शिमला के रिज मैदान और चर्च के ऊपर पहाड़ी पर जाखू का प्राचीन हनुमान मंदिर है। साढ़े आठ हजार फुट की ऊँचाई पर बना जाखू मंदिर भी आधुनिक है। हनुमान जी का स्थान प्राचीन हो सकता है।

कहा जाता है कि जाखू में एक 'जख' या यक्ष रहा करता था। जब हनुमान लक्ष्मण को मेघनाद की शक्ति से बचाने के लिए संजीवनी बूटी लेने गए तो वापसी में यहाँ उतरे थे। थकावट दूर करने के लिए पर्वत सहित हनुमान जब यहाँ रुके तो यक्ष ने पानी आदि पिलाकर उनकी सेवा की और आगे जाने के लिए मार्ग बताया। उसी यक्ष या महात्मा के नाम से इस स्थान को जाखू कहा जाने लगा।

मंदिर में बाहरी मंडप से प्रवेश करते हैं। गर्भगृह में हनुमान जी की प्रतिमा है जिस पर सिंदूर मला रहता है। भीतर गुंबदाकार मंदिर है। एक ओर बाबा बालकनाथ का मंदिर भी है। एक धर्मशाला भी बनी हुई है। मंदिर में साधु लोग रहते हैं।

एक कथा यह भी है कि एक महात्मा को यहाँ महावीर जी ने दर्शन दिए और उन्हें बताया कि यहाँ मेरी मूर्ति पृथ्वी के नीचे दबी पड़ी है। महात्मा ने पृथ्वी खोद मूर्ति निकाली और यहाँ स्थापित कर दी।

यहाँ हनुमान जी के प्रतिरूप बंदर बहुत हैं, जो श्रद्धालुओं से बिलकुल नहीं डरते तथा प्रसाद या लिफाफे छीनकर ले जाते हैं।

कालीबाड़ी मंदिर

शिमला नगर के लगभग मध्य में ग्रांड होटल से आगे कालीबाड़ी मंदिर है। यह मंदिर भी सीमेंट का आधुनिक मंदिर है। दक्षिण की ओर मुँह किए मंदिर के प्रवेश द्वार के भीतर एक बड़ा हॉलनुमा कमरा है। प्रदक्षिणा पथ इस हॉलनुमा कमरे के भीतर ही है। दो ओर से अलग प्रवेश द्वार हैं। मुख्य मूर्ति सामने वाले द्वार के समक्ष पड़ती है, जहाँ से भीतर न जाने वाले दरवाजे पर खड़े-खड़े भी दर्शन कर लेते हैं।

गर्भगृह में संगमरमर के सिंहासन पर मध्य में अष्टधातु की अष्टभुजा दुर्गा की प्रतिमा है। प्रतिमा काले रंग की है, इसलिए इसे श्यामला भी कहा जाता है। संभवतः श्यामला के नाम पर ही 'शिमला' बना, ऐसा ही एक मत है। मुख्य प्रतिमा के दोनों ओर श्यामला तथा चंडिका की पाषाण प्रतिमाएँ हैं। मुख्य प्रतिमा के सामने शिवलिंग भी है।

मंदिर के खुले प्रांगण में एक ओर नया शिव मंदिर भी बना है। पूर्व की ओर मंदिर न्यास कार्यालय तथा कालीबाड़ी हॉल है। एक हॉल तथा सराय भवन मंदिर के मुख्य द्वार से बाहर भी बन गए हैं।

जनश्रुति है कि सन् 1823 में श्यामला भगवती प्रकट हुई और सन् 1845 में रामचरण नाम के बंगाली ब्राह्मण ने यहाँ छोटा-सा मंदिर बनवाया। फिर उस मंदिर का विस्तार होता गया।

30 अगस्त, 1817 को एक स्कॉच अधिकारी ने अपनी डायरी में लिखा है– "···शिमला, एक मझोला-सा गाँव, जहाँ राहगीरों को पानी पिलाने के लिए एक फकीर रहता है···हम जाखू की ओर ठहरे और वहाँ से बहुत मनोरम और सुंदर दृश्य देखा।" ए० विलसन का मत है कि शिमला की खोज उन स्कॉच अधिकारियों ने की जो सतलुज घाटी के सर्वे के लिए आए थे। दूसरा मत यह भी है कि सन् 1816 में गोरखा सेना को कोटगढ़ ले जाते समय एक अंग्रेज अफसर द्वारा यह गाँव खोजा गया, जो घने जंगल और जानवरों से भरा था।

क्या यह फकीर वही था जो जाखू में रहता था ? या यह श्यामला मंदिर वाला ब्राह्मण या साधु था ?···यह अज्ञात है।

लोकविश्वास है कि जाखू में एक साधु श्यामवर्णी प्रतिमा के सम्मुख धूणी रमाए बैठा रहता था। उस स्थान पर स्कॉच अधिकारी या अंग्रेज पहुँचे। अंग्रेजों ने वहाँ भवन बनवाना चाहा। साधु के न मानने पर अधिकारी ने साधु को वहाँ से हटवा दिया और प्रतिमा फेंक दी। इससे सर्वेक्षण अधिकारी के घर अनिष्ट होने लगा। अतः उसने पुनः प्रतिमा स्थापित कर दी।

कालीबाड़ी इस समय शिमला का एक प्रतिष्ठित मंदिर है, जहाँ हर दिन भीड़ रहती है। मंगलवार, नवरात्रों में लोगों का ताँता लगा रहता है। आश्विन नवरात्रों में काली, गणेश, दुर्गा, सरस्वती की प्रतिमाएँ बनाई जाती हैं। दशहरे के अवसर पर मूर्तियाँ विसर्जित होती हैं।

धानु देवता

धानु देवता शिमला के आसपास का एक महत्त्वपूर्ण देवता है। कभी इस देवता की महत्ता शिमला में तथा आसपास बहुत अधिक रही होगी।

शिमला के बस अड्डे से लाल पानी के बाईं ओर देवता का मंदिर बिहार गाँव में है। मंदिर गाँव से बाहर जंगल में है। पहाड़ी शैली के इस मंदिर में लकड़ी की बढ़िया नक्काशी हुई है। मंदिर पैगोडा शैली का है।

मंदिर की समय-समय पर मरम्मत होती रही है। सन् 1852 में इस मंदिर का एक चित्र 'व्यूज़ इन द हिमालयाज़' में छपा था, जिसमें ढलवाँ छत में लकड़ी के तख्ते लगे हैं।

प्रादुर्भाव कथा

पुराने समय में नदौन राज्य पर एक नाग का राज था। नागराज चार भाई थे। दूसरे राज्य का आक्रमण होने से नागराज वहाँ से भाग खड़े हुए। वे जाखू में आए। यहीं से चारों दिशाओं में भागे। जहाँ-जहाँ ये गए, वहाँ इनके मंदिर बने। एक मंदिर मशोबरा से डेढ़ किलोमीटर सीयर गाँव में बना, जहाँ चौदह-पंद्रह मई को सीणी मेला लगता है। दूसरा मंदिर कैथू के पास बना, तीसरा कसुम्पटी के नीचे मल्याणा में और चौथा बिहार गाँव में।

बिहार गाँव में यह नाग धान के खेत में निकला था, अतः धानु देव कहलाया। किंवदंती है कि एक ब्राह्मण को सपने में एक देवता दिखाई दिए। स्वप्न के दूसरे दिन ही अनिष्टकारी घटनाएँ होने लगीं। ब्राह्मण के पास एक गाय और एक बछड़ा था। गाय शाम को जब घर आती तो उसके थनों से दूध निकल चुका होता। जब गाय का पहरा किया तो देखा कि धान के खेत में गाय खड़ी है और गाय के थनों से दूध एक नाग के मुँह में जा रहा है। नाग पर एक भाले से वार किया गया। नाग के मोहरे पर एक निशान है। लोगों ने वहाँ पर एक मंदिर बनवाया।

इस मंदिर में दीपावली के पंद्रह दिन बाद और जून-जुलाई में मेला लगता है।

हिमाचल के मंदिर तथा देवस्थान

हिमाचल प्रदेश के हर घर में देवता का स्थान होता है। ऊपर के क्षेत्रों में घर की सबसे ऊपर की मंजिल पर देवता का स्थान माना जाता है। निचले क्षेत्र के हर घर में, विशेषकर ब्राह्मण परिवारों में एक कमरे में 'पिहड़ू' में देवताओं की मूर्तियाँ रखी रहती हैं। यह एक प्रकार का घर का मंदिर है। प्रातः-सायं पूजा की जाती है। प्रातःकालीन पूजा पूरे विधि-विधान से की जाती है। मंदिर की तरह मंत्रोच्चारण के साथ शंखध्वनि की जाती है। सायं आरती गाई जाती है। पुराने समय में यह पूजा-पाठ नित्य का कार्य हुआ करता था। घर में अपने इष्ट देव (दुर्गा, शिव, विष्णु) के अतिरिक्त कुलदेवी या कुलजा की स्थापना भी होती है। विवाहादि शुभ कार्यों में कुलजा की पूजा अनिवार्य है। माता आशापुरी, चामुंडा आदि देवियाँ कुलजा के रूप में पूजी जाती हैं।

गृहस्थ में अन्य देवताओं के अतिरिक्त 'बासी' का देवता एक महत्त्वपूर्ण देवता है। घर या गृहस्थी बसाने पर 'बासी' के देवता की स्थापना की जाती है।

प्रत्येक गाँव में देवता 'थान', जोगणी या फुंगणी के स्थान, जख या यक्ष के स्थान,

काली माता के स्थान होते हैं। देवता के थान में केवल एक प्राकृतिक पत्थर होता है। इसी प्रकार काली का स्थान भी किसी निर्जन में प्रतीक रूप में रहता है। लोग ऐसे स्थान पर दिन में भी जाने पर कतराते हैं। नार सिंह, पहाड़िया भी ऐसे देवता हैं। आधे देवता और आधे दानव हैं। जोगणी या फुंगणी के स्थान पर्वतों की चोटी पर होते हैं। घरों के आगे या गाँव के बीच किसी पेड़ के गुग्गा छत्री की घोड़े पर सवार पाषाण प्रतिमा तथा पत्थर पर उकेरे नाग रखे रहते हैं। हर घर के आँगन में भी पत्थरों पर नाग उकेरकर रखे जाते हैं।

ऐसे बहुत-से पहाड़, ढंखार, बड़े पत्थर या पेड़ हैं, जिनमें देवी-देवताओं या भूत-प्रेतों का वास माना जाता है। जलस्रोतों, सरोवरों का अपना धार्मिक महत्त्व है। भूत-प्रेतों में अधमसाणियाँ जैसे प्रेतों का अस्तित्व भी माना जाता है। कई स्थानों में अनेक रहस्यमयी गुफाएँ हैं।

बिना किसी मंदिर के भी ऐसे कई स्थानों की महत्ता है। आज भी कोई ऐसे स्थानों को छेड़ने की हिम्मत नहीं करता।

इन स्थानों की गिनती मंदिरों में नहीं आती। यदि ऐसे स्थानों को छोड़ भी दिया जाए तो यहाँ कम से कम पाँच हजार मंदिर हैं।

प्रदेश में कुल्लू तथा मंडी की देव-परंपरा बहुत विशिष्ट तथा विलक्षण है। मंडी शहर से ऊपर, सराज, करसोग की ओर एक ही सांस्कृतिक इकाई है, चाहे यह क्षेत्र अब अलग-अलग जिलों में विभाजित हो। नाग, शिव तथा शक्ति पूजा इस क्षेत्र की विशेषता है। कुल्लू तथा मंडी दोनों में नाग परंपरा विद्यमान है। यहाँ से नाग परंपरा सीधे चंबा गई है। काँगड़ा में इंद्रुनाग (घनियारा) को छोड़ कोई विशिष्ट नाग मंदिर नहीं है। यद्यपि यहाँ भी नाग पूजा किसी न किसी रूप में विद्यमान है। चंबा के पाँगी तथा भरमौर में उतने ही नाग मंदिर विद्यमान हैं, जितने कुल्लू में या मंडी में। पाँगी से नाग पूजा केलंग (लाहुल) तक गई है।

दूसरी प्रमुख विशिष्टता शक्ति पूजा की है। इस ओर मंदिरों में शक्ति का महिषासुरमर्दिनी रूप प्रभावी है। मंदिर चाहे किसी भी देवता का हो, महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमाएँ बहुतायत से मिलती हैं। कहा जाता है, नाग मंदिरों की भाँति शक्ति मंदिरों में भी मानव बलि दी जाती थी। पशु बलि तो आज भी प्रचलित है। महिषासुरमर्दिनी के इस रूप के कारण इस क्षेत्र में भैंसों की जान पर बन आई है। कई जगह भैंसे बलि किए जाते हैं।

काँगड़ा की ओर शिव-शक्ति की समान रूप से मान्यता है। विभिन्न शक्तिपीठ तथा शिव मंदिर इस बात की पुष्टि करते हैं। शिव के साथ सिद्ध तथा पीरों का भी महत्त्व है। बालकनाथ, बाबा बड़ोह जैसे सिद्धों की मान्यता है। ठाकुरद्वारे भी बहुत हैं। नार सिंह मंदिर भी हैं। यह मान्यता हमीरपुर, ऊना तक चली गई है। गुग्गा छत्री भी एक महत्त्वपूर्ण देवता है। सोलन तथा बिलासपुर में शिव मंदिरों के साथ सिद्ध तथा गुग्गा के स्थान प्रचुर मात्रा में हैं। यहाँ नार सिंह के मंदिर भी अधिक हैं।

जहाँ कुल्लू तथा मंडी में देवता की संख्या अधिक है; नाग, शिव-शक्ति के साथ-साथ स्थानीय देवता भी बहुत हैं, वहाँ महासू या शिमला जिले में देवता सीमित हैं। महासू में केवल एक देवता महासू के ही अनेक मंदिर हैं। दूसरे देवता भी महासू के प्रतिरूप ही हैं।

इसी तरह सिरमौर की ओर शिरगुल तथा बिजट प्रमुख देव हैं। यद्यपि सिरमौर में परशुराम तथा शिव के साथ कुछ अन्य देवता भी माने जाते हैं।

प्रदेश के इन सभी मंदिरों की गणना की जाए तो 'थान' जैसी मान्यता प्राप्त जगहों को छोड़कर कम से कम पाँच हजार मंदिर होंगे। भाषा-संस्कृति विभाग हिमाचल प्रदेश द्वारा सन् 1980 के लगभग प्रदेश के मंदिरों की एक सूची प्रकाशित की गई थी, जिसमें 3242 मंदिर दर्ज थे। यद्यपि सूची में कुछ मंदिरों को दोबारा गिनाया गया था, गिनती के कुछ क्रम भी छूटे हुए थे, जिससे यह संख्या पूरी नहीं होती। उस सूची को संशोधित कर तथा अन्य मंदिरों को जोड़कर यहाँ अद्यतन सूची दी जा रही है। अकेले कुल्लू में ही 386 से अधिक मंदिर हैं, जिससे कुल्लू दशहरा में 365 देवताओं के आगमन की किंवदंती सही प्रतीत होती है।

नीचे जो सूची दी जा रही है, इसे पूर्ण नहीं माना जा सकता, क्योंकि बार-बार जोड़ने पर भी कुछ न कुछ छूट गया प्रतीत होता है तथापि यह सूची शत-प्रतिशत को बस छूती हुई है–

जिला कुल्लू

तहसील कुल्लू

श्री रघुनाथ, गोहरी देऊ, शिव मंदिर, वैष्णो माता (कुल्लू), मुरलीधर, गौरीशंकर, लक्ष्मीनारायण, शुभ नारायण, जमलू देवता, त्रिपुरा सुंदरी, देवी मस्ती, नार सिंह, जगती पोट (नग्गर), ठाकुर गोधा, जमदग्न रिखी, चकलाहु, कोटली देवी (सोयल), काली देवी, नारायण देवता (जाणा), गणपत, कार्तिक स्वामी (नथाण), जमलू, ज्वालामुखी, केसरी देवी, गोहरी देऊ, पीशा देवता (फोजल), अजयपाल, काली नाग, देवी कुंगणी (मंडलगढ़), देवता थान वाकपा, काली देवी (डोभी), विष्णु (सजला), दोचा मोचा (गजाँ), जमदग्न रिखी (करजाँ), लराई महादेव (लराँ), चामुंडा (नशाला), धूम्बल नाग (हलाण), जमलू, विष्णु, बीरनाथ (दुआड़ा), जमलू, नारायण, गोहरी (कटराई), नारायण (मेहा), जमलू (बाड़ी), नीलकंठ, नारायण (वराण), गोहरी देऊ, जगथम, नाग (पनगाँ), जमलू (रियाड़ा), जमलू (रोगली), संध्या गायत्री, शिव, जमलू, ठाकुर जगन्नाथ, शिरघन (जगतसुख), सरनरी, देवता अर्जन, जमलू, काली नाग (प्रीणी), सीताराम, कारतनुस्वामी (गोजरा), श्रीरामचंद्र, वशिष्ठ, शुशटी नारायण, देवी जोगणी (वशिष्ठ), नाग ऋषि, देवी सीता, जमदग्न, नार सिंह, विष्णु, नाग (बूरुआ), जमदग्न (पलचाण), हिडिंबा (ढूँगरी), मनु (मनाली), शंखू नारायण, समाली महादेव, कारतनु (नसोगी), देवता शांडल, कपिल मुनि (शलीण), नाग, देवी खंडासणी, जमलू, गौरीशंकर, गोहरी, ठाकर गोपाल जी, वासु नाग (हलाण), जमलू (मलाणा), भागासिद्धि

(डुग्गी लग), देवता यान, नारायण (तारापुर), पिरड़ू (बाहन महाराजा), पराशर (खड़ीदार), पंचाली नारायण (ग्रामंग), दशमी वारदा, वलिंढू देव, सरमना नाग, देवता अजामिल, शुक्ली नाग, देवी शमशी, ठाकर सालिगराम, भलोगू नाग (काईस), काली नाग, गोहरी देऊ, देवी फुंगणी (रायसन), ठाकर मुरलीधर, बिजली महादेव (कशावरी), नेऊली राणी (खराहल), देवी जगरनाथी (साटी), त्रिजुगी नारायण, रामचंद्र, लक्ष्मीनारायण, गोहरी देऊ (दयार), जमलू, देवी डमासना (घाटी मंजली), देवता रिस्सा, श्यामाकाली, कारमंडा (रोट), चामुंडा देवी (शाट), देवी चौगासन (चौंग), मोटंती देवी (पंदई), देवता गम्बल (शाट), देवता कमलरूपी, सूरजपाल, भागसिंह, मंगलेश्वर महादेव, ठाकर चतुर्भुज, देवता रिशा (शाट शिलही हार), नारद मुनि, जमलू, देवता शपराड़ा, नारायण, गौतम रिखी (पारली), शिव, रामचंद्र, मुरलीधर, नैणा देवी, गुरुद्वारा (पणिकरण), लक्ष्मीनारायण (भलाण), लक्ष्मीनारायण, आशापुरी (रैला), दुर्वासा (भलाण), कालीनाग (जरी), फालनाग (फाल), गोशाल नाग (गोशाल), सरसई नाग (सरसई), कालीनाग (डुरंग), कालीनाग (कराल), गोहरी देऊ (उमचीण), गोहरी देऊ (हुरला), गोहरी देऊ (बारी तुकी), देऊ अम्बल (चजोगी), सारी नाग (सारी), भेखली माता (भेखली), जमलू (दरपौईण), कालीनाग (शिरढ़), जगयम (बरशैणी), देवी (निंगण), गोहरी देऊ, आदि ब्रह्मा, बालाछमेश्वर, बीरनाथ (खोखण), देवी रूपासन (ब्राधा), विश्वेश्वर महादेव, नार सिंह, देवी भुवनेश्वरी, बालाछमेश्वर (हाट-बजौरा), गोहरी, जोगणी (निथूल), गोहरी, नारायण (राजगिरि), ब्रह्मा (शिल्पीहार), नैणा देवी (भूलंग), रनपाल, ठाकुर नार सिंह (मोहल), ज्वालामुखी, बृइ महान, देवी डोमा (शमशी), देव मंदिर (पलचाण), माठू देवता (बसतोरी), देव मंदिर (नेउल), कच्छप नारायण (बनोगी), देव मंदिर (जलोग्रा), ग्राणी (डुंखरी गाहर), देव मंदिर (जदौड़), बिगलेश्वर (बनोगी), व्यास (रोहतांग), व्यास रिखी (सोलंग), बिजली महादेव (मथाण), कैला वीर, पराशर (कमांद), कपिल मुनि (बशौणा), अरजीपाल (नारगी), अरजीपाल (हुरंग), गौतम ऋषि (मनिहार), गौतम ऋषि, वेदव्यास, कंचननाग (गोशाल), गोहरी देऊ (बागन), गोहरी देऊ (बुआई), चमन ऋषि (नजाँ), जमलू (उड़सू), जमलू (मौढ़ावाड़ी), जुआणू महादेव (जुआणी), जेहर (निजाँ), टुंडी देवी (भुलंग), थान नारायण (भुट्ठी), नारद मुनि (नीणू), नारायण (बड़ी शिल्ह), नारायण (मेहा), नेईगा देवी (भुलंग), पांडीर ऋषि (कथेऊगी), पाशाखोट (शेलड़ी), पिरड़ू थान (पिरड़ी), पौंज बीर (लोट), हुरंग नारायण (गदियाड़ा, देवी फुंगड़ी (शिरढ़), बनशीरा (सिद्धवा मंगलौर), भागासिद्धि (नरोगी), भागासिद्धि (पीणी), भोटंती (नग्गर), भारथा (गलछेत), महावीर (उआली सेर), महावीर (मंगलौर), रूपणूपाल (तारी), बनशीरा (कनोण), बीर ब्राठी (करेरी), शपराड़ा नारायण (आशणी), शपराड़ा नारायण (भड़ोगी), शबरी (शूरू), शरपाल (बोणसु), सूरजपाल (भूईण), हरिनारायण (काथी), हुरंग नारायण (दराल), काली ओड़ी (अरछंडी), गोहरी देऊ (दचाणी), जमलू (सीस), जमलू (श्याह), जमलू (हवाई), पौंज बीर (बाखली), रूपणू पाल (पाहा), लक्ष्मीनारायण (कोली बेढ़), बीरनाथ (बैंची), बीरनाथ (मंदरोल), थान देवता (शिल्ह), नारायण (शिल्हारी), हिडिंबा (जंडोल)।

भीतरी सराज, बंजार

बूढ़ी नागण (फाटी घियागी), जीभी नाग (फाटी जीभी), घियागी देव (घियागी), देव मंदिर (हिड़क), कनसोर (फाटी), अम्बिका (जार फाटी), देवी (वन), लक्ष्मीनारायण (फाटी पाउगी), ब्रह्मा (फाटी कनौण), मारकंडा (गाड़), बालू नाग (चेथर), नारायण (देऊल खोला), देवता जौहल (चलहणा), देवता लक्षरी (ढिंपू), लक्ष्मीनारायण (मलाणा), दरवासा ऋषि (पालगी), लक्ष्मीनारायण (रैला), कौला देवी (गोही फाटी), देवता ऋषि (कंढा फाटी शेर), सनदेव (कनौण), जमलू, लक्ष्मीनारायण (फाटी महावीर), महादेव (फाटी धमेउली), श्रींगा ऋषि (फाटी मयार), श्यामाकाली (दलासनी), गर्गाचार्य (सयाणी फाटीरोट), मारकंडा (मँगलौर), मारकंडा (थरास), शगचूल देवता (कटाहारी फाटी शांकड़), पडारी देवता (कथ थडगी सचैणा), गाड़ा दुर्गा (फाटी शरची), ऋषि देवता (फाटी शैंशर), कशू नारायण (बनागड़ी फाटी), देवता गढ़वाल (फाटी तरगाली), बुगड़ देवता (धुशाल फाटी), काली नाग (केढ़ी फाटी सेहूली), वासकी नाग (थाटी बीड़), सकीरणी देऊ (सकीरणी), आयडू नाग, महावीर (सैंज), करथ नाग (मंडी), खोडू महादेव (धारा), खोडू महादेव (त्रेषा), घटोत्कच (सिद्धमा), छमाहू नाग (बड़ा ग्राँ), जनासर (रैंह), नागदेव (सुचेहण), पंचाली देवी (पंचाली, फतेहपुर), पझारी देव (बाहू), भुहणी (बौला), महामायी (कच्छैणी), मारकंडा (बैंलागढ़), लोमश ऋषि (पेखड़ी कोठी नुहांडा), वाराही (मौईल), गर्गाचार्य (लाशणी), टरूणु नाग (भगोणा)।

बाहरी सिराज, आनी

शोऊल (शिल्हीं कोठी), जैहरा (जैहरा), कुई (कुई), विन्न (विन्न), पनेऊ नाग (कुंगश), कराना देवता (कराना), कुईरी महादेव, वरनी देवी, बशाहल देवता, बिशलू (विशला धार), पटारना देवता (घराट), शोधा देवता, टिपर देवता (फाटी घराट), नाग (शगान), शमशर महादेव (धोगी), शमशर महादेव (मशर), माहू नाग (ठोगी), लक्ष्मीनारायण (डोहुई), नाग (खादवी), तराली नाग (तराला), लक्ष्मीनारायण (बनास), बछैर देवता (बछैर), मुरलीधर (फाटी खणी), देवता पुजारी (लझेरी), कुई केढ़ाभाग (रागोगी), जगेसर महादेव (दलास), पछला देवी (देहुरी), कसुम्भा (खेखसू), देहरी (देहरी), टकरासी (टकरासी), महादेव (औलवा), बाड़ी देवी (बाड़ी), महादेव (बैनहर), चोतरू नाग (शोधा), व्यास ऋषि (कुंईर), बैहना महादेव (बैहना)।

निरमंड

परशुराम, लक्ष्मीनारायण, देवी अंबिका, दक्षिणेश्वर महादेव, चंडी, शिव, पांडव (निरमंड), देवढाँक (देवढाँक), सराहन जलोटी (सराहन), मारकंडा (नोर), नदारलू (कोट), चम्भू (फाटी कशोली) तनणू नाग, जाहरू नाग (हुनण), कुशवा देवी (कुशवा), श्री बाड़ी देवी (फाटी बाड़ी), देवी पुजारीली (निशाणी), जहरू नाग (सरघा), राधाकृष्ण (जगातखाना), अंबिका देवी, ठाकर लक्ष्मीनारायण, चंडी देवी, महादेव दशमी महादेव (फाटी नरमक), चंभू (रहाणू),

कमोरी नाग (रहाणू), रमरशाही (कापू), प्राह देवी (प्राह), कोईल देवी (कोईल), तांदी (तांदी), शाणी देवी (शाणी), शाणी देवी (गोतथ), बूढ़ा महादेव (निवा देऊरा), चैवड़ी देवी (चैवड़ी), धनाह देवी (धनाह), देवी (चैल), झलैड़ मंदिर (झलैड़), याहू मंदिर (कोटी), देथवा कोट मंदिर (देथवा), भगवती (नित्थर), नाग (पलेही), देव मंदिर (सोहच), कसुंबा नाग (सरघा), जादू नाग (तोनारा), हनुमान (थाचवा), देव मंदिर (बैएल), नाथली नाग (रामगढ़)।

जिला मंडी

मंडी

माधोराय, महादेव, कामेश्वर, धनेश्वर, महामृत्युंजय, सिद्धभैरव (सेरी), त्रिलोकीनाथ, शीतला माता, राधाकृष्ण, काली माता, जाल्पा देवी, हनुमान, शिवजी, राधाकृष्ण, गणपति (पुरानी मंडी), श्री रामचंद्र, जाल्पा देवी, जगन्नाथ, सिद्धभैरव (पाडल), भुवनेश्वरी, आर्य समाज मंदिर, भूतनाथ (सुहड़ा), भूतनाथ, काली देवी, घनियारी, बालक सिद्ध, खुआराणी, शीतला देवी, शिवालय, महादेव, लखदाता (समखेतर), पंचवक्तर, अर्द्धनारीश्वर (मंडी), भीमाकाली (भिथूली), राम मंदिर, गणपति, दुर्गा, वाल्मीकि, मस्जिद (सैण), नारायण (शायरी), अनसर देवी (अनसर), शीतला माता (नगवाईं), जाल्पा देवी (सवाखरी), पाली नाग (दारहल), गुग्गा (कालग), थानकी महादेव (नगवाईं), सिद्ध बाबा (रूपाभाटपाहल), कमलेश्वर (बग्गी), माहू नाग (धड़वाहरा), नीलकंठ, बालकरूपी, मस्जिद, गुरुद्वारा (मँगवाईं), मुरारी देवी (बुराहली), हरेश्वरी (नाईटका), बाबा बालकनाथ (कोठी), गुरुद्वारा (गुरकोठा), देवी कोयला, शिव (रिगड़), माता बगुला, देव बुधा (सेहली), संतोषी माता (लोहाराँ), नागण देवी (बगो), गुग्गा (सखाहन), नैणा देवी (लोट उपरला), महादेव, लोमश ऋषि, गुरुद्वारा, बौद्ध मंदिर (रिवालसर), जाल्पा माता (रियूर), नैणा देवी (कालदो), वमेश्वर (चतौरा), नैना भगवती (सकरोह), लखदाता, सीताराम (बैरूना), बालक परमेश्वर, देवी टिक्कर (टिक्कर कलाँ), शिव मंदिर, हनुमान (भंटरोटू), माहन देव (माहन), झागड़देव (भरगाँव), बूढ़ा बिंगल (डबाहण), देव रछेहरा (रछेहरा), राधाकृष्ण, बाबा बालकनाथ (कुतली), शक्ति (जलौक), दुर्गा माता (बाला मयोसर), माहू नाग (मलेड़), गुग्गा (धिपू), बाला कमेश्वर (सारी), टौणी देवी (गिहूला), ठाकुरद्वारा (मियूली), समानी देवी (नवेला), देवी रोपा (आरड़ा रोपा), तूँगा दा देव (तूँगा), चंडी देवी (कटौला), पराशर ऋषि (बाहंदी), तूँगा देवी (जूलीनाल), वरनाल दैव (बनोड़), देव नारायण (कोट दलयार), महादेव (कोट दलयार), चंडोही देवी, भंडारी देवी (मटवाड़ी), धुआँदेवी (धुआँदेवी), कमेहसर (वनवोर), भैरव, शिवजी (पंडोह), चतुर्भुजा देवी (जनेड़), गुग्गा (धरयाणा), नैना देवी (गलू), ब्रह्मी देवी (निहणधार), देवी कालधर (बनौल), पराशर (डूहकी), हरिदेवी (धारा), देव कमलेश्वर (सारी), कागणी देवी (कागणी), दुर्गा

(बैहना), दुर्गा (भड़वास), दुर्गा (कुमी), देवसिंध (चवाड़ी), महादेव (ठागू), संतोषी माता (ठागू), शिव (नागचला), माहूनाग (गुटका), देवी मंदिर (छनवाड़ी), दुर्गा (तलमाहड़), देवमाला (मानथला), सिद्धेश्वरी (तवेला), नाग (कासला), माता मंदिर (महैड़), देव ब्रह्म (टिहरी), टकोली मंदिर (टकोली), किंगस मंदिर (किंगस), अंबिका (नाऊ), नाग (पिंउण), टुंडा देवी (मावरा), टुंडी वीर (नाऊ), पराशर (तुंधला), सुखदेव (थय), कोयला माता (भिऊली), कृष्णग्वाला देव (नागचला), गणपति (जला-थलौट), मान्ह (तुंगल), देव अग्नि पाताल (संदोआ उत्तरसाल), गोहरी देव (बथेरी), गोहरी देव (रियागड़ी), गोहरी देव (लांझणू), चंडेहिया कामेश्वर (पंडोह), चामुंडा (मोतीपुर घाट), महाकाली (बानण), टुंडीवीर (द्रंगसिरा), हनोगी माता (हनोगी), ढकाहंड देव (शाहारटी हनोगी), नार सिंह (बाँहडी), नेरी थान (मैगल), नेण तुंगा (फतेहबाहण), नैणा माता (सैण मुहल्ला मंडी), बालाकामेश्वर (बाड़ी गुमाणु), बालाकामेश्वर (सिला किपड़), बालाकामेश्वर (भौसेरी), बालाकामेश्वर (साथटी मँझवाड़), ब्रह्मा सतपाल (शिवावदार), भद्रकाली (बथेरी), देवी मड़भाखन (देऊल), मनसा देवी (गमधोल), देवी मसबाई (बनग्राम), महाकाल नैणा उग्रतारा (कठवाड़धार), महाकाली (गुदवाहणी), चामुंडा (नेर), महाकाली लंबोदरा (दुदर), महादेव (बनौल), मारकंडा (झमास), मारकंडा (थलौट), माहूनाग (नलसर), देवी मैहण (मैहण), रूहाड़ घटोत्कच (रूहाड़), लुंगार काश्मीरी (लुंगार), लोटकी वीर (रेहड़धार), वरूनाग (रेहड़धार), वैष्णोमाता (गड़ल), शकारी जोगणी (कथवाड़ी), शाकंभरी (रेहड़धार), शेषनाग (टेपर), देवी सोना सिंहासन (न्यूल), उग्रतारा नैणा देवी (नैणा देवी), देवी घड़ासनी (शिवा बदार), महाकाली (भ्राड़ी), माहूनाग (लेहड़ा), गण (माहौरी), शाटी नाग (डाहर पूँग), शिव (भंगरोटू), श्यामाकाली (गलमा), शिव मंदिर (कोटलू), गुग्गाराणा, शिव, बालासुंदरी, काली (बैहल), मुरारी देवी (बुशैहर)।

सुंदरनगर

नृसिंह, शिव मंदिर, महामाया, सूरजकुंड (सुंदरनगर), शीतला माता (डैहर), गुरुद्वारा (रोगल), शंभु महादेव मंदिर (महादेव), शीतला माता (कलौहड़), ठाकुरद्वारा (चाम्बी), भराड़ी देवी (भराड़ी), जयदेवी (जयदेवी), शिव (लैहड़), कामरूनाग (पोड़ा कोठी), शिव (बड़ोही), भराड़ी देवी (घायणु), बाड़ादेव (नालनी), शिवजी (अलसू), शिवजी (माँगू), बाड़ा देव (बाढ़ू), देवी दुर्गा (कुमहारू), देवी मंदिर (बोई), माहू नाग (तरौर), हाटेश्वरी (हटगढ़), कोयला भगवती (राजगढ़), चामुंडा (चैलचौक), शीतला माता (कलौहड), शिव मंदिर (पुहंग), गोपाल मंदिर (भोजपुर), लक्ष्मीनारायण (सुंदरनगर कॉलोनी)।

चच्योट

छतरी महादेव (छतरी), भराड़ी देवी (भराड़ी), श्री देवीहेमा (चुराह), देवी चलासन (दयोल), देवी कश्मीरी (मझौठी, दयोल), भरोही देव (बुराटा), देवी धरोट (धरोट), चाहड़ देव (चाहड़), समाटी नाग (चेत), भगारी नाग (चेत), अंबिका (थाटा), महाकाली (काँडी), मारकंडा (मुराह), देव छाजणू (बौंछड़ी), देवी कश्मीरी (कुकलाह), सत्यनारायण (चोहड़ी

भटवाड़ा), भगवती (मुरहुआ), टोन मराड़ी (चुलला), त्रिवेणी मंदिर (घटौड़), शारदा देवी (सिमरू), बाबा मंदिर (बराली), देवी मंदिर (रैंस), मँगरौली मंदिर (कफ्लौन), रोपा मंदिर (रोपाकोट), देव छमाहू (खणी), मारकंडा (डीडर), माहू नाग (चच्योट), लक्ष्मीनारायण (खुहण), देव पुंडरीक (पंजाई), बद्रीनारायण (चौहड़ी), पंजवाला देव (सलगाड़), देव गरहल, (शराची), गणेश (साऊला), देव मतलोदा (कुलथणी), अंबिका (थाच), जाल्पा देवी (गाड़ा गुसैणी), हेतरा झमासी (गाड़ा गुसैणी), सुराह मंदिर, मंदिर जयदेव, मुरली वाला (सुराह), तांदी (तांदी), कामेश्वर मंदिर (तांदी), सरोहा मंदिर (सरोहा), संयाज मंदिर (संयाज), मलौरु मंदिर (वानासेर), देवधार (अलाह), कलासू देव (बाड़ा), बालाकामेश्वर (बाड़ा), दुर्गामाता (मोहर), बनपूरी देवी (बनपूर), देवी जोगणी (कलाहणी), विष्णु (चौहट), चामुंडा देवी (नाओ ग्राम), माहूनाग (ढगवाहण), कमरूनाग (गोहलन), महासू देवता (कुटाहची), कन्हासन (कुटाहची), महादेव (बिठरी), दैवी धमासन (धमासन), देवी पंडार (पंडार), महासू (वरनोग), शिवजी (झुंगी), महादेव (मन्योग), महासू दूवता (महासू), कुमारूनाग (दाड़ी), देवी कन्हैयी (कूट), देव मंदिर (गणू), बालाकामेश्वर (टुगराशन), कामरूनाग (लोराखर), देवी मंदिर (देवी धार), देव महासू (भूंडल), देव महासू (सेरकलाँ), देव महासू (बरमुंडा), शिवजी (गोहर), देवी (दैलग टिकरी), बालाकामेश्वर (काशन, चकडयाला), लंबोदरी (दलीनु), देवी (सैंज), शिकारी (पखरैर), कामेश्वर (रैनगलू), दुर्गा (रैनगलू), सोमानाग (कुटैहड़), सोमानाग (झमाय), देवनारायण (केथूली), महामाया (निहरा बेजो), शिकारी देवी (जनेहड़ा), देव टुगाड़ी (धारी), देव टुगाड़ी (हलीण), देवनाग (ढलयाल), शिवशंकर (सनेई), देवनाग (पनाहर), देवनारायण (सेरी), श्री देवनाग (जंगल चपलांद), अंबिका (नारायण बाण), जालपू (नीरूगढ़), कोहलू देव (बागी), देव छनैल (सरोआ), जमलू (नीरू), लक्ष्मीनारायण, जमलू (खुहण), माहूनाग, धिराक्ष (मौवीसेरी), धराक्ष (मौनी सेगली), शिव (कुठेहड़), बाला कामेश्वर (धनेसर गढ़), महाकाली (पंगलिऊर), चतुर्भुजा (तरौर), शाटी नाग (लोट), सुमुनाग (करठाण), सिमस माता (सिमस), भीमाकाली (डडोह)।

जोगेन्द्र नगर

सिमसा देवी (सिमस), सेठी मंदिर (बनांदर), नूगल (गवाईला), महेश्वरी (ऐहजू), शीतला माता (दलैड़), माहूनाग (तरयाम्ली), तरवीणी मंदिर (छड़ौढ), चतुर्भुजा देवी (लड़वाग उपरली), बालकरूपी (बालकरूपी), सनातन धर्म मंदिर (जोगेन्द्रनगर), महाचंद्रनाथ (चलारहग), भगवती (भराड़ू), शिवजी (शानन), देवनारायण (कुम्हारड़ा), लखदाता (कुफरी), ब्रह्मपालदेव (मगलान), महादेव (सिलीखड), जालपा देवी (जालपा), गोहरी देऊ (गलू), देवी फुंगणी (वनओड़), पाशाकोट (मढ़ी वजगान), शिव मंदिर (गुफा), दुर्गादेवी (गुफा), शीतला देवी (घटासणी), शीतला देवी (रोपाधार), कढोनी नारायण (घटासणी), गोहरी डंक (सरोणी देवी), चामुंडा (मसरेन), दुर्गामाता (रोपधर), भगवती वज्रेश्वरी (चौंतड़ा), भगवती (वाग), बालकरूपी (गरोड़ू), शीतला माता (चवेड़ा), गुरुद्वारा (पगथतन), बेबला (बेबला), देव पांडाल (रोपा), जाल्पा देवी (सरौण), शिवजी (कटीपीर), गुरुद्वारा (बल्ह), देवनारायण

(शिल्ह), देवनारायण (फरेठ), शीतला देवी (कधार), हरिमाता (सटी), पाशाकोट (चेलिंग), लचकंठी (लपेश), पाशाकोट (बरोट), हुरंग नारायण (हुरंग), आदिब्रह्मा (टिहरी), कमरूनाग (कंढी), काँढी कामेश्वर (काँढी), नागणु (खणी), घड़ौली नारायण (हुरंग), फुगणी (रूलंग), भगती नौणी (शंमालग), गाहरी (तरैला), गाहरी, भद्रकाली (बथेटी)।

करसोग

ममलेश्वर महादेव (ममेल), कामाक्षा देवी (काओ), महादेव (कांडी), देवी मंदिर (दवारलू), मूलमाहू नाग (बखारी), काली मंदिर (चिरल), गौरीशंकर (सौंठ), माहू नाग (खूनगराओली), माहु नाग (शैंधन, कोट, खील), देवी मंदिर (चिंडी), दुर्गा (चिंडी), विमली देवी (शखा), माहूनाग (शिरघल), शिव (ऐंधन बंथल), नाग (बजारना), नाग (कछाहम), शिव (पाँगणा), शिव (धाड कन्याना), नाग (पाली), शिवशंकर (मैहम), देवी मंदिर (बखरोट), देवी मंदिर (नरठीधार), नाग (सुमा कोठी), दुर्गा (पाँगणा), हत्या देवी (पाँगणा), देव मंदिर (बगर), मंदिर (कनैरी), माहूनाग (खीलना), काली देवी (टिक्कर), महासू (सरेच), काश्नाग (बलिठड़ी), जरली देवी, नाग (कोट), शिव मंदिर (कोट), बड़योगी (बड़योग), नृसिंह, ठाकुरद्वारा (ततापाणी), देव मंदिर (तलैहन), माहूनाग (भरोला), नाग मंदिर (काश्मीर), नारसिंग, दुर्गानाग मंदिर (चुराग), माहू नाग (वाड़कुफरी), माहू नाग (परलोग), माहू नाग (टकरोल), नाग (कुंडू), बाह्णूनाग (बाह्णू), नाग (खन्यारी), नाग महासू (बखरास), माता मंदिर (चमरैहण), शिवजी (बरल), शिवजी (खड़कन), श्री नाग (पखरूंडा), नाग (मुरठ), नाग (सेरी), माहूनाग (पिछला चैंरा), बड़्नाग (खरयाली), शिवजी (कदेहड़ा), बड़्नाग (शाहोट), नाग (डटेटा), नाग (भमाला), नाग (धूमन), नाग (टकरोला), नाग (मोहवा), कामरू नाग (रूहांडा), थनाली देव (थनाली), नारायण (बैऊड़), शिकारी देवी (शिकारी), नाग धमून (सेरी बँगलो), लक्ष्मीनारायण (तत्ता पाणी), नाग शनानी (शनान), शिव मंदिर (अशनी), राधाकृष्ण (अलसिंडी)।

सरकाघाट

नौबाही देवी, दुर्गा (नबाही), नैना देवी (डबरोग), शीतला माता, गुग्गा (चंदेश), माहूनाग (समाहल), रामचंद्र (रखोटा), लक्ष्मीनारायण, शीतला माता (पिंगला), गुरुद्वारा (करनोल), नैनादेवी, नारसिंह (कल्वाहण), देव मंदिर (बादल ब्राह्मणा), कालीमाता (रयूर), देव मंदिर (गयूण), मुराजदेवी (धलयात), ठाकुरद्वारा (भतौली), शिवालय (समैला), सैला देवी (समैला), श्यामाकाली (मठ), चिंतपूर्णी (कैहरी), दुर्गा (वाड़ी), देवी मंदिर (बरोट), शीतला माता (बरोट), जाल्पा (तूँगवना हलड़ा), लखदाता (कलथर), शिवजी (वस्वाना), काली देवी, शीतला देवी (खुड़ला), शीतला देवी (छनेहड़), मुड़खर देवी (कोठी), दुर्गा (भदरेहड़), दुर्गा (नलयाणा), दुर्गा (टिक्कर), बाबा मंदिर (बाग), देवी मंदिर (संदोह), देव मंदिर (घलायत), देव मंदिर (बनेहरड़ी), नैना देवी (चलहोड़), नैना देवी (चन्होली), दुर्गा माता (रखोह), दुर्गा माता (तताहर), गुरुद्वारा (पैहलबाण उपरला), दुर्गा (ठाणा), काली

मंदिर (पैहलबाण बुहला), दुर्गा (बड़ोई), दुर्गा (सिहारल), राधाकृष्ण (भाम्बला), बालकनाथ (रटोली), माता मंदिर (भरनाल), शिवजी (बताही), दुर्गा (कोटा), देवमंदिर (सुंदल), देव मंदिर (कमारहड़ा), मंदिर (कुलाहण), देवी मंदिर (पुतली फाल्ड), कंचनापुरी माता मंदिर (घरवासड़ा), शिव (भैरों), दियोटसिद्ध (झरेड़ा), देव बराड़ता (बराड़ता), बाबा कमलाह (कमलाह गढ़), सकरैणी देवी (सकरैणी), शिवमठ (धर्मपुर), शिव मंदिर (सिद्धपूर), जाल्पा देवी (सिद्धपुर व सक्रैष), बालकरूपी (धवाला), गुग्गा (छलारा), गुरु नानक मंदिर (छलारा), बड़कारा देवी (कोठूका), दुर्गा (द्रमण), देवी मंदिर (उरना), नाग मंदिर (उरना), गुणा (फाल्ड ब्राह्मण), जाल्पा (फाल्ड ब्राह्मण), काली माता (लुकाणू), शिवजी (सरकाघाट), दुर्गा (हवाणी), शिव (गौहरा), संतोषी माता (गोभड़ता), दुर्गा (हंसाल), लखदाता (डोह), देव मंदिर (धनालग), देवी मंदिर (कून), देवी मंदिर (देवगढ़), दुर्गा (दयोल), गुग्गा (नेरी), दुर्गा (जमूला), आशापुरी (गोटट), टौणी देवी (दुलैरा), बाबासिद्ध (कडरोह), बाबासिद्ध (लडोल), दुर्गा (स्योह), शिव (कांगड़ा), दुर्गा (बलद्वाड़ा), लखदाता (मरोखर), शिव (लोहारड़ा), माहु नाग (पट्टा), शिव मंदिर (सरकाघाट), सरस्वती माता (बनेरठी), महाकालेश्वर, चिंतपूर्णी (सुखर)।

जिला काँगड़ा

पालमपुर

राधाकृष्ण, शीतला, गुरुद्वारा, चर्च, मुरली मनोहर (पालमपुर), श्री रघुनाथ, घुग्घरेश्वर महादेव, काली मंदिर (घुग्घर), शिवालय (परौर), शिव मंदिर (धनेटा), संतोषी माता (घुग्घर), ब्रह्मचारी (रोडी), शम्भु महादेव (बलोटा), बरागलोप (बरागलोप), मध्येश्वर महादेव, हटलेश्वर महादेव (सलोह), गुग्गा चौहान (सलोह), चिपला देवी (सलौह), मनसा देवी, मुरली मनोहर (अरला), केदारनाथ (नैरा), मुरलीमनोहर (गढ़ जमूला), शिवजी (बमथाल), शिवजी (नरो), शिवजी (गढ़जमूला भरूँ), बाबा सिद्धरूपी मंदिर, सिंधु (गढ़ जमूला), लक्ष्मीनारायण, बाबा सुंदरी देवी, भद्रकाली (गढ़जमूला), महादेव (बगोड़ा) लक्ष्मीनारायण, महालक्ष्मी, महादेव (मैंहजा बुहराला), लालूजनी (लाहला), महादेव (दराटी), महादेव (मढ़ी), चामुंडा (चचियाँ), राजा भरथरी (नगरी), इंद्रुनाग (कलूंड), मणिमहेश (राख), माता भ्राड़ी (कथैना), मंदिर माता (थलां बराला), भ्राड़ी देवी (कंडी), विंधवासिनी (बंदला), अग्निमाता (डूहक), दुर्गा (भुटपलम), महादेव (समूला), महावीर (पुंदर), शिवजी (देहन), देवी (देहन बाग), महावीर, ज्वाला मंदिर (वनघियार), राधाकृष्ण (भवारना), भीखाशाह (भवारना), सीताराम (भाटी खास), महामाई (थहलेड़ भवारना), कसैना महादेव (ननाओंपट), प्रियम्बिका माता (देवी), शिवजी, लक्ष्मीनारायण (डरोह खास), सीताराम (इतकी), भैरव (माहण वूतली), शिवजी, गौरीशंकर (पुड़वा टीका), महादेव, गुग्गा (धारी बलौरी), झुंगा देवी (धीरा भदरोल), गुग्गा (काहनफट), देव मंदिर

(मठेड़ा), कन्यादेवी (गूजरा), माता मंदिर महादेव (पछेड़), ज्वाला जी (ठेहड़ा), लक्ष्मीनारायण, राधाकृष्ण, समाधि मनीराम, मजार बाबा शाहमस्त अली, नीलकंठ, जानकीनाथ (जयसिंह पुर), सीताराम (विद्यापुर), लक्ष्मीनारायण, काली माता (आलमपुर), बाबा बालकरूपी (बालकरूपी), सुरजकुंड मंदिर (कोना), भूतनाथ काली माता (सकोह), जाल्पा देवी (संधोल), नर्वदेश्वर महादेव (काथला), अष्टभुजा (हारसी), शिवजी (लंबा गाँव), महादेव (वजुरी टीका), लक्ष्मीनारायण (बीड़), देव अफापात्र, कृपा सुंदरी, शिवजी (बीड़), देव गोहरी (टीका नेर), आजियापाल (कोहड़), आशापुरी (आशापुरी), सीताराम (बीजापुर), सिमसा देवी (महाल नागवन), कदारा महादेव (पटाहन खलियाणा), मुकुटनाथ मंदिर (संसाल), राधाकृष्ण (सगूर चौहर), बालकरूपी (कोठी), पलीकेश्वर (मेढ़ा झिकली), बाबा बालकनाथ (सकड़ी), लक्ष्मीनारायण (सकड़ी), शिव मंदिर, तारणी देवी, शीतला देवी, महाकाली (बैजनाथ), राधाकृष्ण, धलोली देवी (कड़वाड़ी टीका), इंद्रु नाग (गोरट), मुकुटनाथ महादेव (बाग), दुर्गा (घोर पीठ), भगवती मंदिर (सुंगल खास), महादेव (बाथन), देवी शारदा (चौकी), चामुंडा (भसमेढ़), दुर्गा, शिव (मेंहजा बुरहला), महादेव (बोहरकर), दुर्गा (कुरनाग), शीतला माता (उस्तेढ़), कुंजेश्वर मंदिर (पंतेहड़), महाकाल (महाकाल), ततवाणी (ततवाणी), सेंटपाल चर्च (पालमपुर), बौद्ध मंदिर (बीड़), कृपा सुंदरी (बीड़), चामुंडा (जदरांगल), शीतला देवी (पालमपुर), नागमंदिर (नगूली), हनुमान, चामुंडा (बैजनाथ खास), महावीर, शिव, अग्निमंदिर, कृपा सुंदरी (बीड़), शिव, सत्यनारायण, बाबा ज्ञानदास, बालकरूपी (पयरोला), महेश्वरी (एहजू,), भूतेश्वर (मोहनघाटी), नागणी (कंडी), इंद्रुनाग (हंगलोह), गुप्तेश्वर महादेव (कानासुआँ), राधेश्याम, शिव मंदिर (टिक्करी), कालीनाथ महादेव (धीरा), पिंडेश्वरी देवी (नौरा), शंभू (बलौटा), नागणी देवी (मूँहडी), दुर्गा, शिव मंदिर (गग्गल), गुग्गा (काहनफट), भेड़ू महादेव (भरहूँ), राम मंदिर (खैरू), भीखाशाह (बारी), बाबा सिद्धरूपी (सुलह), माता भयभुँजनी (आलमपुर), वटिनी देवी, शिव (हार), विंध्यवासिनी (बंदला), मछिंद्रनाथ (अन्द्रेटा), महादेव, चामुंडा (टांडा), छत्तेश्वर महादेव (बनूरी), गौरीशंकर (चंदरोणा), नीलकंठ (पठियारखर), नर्वदेश्वर (धुमण), गायत्री (थुरल), राधाकृष्ण, शिव, दुर्गा (गढ़ जमूला), केदारा महादेव (केदारा), नागा बाबा गुफा, शिवद्वाला (ढंढोल), घुग्घरेश्वर महादेव (घुग्घर), महादेव, ठाकुरद्वारा (पैहंजा), शिव मंदिर (भौरा), शिव मंदिर (शिवनगर), जगन्नाथ (इलायची बारू), लक्ष्मीनारायण, सिरसा माता, ढेहरी महादेवी, शीतला माता, दुर्गा माता (डरोह), त्र्यम्बकेश्वर महादेव, राजा भरथरी (दराटी), इंद्रुनाग (रजेहड़), हनुमान मंदिर (मारंडा), शिव मंदिर (फरेढ़)।

काँगड़ा

वज्रेश्वरी (काँगड़ा), वीरभद्र मंदिर, गुप्तगंगा, अच्छरा कुंड, सूर्य कुंड, लक्ष्मीनारायण, बालकनाथ, शिव, भैरों, जैन मंदिर, चर्च (काँगड़ा), बाबा बड़ोह, राधाकृष्ण, काली (बडोह), बाबा दियोठ (कटवाल लाहड़), लखदाता (बाग), बाबा फत्तू (रानीताल), बाबा नानक (मूमता वंडी), कछरेहड़ मंदिर (मूमता), नर्वदेश्वर महादेव (धर्मगोरी), लक्ष्मीकांता (कस्बा), हनुमान (लिदबड़), धुलाई माता (धुलाई), लक्ष्मीनारायण (नगरोटा), शिवजी (ततवाणी),

रामेश्वर महादेव (डललेक), द्वैश्वर महादेव (डल), कुनाल पत्थरी (धर्मशाला), सनातन धर्म मंदिर (धर्मशाला), महाकाली मंदिर (कोतवाली धर्मशाला), भागसू नाग (भागसू नाग), शिव मंदिर (भागसू नाग), बौद्ध मठ (पखलोटगंज), राधाकृष्ण, नरसिंह, शिव, सत्यनारायण, शिव (रेहलू), शिव, हरिओम तत्सत् (सकोऊ), महामाया (गोजराड़ी), देवी महल (बौटू सारना), लक्ष्मीनारायण, महाराज मंदिर (भनाला), देव मंदिर, शिवजी (भनाला गारेड़ा), लक्ष्मीनारायण (भनाला गारेड़ा), टहल पति (पतीणा टहल), मुरली मनोहर, नारसिंह (टीका थाड़ा), ठाकुरद्वारा (लठयाणा), शिवदुआला (बसनूर खास), रामेश्वर महादेव (शाहपुर), ठाकुरद्वारा (धारकलाँ), गौरीशंकर, लक्ष्मीनारायण, बाबा शोभानाथ (चड़ी), शिवजी (डुढंब खास), शिवजी (परई), देवी (योल), राजा रायसिंह (नेरटी), नार सिंह, माता मंदिर (नेरटी), लक्ष्मीनारायण (कस्बा), मुरलीमनोहर (घरोड़), काली (कलेड़ा), मुरलीमनोहर (कोहला), महादेव (कलेड़ा), सीताराम (लंजटीका), गणेश्वर महादेव, नारसिंह, इंद्रु नाग, सती माता (घन्यारा), चंडेई माता (सिद्धपुर), भ्राड़ीमाता (दाड़ी), चामुंडा, नंदीकेश्वर (चामुंडा), महादेव (जेटहड़), अंजनी माता (टीका अंजनी), नैना देवी (घलू चकवन), राधाकृष्ण (गिश्तवाड़), शिव (सदरपुर), शिव (रजयाना), राधाकृष्ण (लहसर), हनुमान (चटेहड़), शीतला (बनी), सिद्धमोरियाँ (सिद्धबाड़ी), महादेव (बनी), महादेव (नरवाना), शिव (नरवाना), भोलेनाथ (किला नंदरूल), राधाकृष्ण (किला नंदरूल), कालीमाता (चकलू शमीरपुर), देवी (नंदरूल), भैरों समाधि (जोगीपुरा), गंगभैरव (अनसोली), शिव दुआला (ईच्छी), काली भैरों (टीका वहूलर), जयंती देवी (कोट काँगड़ा धार), अंबिका देवी, जैन मंदिर (कोट काँगड़ा), भद्रकाली (समीरपुर), नौण, लक्ष्मीनारायण शिव, महलाँवाली माता, राधाकृष्ण, गुरुद्वारा, हनुमान, शिव मंदिर (ज्वाली), भूतनाथ, काली मंदिर (सकोह), बगलामुखी (वनखंडी, कोटला दुर्ग), शिव मंदिर (कोटला), गुरुद्वारा, मुरलीमनोहर, मंगला माता, मस्जिद (त्रिलोकपुर), बाला देवी (हरसर), गणेश, चामुंडा (कोटला), शिव, विश्वकर्मा (कुठेड़), ठाकुरद्वारा (धारखास), बाग दयालगिरी (दौलतपुर), लखदाता पीर (दौलतपुर), बाबा फनू (मोरठ), शीतला माता (रानीताल), हनुमान, शारदा मंदिर (नगरोटा बगवाँ), सलोआ महादेव (समलोटी), हनुमान मंदिर (पुराना काँगड़ा), महादेव (डुगियारी), दुर्गा माता (समेला), शिव मंदिर (कछियारी), शिव मंदिर (ठानपुरी), बाबा प्रेमदास (सदरपुर), हरिकृण मंदिर (रजियाणा), संतोषी माता मंदिर, दत्तात्रेय, लक्ष्मीनारायण (नगरोटा बगवाँ), शिव मंदिर, ठाकुरद्वारा (भनाला), लक्ष्मीनारायण (रैत), शिव, हनुमान (सारनू), शिव मंदिर (शाहपुर), शिव मंदिर (प्रेई), शिव मंदिर (दरगेला), शिव मंदिर (ढलियारा), सिद्धेश्वर महादेव गुफा (संद्रू), श्रीराम गोपाल, दुर्गा मंदिर (डयराल), शिव मंदिर (काठगढ़), शीतला माता, शिव, गुरु रविदास, विश्वकर्मा, राधाकृष्ण, हनुमान मंदिर (इंदौरा), दुर्गा (दरियाड़ी), शिव, पंचवीर (घडराँ), मस्जिद (इंदौरा), नरसिंह (फतेहपुर), पीर गुजरेडा (रे), खोड माता (खोड़), लक्ष्मीनारायण (समकड़), मंजरेश्वरी (चोहला), इंद्रु नाग (टाऊ), बूहड़ नाग (कंड), अधंजर महादेव (खनियारा), राधाकृष्ण (टंग)।

देहरा

ठाकुरद्वारा, कांजू वीर, ललिता मंदिर (देहरा), अष्टभुजा (बोहण), संतोषी माता, शीतला, रामचंद्र, शिव (हरिपुर), ठाकुरद्वारा बद्रीविशाल (नगरोटा), कश महादेव, सत्यनारायण, दमनदोष मंदिर, कल्याणराय मंदिर (हरिपुर), ठाकुर बद्रीप्रसाद (बाथू), बलसादेवी, ठाकुर सीताराम (देवस्थान), शिवजी (मेहरारा), काशव महादेव (नरहाना), बगलामुखी (तताहयाँ कलाँ), बाका बग्गी साहब (पंजबड़), ठाकुरद्वारा, लक्ष्मी, सत्यनारायण (कथेड़), नार सिंह (बाड़ी खास), महाकाली (धमेटा), राधेश्याम (धमेटा), राधाकृष्ण (देहरा), अन्नपूर्णा (देहरा), ज्वालामुखी (ज्वालामुखी), मुरली मनोहर, अम्बोकेसर, सिद्ध अर्जुन, गोरख डिब्बी, टेढ़ा मंदिर (ज्वालामुखी), लक्ष्मीनारायण (टीका डिंया पपलोअर), गुरुद्वारा बाबा सुखिया (पपलोअर), गुग्गा (तयामल), बाबा जगो (स्वाना), लक्ष्मीनारायण (चनौर), बाबा फत्तू (चनौर), शिवजी (मौजा कोटाला), सिद्ध चानो (टीका डाँगड़ा), महादेव (टीका कोलापुर), नार सिंह (सनेहत), मच्छ कुंड महादेव (नंगल), कालेश्वर महादेव (कालेश्वर), मुरली मनोहर, पीर सलूही (पीर सलूही), सानवली देवी (बड़ा), शिवद्वार (हार), नार सिंह, ठाकुरद्वारा (रकड़), शिवजी, राधाकृष्ण (डाडा खास), कालीनाथ (कठयाड़ा), राधाकृष्ण (बलाह), शिवजी (नलेटी), शिव मंदिर (सौंत), राधाकृष्ण (प्रागपुर), शिव (छड़ोला), शिव (सूरज), बगलामुखी (भाटी), शीतला (गुलेर)।

नूरपुर

बगलामुखी, महावीर (लुटेहड़), ठाकुरद्वारा (वनखंडी), शिवजी (धनड़रा), रामगोपाल जी (डमटाल), शिवजी (लोधग), राधाकृष्ण (ठाकुरद्वारा), राधाकृष्ण (इंदौर), ठाकुर (खेड़र), राधाकृष्ण (गंगथ), बाबा केलू (गंगय), नार सिंह (कुलाड़ा), रघुनाथ मंदिर, माता नागनी (कुलाड़ा), महादेव, मदनमोहन, राजा स्वामी, राधाकृष्ण, चामुंडा, मच्छी भवन, महावीर स्वामी (सुलयाली), मंदिर ठाकुरान, नार सिंह (सजवाँ), मंदिर धर्मशाला (डियूठी), शिवदुआला, शिवजी, राधाकृष्ण, राम लक्ष्मण, बाबा सिंह (रैहन), शिवजी (रौड़), ठाकुर (लरहूँ), चंडी दुर्गा (हौरीदेवी), बाला देवी (हटसर), मुरली मनोहर (हरनोटा), जाल्पा (जवाली), राधाकृष्ण, लक्ष्मीनारायण वंशीवाला (ज्वाली), ठाकुरद्वारा, सिद्ध, नारसिंह (अगर), ठाकुरद्वारा, शिवजी, नार सिंह, सिद्ध (रे), धौली देवी (भटोली समयाला), ठाकुरद्वारा, नार सिंह (फतेहपुर), शिबोथान (भरमाड़ खास), शिवजी (छगोली), दुर्गा (जसूर), शिवजी (मठोली), शिवजी (नागाबाड़ी), त्रिलोकीनाथ (मैहरका), मुरली मनोहर (खुखेड़), शिवजी (ममुगुर चाल), राधाकृष्ण, पंजपीर (बरंडा), कल्याणराय (खजान), शिवजी, काली (बरेट), शिवजी (बड़खर), शिवजी (नवाँशहर), शिवजी (कीम्मण), शिवजी (काठगढ़), राधाकृष्ण मंदिर (नूरपुर किला), हरिदेवी (बगरोली), धौली देवी (धौलपुर), शिव मंदिर (देहरी), शिव मंदिर (गारन, तलाड़ा, झाझवाँ), अम्बिका (बाड़ी खड्ड), शिव (लोदवाँ), ठाकुरद्वारा (डैकवाँ), नागणी माता (कंडवाल, घड़ोली), बृजराज स्वामी व मीरा मंदिर (नूरपुर), सत्यनारायण, शिव, चामुंडा (नूरपुर)।

जिला हमीरपुर

हमीरपुर

शिव मंदिर, गुग्गा मंदिर (धनेटा), शिवजी (कमलाह), शीतला माता (बाग), गुरुद्वारा (साइला), राधाकृष्ण (सेर उपरला), गुरुद्वारा (सराय), पीर सलूही (सलूही), त्रिलोकेश्वर (चडहूँ), गुरुद्वारा (कोट), जयश्री देवी (कोट), शिवजी (कोहला खास), सिद्ध (रकड़), मीरदास (गलोल), सिद्ध, शिवजी (करौर), गुग्गा (घलूँ), शिवजी (कोटला), सिद्ध (महतयाल), रघुनाथ जी (नौहंगी), श्रीकृष्ण (नौहंगी), जीन (जीन), शिवजी (लम्बोट), गुग्गा (जंगल), शिवजी, गुग्गा (साहों), राधाकृष्ण (डनोहल), शिवजी (धुमारटा), गुग्गा (कुठियारा), शिवालय (सेरी), कृष्ण मंदिर (सेरी), कृष्ण मंदिर (सेरी), मंदिर (गदयाड़ा), राधाकृष्ण (मालग), मुरली मनोहर (सदवाण), शिव (डगवाड़), शीतला माता (हार), पथोली देवी (बटाहरली झिकली), दुर्गा भगवती (खुपड़ी), शिवलिंग (लठवाण), शिवलिंग (लहरौर खुर्द), अवाह देवी (बगवाड़ा), शिवजी (समीरपुर), शिवजी (गुगैहड़ी), राधाकृष्ण (महल), सीताराम (छाओ), किलजड़ी देवी (सराहकड़), सत्यनारायण (गौड़ा कलाँ), शिवजी (गौड़ा कलाँ), महादेव (ककड़ियार), शिवजी (बैरी), शिवजी (मझोग खास), शारदा देवी (बलोखरा), शारदा देवी (भलवाणी), बाबा सिद्ध स्वरूप, काली माता, दुर्गा माता, मुरली मनोहर, शिवजी, नर्वदेश्वर, बजरंग बली, शिवजी (सुजानपुर), गौरीशंकर, चामुंडा, रामचंद्र (सुजानपुर टिहरा), शिवजी (चबूतरा), गुरुद्वारा (कोहलाँ खास), श्री सत्यनारायण, शिवजी, संतोषी माता (हमीरपुर), गोसाईं महादेव, श्रीकृष्ण (नादौन), पीरथान (भरमोटी), गुरुद्वारा (नादौन), गुरुद्वारा (थान), कुलगा मंदिर (झिरालड़ी), मट्टन सिद्ध (मट्टन सिद्ध), शिव मंदिर (सिद्धपुर), गुग्गा (जलाड़ी), दियोरसिद्ध (बसाल), शिवजी (खलासी), गुग्गा (संघोल), गुग्गा (डंडाह), रघुनाथ (सराड़), गुग्गा (स्वाल), दुर्गा मंदिर (सेरा), झनियारी माता (झनियारी), शिवालय (झनियारी), संकटमोचन (भलेठ), शिव मंदिर (पट्टा)।

बड़सर

बाबा बालकनाथ (चकमोह), श्रीरामचंद्र (नेरी), देवी मंदिर (धारा), सेनभगत मंदिर (बड़सर), शिवालय (बड़सर), बालकरूपी (चम्बेई), शिव (हार), कालका माता (टिक्कर राजपूताँ), राधेरमण (अघार), दुर्गा (टौन भराड़ी), लुट्टा महादेव (भजला), शीतला माता (बैहन), शीतला माता (कपोटी), शिवजी (सौटा), प० ब्रह्मानंद, सतनारायण (सौर), शिवलिंग (पट्टा), दुर्गा (पाड़ी), ठाकुरद्वारा (उखली), दुर्गा (उखली), शिवजी (पपलाह), शिवजी (भलवानी), शिवजी (बारीं), राधाकृष्ण (जाहु), देव मंदिर (जाहु), शिरडी मंदिर (शिरडी), शिवजी (पपलोहल), शीतला माता (महारल), शिवजी (बिझड़ी), शिव मंदिर (डुगाड़), दुर्गा माता (सोहारी), शिव मंदिर (सिद्धपुर), श्रीकृष्ण (पाहलू), जयौली देवी (ज्यौली), विद्धचानो (समैला), दुर्गा (भोटा)।

कुछ अन्य मंदिर

शिव मंदिर (बड़ा), पीर (भरमौटी), भौंदूशाह (सड़ा), धौलासिद्ध (जीहण), गुग्गा मंदिर (गलोड़), संतोषी माता (लदरौर), शिव मंदिर (पट्टा, समीरपुर, गुगहेड़ा, जाहु, लुदर), राधाकृष्ण (पैहल), शीतला माता (ताल), टौणी देवी (टौणी), शनि देव (सरली), शिव मंदिर (सलसी), बालकरूपी, लखदाता (दरकोटी), शिव मंदिर (धनेटा)।

जिला ऊना

ऊना

महादेव, शिव, गुरुद्वारा (सलोह), गुग्गा, लक्ष्मी मंदिर, बालकनाथ (जटोली), सत्यनारायण, दुर्गा (ऊना), शिवजी (टक्का), भराड़ी देवी (रामसरी), बाबा लुट्टानंद (नारी), ठाकुरद्वारा (नारी), देवी मंदिर, नार सिंह (पनोह), शिवजी (भलौला), समाहा नाग (गागर), बाबा समाधि (पंजावर), शिवजी, (पंजावर), पीरनगाह (बसौली), महादेव, समाधि बाबा, ठाकुरद्वारा (चताड़ा), ठाकुरद्वारा, शिवजी, श्रीकृष्ण, बाबा भर्तृहरि (ईसपुर), श्री कृष्ण गुरुद्वारा (मदसाल), ठाकुरद्वारा (मरसाली), शिवाला (पंडोगा), शिवजी (तलाई) राधाकृष्ण, शिव मंदिर (रायपुर), ठाकुरद्वारा (परोदियाँ), भैरवी देवी (बड़ौर), शिवजी पंजपीरी (सुहाटी), मड़गुग्गा (बड़्हा), मड़गुग्गा (चौली), मड़गुग्गा (चौली, टकोली), पंजपीरी (टकोली), झाँवा मंदिर (टकोली), ठाकुरद्वारा (थाना कलाँ), राधाकृष्ण (थाला खुर्द), बाबा बालकनाथ (हरोली), राधाकृष्ण, गुग्गा जाहरवीर (हरोली), शिवजी (रायपुर), सनातन धर्म मंदिर (सैंसोकला), शिवजी (गोंदपुरा), शिवजी (कोटला खुर्द), जोगीपंगा मंदिर (जोगीपंगा), ठाकुरद्वारा (समूरकलाँ), दुर्गा (धनेल), सिद्ध (हरोट), सिद्ध (काँठी), सत्यनारायण (झगरोठ), सिद्ध (बट्ही), ठाकुरद्वारा, जमासनी देवी (कोटला), लक्ष्मीनारायण, शिवजी, अनुभुज माता (चौकी), ठाकुरद्वारा, शिवजी (बसाल), गुग्गा (अलसान), पिपलू मंदिर (जगरोट), शिवजी (लठियानी), पंजीर (घट्टी), शिवजी (बहल), शिवजी (डुग उपरला), सिद्ध (जरबोला), देवी मंदिर (नरहू), सिद्ध (सोहरला), सिद्ध चानण (बराहना), गुरुद्वारा (नगनौली), गुरुद्वारा (भदसाली), गुरुद्वारा बाबा साहिब (ऊना), डेरा बाबा रूद्रु (नारी), विश्वकर्मा (संतोखगढ़), महादेव (सलोह)।

अम्ब

माता चिंतपूर्णी (छपरोह), कालीमाता (बड़ोह), ठाकुरद्वारा (टुंडखरी), शिवजी, ठाकुरद्वारा, देवी (नंगल जरियाल), शीतला (वरेट), ठाकुरद्वारा (धर्मशाल), मंदिर (मरवाड़ी), अचदानंद (अनलेहड़), गुरुद्वारा (खेड़), बधयान सिंह (वधमाना), शिवाला, ठाकुरद्वारा, खानगाह (सधनेही), शिवाला (दयोली), ठाकुरद्वारा (मंजाल), गुग्गा (चकसराय), गुग्गा (कड़प),

शिवाला (मुबारकपुर), राम मंदिर (अन्दौरा), शिवजी (अम्बोटा), जगन्नाथ, मंजी साहब, गुरुद्वारा, डेरा बाबा बड़भाग सिंह (मैड़ी), ठाकुरद्वारा (बदाऊ), शिवजी (धनारी), शिवजी (डयोली), देवी (भैंरा), गुरुद्वारा (दुसाड़ा), मंदिर (चुरड़ू), बाबा रुद्रानंद (अमलैहड़), भद्रकाली माता (भद्रकाली), गुग्गा (चलेड़), शिवजी (ज्वार), गुग्गा (दगुही), बेंतीधर (मैड़ी), कमलापति (पैड़ी राजपुरा), शिवजी, देवी मंदिर (अम्ब), लोहारा मंदिर (लोहारा), गुरुद्वारा सलूरी साहिब (भैरा), बंसीधर, कमलापति (राजापुर जसवाँ), गुरुद्वारा (दौलतपुर), शिवाला, ठाकुरद्वारा (सघनेई)।

जिला बिलासपुर

बिलासपुर

ठाकुरद्वारा, शिवजी, नार सिंह (कुटैहला), लक्ष्मीनारायण (स्वारघाट), जालादेवी (भुआई), साँधा मंदिर (सिगया साँधा), श्रीनैणादेवी (नैणादेवी धार), शिवजी (श्री नैणादेवी), शिव (लखनू), शिव (टोहरा सगवाना), राधाकृष्ण (कोटखास), ठाकुरद्वारा (समतैहन), ठाकुरद्वारा (ध्याल), रामचंद्र (ध्याल), देव मंदिर (बलवाड़ा), धूनी बाबा (खोहरी), गंगागिर (खोहरी), जाल्पा देवी, शिवजी (सायर), ठाकुरद्वारा (तलवाड़), शिव (कंदरौर), ठाकुरद्वारा (बंदवाड़ा), शिवजी (बंदवाड़ा), ठाकुरद्वारा (बागी), मुरलीमनोहर (बागी), ठाकुरद्वारा, गुरुनानक (बनौला), ठाकुरद्वारा (देवली), राधाकृष्ण शिव मंदिर (पजगाँई), नैणादेवी (स्करेहड़), मारकंड (माकड़ी), ठाकुरद्वारा (धार टटोह), कृष्णावती (कठपुर), मंदिर (परनाली), लक्ष्मीनारायण (दयारा), राधाकृष्ण, ठाकुरद्वारा (धौनकोठी), बृजमोहन, ठाकुरद्वारा (लखनपुर), गुग्गा दुर्गामाता (भटेड़), देवी (सगरिठी), गोपीनाथ (करोट), नैनादेवी (डाबरा), ठाकुरद्वारा (टिकरी), राममंदिर (घयाल), शिवजी (खेड़ी चोलड़ा), काली देवी (हंबर), शिवजी, राधाकृष्ण (कोट कलहर), ठाकुरद्वारा (नकराणा), शिवजी (दली), दुर्गा मंदिर (नोग), जाल्पा देवी (जमथल), ठाकुरद्वारा (कनौण), ठाकुरद्वारा (रोपा), ठाकुरद्वारा (बगौण), ठाकुरद्वारा (गाहर), नैणादेवी (मनडोखर), नैणादेवी (चाँदपुर), शिवजी (बाड़नू), लक्ष्मीनारायण (घेरटा), नैणादेवी (चंबी), नैणादेवी (मलोखर), जाल्पादेवी (मलोथी), दुर्गा (चढ़हूँ), व्यास गुफा (बिलासपुर), रंगनाथ मंदिर (बिलासपुर), झंडा सरदार (भलवाड़), हरिदेवी (लेहरी सरेल धार), गुरुद्वारा (गुरु का लाहौर), नार सिंह (धौलरा), गुग्गा (भटेड़)।

घुमारवीं

बाबा बालकनाथ, देवस्थान ठाकुर, बाबा बालकनाथ, शिवजी, गुग्गा (चंगरतलाई), देवी मंदिर, सिद्ध मरघटी, शिवजी (नघियार), गुग्गा (भगतपुर), गुग्गा, देवी, लखराता,

ठाकुरद्वारा (अबोला), देवमंदिर (कोठी नं० 22), बालकनाथ (तलाई), काली देवी (मलारी), मंदिर खबड़ी (गंढीर), गुग्गा (वल्हसीणा), ठाकुरद्वारा, गुग्गा, बालकनाथ (भड़ोली कलाँ), गुरुद्वारा (कड़ोह), गुग्गा (कड़ोह), गुग्गा (जड़ू), देव मंदिर (लग), देव मंदिर, नार सिंह, (औहरा), देव मंदिर (कल्लर), देहरा (खेरियाँ भराड़ी), गुरुद्वारा (ढोलग चकनाड़), देवी मंदिर (ढोलग चकनाड़), गुग्गा (मलराओं), गुग्गा (पलथीं), देवी (झुंजणू), सिद्ध (कलोल), जाल्पा देवी (मझेड़), गुग्गा (मलहोट), जाल्पा (धनेड़), गुग्गा (धनेड़), शिवदयाल (धानड़), पीर (मलयार), गुग्गा (छजोटी), हनुमान (हटवाड़), शिवजी (डमैहर), नार सिंह (जजर), देव मंदिर (जजर), ठाकुरद्वारा, मुरलीमनोहर (दाड़ी भाड़ी), देवी (बड़ोल), शीतला (नागलाँ), नार सिंह (झंडूला), राधाकृष्ण (दडोला), ऋषिकेश, राधाकृष्ण (भदोहियाँ), छत्र शिवजी (छत्र), कृष्ण मंदिर, हरिदेवी (धराड़सनी), गुरुद्वारा (खुगाण), शिवजी, दुर्गा (ब्रोहा), नेरस देवी (नेरस), गुग्गा (गेहड़वीं), गुग्गा (बैरीमियाँ), साधु आश्रम, देवी मंदिर (सुनहाणी), गुरुद्वारा (हीरापुर), शिवालय (भटोली), गुग्गा (मोहड़ा), गुरुद्वारा लखमीर (खुनगाण), देवी तलाओ, नैणा देवी (तलाओ), सौनी देवी (डून), संतोषी माता (बरोटी), कुहई देवी (बरोटा), बाबा नागा हरकड़ा, गुग्गा (डीहर), गुग्गा (कसोहल), बाबा लखमीर (बेकल), गुग्गा (गलियाँ), दुर्गा, मारकंडा (माकड़ा), गुरुद्वारा (फटोह), देवी (सनौरा), शीतला (जाँगला), देव मंदिर (समलेटा), झाल मंदिर (बैरी दड़ोला), देवी भराड़ी (भराड़ी), दुर्गा मंदिर (भराड़ी), श्री चंद्र मंदिर (भुंदल), माहू नाग (परेर), देव मंदिर (भेला) नार सिंह (टटोह), दुर्गा (दामला), दुर्गा (सोई), ठाकुरद्वारा, गुग्गा (सेऊ), सिद्धू गोदड़िया (छंजयार), गुग्गा (सेट), गुग्गा (नसवान), ठाकुरद्वारा, सीताराम, शिवालय (बाड़ी मझेड़वाँ) गुग्गा (पट्टा), गुरुद्वारा (गोहंडा), मंदिर, छोटा मंदिर (घुमारवीं), गुग्गा (कल्याण), गुग्गा (भरहोल), पीर मंदिर (भरहोल), देवमंदिर (बलौट), गुग्गा (लोहारवीं), गुग्गा (बड़ोट), पीर मंदिर, गुरुद्वारा (बड़ोल), पीर मंदिर (टकरेहड़ा), ठाकुरद्वारा (नालटी), गुग्गा (बाला), गोदड़िया सिद्ध (जंगल फेटीधार), संतोषी माता (पनौता), गुरुद्वारा (घराण), सिद्ध कनेरिया (रोहेण), ठाकुरद्वारा (रोहेण), हनुमान मंदिर (हरनोग), पीरभ्यणू (हनाण), दुर्गा (भदरौणा), लखदाता (बैहल नकाण), गुरु का मंदिर, गुग्गा (तलवाण), जयश्री मंदिर (बड़गाँव), देवीस्थान (मोरसिंगी), सिद्ध कनेरिया (मुलस्वादे), गुग्गा (मुलस्वादे), गुरुद्वारा (पपरोला), बाबा कनेरिया (पपरोला), सिद्ध (चोरपण), गुग्गा (बाड़ी भरांन), कैलू मंदिर (कुलाड़ी), गुग्गा (गाहर), गुग्गा (गेहड़वीं), शिव मंदिर (बछरेटू)।

जिला सोलन

सोलन

शिवजी (सुजनी), शिवजी (पबल जमरोट), दुर्गा (कुंडलू), नाग मंदिर (जाडली), नैणा मंदिर (गमझूण), हनुमान (कनियारा), विजेश्वर (बरौरी), दुर्गा (बरौरी), शिवजी (सोलन), ठाकुरद्वारा, दुर्गा (आंजी), शिवजी (जटोली), हनुमान (बनेर की सेर), शिवजी (औछघाट), शिवजी (बनी), शूलिनी देवी (सोलन), श्री हरि मंदिर, दुर्गा, आंजी मंदिर, नृसिंह मंदिर, सनातन धर्म मंदिर (सोलन), शिव मंदिर (कोटला नाला), ठाकुरद्वारा (करोल गुफा), डयारस देवता (डयारस घाट), सीला देवता (सीला शिखर), शूलिनी (कोटकूफर), भद्रकाली (पटराड़), बाबा बालकनाथ (देछूँघाट), काली मंदिर (दोची), बिजेश्वर, ठाकुरद्वारा (सलोगड़ा), लक्ष्मीनारायण (सलोगड़ा), विष्णु मंदिर (जौणा जी), सनातन धर्म मंदिर (बौण), ठाकुरद्वारा (धार), शिव मंदिर (रगाँह), गुरुद्वारा साहिब (सजरून), हरिमंदिर (ठोडो), कोठी गुरुद्वारा (स्पाटू), ठाकुरद्वारा, देवी (बराबरी), बिजू देवता (तालड़), शिव मंदिर (धरोल)।

कंडा घाट

श्रीकृष्ण, हनुमान (नीहारा), महादेव, गुरुद्वारा (श्रीनगर), ठाकुरद्वारा (मही), ठाकुरद्वारा (सनेच), बगलामुखी, दुर्गा (ममलीग), ठाकुरद्वारा (कारगुल), लोगसन देवी (नौवग), शिवदुआला (धेबा), ठाकुरद्वारा (धेबा), जुणगा देवता (ठीकुर), शिव (खाश), निओग मंदिर (निओग), सिद्ध बाबा (चायल), सत्यनारायण (जायल), महासू (हून्नो), शिवदुआला (सकौड़), ठाकुरद्वारा (सकौड़), शिवदुआला (विनू), शिव मंदिर (आंजी), कनैहर मंदिर (कनैहर), दियनकलां (दियनकलां), देवी मैंच (मैंच), राधेश्याम (मिहानी), ठाकुरद्वारा (सुरहों), देव वज्रेश्वर (बगेटू), देवभावना (अटमनी), शिवजी (तुनदल), शिव (कोहला), नेरी (कोहला), लाहड़ी (लाहड़ी), कनहोली (कनहोली), सुनखी (सुनखी), काली देवी (सुनखी), दाँवरी (दाँवरी), कोट (कोट), सलोग (सलोग), पवाबो (पवाबो), ठाकुरद्वारा (डेरा), श्रीकृष्ण (वीशा), दुर्गा (काथली), हनुमान मंदिर (कनैट), देवी मंदिर (भनेंच), गुरुद्वारा (कयाहली), शिव मंदिर (सहोग), ज्वाला जी (धारा), ठाकुरद्वारा (नेहरा), पुजारली देवी (पंजयाली), गुरुद्वारा (चायल), सिद्धबाबा (चायल), दुर्गामाता (दंधील), शिवदवाला गुफा (गम्यरा), महेश देवता (डुनू), शिव मंदिर (धरोल), मनसा माई (जभोग), पंचमुख महादेव (सकोड़ी), हनुमान मंदिर, शिव, गुरुद्वारा (सिरीनगर), शरपाल, ग्वालटू देवी (बाजणी), काली माता (कैथली घाट), तारा, माहुनाग (रावली), राधाकृष्ण, हीरटी माता (बीशा)।

नालागढ़

शिव मंदिर, दुर्गा मंदिर, पीरथान (नालागढ़), रामेश्वर मंदिर (भट्ठा वाला), दुर्गा (मतौना खास), काली देवी (मलोण खास), गुरुद्वारा (डोली नं० तिरसठ), दुर्गा (दातला),

नैणा देवी (मितिया), सुरगद्वारी (जंगल बड़ू), ठाकुरद्वारा (रामशहर), शिवदुआला (शिमनी), काली देवी (रामपुर रिवालसर), नैणा देवी (वौह), ठाकुरद्वारा (कुंडल), राधाकृष्ण (कुंडल), शिवजी (सनेड़), सिद्ध मंदिर (सनेड़), शिवजी (नंगल), गुरुद्वारा (नंगल ढक्का), शिवालय (गजरा), शिवालय (बधेरी), शिवालय (करसीली), गुरुद्वारा (कल्याणपुर), शिवजी (हवानी), शिवालय (दमोद), शिवजी (माजरा), बाबा बालकनाथ (माजरा), देव मंदिर (जोघों), शिवजी (मेजैहर), सिद्धबाबा (उखू), शिवालय (पंगूवाल), शिवालय (अम्बवाला), राममंदिर, वाल्मीकि, शिवजी, बाबा कौलदास, शिवजी, देवी, जानकीमाई, ज्वालामुखी, तारा देवी, मूलेश्वर, आनंदभवन, कालीदेवी, शीतला माता (नालागढ़), शिवजी, श्रीराम (रंगूवाल), महावीर, पीरथान (डाडीभोला), बालकनाथ (निकूवाल), बाबासिद्ध (निकूवाल), नारसिंह (नारसिंह), गुरुद्वारा, राधाकृष्ण (पल्ली), गुग्गाभाड़ी (पल्ली), शिवजी (किशनपुर), शिवजी (धर्मपुर), जाल्पादेवी (महुआ), गुरुद्वारा (गोयला), सिद्धचलयोणी (चलयोणी), गुरुद्वारा (जामर दाड़ोरा), गुरुद्वारा (सांडी), शिवजी (चकजंगी), कृष्ण मंदिर (नवांग्रां), नारसिंह (रेखमहन्ता), दुर्गा माता (मैन कनैता), गुरुद्वारा (वेरसन), दुर्गामाता (रत्लगढ़), सिद्ध देवता (किरपालपुर), गुरुद्वारा (बौंटा), शिव मंदिर (साई), गुरुद्वारा (बेली खोल), दुर्गा (कौंडी), मनसा देवी (हरिपुर संगैली), शिवजी (आजरी), देवमंदिर, पंधाला (पंधाला), माता मित्तियाँ (मित्तियाँधार), कुलजा माता (रिवालसर), मनसा देवी (खिल्लियाँ), शिव मंदिर (बनिया), गुरुद्वारा (चिकनी खड्ड), शिवलोती मंदिर (परवाणू), काली मंदिर (क्लीन), महादेव ठेडूडा, गुरुद्वारा (हरिपुर), दुर्गा मंदिर (जाबली)।

अर्की

बाड़ादेव (कंधर), बाड़ादेव (सरयांज), बाड़ादेव (बुईला), बाड़ादेव (कोयले शनोग), बुढ़ादेई पार्हंता (बाड़ीधार), दुर्गा मदिर (मान), हरसिंग (हरसिंगधार), नारसिंग, चंडी (सेवड़ा), देव मंदिर (नेवड़ी), चाड़बाड़ा (मेहझूला मझोरन), नाग मंदिर (प्रभाव), शिवजी (दाड़ला), मढ़ोह, दुर्गा मंदिर (दाड़ल घाट), जाल्पा, शिवजी (सयार), शिवजी (नवगाँव), शिवजी (समलोह), हनुमान (समलोह निचला), गुरुद्वारा (डुगली), देवी (करीयाह), जाल्पा (छायला), नैणा देवी (परसोड़ा), शिवजी (धुंदन), दुर्गा (धुंदन), पंजपीरी (विक्रमपुर), शिवजी (कंधर), निकूझालो (म्यारी), नैना देवी (काथला), बनी देवी (धरनी), शीतला माता (सेटी), शिवजी (बातल), ठाकुरद्वारा, नारसिंह (अर्की), देवता मडोर (अर्की), शिवजी (जुंडला), ठाकुरद्वारा (सिल्ह), राधाकृष्ण, राधाकृष्ण, दानो देव, शिवालय, दुर्गा, बणिया देवी (कुनिहार), कुरगण देवता (कोटला), दुर्गा माता, शिवजी (अर्की), शिवजी (आसलू), देवी (कड़याह), बाबापीर (कठपोलधार), दुर्गा, बणिया देवी, मढ़ोड़ (कंधर), हरसंग (कशलोग), कोकला (मढ़ोह), जाल्पा (कोठी), दुर्गा (चांबा), गुरुद्वारा (डुगली), शिवजी (बखालग), शिवजी (झूमती), शंघोई (मढोड़), मंगला माता, गुरुद्वारा (रौड़ी), दुर्गा मंदिर (दुर्गाघाट), दाता पत्थर (दानो घाट), देव मंदिर (कराड़ा घाट), शिव गुफा (डयार), शिव गुफा (लुटरू), काली मंदिर (मलौण किला), बाड़ूबाड़ा (शालू घाट)।

कसौली

देवी मंदिर (चंडी), ठाकुरद्वारा (धड़सी), दुर्गा (धड़सी), सूरजपुर मंदिर (सूरजपुर), दुर्गा (वनलग), दुर्गा (बालमू), देव मंदिर (बरला), ठाकुरद्वारा (डंगियार), देव दखानी (दधोटा), दुर्गा (मंथाला), दुर्गा (कहला), माहूनाग (लरावल), दुर्गा मंदिर (बढ़ल), शिवजी (बढ़ल), ठाकुरद्वारा (शिवजी), भवानीपुर, ग्यासिंमा देवी (समाणू), छमरोग देवता (छमरोग), श्रीकृष्ण (पट्टा), गुरुद्वारा (जोहड़जी), दुर्गा मंदिर (कोठी), गुरुद्वारा (दुर्गापुर), चीड़ का पानी, शिवालय (कृष्णगढ़), शिवजी (देवरी), काली माता (खड़ेच), शिवालय, दुर्गा मंदिर (गड़खल), मनसा देवी (धर्मपुर), शिवजी (धर्मपुर), काली माता (धार जोखिरी), माहू नाग (चकियाँ), चर्च (स्नावर), शिवजी (बड़ा), शिवजी (कंडा), मनसा देवी (सिहारड़ी), दुर्गा मंदिर (दोची), शिवजी (दत्यार), शिव मंदिर (कुमारहट्टी), शिरढ़ी बाबा (गड़खल), भगवती मंदिर (सुवाथु), काली मंदिर (टटूल), राम मंदिर (डेरा), दुर्गा मंदिर (जंगोमू), डोम (दाड़वा, शिवा), गुरुद्वारा (हरिपुर), वैष्णो देवी, बालकनाथ (कोटी), दुर्गा (नंदोह), ठाकुरद्वारा (धड़ेबा), शीतला माता, (टकसाल), गुरुद्वारा (हरिपुर साहिब)।

जिला शिमला

शिमला

श्यामाकाली, हनुमान मंदिर, राम मंदिर, शिवमंदिर (शिमला), रोमन चर्च, कैथोलिक चर्च (शिमला), नाग देवता, शिव, राम मंदिर (कैथू), गुरुद्वारा, राधाकृष्ण (नाभा), गुरुद्वारा, जामा मस्जिद, वाल्मीकि मंदिर (कृष्णा नगर), जामा, कश्मीरी, कुतुब मस्जिद (शिमला), नारसिंह मंदिर, हनुमान मंदिर (धार), अंबिका (रजेटा), दुर्गा (धनेहड़ी), हनुमान मंदिर (पनोग), शिवजी (कशयाड़), देव मंदिर (बस्ती गुनान), आर्यसमाज मंदिर (बस्ती गुनान), शिवजी (खायरी), हनुमान (च्योग), हनुमान (कंडा), हरकार मंदिर (धारठ), जजर मंदिर (कुथरू), देव मंदिर (बरोई), ठाकुरद्वारा (रहाई), महावीर (फागला), काली (दवाट), कृष्ण मंदिर (दवाट), गौंणा देवता, नाग देवता (कड़ोग), नाग देवता (चमोह), गणपति (ह्यूण), विष्णु (बटोल), नाग देवता (बटोल), भगवती (बिनोट), नाग देवता (डूमी), धांद्री (क्यार), हनुमान (बरमु), दुर्गा (बड़ोग), नाग देवता (कोग), शिवजी (बलदेंहा), पुरगण देवता (छाबड़), सिप्पी मंदिर (द्योठी), सिधी देवता (जंगल सीपुर), हनुमान (जंगल सीपुर), देवी मंदिर (बड़ाह), राम मंदिर (मेहली), संकट मोचन (बढ़ई), नाग देवता (सनीन), दुर्गा (वनूल), दुर्गा (कियारगी), दुर्गा (धनोखर), ठाकुरद्वारा (हिंपू), विजू देवता (डूह), हनुमान मंदिर (पनोग), हनुमान (लेहरड़ा), हनुमान (धारीघाट), दुर्गा (गनपेरी), हनुमान (शोघी),

तारा देवी (जंगल तारन), दुर्गा (जड़ोलोग), दुर्गा (न्याई), दुर्गा (चढ़ाऊ), शिवालय, कायली देवी (कायली), बिजू देवी (वरोग), महावीर (महेशू), माहली देवता (पुजारली), नारसिंह देव (जुणगा), शिवजी (जुणगा), जुणगा देवता (बीण), तारा देवी (जुगो), हनुमान (जंगल मनूम), माहू नाग (जंगल मनूम), तारादेवी (चौरी), दुर्गा, नारसिंग (भड़ेच), दुर्गा (जंगलभा), देव मंदिर (चांबी), देव मंदिर (फनेवटी), शिवजी (परथानावड़), देवी (शलैल), जुणगा देवता (ठुंडा), कालिका देवी (रुहालठी), देव मंदिर (सतलाई), शिवजी (चिखर), डूम देवता (नीन), खथेश्वर (कोटी), मनुन देवता (पराड़ी), देवता मंदिर (जटोल), देवता मंदिर (बँगला कलाँ), नाग देवता (नाला), देव मंदिर (बेला), नाग देवता (नाला), दुर्गा (कटैंह मझार), हनुमान (मुंडाघाट), शिव (बलग), ईशर (खड़ाहग), ईश्वर (मेलन), डूम देवता (शरमला), शिखड़ू (रोहड़) बाँदरा (बंछूछ), भीमाकाली (शाली), तारादेवी, जुणगा (पटगैहर), शैनी देवता (कयाली), भीमाकाली (कयाली), भीमाकाली (पझाट), जुणगा मंदिर (जुणगा), तारादेवी, हनुमान मंदिर, राम मंदिर, जगन्नाथ मंदिर, राज मंदिर (जुणगा), कथेशर (भड़ेच), जुणगा देवता (पुजारली), जुणगा देवता (टिक्कर कोहान), डूम देवता (कोहान), कथेशर (कडैरी), दुर्गा मंदिर (कुफर), मनुनी देवता (गझेया), दुर्गा मंदिर (दर), संकट मोचन (संकट मोचन), गोपाल मंदिर (बालूगंज), कृष्ण मंदिर (नाभा), गुरुद्वारा (नाभा), गोपाल मंदिर (समरहिल), ढींगू देवी (ढींगू संजौली), बौद्ध मठ (संजौली), बौद्ध मठ (पंथा घाटी), कामना देवी (कामना देवी), गुग्गा (शिमला), चर्च (बी०सी०एस० सेंट बीड्ज आदि) (शिमला), धानु (बिहार गाँव)।

जुब्बल

देवी मंदिर (जुब्बल), दुर्गामाता (हाटकोटी), कोलू देवता (रामपुरी), महासू (डीम), महासू (धराई), कियालू देवता (मठाईक), महासू (जाचली), छावनी वीर महासू (सलाऊकरा), महासू (चुटाड़ा), महासू (क्यारी), महासू (प्राउंठी), महासू (कोलाड़ा), महासू (देवरा), महासू (सुंडली), महासू (कलौंथा), महासू (काईना), महासू (कोट), महासू (चीवा), महासू (बरथाटा), शाड़ी देवता (चमारू), बनाड़ (शिरठी), बलोड़ देवता (नकटाड़ा), दासू देवता (सतांदली), महासू (मंठोल), महासू (भडाल), महासू (राईका), महासू, दुर्गामाता, सुनटोविया देव (धार), महासू (सरोट), महासू (शड़ाना), महासू (पाड़), शेड़कुलिया (सैंज), शेड़कुलिया (सोलंग), शेड़कुलिया (सासकिट), महासू (खटासू), महासू (मकराड़ी), राठी देवता (केवली), बगोहर देवता (मेहाणा), बीर देवता (पौंटा), दुर्गा माता (हाटकोटी), नारसिंह (साबड़ा), नागेश्वर (झड़ग), कटोड़ी देवता (धानसर), गुडारू देवता (झाल्टा), गुडारू देवता (गिल्हाड़ी), गुडारू देवता (क्वाल्टा, महासू (क्वाल्टा), महासू (शिलाड़), महासू (नंदपुर), महासू (मलोग), महासू (भराड़), महासू (समाड़ा), महासू (ढाड़ी), महासू (मंठोल), महासू (सालना), महासू (बडियार), महासू (अणुबासा), महासू (वींगधर माणा), महासू (झालड़ी कनोट), महासू (संयोग), महासू (कुड्डू), बनाड़ (झगटान), बनाड़ (रोहरान), बनाड़ (मिहाना), बनाड़ (मांदल), बनाड़ (जखोड़ पुजारली), कियालू (झगटान), कियालू (रोहटान), कियालू (जंगल कियाला), डोम (गूठाण), डोम (हिमरि), गिरिगंगा (गिरिगंगा), शिव (हाटकोटी), डोम (धार, मनलोग,

महोदी, बिउंड़ी, मौंच, सांबर, गलार, मातली, बसभोल, नैहरा, महेना, नैहरा, दवैयाँ, चरैन, नमाणा, गढ़ैड़ी, बैकण, कढ़ैल, जनोल, जंगरौली, हलाइला, ढँगवी, मंदरौली, जढोली, दरकोटी, नेहता, पुड़गा, चड़ैणा, कमाली, ढैला, पमलाड़ी, दरकोटी सैई, शरैया, बमढोल), बनाड़, महासू (शाड़ी), महासू (कलौंथा, सुंडली, कोहलाड़ा, सिरठी, चमारू, बटाड़, शलाड़), गुडारू देवता (मिल्टाड़ी)।

कोटखाई

डोम देवता (बंडली, हिमरि), हाटेश्वरी (भड़ेच), महादेव (पुड़ग), दुर्गा (क्यारी), बैंद्रा (देवरी), बनीश्चर (चौंरी), नाग (घुंडा), डोम देवता (बैवठा, पजौर, कटैहल, हिमरि, फनैल, रैहवर, नौहरा), भगवती (बैवठा), नाग (बाघी), खड़ानू (खोड़), महादेव (डैवग), लँगड़ा पीर (क्यारी), पुजारली मंदिर (पुजारली), कोटेश्वर (राजटाड़ी), डोम (जड़ू, बाग), दुर्गा (महासू), महादेव (दुर्ग), बैन्द्रा (कोटी), कराल (नगींद्री), नंदाण देवता (शिल्ली), बैंद्रा (कुपड़ी, कठनाड़ी), काली माता (टाऊ), डोम देवता (झरवाई, मनरोटी), टोणी माता (चपोड़), काली माता (थरोला)।

कुमारसेन

डूम देवता (करेट), डूम देवता (जमोल), डूम देवता (जदूण), डूम देवता (क्योग), नाग देवता (धाहल), नाग देवता (सराहन), नाग देवता (धारली), मलेंडू देवता (मलेंडी), शेलग देवता (शेलग), पंडोर देवता (शिला), भरमासव (बड़ागाँव), धनेश्वर (भरेठी), बालू देवता (बनाहड़ी), मारीच देवता (स्वाणा), दुर्गा माता (नारकंडा), डूम देवता (डमेहर), भगवती (कंडयाली), डूम देवता (जिगूणा), डूम देवता (डखून), रघुनाथ मंदिर (कुमारसैन), कोटेश्वर महादेव (मंधोली), थान देवता (यरथू), कोटेश्वर मंदिर (कोटला), कोटेश्वर (कोई), नाग देवता (अरोट), थान देवता (पोची), त्रिंदू देवी मंदिर (छोआण), दुर्गा (शथला), नाग देवता (पंपलाई), दुर्गा (नौला), वाटेश्वर देवता (वाहली), मारीच देवता (कीरटी), शिवजी (केपू), चतुर्भुज मंदिर (मैलेन), दुर्गा (कोटगढ़), नाग देवता (पारली), डूम देवता (शिली), काली मंदिर (दाड़ी), मिशन चर्च (कोटगढ़), दुर्गा (हलयाणा, शमाथला), नाग (भड़ासा), कोटेश्वर महादेव (मंधोली), भगवती (कूई), नाग (पलाख)।

रामपुर

बौद्ध मंदिर, अयोध्यानाथ, रघुनाथ मंदिर, नृसिंह मंदिर, गुफा (रामपुर), महारूद्र मंदिर (कियाओ), लुआरू देवता (गंवी), दुर्गा (मोलगी), देवता मंदिर (लवाणा सधाणा), कुंगल देव (मुंधेर), जलदेवता (सरपारा), ननखेरी मंदिर (ननखड़ी), नेन्सू मंदिर (बराली), थानेश्वर (कलेड़ा), नाग मंदिर (बेंडा), सिगसानी (खामड़ी), भगवती (रावीं), शोली मंदिर (शोली), लक्ष्मीनारायण मंदिर (मझसाओ), लक्ष्मीनारायण मंदिर (भागबूत), लक्ष्मीनारायण मंदिर (रूपी), लक्ष्मीनारायण मंदिर (मशनू), पातर देवता (मशनू), खटाण लाडू (लाडू), लक्ष्मीनारायण

(मझेवली), बुशाड़ा मंदिर (बुशाड़ा), काजव मंदिर (चासो), लख देवता (रचोली), नारसिंग (शिमाला), खंडेश्वर (शनेरी), काली (लाडसा), छिज्जा देवता (दियोठी), नागलखीण (किम), नाग देवता मंदिर (करेड़ी), दत्तात्रेय (दत्तनगर), भीमाकाली (सराहन), रघुनाथ मंदिर, नृसिंह, लांकड़ा वीर (सराहन), दुर्गा मंदिर (शराई कोटी), सूर्य मंदिर (नीथर), चंडी देवी (चंडी), नाग (कूट), लक्ष्मीनारायण (पाट), महासू (थेडा), बसाहरू (बसाहर)।

चौपाल

चित्रादेवी (नार), देवता मंदिर (शिलपरलोग), दुर्गा मंदिर (याओणा बदलोग), दुर्गा (सापरा), दुर्गा (झिना), डुम देवता (भोट), जरियाना मंदिर (भानोल), जरिया मंदिर (मोहाजेल), शिरगुल, लंकड़वीर, देवता मंदिर (बधार), देवता मंदिर (बोदना), देवता मंदिर (जगना), शिरगुल मंदिर (खादर), देवता मंदिर (चौपाल), देवता मंदिर (शंठा), चजाई माता (सतका), शिरगुल (हनल, अंतरावली), टुंडी माता (धनेवरी), टुंडी माता, कुलह देवता (धबास), शिरगुल, काली (पुजारली)।

नेरवा

शिरगुल देवता (धताली), शिरगुल मंदिर (अनोग), साणत मंदिर (साणत), देवता मंदिर (भालू), शिरगुल देवता (कुलग), गणकेर मंदिर (मासरा), महासू देवता (ग्वाट), देवता मंदिर (देहरू), देवता मंदिर (खखरोणा), देवता मंदिर (कंडी), देवता मंदिर (लाहन), शिरगुल देवता (आर), महासू देवता (किराग), महासू देवता (भरतौण), महासू देवता (टिकरी), महासू देवता (शकराणा), महासू देवता (रिंजट), महासू देवता (रेज ओशटी), महासू देवता (सिलोरी), महासू देवता (केदी), शिरगुल देवता (धाड़ी), शिरगुल देवता (गानी), शिरगुल देवता (गुंशा), शिरगुल देवता (बड़ेल), शिरगुल देवता (बजाथल), शिरगुल देवता (मशमोरड), देवी माता (थास्करा), महेश्वर देवता (पशराण), महेश्वर देवता (कुठाण), महेश्वर देवता (नावी), महासू देवता (थरोच), महेश्वर देवता (सारचा), महेश्वर देवता (सारचा), महेश्वर देवता (कोटी), देवी (मुंडनी), शिरगुल (जंगल बीरा), देवी माता (नाओ), महासू देवता (रनाओण), महासू देवता (धुआनली), महासू देवता (परोल), महासू देवता (धरांडली), महासू देवता (गजटाड़ी), महासू देवता (नगाह)।

सुन्नी

दुर्गा मंदिर (मंधोरा), देवी मंदिर (शओनी), हनुमान (जुनी कलांण), नारसिंग (छनोग), दुर्गा (दिशदी), नाग देवता (मांदरी), देवी मंदिर (कोटला), धनु देवता (पलियार), भगवती (पलियार), काली माता (सिओनी), धनु देवता (दवारसु), शीतला माता (खोलपुर), पाहल देवता (पाहल), दंडी देवी (नेओड़), नालग देवता (नालग), सूरी देव (बमोट), नीम देवता (हलोट), शिव (मगैणी), शिव (नीण), डूम देवता (जुब्बर), दुर्गा (बगैण), महादेव (तराओर), कालीमाता (वसंतपुर), दुर्गा माता (कादरघाट), नाग देवता (खोब), देवता मंदिर (खैरी),

शिव मंदिर (जैशी), डूम देवता (डमैहर), शिव (गारों), शिव (भराड़ा), नाग देवता (चपराणी), देवता कथान (नलेह), दुर्गा (करयाली), शिव (पत्योण), नाग देवता (दरावला), नाग देवता (तलाह), देवता पानडोया (कोठी), देवता पानडोया (पंडोआ), दुर्गा (शाली), दुर्गा (डलाणा), देवता कुरगुम (गड़काण), डूम देवता (तलेटी), देवी मंदिर (बाग), डूम साहिब (देयला), देवता कुरगुम (सनाणू), मंढोड़ी देव (मंढोड़ घाट), डोम (हिमरी)।

जिला सिरमौर

राजगढ़

महादेव, डूमेश्वर महादेव (कोटी वधोग), नार सिंह (सजौरा), देवी मंदिर (शाया), शिरगुल (शाया), ठाकुरद्वारा (धामला), दुर्गामाता (शनाई कुन्नीसेर), चूखड़ियाँ (धानच), शिरगुल (डंडाघाट), शिवजी (सनौरा), काली, कथासन मंदिर, तीर गनौह (जदौल टपरोली), शिरगुल (दौल खाटा), शिरगुल (लेऊनाना), शिवजी (लेऊनाना), शिरगुल, दुर्गामाता, (देवठी मझगाँव), दुर्गा (कुड़लवाना), दुर्गा (कुंथला), काली माता, देवता मंदिर (नेरी जगेला), देवता मंदिर (कुफर), दुर्गा (भड़ौली), लक्ष्मीनारायण (मूटल), शिरगुल (टाली मजूल), महादेव (ढारू), महादेव (घोटाड़ी), शिवजी (कुंथल पशोग), डूम देवता (कुंथल पशोग), काली (हावन पड़ेची), शिरगुल (पालू), शिरगुल (चाखेल डुंगीसैर), देव चौंड (छाईला), नाग देवता (रड़ भूईल), नेई (स्वारघाट), कालीमाता (स्वारघाट), डूम देवता (बलारा), जुणगा देवता (नेई नेटी), देवी (नेई नेटी), देव प्रवास (ढाया पितली), श्रीकृष्ण (वई जेटी), नेई (वई जेटी), देवनधे (घटोली), दुर्गा (घटोली), देव चौंड (सरगाँव), दुर्गामाता, शिवजी (सरगाँव), देव चौंड (कलोट मशोग), शिरगुल (देवठी पंचडण), महादेव (देवठी पंचडण), शिरगुल (कटगानू), दुर्गा (दूधम), ठाकुरद्वारा, देवी मंदिर (नेठी भगोट), ठाकुरद्वारा (बड़लगा), थान (फागू), दधेश्वर (मलोन), बिजर (अणत), दुर्गा (माटल बकोण), गौणा (सवाना), बिजट (बराईला), बिजट (घाटपूजेटा), दधेवर (बोहल टालिया), देव मंदिर (बोहल टालिया), शंकर (टाली भुंजल), मठौड़ (ठोड़ कलौन), शारदा देवी (घरोठी), शिरगुल (टिक्कर), शिरगुल (माट का सयाणा), देवता मंदिर (माट का सयाणा), मंदिर (धार सवेच), सनातन धर्म मंदिर, गुरुद्वारा (राजगढ़), सुजर देवता (फतेहपुर), चौकीजी (डिंबर), बाग (डिंबर), अन्दू (कोटला वाँगी), नार सिंह (कोटला वाँगी), शिरगुल (सगवखोटा), ठाकुरद्वारा (मूहरी), ठाकुरद्वारा (सनियों), शिवजी, नार सिंह (शिलमिया), कालीमाता (ग्लोगश्केन), शिरगुल (बेड़ जमोली), शिरगुल (उलग कत्तोगा), शिरगुल (शमलोह), दुर्गा (लद्दाख), देव मंदिर (मेवगजून), भट्ट मंदिर (जोला), शिरगुल (रूग वंखौथ), शिरगुल (दाहान), शिवजी (थनोगा), देवता मंदिर (गढ़ोल), कानभट्ट मंदिर (रेड़ी गुसान), गुरु इतवारनाथ (रेड़ी गुसान), शिरगुल (चूड़धार), बिजट (सराइन)।

रेणुका

रेणुका, परशुराम (रेणुका झील), परशुराम (कथाणा, पाव), शिवजी (पाव), शिवजी (लणूयाना), विष्णु (कसाणा), विजट (कोटी धमाण), शिरगुल (छोनोगार), शिवजी (बड़ग), शिरगुल (बड़ग), शिरगुल, शिवजी (डाणा), शिवजी (देवना), शिरगुल (देवना), बिजट, शिरगुल (देवठना, नांदड़ी), शिवजी (टिक्कर), शिरगुल (टिक्कर), शिवजी (दरावल), शिवजी (सैल), शिवजी (मूवाई), शिवजी, गुग्गा (शिलवाड़ा), शिरगुल, शिवजी (अरट), शिवजी (तलागना), देवता मंदिर (चौकट), गुग्गा (भवाई), शिवजी मंदिर (चूनवीनोड), बिजट (चाड़ना), बिजट (धंदूरी), शिरगुल, शिवजी (धंदूरी), शिरगुल, बिजट (पलहोच), वराह भगवान् (नेराबाग), शिवजी (चौरास टारना), वराह भगवान् (रजाना), वराहरूपी मार्टना (शिरगुल), शिरगुल (रेहडली), शिरगुल (वोहरली), वराहरूपी (बोहरली), शिवजी (नरग), शिवजी (खुड), वराहरूपी, शिवजी (डंगरकांडो), रूपसिंह (मानरा), शिरगुल (भानरा), भराड़ी देवी, शिरगुल (भराड़ी), सेन, शिरगुल (सैंज), सेन, शिरगुल (टहरी), ठाकुरद्वारा (सिंयू), गुग्गा, बिजट (संगड़ाह), गणदेवता, गुग्गा (डूँगी), महासू (गललोग), भाँगू (गिड़गा चिनाड़), शिरगुल (गिड़िगा चिनाड़), थान (भनोड़), बिजट (नैचना), शीतला देवी (कटाहा), परशुराम (कटाहा), शिरगुल (पुन्नर), नगरकोटी मंदिर (नोटी), शिवजी, दुर्गा (ददाहु), दुर्गा (शिरू महिला), गणदेवता (कोटला), गणदेवता (मोलटा), (महाकाली (बैररी)), शिवजी (वएरी), वरुण देवता (वएरी), मानूर देवता, मनसा देवी (मानरिया), बंसला गण (कांडल), महासू (मैहंदी), महासू (बेचड़ का बाग), ठाकुरद्वारा (महीपुर), गोलियो (नोहरा), ठठारना (नोहरा), चूड़धार, शिरगुल (चूड़धार), शिरगुल, थनगा (थनगा), शिरगुल (मानल), बिजट, परशुराम, शिरगुल (बांदल), परशुराम, जमदग्नि (जामू), परशुराम, पीरजी (छलजा), विष्णु (गवाही), शिरगुल (लजवा), शिरगुल (अंधेरी), शिरगुल (कोलवा), शिरगुल (छाटो), शिरगुल (जार दृवल), शिरगुल (लवाली), शिरगुल (जरग), शिरगुल (बोनल), शिव (छोड़ वोगर), देवता मंदिर (नाहेचना), शिवजी (कुहंट), शिरगुल (कांडोहरयान), कांबली देवी (कांडोहरयान), शिरगुल (बोनल), शिरगुल (चाड़ना), शिरगुल, परशुराम (भाटगढ़), परशुराम (खफात्यार), परशुराम, रेणुका, दुर्गा (रेणुका), शिरगुल (नहोग), शिवजी (नहोग), शिवजी (लाना चैता), ठाकुरद्वारा (लानाचैता)।

शिलाई

परशुराम (मटियाना), चनौटी (चनौटी), सताहन, शिवजी (सलाहन), मलौना, (मलौना), महासू (भलाड़), शिवजी (गजवा), गजवा (गजवा), शिवजी, गातागंडवाउव (गातागंडवाउव), साँगना, शिवजी (साँगना), नारायण मंदिर (नैना), गुग्गा (बिंदला दिगवा), बड़ोल (बड़ोल), पंजाह (पंजाह), अजरोली (अजरोली), शिवजी (अजरोली), शिलाहन (शिलाहन), डिमाईना (डिमाईना), पुरी मंदिर (शिलाई), शिरगुल, पुरी मंदिर (बेला), महासू, शिव (ग्वाली पशमी), शिवजी (बाँदली), महासू, शिव (कोटी), महासू, शिव (शिरी क्यारी), अबीदा (देवथल),

शिवजी (देवथल), अबीदा (पंजौ), परी मंदिर (लुजा पानल), शिवजी (लुजा पानल), भागनी देवी (खँडाहा), भागनी देवी (दीवड़ी), परशुराम (डाहर), परशुराम (किन उपरला), शिरगुल (भलोना), शिवजी (कोटीयान), शिवजी (जवा), शिवजी (गुरुडाह), देवी (हलाण), महासू (पनोग), शिव (नाओ पंजोड़), शिव मंदिर (बिंदौली), शिव मंदिर (जासवी), शिव मंदिर (बौंच), शिव (रास्त), शिव (दियांद्रो), शिव (बाली कोटी), शिव (बरार), शिव (सखौली), शिव (धारना), शिव (धाखा), शिव (कुहंड), शिव (जंगरोली), शिव (शिलाई), शिव (सियासू), विष्णु (खड़काह), विष्णु (जकांडो), विष्णु (दारावल), विष्णु (नावना भटवाड़), विष्णु (चमयारा मोहराउ)।

नाहन

शिरगुल (निहोग), ब्रह्मा `(सुरला चार्जन), गण बिजट (शाही प्रोदर), थापना देवी (खादा साँवड़ा), दुर्गा (सरोगा टिक्कर), शिवजी (जामली), शिवजी (ढाकरा), त्रिभुवनी देवी (कोला वाला मोड़), विष्णु (बरमा पापड़ी), देवी (त्रिलोकपुर), शिरगुल (कागर घुंड), टोना साहिब गुरुद्वारा (मीरपुर), ललिता देवी (तिलिकपुर), देवी जामवती (बलसार), शिवजी, पांरिवाला (खजूरना), शिवजी (बोगरिया), बड़ासन देवी (उत्तमवाला), शिवजी (सखड़ी), गुरुद्वारा (शंबूवाला), बालासुंदरी (जमटा), शिरगुल (जेतोग), शिवजी (जेतोग), कुशवा (चमूढ़ी टिक्कर), शिवजी (मोहलीया खटोला), भद्रकाली (अंबवाला सेनवाला), शिवजी (शेरली), परशुराम (डंडोर), ला देवी (बिरला), गुरुद्वारा (मकड़वाली), शिवजी (बनकलाँ), जगन्नाथ मंदिर (नाहन), काली मंदिर (नाहना), कटासन देवी (जंगल कटासन), जामा मस्जिद (नाहन), बालासुंदरी (त्रिलोकपुर)।

पाँवटा

लक्ष्मीनारायण (माजरा), शिव (कठवार), परशुराम (बनोरा), देवी (राजवन), देवी (कान्हार), देवता मंदिर (भनैत हल्दवाड़ा), नारसिंह (बकान केलेवाला), परशुराम (पड़ली), देवी (डराडकंडाल), देवी (गातु नावी), परशुराम (सराकिला), भद्रकाली (भगानी खास), गौरीशंकर (मानपुर), शिवजी (शामपुर), भद्रकाली (शामपुर), शिवजी (ताल सिरमौरी), जमूना महादेव (खोडरी), शिरगुर (टौस), सत्यनारायण (मुगलवाला करतारपुर), गुरुद्वारा (किशनकोट), शिवजी (बागरण), देवी मंदिर (बरोटी वाला), गुरुद्वारा धारी साहब (माहगानी), गुरुद्वारा (हरिपुर), गुरुद्वारा (निहालगढ़), गुरुद्वारा (भेड़ीवाला), विश्वकर्मा मंदिर (ज्वालापुर), शिवजी (तारूवाला), ठाकुरद्वारा (बदरीपुर), शिव मंदिर (बदरीपुर), गुरुद्वारा (बहराल), देव मंदिर (भूपपुर), जगन्नाथ (रामपुर घाट), वातामंडी मंदिर (भाटोवाली), देई साहिबा मंदिर (पाँवटा साहिब), गुरुद्वारा (पाँवटा साहिब), नागनौणा मंदिर (नागनौणा)।

जिला चंबा

(जनजातीय क्षेत्र–पाँगी, भरमौर को छोड़कर)

चंबा

लक्ष्मीनारायण, राधाकृष्ण, गौरीशंकर, लक्ष्मी, महाकाली, चंद्रगुप्त, त्र्यंबकेश्वर, हनुमान, चरपटनाथ, कामेश्वर, सीताराम, वैद्यनाथ, गणेश, वज्रेश्वरी, लक्ष्मीनारायण, गोपी वल्लभ, वंशीगोपाल, मुरली मनोहर, सीताराम, महादेव, वंशीगोपाल, दुर्गा, सीताराम, मिंधलवासिनी, चंपावती, हिडंब माता, शीतला माता, लक्ष्मीदेवी, राधाकृष्ण, बद्रीनारायण, सीताराम, राधाकृष्ण, पद्मनाम, विष्णु, शिव पचांग, सुनयना देवी, चामुंडा, नारसिंह, त्रिपुर सुंदरी, सीताराम, वासुकि नाग, हरिराय, महादेव, महादेव जी की ओवड़ी (चंबा), शारदा देवी (भौंई), कालका देवी (भौंई), शिवजी, लक्ष्मी पचांग, शिव (सुलतानपुर), ज्वालामुखी, जाल्पा (दृमण), जाल्पा, ज्वालामुखी (साँच), खज्जीनाग, हिडिंबा, शिव (खजियार), त्रिलोचन महादेव (राड़ी), शिव, शक्तिदेवी (छतराड़ी), शिवजी, कालीमाता (खुंदेल), गिरड़ासन (गिरड़), शिवजी, शीतला माता (कूर), बंदला (बंदला), कलमला (कलमला), लिहल कोठी (किलोड़), बाबा श्रीचंद (नंघूई), नीलकंठ, ज्वालामुखी (भनौता), देवी अच्छरा (सिंगी), देवता उदयसिंह (उदयपुर), विष्णु (उदयपुर), गुतड़ू नाग (रिंडा), चंडी, देवी मँगला (मँगला), नरमता देवी (बख्तपुर), कालीदेवी (कटेटा), शारदा मंदिर (देवी देहरा), सती मंदिर (रठियार), काली मंदिर (बसोधन), जाल्पा (मैहला), शिव मंदिर (मुगला), नाग (मुगला), शीतला (जड़ेरा), साहोपधर (साहोपधर), जम्मूनाग (रजेरा), जम्मू नाग (तंदली), हिडिंबा (नेरा), नाग (बाड़का), हिडिंबा (बाड़का), जाल्पा (भुजा), नाग (भुजा), जम्मू नाग (जंगल झुम्हार), कालीनाग (कलहूणी), महाकाली (कुरांह), शक्ति (किड़ी), चामुंडा (जन्नी), शिवजी (राजनगर), राधाकृष्ण, (राजनगर), शक्ति (सरौल), महाकाली (राजपुरा), शक्ति डेहरा (निपूंई), चामुंडा, दुलाहर, शक्ति (दुलाहर), शिव (चकलू), नाग (साल), शक्ति माता (निहोण), काली माता, शिव (नंदरेड़ा), शीतला (भराली), शीतला (जदेड़ा), काली (सरा), नाग (भेली), बृजला देवी (भज्यार), शिवजी (जंगी), नाग (कुरन), महाकाली (मल्ला), महाकाली (बकाल), काली (गिराढ़), महाकाली, नाग देवता (मासू), हिडिमा (बरोर), कंगड़ नाग (पलूँई), ज्वालामुखी (कुठेहड़), बसोधर नाग (कुठेहड़), सिद्ध (चंडी), केलंग (लोथल), लक्ष्मीनारायण (कुंडी), चंडी (मंझारा), मंडलीक मंदिर (तुर), नाग (तुर), मंडलीक मंदिर (सकराहल), चामुंडा (लड़्डा), भरौड़ नाग, महाकाली, जाल्पा, मंडलीक, केलंग (मैहरा), शिवजी (गरोंदी), काली (अलमी), शिवजी (खंडिल), देवी (माला), शिव (मरौर), सिद्ध (लुड्डू), शिव (मुगला), चामुंडा (ओहली), जाल्पा (जरेण), चामुंडा (गगल), चामुंडा (दुलाड़), महादेव (कलोड़) महाकाली (ज्योति), चंडी (मंगला), लखदाता (हरिपुर), ब्रह्माणी देवी (भगतपुर), महाकाली (धार ग्रौं), चामुंडा (किला), जाल्पा (भोज्जा), लखदाता (कथाणा), शक्ति माता (बलोठ), शीतला (कांडला), कालीमाता (मसरून्द), नाग (पुखरी), महाकाली (मनकोट), नाग (मावा), शिवजी (लूनी), देवी (सर्हण), नाग

(भराड़), चामुंडा (रूपण), काली मंदिर (सलधा), नाग (मयाण), महादेव (सियारा), नाग (सियारा) सेंट फ्रांसिस चर्च, सेंट जोन चर्च (डलहौजी)।

चुराह

काली (भरेई), शीतला (सालपा), वासुकि नाग (सालपा), जयश्री देवी (उन्द्रेश्वर), शिवजी (तलोड़ी), महाकाली (सिंगा), महाकाली (श्रीगढ़), शक्ति (मटपूंड), शिवजी (भँजराड़), चामुंडा शिव, लक्ष्मीनारायण (तीसागढ़), शिवजी (सेई), देवी (देवी कोठी), चामुंडा (लधाण)।

[नाग मंदिरों की सूची नाग परंपरा लेख के साथ देखें।]

भटियात

शिवजी, मुरली मनोहर (चुआड़ी), नाग मंदिर (कुठेहड़), चामुंडा (झनूई), ज्वालामुखी, जाल्पा (घटासनी), शिव मंदिर (ककीरा), ज्वालामुखी (ककीरा), तारावासनी (तारागढ़), कालीनाग (काला फाटा), योगध्यान (रायपुर), मुरली मनोहर (होनाट), नारसिंह (टुंडी), नारायण (टुंडी), शिवजी (समोट), चामुंडा (मुरली मनोहर), शिव (सिंहुता), मुरली मनोहर (कामला), शिवजी (कामला), शिवजी, चामोती माता, छड़ोने वाली माता (छलाड़ा), मनसा देवी (लोधागढ़), केलंग (भलाड़), नारसिंह (टिकरी), नारसिंह (कुई), नाग (पुखर), शिव मंदिर (बाथड़ी), शीतला (बर्णिखत), देवी मंदिर (सकरेड़ा), महाकाली (छतरेल), शिवजी (बलेड़ा), शिवजी (नैनी खड्ड), महाकाली (हाथीधार), मनसा देवी (काथला), शिवजी (फगौला), ज्वाला जी (वरेई), ज्वाला जी (घड़ासन), शिवजी (चूण), शिवजी (सुड़ेल), राधेश्याम (मेल), ज्वाला जी (मामला), गुरुद्वारा (भरेड़ा), शिवजी (बेरल)।

[नोट : इस सूची में जनजातीय क्षेत्र—पाँगी, भरमौर तथा जिला किन्नौर तथा लाहुल स्पिति को छोड़ दिया गया है। उनका विवरण जनजातीय खंड में अलग से किया गया है।]

केंद्र संरक्षित स्मारक

चंबा

1. गणेश मंदिर	भरमौर
2. श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर	
3. श्री मणिमहेश मंदिर	
4. श्री नृसिंह मंदिर	
5. श्री वज्रेश्वरी मंदिर	
6. वंशीगोपाल मंदिर	
7. श्री चामुंडा मंदिर	चंबा शहर
8. श्री हरिराय मंदिर	
9. श्री सीताराम मंदिर	
10. श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर समूह	
11. श्री राम-सीता-हनुमान शिला, सरोथा, चंबा	
12. श्री शक्ति देवी मंदिर (छतराड़ी)	

कुल्लू

1. श्री विश्वेश्वर महादेव, बजौरा
2. श्री शिव मंदिर, जगतसुख
3. श्री गौरीशंकर मंदिर, नग्गर
4. श्री हिडिंबा देवी मंदिर, ढूँगरी

काँगड़ा

1. श्री भीम टीला, चैतड़ू
2. श्री गौरीशंकर मंदिर एवं टीला, देसल
3. काँगड़ा किला, पुराना काँगड़ा
4. शिलालेख खनियारा
5. कोटला मंदिर, कोटला
6. मसरूर मंदिर व परिसर, मसरूर
7. नूरपुर किला व श्री राधाकृष्ण मंदिर, नूरपुर

8. शिलालेख पठियार
9. लॉर्ड एलगिन टॉम, धर्मशाला
10. श्री आशापुरी मंदिर, आशापुरी
11. श्री शिव मंदिर, बैजनाथ

हमीरपुर

1. कटोच महल, सुजानपुर टीहरा
2. श्री नर्वदेश्वर मंदिर, सुजानपुर

मंडी

1. बरसेले — मंडी शहर
2. श्री पंचवक्तर
3. श्री त्रिलोकीनाथ
4. श्री अर्द्धनारीश्वर
5. श्री महादेव मंदिर — सुंदरनगर

सिरमौर

1. मानगढ़ किला

लाहुल स्पिति

1. ताबो गोम्पा, ताबो स्पिति
2. श्री मुकुला देवी, उदयपुर
3. फू गोम्पा, फू (स्पिति)

राज्य संरक्षित स्मारक

1. देवी कोठी मंदिर, चुराह (चंबा)
2. ममलेश्वर महादेव, करसोग (मंडी)
3. सूर्यनारायण मंदिर, नीरथ (रामपुर)
4. दोचा मोचा मंदिर, गजाँ, (कुल्लू)
5. हरिपुर किला, देहरा (काँगड़ा)

हिमाचल प्रदेश धार्मिक संस्थान तथा पूर्त विन्यास अधिनियम 1984 के अंतर्गत मंदिर

क्र० सं०	नाम	अधिसूचना की तिथि
1.	तारा देवी मंदिर, तारा देवी, जिला शिमला	16.11.1984
2.	दुर्गा माता मंदिर, हाटकोटी, जिला शिमला	16.11.1984
3.	भीमाकाली मंदिर, सराहन, जिला शिमला	16.11.1984
	श्री रघुनाथ मंदिर	
	श्री नारसिंह मंदिर	
	श्री लांकड़ा देवता	
4.	श्री हनुमान मंदिर, जाखु, जिला शिमला	16.11.1984
5.	श्री नैणादेवी मंदिर, नैणा देवी, जिला बिलासपुर	16.11.1984
6.	श्री ज्वालामुखी मंदिर, ज्वालामुखी, जिला काँगड़ा	16.11.1984
	गोरख डिब्बी ज्वालामुखी	
7.	श्री वज्रेश्वरी मंदिर, काँगड़ा, जिला काँगड़ा	16.11.1984
8.	श्री चिंतपूर्णी मंदिर, चिंतपूर्णी, जिला ऊना	16.11.1984
9.	डमटाल मंदिर, डमटाल, जिला काँगड़ा	16.11.1984
10.	बाबा बालकनाथ मंदिर, दियोटसिद्ध, जिला हमीरपुर	16.11.1984
11.	अयोध्यानाथ मंदिर, रामपुंर, जिला शिमला	3.5.1985
12.	दत्तात्रेय मंदिर, दत्तनगर, जिला शिमला	3.5.1985
13.	श्री दुर्गा मंदिर, शराई कोटी, रामपुर, जिला शिमला	30.3.1987
14.	बद्रीविशाल तथा नारसिंह देव मंदिर, नगरोटा सूरियाँ, जिला काँगड़ा	29.12.1988
15.	लक्ष्मीनारायण मंदिर, चंबा	
16.	मंदिर ठाकुरद्वारा देईजी साहिबा, पाँवटा साहिब, जिला सिरमौर	27.7.1989
17.	श्री शाहतलाई मंदिर समूह	29.6.1993
	बाबा बालकनाथ मंदिर, शाहतलाई (मुख्य मंदिर)	
	बाबा बालकनाथ मंदिर, शाहतलाई (द्वितीय मंदिर)	
	वटवृक्ष मंदिर, शाहतलाई	
18.	श्री अष्टभुजा मंदिर, बोहन, ज्वालामुखी, जिला काँगड़ा	29.6.1993

19. नंदीकेश्वर, चामुंडा देवी मंदिर, जिला काँगड़ा 24.2.1994
20. दूर्वेश्वर महादेव तथा भागसू नाग मंदिर 12.12.1997
21. श्री महामाया बालासुंदरी मंदिर त्रिलोकपुर, जिला सिरमौर 22.5.2002
22. श्री संकटमोचन मंदिर तारादेवी, जिला शिमला 5.8.2004
23. बिलासपुर मंदिर समूह
    1. श्री हनुमान मंदिर, डियारा
    2. श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर
    3. बाबा नाहरसिंह, धौलरा, बिलासपुर 13.6.2005
24. श्री देवता बीजट महाराज मंदिर, सराहन, चौपाल, जिला शिमला 29.6.2006
25. श्री शनिदेव मंदिर, लुंबलू, जिला हमीरपुर 2.8.2005
26. श्री मार्कंडेय मंदिर मारकंड, जिला बिलासपुर 2.8.2005
27. श्री सूलणी माता मंदिर सोलन, जिला सोलन 2.8.2005
28. बैजनाथ उपमंडल के मंदिर
    1. श्री शिव मंदिर बैजनाथ
    2. श्री महाकाल मंदिर महाकाल
    3. श्री मुकुटनाथ मंदिर संसाल 9.3.2006

□□

कुछ महत्त्वपूर्ण एवं उत्कृष्ट पुस्तकें

ऋग्वेद : युवाओं के लिए	*प्रवेश सक्सेना*
भारतीय संस्कृति और हिन्दी-प्रदेश (भाग 1)	*रामविलास शर्मा*
भारतीय संस्कृति और हिन्दी-प्रदेश (भाग 2)	*रामविलास शर्मा*
भारतीय संस्कृति और हिमाचल प्रदेश	*पद्मचंद्र काश्यप*
बुद्ध का चक्रवर्ती साम्राज्य	*राजेश चन्द्रा*
वैदिककालीन रूपंकर कलाएँ (चित्र, मूर्ति एवं वास्तु)	*डॉ० जगदीश चंद्रिकेश*
वाल्मीकीय रामायण	*रूपा० : रामचन्द्र वर्मा शास्त्री*
महाभारत	*रूपा० : रामचन्द्र वर्मा शास्त्री*
पंचतंत्र	*आचार्य विष्णु शर्मा*
हितोपदेश	*पंडित नारायण शर्मा*
शान्तिदूत श्रीकृष्ण	*स्वामी विद्यानंद सरस्वती*
द्रौपदी का चीरहरण और श्रीकृष्ण	*स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*
रामायण : भ्रांतियाँ और समाधान	*स्वामी विद्यानन्द सरस्वती*
भारतीय वाङ्मय पर दिव्य दृष्टि	*काशीराम शर्मा*
भारत में नास्तिकवाद	*डॉ० कृष्ण कुमार दीक्षित*
भारत : तब से अब तक	*भगवान सिंह*
भारतीय संस्कृति के सामाजिक सोपान	*शरदेन्दु*
वैदिक संस्कृति का विश्वकोश	*पूर्णचन्द उपाध्याय*
बोधिचर्यावतार (संस्कृत से पहाड़ी में अनुवाद)	*आचार्य शांतिदेव*
रोमा : विश्व के यायावर	*श्याम सिंह शशि*
मिसिंग जनजाति का लोकसाहित्य	*भिक्षु कौण्डिल्य*

आख्यान महिला-विवशता का	*हरिश्चन्द्र व्यास*
राष्ट्र और मुसलमान	*नासिरा शर्मा*
भ्रष्ट समाज (उत्तेजनात्मक विश्लेषण)	*चंदन मित्रा*
कटघरे में पीड़ित	*मीनाक्षी स्वामी*
द्वीपीय समाज	*शिवतोष दास*
अत्र कुशलं तत्रास्तु	*सं० : डॉ० विजयमोहन शर्मा/डॉ० शरद नागर*
प्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रेम-पत्र	*सं० : वीरेन्द्र कुमार गुप्त*
1857 : समरगाथा	*सुदर्शन कुमार चेतन*
निहत्थी रात में	*डॉ० इंदिरा मिश्र*
कश्मीर और भारत-पाक संबंध	*पं० प्रकाशवीर शास्त्री*
हमारी स्वतंत्रता की कहानी	*देवव्रत भटनागर*
गांधी और अहिंसक आन्दोलन	*शंकर दयाल सिंह*
प्राचीन इण्डोनेशिया और भारत	*जगन्नाथ प्रभाकर*
पूर्वांचल प्रसंग	*महावीर सिंह*
स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास (पुरस्कृत)	*मदनलाल शर्मा*
पूर्वोत्तर भारत : दर्शन और चिंतन	*गुलशन राय मोंगा*
वित्तीय विश्लेषण	*वसन्त देसाई*
सरहद पार की बिसातें	*कन्हैयालाल नन्दन*
आखिर कब तक ?	*राजेन्द्र अवस्थी*
आदमी और उसका समाज	*विष्णु नागर*
साक्षरता और समाज	*विनोद दास*
उत्तर आधुनिकतावाद की ओर	*कृष्णदत्त पालीवाल*
सर्जना का अग्निपथ	*सं० : प्रभाकर श्रोत्रिय*
इक्कीसवीं शती का भविष्य	*सं० : प्रभाकर श्रोत्रिय*
समय समाज साहित्य	*प्रभाकर श्रोत्रिय*

समय का विवेक	*प्रभाकर श्रोत्रिय*
सलीम के शनिदेव	*पंकज पराशर*
पुस्तक-समीक्षा का परिदृश्य (पुरस्कृत)	*सं० : विश्वनाथप्रसाद तिवारी*
घने केरतरुतले	*एन०ई० विश्वनाथ अय्यर*
मालवीय जी के सपनों का भारत	*सं० : ईश्वरप्रसाद वर्मा*
चुने हुए निबंध	*हजारीप्रसाद द्विवेदी*
पुनश्च	*हजारीप्रसाद द्विवेदी*
अनछुए बिंदु	*विद्यानिवास मिश्र*
नेपथ्य से	*रमेशचन्द्र शाह*
स्वधर्म और कालगति	*रमेशचन्द्र शाह*
अटल जी के नाम एक धारावाहिक पत्र	*श्रवणकुमार गोस्वामी*
नयी चुनौती : नया अवसर	*अटल बिहारी वाजपेयी*
विचार-बिन्दु	*अटल बिहारी वाजपेयी*
शक्ति से शान्ति	*अटल बिहारी वाजपेयी*
कुछ लेख कुछ भाषण	*अटल बिहारी वाजपेयी*
बिन्दु-बिन्दु विचार	*अटल बिहारी वाजपेयी*
अटल जी के पचहत्तर पड़ाव	*चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा*
दुबरी दुबे	*चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा*
गुरु गृह गयउ पढ़न रघुराई	*विवेकी राय*
आधुनिक निबंध	*श्यामचन्द्र कपूर*
क्रांति अभी अधूरी है	*शान्ता कुमार*
मनी प्लांट	*जितेन्द्र सहाय*

❐